

मृत्तिका-उद्योग

मृत्तिका-उद्योग

लेखक

श्री हीरेन्द्रनाथ बोस



प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रथम सम्करण

१९५८

मूल्य

आठ रुपये

मुद्रक

पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेम, गायघाट, वाराणसी

प्रकाशकीय

भारत की राजभाषा के रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा के पश्चात् यद्यपि इस देश के प्रत्येक जन पर उसकी समृद्धि का दायित्व है, किन्तु इससे हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के विशेष उत्तरदायित्व में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। हमें सविधान में निर्धारित अवधि के भीतर हिन्दी को न केवल सभी राजकार्यों में व्यवहृत करना है, उसे उच्चतम शिक्षा के माध्यम के लिए भी परिपुष्ट बनाना है। इसके लिए अपेक्षा है कि हिन्दी में वाङ्मय के सभी अवयवों पर प्रामाणिक ग्रन्थ हों और यदि कोई व्यक्ति केवल हिन्दी के माध्यम से ज्ञानार्जन करना चाहे तो उसका मार्ग अवरोद्ध न रह जाय।

इसी भावना से प्रेरित होकर उत्तर प्रदेश शासन ने हिन्दी समिति के तत्त्वावधान में हिन्दी वाङ्मय के सभी अङ्गों पर ३०० ग्रन्थों के प्रणयन एवं प्रकाशन के लिए पञ्चवर्षीय योजना परिचालित की है। यह प्रसन्नता का विषय है कि देश के बहुश्रुत विद्वानों का सहयोग इस सत्प्रयास में समिति को प्राप्त हुआ है जिसके परिणाम-स्वरूप थोड़े समय में ही विभिन्न विषयों पर उन्नीस ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं। देश की हिन्दी-भाषी जनता एवं पत्र-पत्रिकाओं से हमें इस दिशा में पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है जिससे हमें अपने इस उपक्रम की सफलता पर विश्वास होने लगा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला का २०वाँ पुष्प है। हिन्दी में औद्योगिक विज्ञान सम्बन्धी आधुनिक साहित्य की बड़ी कमी है। श्री बोस की यह रचना इसी अभाव की पूर्ति के लिए किया गया आशिक प्रयास है जो सर्वथा सस्तुत्य है। मृतिका-उद्योग सम्बन्धी विविध पहलुओं का इसमें सुन्दर विवेचन किया गया है। ऐसा करते समय विद्वान् लेखक ने अपने गंभीर अध्ययन से ही नहीं, तीस

नामक मासिक पत्रिका में प्राप्त, उस विद्वत् सम्बन्धी सूचनाओं तथा नवीनतम खोजों का उपयोग किया है। पुस्तक का आकार अधिक सम्बन्ध पाये उस विद्वत् पत्रिकाओं में प्राप्त सूचनाओं को सक्षेप में लिख दिया है। परन्तु उनमें से एक का नाम तथा उस पत्रिका का वर्ष लिख दिया गया है। विद्वत् पाठक इस विषय में और अधिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखें तो वे विद्वत् विद्वत् पत्रिकाएँ तथा इस समय वागण्मी में प्रकाशित होनेवाली 'जर्नल ऑफ इण्डियन मेरेमिक सोसाइटी' नामक पत्रिका को पढ़ सकें।

म उत्तर प्रदेशीय सरकार की 'हिन्दी-गमिति' के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिसने मुझे यह पुस्तक लिखने का अवसर दिया। आभारों में हिन्दी में ओद्योगिक विज्ञान सम्बन्धी आधुनिक साहित्य का अभाव दूर करने की दिशा में उत्तर प्रदेशीय सरकार का यह एक प्रगतिशील प्रयास है।

अन्त में मैं अपने प्रिय विद्यार्थी श्री रमेशदत्त शर्मा एम. ए. एल. एल. बी. (प्रीवियस) के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिसने मुझे इस पुस्तक लिखने में मेरी विशेष सहायता की है।

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय,

वागण्मी ।

जुलाई, १९५८

हीरेन्द्रनाथ बोग

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

मिट्टी की विभिन्न सामग्रियाँ ... १-१७

मिट्टी के विभिन्न उपयोग-१, मृद्-उद्योग का विश्व-इतिहास-३, भारतीय मृद्-उद्योग का इतिहास-४, इंग्लैंड की मृद्कला का इतिहास-७, कडी मृद्-वस्तुएँ-९, पोरसिलेन-१०, तापमह वस्तुएँ-१५, मृद्-वस्तुओं का वर्गीकरण-१५, मृद्-वस्तुओं के भारतीय उत्पादन आँकड़े-१७ ।

द्वितीय अध्याय

मिट्टियाँ तथा खनिज पदार्थ ... १८-७५

मिट्टिया-१८, मिट्टी की उत्पत्ति-१८, मिट्टियों का वर्गीकरण-२१, लेटेराइट-२२, केओलिन-२३, केओलिन धोने की अँग्रेजी विधि-२३, केओलिन धोने की जर्मन विधि-२६, केओलिन शोधन-२७, विद्युत् रसाकर्षण-२८, केओलिन का वर्गीकरण-३०, केओलिन के गुण-३१ केओलिन के उपयोग-३४, भारत में केओलिन के उत्पत्तिस्थान-३४ ।

गोण मिट्टियाँ तथा उनका वर्गीकरण-३६, दुर्गल मिट्टियाँ-३६, अग्नि मिट्टिया-३८, अग्नि मिट्टियों का शोधन-३९, अग्नि मिट्टियों के भारत में उत्पत्ति-स्थान-४१, गलनशील मिट्टियाँ-४१, बॉल मिट्टियाँ-४१, बेन्टोनाइट-४३, महज गठनीय मिट्टिया-४४, भागलपुर की गंगा मिट्टी का विश्लेषण-४५, शेल मिट्टी-४५, लोम तथा लोइज मिट्टिया-४६ ।

मिट्टियों में अपद्रव्य और उनका प्रभाव-४६, मिट्टियों का लनीलापन तथा विभिन्न सिद्धान्त-५२, लनीलापन का मापन-५६, मिट्टियों पर विद्युद्द्विगुणकों का प्रभाव-५५, मिट्टियों पर जल प्रभाव-६४, मिट्टियों पर प्राकृतिक प्रभाव-६६, कैल्शियम-६६, विभिन्न ओर्गेनिक के विच्छेदन-६८ चीनी पदार्थ-६८, चीनी पदार्थ के विच्छेदन-६९, स्फटिक और चकमक पदार्थ-७०, निम्नापन का प्रभाव-७१, पीमने का प्रभाव-७२, अम्ल गन्ध-७२, निर्जल प्लास्टर-७३, जिप्सम प्लास्टर बनाना-७४ ।

तृतीय अध्याय

पात्रों का निर्माण, सुखाना तथा पकाना

...

७६-११३

कच्चे पदार्थों पर की जानेवाली विधि-७६, निर्माण यन्त्र-७६, पेन रोलर यन्त्र-७६, बाल यन्त्र-७७, निर्माण यन्त्र-७७, चूर्णक यन्त्र-७९, गुप्त व गौरी मिश्रण विधि-८१, जल-निष्कासन यन्त्र-८२, मिट्टी गूँधने का यन्त्र-८३, पत्र यन्त्र-८५, पेमीनेशन-८५, मिश्रण को वायु-रहित करना-८५ ।

पात्र-निर्माण की चाक विधि-८६, रागद विधि-८७, जाली विधि-८८, प्रोफाइल-८९, दवाय विधि-९१, टगर्ट विधि-९३, डलाई घोला नियन्त्रण-९४, पात्रों की गफर्ट-९५, पात्र गुठाना-९६, सुखाव क्रिया के तीन स्तर-९७, हवा की गति और तापक्रम का सूचने पर प्रभाव-९९, सुखाव क्रिया और आकुचन-१००, सुखाने की आर्द्र विधि-१०१, छादनी-१०२, प्रस्फुटन-१०३, छादनी-नियन्त्रण मिश्रण-१०३ ।

साचे-१०४, नमूने साने और केमिंग-१०५, साचों का मउना-१०६ ।

पात्र पकाने के सिद्धान्त-१०७, पात्र-पकाव का धूम या वाष्पीकरण स्तर-१०७, विच्छेदन स्तर-१०८, निर्जलन स्तर-१०८, ओपदीकरण स्तर-१०९, कौचोय स्तर-१११, केलासीय स्तर-११२ ।

चतुर्थ अध्याय

चिकन प्रलेप तथा रंजक ... ११४-१५९

प्रलेप वर्गीकरण-११४, कठोर मध्यम तथा मृदु प्रलेप-११४, प्रलेप का अक्राचीयपन-११५, प्रलेप सगठन-११५, प्रलेप निर्माण में प्रयुक्त होनेवाले पदार्थ-११५, प्रलेप के अवयव आवसाइडो का प्रलेप गुणों पर प्रभाव-११५, एल्यूमिना तथा सिलीका-११६, बोरिक आक्साइड-११६, क्षारीय आक्साइड, लेड आक्साइड तथा चूना-११७, मैगनीशिया तथा बेरीटा-११८, स्वेतता तथा अपारदर्शकता प्रदान करनेवाले पदार्थ-११८, आवसाइडो का गलनीयता-क्रम-११८, द्रावक-११९, रंजक आक्साइडो का गलनीयता-क्रम-११९, प्रलेप पदार्थों का काँचीयकरण-११९, काँचीयकरण के लाभ-११९, काँचीयकरण क्रिया-१२०, प्रलेपन विधिया-१२३, दुबाव, उँटेल तथा बौछार विधिया-१२३, चूर्ण छिडकाव, तूलिका तथा वाष्पशील विधिया-१२४, प्रलेप पकाव-१२४, प्रलेप दोष-१२५, दरार व पपड़ी दोष-१२५, क्रेजिंग परीक्षा-१२६, दरार व पपड़ी दोषों को दूर करना-१२७, घनप्रसार गुणक-१२७, १२८, निर्दोषकरण के प्रयोगसिद्ध नियम-१२९, दाना दोष-१३०, केलास दोष-१३१, छिद्र दोष-१३२, गेस छिद्र दोष-१३२ ।

मृदु-उद्योग रंजक-१३३, रंजक आक्साइड-१३४, स्टेन-१३४, प्रलेप रंजक तथा अन्त प्रलेप रंजक-१३४, प्रलेप तल रंजक-१३५, रंजक बनाना-१३६ ।

कोवाल्ड रंजक-१३६, चमकहीन नीले रंजक-१३७, चमकदार नीले रंजक-१३८ मिश्रण पिण्ड रंजक-१३८, बहनेवाले नीले रंजक-१३९, नीले रंजक म दोष-१४०, दूधियापन-१४०, लौह, छितराव तथा जलवाष्प दोष-१४१, छिद्र तथा चिह्न दोष-१४२ ।

ताम्र रंजक-१४२, फीरोजी नीला रंजक-१४३, रुज पलाम्बे-१४३, ताम्र की रक्त चमक-१४३ ।

लौह रंजक-१४४, लाल लौह आक्साइड बनाना-१४४, पैनेटीर के लाल लौह आक्साइड-१४५, थीवियर्स अर्थ तथा कृत्रिम लाल रंजक-१४६ ।

मंगनीज रजक-१४६, पारगलूनाइट-१४७, बगनी बादाबी रजक-१४७, चकत्ते बनना-१४८ ।

यूरेनियम रजक-१४८, पीठा नारनी-१४८, नारंगी लाठ तथा जेड हरा-१४९ ।

क्रोमियम रजक-१५०, प्रवाल लाठ रजक-१५१, क्राम गुलाबी रजक-१५१, गुलाबी रजक पर विभिन्न अवयवों का प्रभाव-१५४ मिलीका, बोरिक अम्ल तथा एल्यूमिना का प्रभाव-१५४ ।

एण्टीमनी रजक-१५४, नैपिलम यन्त्रों तथा अन्य पीले रजक-१५५ ।

कैडमियम रजक-१५५ ।

स्वर्ण रजक-१५५, कमियम पपिल तथा लाठ बगनी रजक-१५६ ।

प्लैटीनम रजक-१५७ ।

मिश्रित रजक-१५८ ।

पचम अध्याय

धातवीय चमक तथा रजन-विधियाँ १६०-१७९

धातवीय चमक-१६०, धातवीय चमक उत्पन्न करने की शक्ति व गीली विधियाँ-१६१, धातवीय साधन बनाने की विधि-१६२, धातवीय साधनों के विश्लेषण-१६४, टिन तथा बिस्मिथ के धातवीय साधन बनाना-१६४, बिस्मिथ, जस्ता, सीसा तथा टिन की शुद्ध विधि से चमक उत्पन्न करना-१६५, धातवीय साधनों के लिए विभिन्न घोलक-१६६, मिश्रित चमक-१६६ ।

तरल स्वर्ण-१६७, तरल स्वर्ण के अवयव पदार्थ-१६८, गोल्ड ग्लैन्स बनाना-१६९, स्वर्ण की नीली, हरी तथा गुलाबी चमक-१७० ।

रजन विधियाँ-१७०, चित्राकन विधि-१७०, बीछार विधि-१७१, छापा विधि-१७२, छापने के नीले तथा हरे रजक-१७२, छाप तेल-१७२, जल-चित्र विधि-१७५, जल-चित्र कागज-१७५, साइज-१७६, छिड़काव विधि-१७६, आधार तेल-१७७, सरन्ध्र प्रलेप-१७७ ।

षष्ठ अध्याय

पोरसिलेन

...

...

... १८०-२२२

पोरसिलेन का वर्णन तथा उसकी विशेषताएँ एव अल्प पारदर्शकता-
१८०, वर्गीकरण-१८१, तापजनित रासायनिक क्रियाएँ-१८२, व्यापारिक
पोरसिलेन का सगठन-१८३, फेल्सपार युक्त कठोर पोरसिलेन के विशेष
सगठन-१८४, काँचीय पोरसिलेन-१८५, स्टीटाइट पोरसिलेन-१८६,
अस्थि पोरसिलेन या बोन चाइना तथा पेरियन पोरसिलेन-१८७, कृत्रिम
दन्त पोरसिलेन-१८८, पोरसिलेन मिश्रण-पिण्डों का बनाना-१८९, विद्युत्-
रोधक का बनाना-१८९, पात्रों की ढलाई तथा सुखाना-१९२, मिश्रण-
पिण्ड का सगठन-१९३, होटल चाइना-१९४, चिकन प्रलेपन-१९५,
विद्युत्-रोधक-१९६, विद्युत्-रोधक की आवश्यक विशेषताएँ तथा सगठन
का उन पर प्रभाव-१९८, रन्ध्रता, तापक्रम-परिवर्तन, विद्युत्-चालकता
(टी० वैल्यू)-१९८, पारविद्युत्-क्षमता १९९, यान्त्रिक शक्ति-२००,
स्टीटाइट पोरसिलेन-२०१, कार्डीराइट विद्युत् रोधक-२०३, रुटाइल
विद्युत् रोधक-२०५, रासायनिक पोरसिलेन-२०५, रासायनिक पोर-
सिलेन के सगठन-२०६, दुर्गल पोरसिलेन-२०७, चिनगारी प्लग-२०९,
मृदु पोरसिलेन-२०९, मृदु पोरसिलेन तथा उचित प्रलेपों के कुछ सगठन-
२१०, २११, चटकदार प्रलेप-२१२, अस्थि पोरसिलेन या बोन चाइना
तथा उचित प्रलेपों के कुछ सगठन-२१३, पेरियन पोरसिलेन तथा उनके
सगठन-२१६, पोरसिलेन पकाना-२१७, पोरसिलेन भट्ठी का ताप
व्यौरा-२१८, भिन्न पकाव स्तर, पूर्व पकाव तथा मध्य पकाव स्तर-२१८,
उच्च पकाव स्तर-२१९, पोरसिलेन पात्रों के विभिन्न दोष, प्रलेप तल पर
काले धब्बे, पात्रों की विकृति, जोड़ों पर चटक, बालू या लौह धब्बे तथा
पात्रों का चटकना-२२१, परत दोष-२२२।

सप्तम अध्याय

कड़े मिट्टी-पात्र

...

..

... २२३-२८

वर्णन तथा गुण-२२३, वर्गीकरण, उत्कृष्ट कड़े मृत्पात्र-२२३,
साधारण तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी-२२४, कुछ विदेशी मिश्रण-पिण्डों के

मगठन-२२१, उचित प्रलेप का मगठन-२२५, मगनीय मिश्रण-पिण्ड का
पलेप का मगठन-२२६ २२७ छरीयक्त पदों के लिए, मगनीय प्रलेप-
२२८, छरीयक्त पदों के लिए, रक्त पदों-२२९, रक्तपिण्ड का
मगठन-२३० एक जगहों का मिश्रण का मगठन-२३२, पानी नल-
२३५, नमक प्रलेप-२३७, नमक प्रलेप का जलवाप का धूम का,
नमक का तथा जगहों का मगठन-२३८ २३९, नमक का
नमक प्रलेप का-२४०, जगहों के लिए या पलेप-२४२, नमक
प्रलेप के विभिन्न वाद तथा उचित मिश्रण का मगठन-२४३, काजीय
टालिया-२४४ चित्रित टालिया-२४६ ।

अष्टम अध्याय

प्रलेपित मृत्पात्र

२४७-२४९

प्रलेपित मृत्पात्र-२४७, मिश्रण का मगठन-
२४९, भाग मिश्रण का मगठन-२५० २५१, पानी मिश्रण का
मगठन-२५२, जगहों का मगठन-२५३, मृत्पात्र
तथा मृत्पात्र का मगठन-२५४, प्रलेपित मृत्पात्र का मगठन-
२५५, पकाने का प्रभाव-२५६, पकाने का जगह का
प्रभाव-२५७, पकाने का निर्देश-२५८, प्राग्भिक पकाने के
लिए मृत्पात्रों का मगठन-२५९, टाली पकाना तथा टालिया का
प्राग्भिक पकाने हेतु निर्देश-२६०, प्राग्भिक पकाने का-२६१, चित्त
प्रलेप-२६२, अकचित्त प्रलेप-२६३, कचित्त प्रलेप-२६४, २६५, लेप
द्वारा आविष्कृत कचित्त प्रलेप-२६६, सीमा-रहित प्रलेप-२६७, २६८,
सीमा-रहित प्रलेप पर विभिन्न आवसादों का प्रभाव-२६९, अनुज्ज्वल
प्रलेप-२७०, अपारदर्शक उज्ज्वल प्रलेप-२७१, प्रलेप पकाने के लिए पात्रों
का मगठन-२७२, मजावट तथा प्रलेप नल रक्त पकाने-२७३ ।

नवम अध्याय

टेरा-कोटा

...

...

...

२७३-२८५

परिभाषा-२७३, पकाने पर रक्त-२७४, ईंट तथा ईंट निर्माण-

२७६, गृधक ईट-२७७, नीलाभ फर्शी तथा बालू चूना ईट-२७८, खपड़े और छत की टालिया-२८०, मारसेल टाली-२८०, टाली पकाना-२८२, घरेलू मृत्पात्र-२८३, कुम्हार की एक सादी भट्ठी-२८४ ।

दशम अध्याय

दुर्गल वस्तुएँ ... २८६-३२७

दुर्गल पदार्थ तथा दुर्गलता-२८६, दुर्गल पदार्थों का वर्गीकरण, अम्लीय, भास्मिक तथा उदासीन-२८७, गैनिस्टर-२८७, सिलीमेनाइट एव केईनाइट-२८८, मैगनीशिया-२८९, कुछ मैगनेसाइटों के विश्लेषण-२९१, समुद्री पानी से मैगनीशिया बनाना-२९१, उच्च दबाव तथा सरल मैगनेसाइट ईट-२९२, फोस्टराइट-२९२, डोलोमाइट-२९३, जिरकोन तथा जिरकोनिया-२९५, बोक्साइट-२९६, व्यापारिक बौक्साइट का वर्गीकरण, श्वेत, लाल तथा नीलाभ-२९७, लौह अयस्क तथा भास्मिक धातुमल-२९८, ग्रेफाइट-२९९, कार्बोरण्डम-३०१, क्रोमाइट-३०२, क्रोम मैगनेसाइट-३०३, कुछ दुर्गल ईटों के तुलनात्मक भौतिक गुण-३०४, छरीं और छरीं का प्रभाव-३०५, विभिन्न दुर्गल वस्तुएँ, दुर्गल ईट-३०७, अग्नि ईटें मिलीका तथा अर्द्ध मिलीका ईटें एव उनके उपयोग-३०७, ३०८, उदासीन तथा भास्मिक ईटें एव उनके उपयोग-३०८, दुर्गल ईट निर्माण-३१०, दुर्गल ईटें सुखाना-३१३, दुर्गल ईटों के गुण, दुर्गलता तथा रचना-३१४, दबाव-शक्ति-३१५, चटकाकर टूटना-३१६ ।

सैगर-३१६, सैगर निर्माण-विधिया, हाथ द्वारा-३१७, यन्त्र दबाव तथा जॉली विधि-३१८, ढलाई विधि-३१९, सैगर सुखाना तथा पकाना-३१९, सैगर प्रलेपन-३१९, सैगर निर्माण के लिए विभिन्न पदार्थ-३२०, मफल-३२१, मफल निर्माण-३२२, घरियाएँ-३२३, अग्निमिट्टी घरियाएँ-३२३, प्लम्बेगो घरियाएँ-३२४, विशेष घरियाएँ-३२५, एलण्डम घरियाएँ तथा गलित सिलीका घरियाएँ-३२६, घरिया निर्माण-३२६ ।

एकादश अध्याय

ईधन, भट्ठियाँ तथा चूल्हे ... ३२८-३६५

ईधन की परिभाषा तथा वर्गीकरण-३२८, ठोस ईधन, लकड़ी-

३२८, पीट, लिगनाउट तथा विट्मिनी कोयले—३३०, एन्थ्रामाउट कोयले तथा कोक—३३०, ठोस ईंधन का संगठन तथा ऊष्मीय मान—३३०, कुछ भारतीय कोयलों का संगठन, ऊष्मीय मान तथा राग्य—३३१, द्रव ईंधन तथा उनकी विशेषताएँ—३३१, पेट्रोलियम तथा गैल गैल—३३२, जलकतरा तेल—३३३, द्रव ईंधन का जोमन संगठन—३३३, वाष्पारीकरण—३३३, जलवाष्प तथा वायु-वाष्पारीकरण के लाभ तथा हानियाँ—३३३, गैसीय ईंधन, प्राकृतिक गैस—३३७, कोयला गैस एवं उसका संगठन तथा कोक भट्ठी गैस—३३८, उत्पादक गैस तथा जलजन—३३९, उत्पादक गैस का विच्छेदन या ट्रेकिंग—३४१, अशोधित एवं शोधित उत्पादक गैस—३४२, उत्पादक गैस का संगठन—३४२, तेल गैस तथा वात भट्ठी गैस—३४२, विभिन्न गैसों का ऊष्मीय मान—३४३।

भट्ठियाँ और चूल्हे—३४३, विभिन्न प्रकार के चूल्हे—३४४, तेल ईंधन के लिए प्रकोष्ठ चूल्हा—३४६, चूल्हे की जाती और भट्ठी फर्ग के क्षेत्रफलोम अनुपात—३४७, चूल्हे की योजनाएँ—३४७, भट्ठी की दीवार और छत—३४८, भट्ठी दीवारों का ताप प्रसारण—३४९, ताप-पृथक्करण ईंट—३५०, उच्च तापक्रम-पृथक्करण ईंटों के गुण—३५१, गैस नालियाँ और चिमनी—३५१।

भट्ठियों का वर्गीकरण—३५२, अविराम भट्ठियों के लाभ—३५३, ईंट पकानेवाली भट्ठी का ताप-व्यय-विवरण—३५४, भट्ठा या पजावा—३५४, ऊर्ध्वगति तथा अधोगति या निम्नगति भट्ठियाँ—३५५, उग्रेण्ड की श्वेत मृत्पात्र भट्ठी—३५६, दो प्रकोष्ठवाली भट्ठी—३५७, क्षैतिज गति विराम भट्ठियाँ, मफलभट्ठियाँ—३५९, अविराम भट्ठियाँ, हाफमैन भट्ठी—३६०, मैण्डहाइम तथा सुरग भट्ठियाँ—३६१, बॉक सुरग भट्ठी—३६२, वृत्ताकार सुरग भट्ठियाँ—३६३, ड्रेसलर अविराम मफल भट्ठी—३६४, विद्युत् भट्ठियों के लाभ—३६५, विभिन्न भट्ठियों की आपेक्षिक दक्षताएँ—३६५।

द्वादश अध्याय

उत्तापमापन

...

...

...

३६६—३८२

तापक्रम और राग-परिवर्तन—३६६, उत्तापदर्शी—३६६, वैजबुड

मिलिण्डर उत्तापदर्शी—३६७, सैगर शकु—३६७, सैगर शकुओं के नम्बर
और तापक्रम सारणी—३६८, होल्डक्राफ्ट दण्ड उत्तापदर्शी—३७०, बुलर
चक्र उत्तापदर्शी—३७१, उत्तापमापी—३७२, वैद्युतिक उत्तापमापी—
३७२, विद्युत् प्रतिरोध उत्तापमापी—३७२, तापीय युग्म उत्तापमापी—
३७३, युग्म सगठन—३७४, ३७५, तापीय युग्म उत्तापमापी में ठण्डे सिरों
का सुधार—३७७, विकिरण उत्तापमापी—३७७, विकिरण उत्ताप मापी
का फोकस करना—३७८, प्रकाश उत्तापमापी—३७९, फेरी प्रकाश उत्ताप-
मापी—३८१, वैज प्रकाश उत्तापमापी—३८२ ।

त्रयोदश अध्याय

मृद्-उद्योग में गणनाएँ ... ३८६-४१५

कच्चे पदार्थों में नमी की मात्रा तथा उसका महत्त्व—३८३, मृत्पात्रों
में आकुचन, सुखाव तथा पकाव आकुचन—३८४, रन्ध्रता—३८५,
आपेक्षिक घनत्व—३८६, वास्तविक तथा आभासित आपेक्षिक घनत्व—
३८७, शुष्क तथा घोला मिश्रण—३८७, ब्रोगनियट्स समीकरण—३८९,
घोला अवयव सूत्र का शुष्क अवयव सूत्र में परिवर्तन—३८९, मिश्रण-
पिण्ड की गणना—३९०, चरम विश्लेषण तथा युक्तिगत विश्लेषण—३९०,
मन्निकट विश्लेषण और उसकी गणना—३९१, चरम विश्लेषण के सन्निकट
विश्लेषण में परिवर्तन का उदाहरण—३९२, प्रलेप सगठन गणना—३९३,
प्रलेप सगठन व्यक्त करने की चरम विश्लेषण, व्यावहारिक सूत्र तथा
आणविक सूत्र विधियाँ—३९३, चरम विश्लेषण का आणविक सूत्र में
परिवर्तन—३९४, आणविक सूत्र तथा व्यावहारिक सूत्र का एक दूसरे में
परिवर्तन—३९५, ३९६, काँचित प्रलेप तथा काँचित करने के नियम
३९७, कच्चे पदार्थों के काचीकरण द्वारा प्राप्त आक्साइडों के लिए गुणक
सारणी—३९८, काचित प्रलेप मिश्रण की गणना—४०२, अल्प घुलनशील
प्रलेप—४०४, डाक्टर थार्प का आनुपातिक नियम—४०५, इल्यूट्रेशन—
४०६, प्रामाणिक तल अंक—४०९, वर्गीकरण की तलछट विधि—४११,
सुखाव ताप गणना—४१२, व्यर्थ गैसों से प्राप्य ताप—४१४, चिमनी
के लिए आवश्यक ताप—४१५ ।

चतुर्दश अध्याय

उद्योग-परिकल्पना

... ४२६-४३७

उद्योग-परिकल्पना के लिए विज्ञानीय बात-४३६, अग्नि-ईंट के उद्योग की परिकल्पना-४३७, कठे मिट्टी-पात्र की उद्योगशाला की परिकल्पना-४३८, पारमिलेन उद्योगशाला की परिकल्पना-४३९ मशीनों का चक्रान-४४० श्रम नियन्त्रण-४४१, अग्नि की पारिश्रमिक देने की विभिन्न विधिया-४४५ ।

पञ्चदश अध्याय

कारखाने की व्यवस्था तथा प्रबंध

.. .. ४३८-४६३

मृद्-उद्योग की सफलता के विभिन्न आधार, पृथ्वी-४३८, स्थान-निर्णय-४४१, मजदूर समझा-४४४, वस्त्र माल की प्राप्ति-४४५, विज्ञान की सुविधाएँ-४४६, कारखाने का निवास तथा उसका सदन-४४७, प्रारम्भिक पक्षों में विभिन्न पात्रों की योजना-४४८, कारखाने की उत्पादन मूल्य तथा प्रत्यक्ष-रूप में मूल्य मूल्य या ऊपरी व्यय-४५२, उत्पादन पर ऊपरी व्यय तथा विज्ञान पर ऊपरी व्यय-४५२, उत्पादन मूल्य-निर्धारण-४५३, मृद्-उद्योग में विभिन्न यन्त्रों के जीवनकाल तथा त्याग व्यय आकड़े-४५५, भारतीय तथा विदेशी मूल्य निर्धारण आकड़े, जमनी विद्युत् रोधक तथा इन्सुलेशन के चाय प्याले प्याली-४५६ भारतीय चाय प्याले प्याली-४५७, आधुनिक विज्ञापन-४५८, प्रदर्शन कक्ष-४६३ ।

परिशिष्ट

मृद्-उद्योग में प्रयुक्त होनेवाले पदार्थ. उनके अणु-सूत्र, अणु-भार तथा

द्रवणांक की सारणी

.. ४६५

मृद्-उद्योग के लिए कुछ उपयोगी सम्बन्ध

... ४७०

एक घनफुट विभिन्न पदार्थों का भार

.. ४७०

भार, आयतन तथा लम्बाई समानताएं

४७०

अग्नि ईंटों के प्रामाणिक आकार

... ४७१

पारिभाषिक शब्दावली

... ४७३

चित्र-सूची

चित्र	पृष्ठसंख्या
१ इंग्लैण्ड की खान में माइका का दृश्य	२५
२ विद्युत् रसाकर्षण यन्त्र	२९
३ केओलिन पर ताप प्रभाव का रेखाचित्र	३३
४ मिट्टियों का गलनाक निर्धारक चार्ट	३७
५ मिट्टी-घोला के लिए श्यानतामापी (विस्कोमीटर)	६३
६ विभिन्न विद्युद्विश्लेष्यो का प्रभाव	६४
७ एक पैन रौलर यन्त्र	७७
८ बाल-मिल	७८
९ हार्डिञ्ज शकु आकार चूर्णक यन्त्र	८०
१०. यन्त्रचालित पखे (Screw-Blunger)	८१
११ जल निष्कामन यन्त्र	८२
१२ मिट्टी गूथने का यन्त्र	८४
१३ पग यन्त्र	८५
१४ मिले हुए जिम्गर व जाली का चित्र	९०
१५ हस्तचालित स्कूप्रेस	९३
१६ मृत्पात्रो के सूखने पर आकुचन	९८
१७ काचीयकरण के लिए घरिया भट्ठी	१२१
१८. काचीयकरण के लिए कुड भट्ठी	१२१
१९ कुम्भयन्त्र में बेलनों की समष्टि	१२२
२० प्रलेप तल में छिद्रों का बनना	१३२
२१. गैस छिद्रों का बनना	१३३
२२ रजकों के लिए सुई बीछार यन्त्र	१७१

चित्र	पृष्ठसंख्या
२३ छापा-विधि या छाप-रज	१७५
२४ व्यापारिक पारमिटेन का गणन	१८२
२५ पारमिटेन के लिए स्तम्भ प्रेस	१८५
२६ पकाने समय विभिन्न पदार्थों की भार मात्रा	२०४
२७ प्रलेपित मृत्पात्र में आगन-परिग्रह	२५७
२८ प्रलेप पकाव हेतु पात्रों का रचने के लिए विभिन्न आकार	२७१
२९ कुम्हार की एक माटी भट्ठी	२८४
३० विभिन्न दुर्गल वस्तुएं	३०७
३१ होलडेन जलवाष्प-बोछार यन्त्र	३३७
३२ कार्बोनेन वायु-बोछार यन्त्र	३३५
३३ वेड ज्वालक	३३६
३४ एक गम उत्पादक	३४०
३५ मृद-उद्योग भट्ठिया के लिए दाँज जाली वाला चूल्हा	३४४
३६ पारमिटेन भट्ठी के लिए मुकी हुई जालीवाला चूल्हा	३४५
३७ तेल ईंधन के लिए प्रकोष्ठ चूल्हा	३४६
३८ भट्ठी की गोल छत के नीचे तेल दहन	३४८
३९ मृद-उद्योग भट्ठिया के लिए गैस ज्वालक	३४७
४० ऊर्ध्वगति भट्ठी	३५७
४१ अधोगति भट्ठी	३५७
४२ इंग्लैंड की श्वेत मृत्पात्र भट्ठी	३५६
४३ पोरसिलेन पात्र पकाने के लिए दो प्रकोष्ठवाली भट्ठी	३५८
४४ कैसेल क्षैतिज भट्ठी	३५९
४५ सफल भट्ठी	३५९
४६ हाफमैन भट्ठी का अधोदृश्य या प्लान (Plan)	३६०
४७ हाफमैन भट्ठी का पार्श्व दृश्य	३६०
४८ सैण्डहाइम प्रकोष्ठ भट्ठी	३६१
४९ वाँक सुरंग भट्ठी का काट दृश्य	३६२
५० वाँक सुरंग भट्ठी का पार्श्व दृश्य	३६२

चित्र	पृष्ठसंख्या
५१ ड्रेसलर सुरग भट्ठी	३६४
५२ वैजवुड उत्तापदर्शी	३६७
५३ सैगर शकु के टेढे होने की विभिन्न अवस्थाएँ	३७०
५४ होल्ड क्राफ्ट दड उत्तापदर्शी	३७१
५५ बुलरचक्र के लिए आकुचन प्रमापी	३७१
५६ एक विद्युत् प्रतिरोध उत्तापमापी	३७३
५७ तापीय युग्म उत्तापमापी	३७६
५८ फेरी विकिरण उत्तापमापी	३७८
५९ फेरी प्रकाश उत्तापमापी	३८१
६० वैज प्रकाश उत्तापमापी	३८२
६१. श्वेन वर्गीकरण उपकरण	४०८

मृत्तिका-उद्योग

प्रथम अध्याय

मिट्टी की विभिन्न सामग्रियाँ

गन्दे कीचड़ के रूप में हम मिट्टियों से भली-भाँति परिचित हैं। जब हम गीले खेतों में चलते हैं, तो यह कीचड़ हमारे पैरों में चिपक जाता है। परन्तु हमसे कितने जानते हैं कि यह गन्दा कीचड़ बहुत-सी ऐसी उपयोगी वस्तुओं के रूप में बदला जा सकता है, जो हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक हैं। मिट्टियाँ, प्रकृति में, शुद्ध व अशुद्ध दोनों रूपों में पायी जाती हैं। शुद्ध मिट्टी रंग में श्वेत होती है और पकाने के पश्चात् श्वेत या मक्खनी रंग की हो जाती है। अशुद्ध मिट्टी बादामी या भूरे रंग की होती है और पकाने के पश्चात् उसका रंग लाल तथा हल्के बादामी से लेकर गहरे बादामी रंग तक में बदल जाता है। मिट्टियों का यह रंग उनमें उपस्थित अपद्रव्यों पर निर्भर करता है। इन शुद्ध तथा अशुद्ध मिट्टियों से इतने प्रकार की सामग्रियाँ बनायी जाती हैं कि हम सोच भी नहीं सकते कि आज के समय में कोई मानव उनके बिना भी रह सकता है।

हम मिट्टी की ईंटों से बने घर में रहते हैं। यह घर बर्फ, वर्षा, ताप, ठण्डक और आँधी-तूफान से हमें बचाने के लिए मिट्टी के खण्डों से पाटे जाते हैं। कुछ मकानों के फर्श पर मिट्टी की सुदृढ़ टालियाँ लगायी जाती हैं। कुछ मकानों में सजावट के लिए दीवारों पर भी विभिन्न आकृतियों की श्वेत तथा रंगीन टालियाँ लगायी जाती हैं। आधुनिक स्नानागार तथा शौचालय की दीवारों पर भी हम श्वेत चिकन-प्रलेपित टालियों को लगी हुई देखते हैं। इनके कारण वे सरलता-पूर्वक साफ किये जा सकते हैं और स्वच्छ अवस्था में रखे जा सकते हैं। आधुनिक मकानों के शौचालयों में मलत्याग-पात्र, मूत्रत्याग-पात्र और हाथ-मुँह धोने के पात्र रहते हैं। ये सब भी मिट्टी के बने होते हैं। आजकल हमारे घरों से मिट्टी के नलों द्वारा ही गन्दा पानी निकाला जाता है और इस प्रकार हम गन्दे पानी की दुर्गन्ध, मक्खी-मच्छरों के उपद्रव और बीमारियों के प्रकोप से बच जाते हैं।

अपने दैनिक जीवन में हम मिट्टी के पात्रों में भोजन बनाते तथा खाते हैं। ठीक प्रकार से बने मिट्टी के बर्तन, धातुओं के बर्तनों की अपेक्षा भोजन रखने तथा भोजन करने के लिए अधिक अच्छे होते हैं।

घर में बिजली लगाने के लिए स्विच व क्लिप आदि बिजली के अचालक पदार्थों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। ये सब मिट्टी के बने होते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान को बिजली ले जाने के लिए मिट्टी के बने विद्युत्-रोधक (Insulator) बहुत बड़ी संख्या में प्रयुक्त होते हैं। रेडियो-संचरण में प्रयुक्त होनेवाले विशेष प्रकार के विद्युत्-रोधक भी, दूसरे खनिजों के साथ मिली मिट्टी से ही बनाये जाते हैं।

रासायनिक कारखानों तथा प्रयोगशालाओं में अम्ल और क्षार रखने, सक्षारक पदार्थों के गरम करने, अम्लीय तथा क्षारीय द्रवों को पम्प करने तथा दूसरे बहुत-से कार्यों के लिए मिट्टी के बने छोटे या बड़े पात्र प्रयोग में लाये जाते हैं। इन विशेष प्रकार के मृत्पात्रों के बिना प्रयोगशालाओं में अन्वेषण-कार्य या कारखानों में रासायनिक पदार्थों व औषधों का निर्माण यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जायगा। इन कार्यों के बिना मानव सभ्यता का विकास करना या वर्तमान जीवन-स्तर को ही स्थिर रखना कठिन होगा।

जो मिट्टियाँ कम तापक्रम पर नहीं गलती उनका प्रयोग अग्नि-ईंटों, घरियों (Crucibles), बन्द भट्ठियों (Muffles) और काँच पिघलाने के पात्र बनाने में होता है। छोटे या बड़े आकार की अग्नि-ईंटों का प्रयोग उच्च तापक्रमवाली भट्ठियों के बनाने में होता है। घरियों का प्रयोग ताँबा, पीतल, सोना, चाँदी आदि धातुओं के पिघलाने में होता है। काँच तथा मृत्पात्रों के लिए चिकन-प्रलेपनों के पिघलाने में भी घरियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। बन्द भट्ठी का प्रयोग इस्पात-यन्त्रों पर पानी चढ़ाने में, काँच-कलईवाले पात्रों तथा चिकन-प्रलेपित मृत्पात्रों के पकाने में होता है। इन दुर्गल या तापसह मृत्पात्रों के बिना कोई भट्ठी बनाना या ऐसे पदार्थों का निर्माण करना सम्भव न होगा जिनके निर्माण में उच्च तापक्रम पर गरम करने की आवश्यकता पड़ती हो।

सीमेण्ट भी, जो मकान, सड़क और बाँध आदि बनाने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है, मिट्टी और चूने से बनता है। सीधे मिट्टी से बननेवाली इन वस्तुओं के अतिरिक्त दूसरे बहुत-से ऐसे उद्योग हैं जिनमें मिट्टी किसी न किसी

रूप में प्रयोग में लायी जाती है। इनमें से कुछ ये हैं—कागज, कार्डबोर्ड तथा वस्त्र-उद्योग। कुछ वर्णकों के निर्माण, जैसे अल्ट्रामैराइन नील, रबड़ उद्योग में भारवर्द्धक (Filler) के रूप में और थोड़ी मात्रा में औषध तथा सौन्दर्य-प्रसाधक पदार्थों के निर्माण में।

कुम्भकारी तथा कुलाल-विज्ञान को अंग्रेजी भाषा में सेरेमिक्स (Ceramics) कहा जाता है। विद्वानों का ऐसा विचार है कि पारिभाषिक शब्द सेरेमिक (Ceramic) यूनानी (ग्रीक) शब्द केरामिक (Keramic) से बना है जिसका अर्थ होता है कुम्हार की कला। वर्तमान समय में यह शब्द उन सब वस्तुओं के लिए, जिनमें मिट्टी का प्रयोग हुआ हो और उच्च तापक्रम द्वारा पकायी गयी हो, प्रयुक्त होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में सीमेण्ट, चूना, काँच तथा काँचकलई के बर्तन-उद्योग 'सेरेमिक' शब्द के अन्दर आ जाते हैं। परन्तु यूरोप में यह उचित नहीं समझा जाता। इस पुस्तक में तापसह पदार्थों (जिनमें किसी सीमा तक मिट्टी संयोजक-कारक (Binding agent) के रूप में प्रयोग की जाती है) सहित मृत्तिका-उद्योग की सभी शाखाओं पर विचार होगा। मिट्टी की कला मानवीय कलाओं में सबसे पुरानी है। स्वभावतः इस कला के क्रमबद्ध विकास का पता लगाना बहुत ही कठिन है। आगे के पृष्ठों में एशिया तथा यूरोप की मिट्टी कला के विभिन्न भागों के विकास का केवल संक्षिप्त इतिहास देने का प्रयास किया गया है।

ऐसा विचार है कि प्राचीन मिस्रवासी ही ऐसे लोग थे जिन्होंने मिट्टी के पदार्थों का सर्वप्रथम प्रयोग किया था। पकी मिट्टी के बर्तन, जो मृतकों के लिए सामग्री रखने के उद्देश्य से बनाये गये थे, मेमफाइट काल (५,००० ई० पू० से ३,००० ई० पू०) की कब्रों में पाये गये हैं। कुछ नील नदी की घाटी के नीचे पायी गयी ईंटे लगभग दस हजार वर्ष पूर्व बनायी गयी समझी जाती हैं। बाद में इन लोगों ने मिट्टी के चिकन-प्रलेपित बर्तन बनाने की कला का पता लगाया जिसके अवशेष उनके पिरामिड तथा मन्दिरों में अभी तक देखने को मिलते हैं। बाद के समय की विकसित मृत्तिका-कला में पात्र प्रायः पतले चिकन-प्रलेपन से प्रलेपित एवं आसमानी या पीले हरे रंग से रंगे हुए हैं। कहीं-कहीं मिट्टी ही रंगीन है, परन्तु उसने प्रायः रंगत छोड़ दी है।

असीरिया तथा बेबीलोनिया के निवासी बहुत प्राचीन काल से विभिन्न रंगों से रजित पकी मिट्टी के बर्तन प्रयोग करते थे । हेरोडोटस (Herodotus) का कहना है कि मीडिया (Media) में एकबातना (Ecbatana) की दीवारें सात रंगों से रंगी हुई थी । खोरसाबाद में असीरिया के महलों के स्थान पर हुई खुदाई में एक इक्कीस फुट लम्बी तथा पाँच फुट ऊँची दीवार मिली थी जिसमें सामने की पूरी दीवार में रंगी हुई ईंटों द्वारा मनुष्य, जानवर तथा पेड़ों की आकृतियाँ बनी थी । पेरिस के लूवर (Louvre) अजायबघर में रखे हुए निनेवा तथा बेबीलोन की मिट्टी-कला के नमूनों का निर्माण-काल ५०० ई० पू० अनुमान किया जाता है ।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि फारस-निवासियों ने यह कला असीरियनों से सीखी और इसे सुधार कर पूर्णता की सीमा तक पहुँचाने में सफल हुए । फारस की प्राचीन मिट्टी-वस्तुएँ अधिक बालू-मिश्रित पदार्थों से बनायी गयी थी । इस पर पारदर्शक क्षारीय चिकन-प्रलेपन लगाया गया था, जिससे अधिक चमक दीखती थी । बर्तन प्रायः पीले और नीले, थोड़े उठे हुए प्रलेपन द्वारा अलंकृत किये जाते थे ।

भारतवर्ष में मिट्टी की वस्तुएँ विभिन्न रूपों में बहुत ही प्राचीन काल से प्रयुक्त होती आयी हैं । नवीन खुदाइयों से पता चलता है कि बर्तन बनाने की कला यहाँ ४,००० वर्ष पूर्व ही काफी उन्नत दशा में थी । इसमें कोई सन्देह नहीं कि सिन्ध की घाटी में हड़प्पा और मोहनजोदड़ों में हुई खुदाइयों में पायी गयी वस्तुएँ एशिया माइनर की सुमेर सभ्यता की (जो ३०००-४००० ई० पू० के समय की बतायी जाती है) वस्तुओं से काफी समानता लिये हुए हैं । इन मिट्टी की वस्तुओं तथा किश (Kish) के मिट्टी के बर्तनों में समानता है । हम्मुराबी के (Hammurabi's) समय के मन्दिर के नीचे टूटे हुए टुकड़ों में एक बिलकुल वैसी ही मुहर मिली है जैसी कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ों के टूटे टुकड़ों में पायी गयी है ।

वेदों के स्तोत्रों में (२०००-३००० ई० पू०) भी मिट्टी-कला का उल्लेख किया गया है । परन्तु छठी तथा नवी ई० पू० शताब्दी के बीच बने इस सम्बन्ध में मनु के नियम काफी स्पष्ट हैं । भारतवर्ष में सभी स्थानों पर मिट्टी के बर्तन प्रयोग में लाये जाते हैं तथा कुम्हार हिन्दू-समाज की कर्मणा जातियों में से एक है । इतिहास से पूर्व भारतवर्ष की लाल, बादामी तथा काले रंग की मिट्टी-

पात्र में बिना चिकन-प्रलेपन की हुई जो चमकदार ऊपरी सतह है, वह वर्तमान रूपों से, चित्रकारी तथा कारीगरी में, बहुत श्रेष्ठ है।

पंजाब के अम्बाला जिले में रूपर की हाल की खुदाई में भूरे रंगे हुए बर्तन मिले हैं। ये काले रंग की डिजाइन-सहित भूरे रंग की मिट्टी-कला का एक प्रसिद्ध भाग हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं का विचार है कि इस प्रकार के चित्रों-सहित मिट्टी की वस्तुएँ उन प्राचीन मनुष्यों द्वारा बनायी गयी हैं, जिन्होंने सिन्ध की घाटी में हड़प्पा को लगभग २००० ई० पू० छोड़ा था और रूपर के आसपास ७०० ई० पू० तक बस गये थे। इस विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भागों में कई और स्थानों पर भी पाये गये हैं।

उत्तर प्रदेश में कन्नौज की खुदाई में भी इस प्रकार के भूरे बर्तन निकले हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं के विचार से इस प्रकार की मिट्टी-कला प्रारम्भिक आर्य-काल की है और उत्तर भारत के मथुरा, हस्तिनापुर, कुश्नपुर, इन्द्रप्रस्थ आदि कई स्थानों पर भी पायी गयी है। ये मिट्टी के पात्र सम्भवतः १००० ई० पू० से ७०० ई० पू० के बीच के काल में बने हुए हैं।

यद्यपि भारत में इतिहास के पूर्वकाल से ही पकी मिट्टी के बर्तन बनते थे, परन्तु चिकन-प्रलेपित वस्तुओं का निर्माण इसी हाल की शताब्दी से प्रारम्भ हुआ है।

एम० रुजलेट (M. Rousselet) के अनुसार महलो, मन्दिरो तथा किलों पर स्मरणार्थ सजावट के लिए काँचीय प्रलेप का प्रयोग पाँचवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक होता था और इसके नमूने ग्वालियर, कन्नौज, देहली, चित्तौड़ तथा उज्जैन में फैले हुए मिलते हैं। ईंटों पर यह काँचीय प्रलेप सम्भवतः बालू व क्षार से बना हुआ और पतला चिपकनेवाला तथा अर्द्ध पारदर्शक है। वे प्रायः गहरे पीले, हरे नीले, हरे पीले, नारंगी या बैंगनी रंगों द्वारा चमकदार तथा शुद्ध रंगों से रंगे जाते थे।

फारस के ढग के अनुसार चिकन-प्रलेपित खपड़े (Tiles), गौड़ (Gour) की खुदाई में निकले हैं। गौड़ ११वीं तथा १३वीं शताब्दी के बीच बगाल की राजधानी था।

पंजाब में चिकन-प्रलेपित पात्रों का निर्माण चंगेज खाँ के समय (१२०६-

१२२७ ई० तक) से प्रारम्भ होता है। इस मृत्तिका-उद्योग की विशेषताएँ आकृतियों में सादगी, सजावट तथा रंगों की सुन्दरता में सीधापन एवं अधिकार है।

सिन्ध-स्थित हैदराबाद में कौचित मृत्पात्रों की जो कला पायी जाती है वह चीन के कुछ मनुष्यों के कारण है, जिन्हें वहाँ का एक अमीर उस जिले में बसाने के लिए लाया था। हैदराबाद के काशीगर लोग अपने को उन्हीं का वंशज मानते हैं।

उत्तर प्रदेश के तीन छोटे कस्बों—चुनार, खर्जा तथा निजामाबाद ने स्थानीय मिट्टियों का प्रयोग करते हुए तीन विशेष प्रकारों की मिट्टी-कला का विकास किया है। चुनार में मिट्टी की वस्तुएँ कुम्हारों द्वारा पकायी जाती हैं तथा वे गंगा नदी द्वारा जमा की हुई मिट्टी का प्रयोग करते हैं। व्यापारी इन वस्तुओं को कुम्हारों से इकट्ठा करके इन पर रंगीन, अपारदर्शक चिकन-प्रलेपन लगाकर दुबारा पका लेते हैं और इस प्रकार चिकन प्रलेपित वस्तुएँ तैयार हो जाती हैं।

खर्जा में वस्तुएँ स्थानीय साधारण लचीली मिट्टी से बनाते हैं, परन्तु उनके ऊपर श्वेत प्रलेप की एक सफेद तह लगा देते हैं जो बाद की रंगीन सजावट के लिए पृष्ठभूमि का कार्य करती है। उसके पश्चात् वस्तुओं पर एक पारदर्शक चिकन प्रलेपन लगाते हैं जिससे सफेद पृष्ठभूमि पर की गयी रंगीन सजावट दीखती है।

निजामाबाद की मिट्टी-कला उपर्युक्त दो कलाओं से इस बात में भिन्न है कि इस पर किसी चिकन-प्रलेपन का प्रयोग नहीं होता। वस्तु की ऊपरी सतह बनाते समय इतनी चिकनी कर दी जाती है कि वह पकाने के पश्चात् बिना किसी चिकन-प्रलेपन के ही चमकती है। ये वस्तुएँ प्रायः ऊपरी सतह पर खुदे हुए नकशों द्वारा सजायी जाती हैं जिन्हें बाद में पारे तथा टीन या पारे तथा सीसे के मिश्रण से भर दिया जाता है।

बगाल के बरहामपुर तथा उत्तर प्रदेश के लखनऊ में मिट्टी-उद्योग के कलात्मक भाग का काफी सीमा तक विकास हुआ है। नकशे इतने साफ होते हैं तथा कार्य इतनी उत्तमता से किया जाता है कि ये वस्तुएँ ससार की सबसे अच्छी निर्माण-शाला की वस्तुओं से मुकाबला कर सकती हैं, परन्तु पदार्थों की अच्छाई तथा सफाई में अभी काफी सुधार होना शेष है।

भारतवर्ष की और प्रकार की मिट्टी-कलाओं के बीच अजीमगढ़ (पश्चिमी पाकिस्तान) की काली तथा रजत मिट्टी कला, कोटा (राजस्थान) तथा अमरोहा

की तूलिका से रंगी सुनहली मिट्टी की कला, एव सिन्ध तथा पंजाब की चिकन-प्रलेपित मिट्टी की कला का उल्लेख किया जा सकता है।

ये वस्तुएँ प्रायः नदियों द्वारा जमा की हुई मिट्टी से बनायी जाती हैं। यह मिट्टी स्वभावतः अशुद्ध होती है। भारतवर्ष में सफेद मिट्टी की वस्तुएँ बनाने का कारखाना सरकारी सहायता से ग्वालियर में श्री डी० सी० मजूमदार द्वारा प्रारम्भ हुआ था। श्री मजूमदार ने आधुनिक मिट्टी-उद्योग की शिक्षा जापान तथा यूरोप में प्राप्त की थी।

स्पेन में मिट्टी-उद्योग अरब-निवासियों तथा मूरों द्वारा प्रारम्भ किया गया था। मूरों ने मिट्टी की वस्तुओं को नये प्रकार से विकसित किया, जो चिकन-प्रलेपन के ऊपर धातविक चमक के कारण फारस की मिट्टी की वस्तुओं से भिन्न थी। इस प्रकार की धातविक चमकवाली दीवारों की टाली के नमूने स्पेन की पुरानी मस्जिद में अब भी देखे जा सकते हैं। ईसाइयों की इस देश पर विजय से इस विकसित उद्योग को काफी धक्का लगा, परन्तु इटली-निवासी इस कला को मूरों से सीखने में भाग्यशाली निकले और अपने देश तक इस कला को ले गये।

१५वीं शताब्दी के अन्त में लूकाडेल्ला रोबिया (Lucadella Robia) नामक इटली के कलाकार ने टिन-आक्साइड मिलाकर एक नये अपारदर्शक चिकन-प्रलेपन का आविष्कार किया। इन बर्तनों का नाम स्पेन के मेजोरिका नामक द्वीप के नाम के पीछे मेजोलिका रखा गया था। मेजोरिका द्वीप मूरों के समय मिट्टी की कला के लिए बहुत प्रसिद्ध था। मेजोलिका वस्तुओं का निर्माण इटली से दूसरे बहुत-से देशों में फैल गया। फ्रांस देश के फेन्जा (Faenza) नामक स्थान से नूतन शब्द फेअन्स (Faience) निकला। वर्तमान समय में फेअन्स शब्द उन तमाम चिकन-प्रलेपित मिट्टी की वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है जिन्हें अंग्रेजी में 'अर्देनवेयर' (Earthenware) कहा जाता है।

ग्रेट ब्रिटेन में पायी जानेवाली सर्वप्राचीन, ज्ञात मिट्टी की कला सेल्टिक काल से प्रारम्भ होती है। रोमन विजय के बाद मिट्टी की वस्तुएँ बनाने की कला में सुधार हुआ था, परन्तु आंग्ल-सेक्सन विजय के पश्चात् यह पुनः प्रारम्भिक स्थिति में पहुँच गयी और यह स्थिति सत्रहवीं शताब्दी तक चलती रही। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ-काल में स्टैफर्डशायर में यह उद्योग काफी विकसित अवस्था में था।

आजकल स्टैफर्डशायर वर्तमान इंग्लैंड के मिट्टी-उद्योग का मुख्य केन्द्र है। प्रारम्भ में मिट्टी की वस्तुएँ बनाने के लिए दो अत्यावश्यक पदार्थ थे—मिट्टी और लकड़ी। ये दोनों साथ-साथ देश के बहुत-से भागों में काफी प्रचुर मात्रा में पाये जाते थे। इस कारण मध्यकाल में कुम्हार एक स्थान पर केन्द्रीभूत न हो सके, वरन् देश के सभी भागों में फैले रहे। परन्तु कोयले का ईंधन के स्थान पर प्रयोग होने से तथा कोयले और मिट्टी दोनों के उत्तरी स्टैफर्डशायर में सरलतापूर्वक मिलने से इस कला के कलाकारों की संख्या स्टैफर्डशायर के आसपास बढ़ने लगी और सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक यह इंग्लैंड के मिट्टी-उद्योग का सबसे बड़ा केन्द्र हो गया।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में इंग्लैंड के मिट्टी-उद्योग में शीघ्रता से जो सुधार हुए वे विदेशी प्रभाव के कारण थे। अधिक श्रेय डेनमार्क के दो एलर (Eler) भाइयों को है जिन्होंने उद्योग की कार्य-कुशलता में बहुत-से सुधार किये।

कुम्हारों में सबसे प्रसिद्ध जोसिया वेंजवुड (Josia Wedgwood) का जन्म एक बहुत ही पुराने कुम्हार-परिवार में हुआ था। वह तेरह बच्चों में सबसे छोटा था और जब वह केवल ९ वर्ष का था तभी से उसने अपने भाई टामस (Thomas) के नीचे कुम्हारी चाक पर काम करना प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु दायें घुटने में चोट के कारण उसे चाक को छोड़कर उद्योग के दूसरे विभागों में जाने को विवश होना पड़ा। सन् १७५४ ई० में वह टामस व्हीलडन फर्म का साझेदार हो गया और साझेदारी के पाँच वर्षों में ही अपना स्वतन्त्र कारखाना खोल दिया। सन् १७५९ ई० में उसने बर्सलेम (Berslem) में एक छोटा-सा मकान किराये पर लिया और कारखाना खोल दिया। इस छोटे-से कारखाने को विश्व के मिट्टी-उद्योग में सुधार करने का काफी श्रेय है। मलाई रंग की वस्तुओं के बनाने में सफलता के कारण सन् १७६५ ई० में उसे जार्ज तृतीय की पत्नी रानी शार्लोट (Charlot) का शाही संरक्षण प्राप्त हो गया। ये मलाई रंग के वर्तन बाद में 'क्वीसवेयर' कहलाये। अपने अथक परिश्रम और धैर्ययुक्त परीक्षणों के प्रति अनुराग के कारण उसे बहुत शीघ्र ही सफलता मिली। उसने सन् १७६९ ई० में ईट्रूरिया (Etruria) नामक स्थान में एक बड़ा कारखाना स्थापित किया जो अब भी उसके वंशजों के अधिकार में है। प्रचलित 'क्वीस-वेयर' के अतिरिक्त नया कारखाना काले बासाल्ट पात्रों के लिए भी प्रसिद्ध

हो गया। ये काले बासाल्ट पात्र बिना चिकन-प्रलेपित कड़ी मिट्टी से निर्मित (Stoneware) होते थे जो अलकृत बर्तनो तथा आकृतियों के लिए उपयोगी थे। जैसपार पात्र (Jaspar ware) प्रायः सफेद उठी हुई सजावट से बनते हैं। वैजवुड ३ जून सन् १७९५ ई० में मर गया।

वैजवुड की सफलता ने तात्कालिक कुम्हारों में प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया। उसके बाद की तीव्र स्पर्धा के कारण उद्योग का, कारीगरी तथा कार्य-कुशलता दोनों के क्षेत्र में, काफी विकास हुआ। इस स्पर्धा के परिणाम-स्वरूप एक विशेष प्रकार की मिट्टी की वस्तुओं का आविष्कार हुआ जिसको अंग्रेजी में 'अर्देनवेयर' कहा जाता है। ये वस्तुएँ अच्छी तरह पकायी गयी होती हैं और अन्दर की ओर सरल होती हैं तथा बाहर की सतह पर एक नये प्रकार का बोरो-सिलीकेट चिकन-प्रलेपन लगा होता है। इस प्रकार की मिट्टी-कला में बड़ी सफलता के कारण ही यूरोप तथा अमेरिका के अधिकतर प्रगतिशील देशों में इस की फैक्ट्रियाँ स्थापित हुई थी।

जर्मनी तथा यूरोप के बहुत-से भागों में सर्वप्रथम मिट्टी की वस्तुएँ पाषाण-युग में सेल्ट्स (Celts) द्वारा बनायी गयी थी। १७वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में इटली की मैजोलिका वस्तुओं की कार्य-कुशलता जर्मनी तथा यूरोप के दूसरे देशों में फैल गयी। जर्मनी में मेजोलिका वस्तुओं का बनना हालैंड के डैनील बेहागेल (Daniel Behagel) द्वारा सन् १६६१ ई० में प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार की वस्तुएँ १८वीं शताब्दी के अन्त तक चलती रहीं। बाद में इंग्लैंड के श्वेत मृत्पात्र (Fine-earthenware) यूरोप के बाजार में इतनी अधिकता से आने लगे कि मैजोलिका वस्तुओं को इंग्लैंड के श्वेत मृत्पात्रों के लिए बाजार छोड़ देना पड़ा। जर्मनी में इन नयी प्रकार की वस्तुओं को 'स्टाइन गुत' (Stein gut) कहा जाने लगा।

कड़ी मिट्टी-वस्तुएँ

(STONEWARE)

जर्मनी में १४वीं शताब्दी से ही एक विशेष प्रकार की मिट्टी-वस्तुओं के बनाने का आविष्कार हुआ। इन वस्तुओं को प्रायः कड़ी मिट्टी-वस्तुएँ कहा जाता है। ये वस्तुएँ मुख्यतः राइनलैंड (Rhineland) में पायी जानेवाली,

जलने पर मासल (Buff) रंग की हो जानेवाली मिट्टी से बनायी जाती थी। दूसरी वस्तुओं से भिन्न, इस प्रकार की वस्तुएँ पूर्णरूपेण काँचीय तथा रन्ध्रहीन होती थी और इन पर साधारण नमक से चिकन-प्रलेपन किया जाता था। बाद में हुए विकासो के कारण वर्तमान कडी मिट्टी-वस्तुओं तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी मिट्टी-वस्तुओं का जन्म हुआ। कडी मिट्टी-वस्तुओं को भारी रासायनिक उद्योग (Heavy chemical industries) के शीघ्र विकास का काफी श्रेय है। इंग्लैण्ड में साधारण नमक द्वारा चिकन-प्रलेपन सर्वप्रथम एलर भाइयों द्वारा १७वीं शताब्दी के अन्त में प्रारम्भ हुआ था। १८वीं शताब्दी के मध्य तक इंग्लैण्ड में कडी मिट्टी-वस्तुओं का अविराम निर्माण प्रारम्भ हो गया था। इसके लिए वे श्वेत मिट्टी का प्रयोग करते थे जो इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम सन् १७२० ई० में खोजकर निकाली गयी थी। १९वीं शताब्दी में रासायनिक कडे मिट्टी-वर्तन, परनाला, अम्लपात्र आदि के विकास तथा माँग के कारण रगीन मिट्टी का प्रयोग पुनर्जीवित हो उठा। वर्तमान शताब्दी में भारत में कडी मिट्टीवाले वर्तनों के बहुत-से कारखाने प्रारम्भ हो गये हैं जिनका मुख्य उत्पादन साधारण नमक द्वारा चिकन-प्रलेपित पानी निकालने की नालियाँ, अचार-मुरब्बे के पात्र, स्वास्थ्य-सम्बन्धी मृत्पात्र और अम्लपात्र हैं।

पोरसिलेन

चीन-निवासियों ने २०० ई० पू० में नये प्रकार की मिट्टी की वस्तुओं का बनाना प्रारम्भ किया। इसमें वे शुद्ध श्वेत मिट्टी काउलिंग (Kauling) तथा एक नये पत्थर का, जिसे पी-टुन्जी (Pe-tun-tse) कहा जाता है, प्रयोग करते थे। चीन की मिट्टी-कला बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अरब व्यापारियों द्वारा चीनी चाय के साथ यूरोप में पहुँची थी। इन अरब व्यापारियों ने भूमध्य सागर के बन्दरगाहों, विशेष कर इटली के बन्दरगाहों, से निरन्तर व्यापार की स्थापना की थी। सन् १२९८ ई० में प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ने अपने चीन के वर्णन में वहाँ की प्रसिद्ध मिट्टी-कला को बताने के लिए पोरसिलेन शब्द का प्रयोग किया था। बाद में जैसे-जैसे चीन की मिट्टी-कला के नमूने यूरोप में अधिकाधिक जाने लगे वैसे ही वैसे इस पोरसिलेन शब्द का प्रयोग मिट्टी की एक विशेष प्रकार की वस्तुओं तक ही सीमित हो गया, जो श्वेत, अल्प पारदर्शक तथा काँचीय होती हैं तथा जिनपर एक विशेष प्रकार का मुलायम श्वेत चिकन-प्रलेपन दिया जाता है।

सुद्ध पूर्व के इस पदार्थ की श्रेष्ठता तथा महत्व को जानकर यह स्वाभाविक था कि यूरोप में इटली-निवासी ही सर्वप्रथम अपने देश में पोरसिलेन बनाने का प्रयास करे। लन्दन के विक्टोरिया और अलबर्ट अजायबघरों के संग्रहों में सबसे प्राचीन नमूनों के विषय में सोचा जाता है कि वे सन् १५७५ से १५८५ ई० के बीच फ्लोरेन्स (Florence) में मेडीसी (Medici) परिवार की सरक्षकता में बने थे। इस नकली पोरसिलेन के गुण चीनी पोरसिलेन से भिन्न थे। कारण यूरोप के निवासी मिट्टी तथा काँच के मिश्रण का प्रयोग करते थे। मिट्टी और काँच के मिश्रण का प्रयोग करने का कारण इन लोगों का यह विश्वास था कि पोरसिलेन पारदर्शक काँच और अपारदर्शक मिट्टी की वस्तुओं के बीच का एक पदार्थ है।

इस क्षेत्र में अगला कदम फ्रांसीसी लोगों ने उठाया और बताया जाता है कि सन् १७६३ ई० में रूआँ (Rouen) के निकट सेण्ट सेवरे (St Sevre) का फिआन्स बनानेवाला लुई पोटरेट (Louis Poterat) चीन-जैसी पोरसिलेन बनाने में सफल हुआ। उसके थोड़े दिन बाद ही वैसी ही वस्तुएँ पेरिस के पास सेण्ट क्लाउड (St Cloud) के फिआन्स कारखाने में बनने लगीं।

यह प्रारम्भिक फ्रांसीसी पोरसिलेन वास्तव में काँच था, जो पूर्णतः पिघलाया नहीं जाता, परन्तु उसमें दुग्ध-जैसी अल्प पारदर्शकता उत्पन्न कर दी जाती है। बाद की दो शताब्दियों में बहुत-से वैज्ञानिकों की गवेषणाओं द्वारा प्रसिद्ध सीवरेस पोरसिलेन (Sevres Porcelain) का आविष्कार हुआ जो अल्प-पारदर्शकता तथा सजावट के रंगों की सख्या में चीन की सबसे सुन्दर पोरसिलेन के बराबर ठहरती थी।

जर्मनी में कुम्हारों ने नहीं, वरन् कीमियागरो ने पोरसिलेन के संगठन का पता लगाया। सन् १७०९ ई० में एक कीमियागर के पुत्र जान फ्रेडरिक बौटकर (John Frederic Bottcher) ने एक संगठन का पता लगाया, जो चीनी पोरसिलेन से बिल्कुल मिलता था। जब इस आविष्कार का समाचार फ्रेडरिक अस्टस प्रथम के पास पहुँचा तो सेक्सोनी के प्रधान ने बौटकर को दूसरे कारीगरों के सहित माइसेन (Meissen) के पास एल्बरेख्तबर्ग (Albrechts berg) के किले में बन्द कर दिया। बौटकर तथा इन कारीगरों से किसी भी किये हुए आविष्कार के भेद को न बताने की शपथ ले ली गयी थी। बौटकर केवल ३५ वर्ष की अवस्था में ही, सन् १७१९ ई० में, मर गया। कुछ ही समय में विभिन्न सुयोग्य प्रबन्धों के कारण इस किले के कारखाने में बनी वस्तुएँ सारे यूरोप में इतनी

प्रसिद्ध हो गयी कि कठोर नियन्त्रण के होते हुए भी बहुत-से कारीगर किसी तरह छिपकर भाग गये और उनकी सहायता से जर्मनी में बहुत-से स्थानों पर नये कारखाने खुल गये। सन् १७५९ ई० में और फिर सन् १७६१ ई० में जर्मनी के महान् फ्रेडरिक ने एलबरेख्तबर्ग के कारखाने को लूटा। अतः कुछ समय तक कारखाना बिल्कुल बन्द कर दिया गया। बौटकर तथा उसके उत्तराधिकारियों के साँचे, नमूने, मुख्य-मुख्य कारीगर तथा लेख-प्रमाण फ्रेडरिक अपने साथ बर्लिन ले गया था।

बर्लिन की राजकीय पोरसिलेन फैक्टरी की स्थापना का श्रेय जॉन आर्नेस्ट गोत्सकोवस्की (John Ernest-Gottskowski) को है। गोत्सकोवस्की एक बैकर था जिसने सन् १७६१ ई० में कारखाना खोला। फ्रेडरिक ने इस कारखाने को सारा सामान और कारीगर, जिन्हें वह अपने साथ माइसेन कारखाने से लाया था, भेज दिया था। दो वर्ष बाद सन् १७६३ ई० में फ्रेडरिक ने कारखाने को स्वयं अपने हाथ में ले लिया। यही कारखाना बाद में बर्लिन का राजकीय कारखाना हो गया। बर्लिन का यह कारखाना दूसरे राजकीय कारखानों की भाँति लाभदायक व्यापार न था। अतः इस बर्लिन पोरसिलेन को बेचने के लिए बहुत-से चतुरता-पूर्ण तरीकों का उपयोग किया जाता था।

बर्लिन की पोरसिलेन खरीदने के लिए यहूदियों पर अधिक दबाव डाला गया था। राजकीय पोरसिलेन का एक पूरा सेट खरीदे बिना कोई यहूदी विवाह का प्रमाणपत्र नहीं पा सकता था। साथ ही बर्लिन की लाटरियों को प्रतिवर्ष इस पोरसिलेन के मूल्य के लगभग ५० हजार मार्क्स (सिक्के) बॉटने पड़ते थे। तो भी जब कारखाने के वैज्ञानिक तथा यन्त्रकला-विज्ञान आदि क्षेत्रों की ओर ध्यान दिया गया तो बर्लिन के इस कारखाने ने ससार के पोरसिलेन-उद्योग के विकास में बड़ी सहायता पहुँचायी।

महान् वैज्ञानिक डाक्टर हेरमान अगस्त सैगर (जन्म १८३९ ई०) उन व्यक्तियों में से एक थे, जिन्हें जर्मनी के मिट्टी-उद्योग के शीघ्र विकास का श्रेय है। उन्होंने केवल इस विषय पर स्वयं ही बहुत-सा कार्य नहीं किया, वरन् अपने पीछे छात्रों का एक ऐसा समूह भी छोड़ा जिनकी गणना अब तक मिट्टी-कला के महान् विशेषज्ञों में है। मृद्-उद्योग को उनकी सबसे बड़ी देन पाइरोस्कोप है, जिससे मिट्टी की वस्तुओं का भट्ठी के अन्दर तापक्रम नापा जाता है। उसके नाम के पीछे उसे सैगर शकु (Segar Cone) कहते हैं।

वास्तव में सैगर अग्रनेता थे जिन्होंने प्रथम बार मार्ग दिखाया, जिस पर उन सभी व्यक्तियों को चलना चाहिए जो इस उद्योग पर कुछ अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं।

१८ वीं शताब्दी के मध्य में इंग्लैण्ड के कुम्हार भी चीन-जैसी मिट्टी की वस्तुएँ बनाने के लिए श्वेत पदार्थों की खोज में व्यस्त थे। इंग्लैण्ड में वास्तविक पोरसिलेन बनाने का प्रथम सफल प्रयास विलियम कुकवर्थी (William Cookworthy) का था। उसने सन् १७५५ ई० में कार्नवाल में चीनी मिट्टी तथा चीनी पत्थर का पता लगाया था। यद्यपि उस समय फ्रांस-जैसी काँच-पोरसिलेन बनाने के पदार्थ तथा विधि ये लोग जानते थे, परन्तु देशवासी कुम्हारों ने अपने स्वतन्त्र प्रयोग उस समय तक नहीं छोड़े जब तक कि १८ वीं शताब्दी के अन्त से कुछ ही पूर्व स्ट्रोक-आन-ट्रेण्ट में अस्थि-राख सहित एक नया सगठन न निकल आया।

यह नयी अस्थि पोरसिलेन बोन चाइना (Bone china) के नाम से विख्यात हो गयी और तब से बहुत-से देशों में इसका अनुकरण हुआ है। उपर्युक्त अनेक देशों में विभिन्न प्रकार की निकली हुई पोरसिलेनो को मुख्य तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

१ फेल्सपैथिक या आदि पोरसिलेन—इस प्रकार की पोरसिलेन सर्वप्रथम चीन में तथा बाद में जर्मनी, फ्रांस तथा दूसरे यूरोपीय देशों में बनी थी।

२ काँचीय या कृत्रिम पोरसिलेन—यह सर्वप्रथम सफलतापूर्वक इटली और फ्रांस में बनायी गयी थी। उसके बाद दूसरे यूरोपीय देशों में इसका अनुकरण किया गया। इसका मुख्य भाग मुलायम होता है और काँच के समान आसानी से छोटे-छोटे टुकड़ों में टूट जाता है।

३. अस्थि पोरसिलेन अथवा बोन चाइना—यह सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में बनी और फिर दूसरे देशों को ले जायी गयी। इसके मुख्य भाग में हड्डी की राख होती है और कठोरता तथा टूटने में यह प्रथम दो के बीच की है।

यूरोप-निवासियों द्वारा प्रारम्भ करने से पूर्व भारतवर्ष में वास्तविक पोरसिलेन का इतिहास अप्राप्य है। सन् १८३९ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने आदेश दिया कि भारतवर्ष में भी श्वेत मृत्पात्र बनाने की ओर उचित प्रयास किया जाय। मेडिकल कालेज कलकत्ता की प्रयोगशाला में कहलगाँव (Kolgong-Bihar) आदि स्थानों की विभिन्न मिट्टियों का परीक्षण हुआ। उन पर चिकन-प्रलेप करने

के बहुत से प्रयोग किये गये। बिहार के भागलपुर जिले में कहलगाँव के निकट पथरघट्टा में पोरसिलेन बनाने का प्रथम कारखाना सन् १८६० ई० में खुला। डाक्टर बॉल (Ball) ने इस कारखाने का वर्णन करते हुए लिखा है—“इस कारखाने में स्टेफर्डशायर में बनी वस्तुओं के समान चीनी बर्तन, वैज्ञानिक कार्यों के लिए पोरसिलेन पात्र तथा श्रेष्ठ पेरियान (Parian) आदि वस्तुएँ बनायी हैं।”

वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में आधुनिक स्तर पर मिट्टी की वस्तुओं का कारखाना कलकत्ता में प्रारम्भ हुआ था। यह कारखाना श्री एस० देव द्वारा प्रारम्भ किया गया था और उन्होंने ही इसका प्रबन्ध किया था। श्री देव ने जापान, इंग्लैण्ड तथा जर्मनी में शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ की बनी वस्तुएँ उच्च श्रेणी की होती हैं। इस कारखाने ने इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है कि भारतवर्ष में भी केवल स्थानीय कच्चे पदार्थों से ही उच्च श्रेणी की मिट्टी की वस्तुएँ बनायी जा सकती हैं। भारतवर्ष का यह प्रथम पोरसिलेन का कारखाना अब एशिया के बड़े कारखानों में से एक हो गया है। बगलोर का पोरसिलेन का कारखाना १९३१-३३ ई० में मैसूर राज्य की सरकार द्वारा प्रारम्भ हुआ। यह कारखाना भी उन्हीं विशेषज्ञ श्री एस० देव द्वारा बनवाया गया था जिन्होंने पोरसिलेन का प्रथम कारखाना कलकत्ता में १९०५-१९०८ ई० में बनवाया था। यह कारखाना मुख्यतः पोरसिलेन के विद्युत्-रोधक (Insulator) बनाता है। सन् १९३६ ई० में हेर राइत्ज नामक जर्मन विशेषज्ञ ने कारखाने का कार्य-भार ले लिया था परन्तु सन् १९३९ ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने पर ब्रिटिश सरकार ने हेर राइत्ज को एक स्थान पर नजरबन्द कर दिया। आजकल भारतवर्ष में बहुत-सी जलविद्युत् योजनाओं के कार्यान्वित होने से विद्युत्-रोधक की माँग बहुत बढ़ गयी है। अतः बगलोर के इस पोरसिलेन कारखाने का विस्तार तथा इसकी पुनर्व्यवस्था एक जापानी कम्पनी द्वारा हो रही है। इस कारखाने का उत्पादन उच्च श्रेणी के २,५०० टन तक विद्युत्-रोधक प्रतिवर्ष हो जाने की आशा है। इसके साथ-साथ काफी सख्या में विभिन्न घरेलू उपयोग की पोरसिलेन-वस्तुएँ भी बनने की आशा है।

बाद में भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों पर दूसरे कारखाने भी खुले, जिनमें से अधिकांश के प्रबन्धक लेखक द्वारा प्रशिक्षित, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र हैं। मिट्टी की वस्तुओं की माँग क्रमशः बढ़ रही है। अतः वर्तमान माँग पूरी करने के लिए कई और नये कारखाने सरलतापूर्वक खोले जा सकते हैं।

तापसह वस्तुएँ

(REFRACTORY WARES)

यद्यपि अग्नि-ईंटो या दुर्गल ईंटो (Fire bricks) का प्रयोग श्वेत मिट्टी की वस्तुओं के बनने के काल से ही होता आया है, परन्तु तापसह वस्तुओं का अविराम उत्पादन १९वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि इस उद्योग का प्रादुर्भाव इंग्लैण्ड में हुआ, परन्तु यूरोप के अन्य उत्पादक देशों ने बाद में काफी उन्नति की है।

भारतवर्ष में बंगाल के रानीगंज में सन् १८५९ ई० में स्थापित मेसर्स बर्न एण्ड कम्पनी द्वारा अग्नि-ईंटे बनायी जाती थी। सन् १८७५ ई० में कलकत्ता टकसाल की भट्टियों में कुछ अग्निमिट्टियों का परीक्षण हुआ था, जहाँ पर काफी नमूने परीक्षण में पूर्ण सफल रहे। इस कम्पनी का जबलपुर का कारखाना सन् १८९० ई० में प्रारम्भ हुआ था और बहुत वर्षों तक यह कम्पनी अग्नि-ईंटे बनाकर रेलवे कारखानों की भट्टियों को देती रही। यह कम्पनी अपने समय की एकमात्र कम्पनी थी जो अग्नि-ईंटो में विशेषता प्राप्त कर रही थी। सन् १९०९ ई० में जमशेदपुर के निकट 'टाटा आइरन एण्ड स्टील वर्क्स' की स्थापना से उच्च श्रेणी की अग्नि-ईंटो तथा दूसरी तापसह वस्तुओं की माँग इतनी तेजी से बढ़ी कि बहुत-से नये कारखाने खुल गये, जो विभिन्न प्रकार की उच्च तापसह वस्तुओं को भारतीय कच्चे माल से बनाते हैं।

मिट्टी की वस्तुओं का वर्गीकरण

समय-समय पर विभिन्न प्रकार की मिट्टी की वस्तुएँ बनने से यह आवश्यक हो गया कि विभिन्न मिट्टी की वस्तुओं को एक-सी विशेषता वाले वर्गों में बाँट दिया जाय।

बाउरी (Bourry) ने मिट्टी की विभिन्न वस्तुओं को दो भागों में विभाजित किया है—(१) सरन्ध्र वस्तुएँ तथा (२) रन्ध्रहीन वस्तुएँ। बाद में इनको पाँच और उपभागों में मिट्टी मिश्रण-पिण्ड तथा चिकन-प्रलेपन के आधार पर विभाजित किया है।

बाउरी वर्गीकरण को मानते हुए लेखक ने तमाम मिट्टी की वस्तुओं को निम्नलिखित पाँच भागों में बाँटना ठीक समझा है—

१ पकी मिट्टी (Terra cotta)—इस पारिभाषिक शब्द का अर्थ होता है

‘पकायी हुई मिट्टी’ और वर्तमान समय में उन सब मिट्टी की वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है जो बिना चिकन-प्रलेपन के तथा सरन्ध्र हैं। साधारण ईंटे, छत के खपड़े तथा दूसरी चिकन-प्रलेपन-रहित वस्तुएँ, जो साधारण कुम्हारों द्वारा बनायी जाती हैं, इस वर्ग में आती हैं। ये वस्तुएँ प्रायः पकाने पर लाल या बादामी रंग की हो जानेवाली मिट्टी से बनती हैं तथा दूसरे वर्गों की वस्तुओं की अपेक्षा कम तापक्रम पर पकायी जाती हैं।

२. चिकन-प्रलेपित मृत्पात्र (Earthenware)—इस वर्ग में सफेद या रंगीन मिट्टी से बनी सभी सरन्ध्र वस्तुएँ आती हैं, परन्तु इन पर सदैव चिकन-प्रलेपन की परत चढ़ी रहती है। इसमें फास का फिआन्स, जर्मनी का स्टाइन गुत तथा दूसरी ऐसी वस्तुएँ जैसे मेजोलिका, आइरन स्टोन, फिलिप्सवेयर आदि और जलने पर लाल हो जानेवाली मिट्टी से बने, बादामी, काले, चिकन-प्रलेपन से प्रलेपित तथा कथित राकिघम पात्र (Rockingham ware) आते हैं। भारतवर्ष में ग्वालियर तथा चुनार की मिट्टी की वस्तुएँ इस वर्ग में आती हैं।

३. कड़ी मिट्टी-वस्तुएँ (Stoneware)—ये काँचीय अपारदर्शक मिट्टी की वस्तुएँ होती हैं। जलने पर श्वेत हो जानेवाली मिट्टी या रंगीन मिट्टी से बनायी जाती हैं। सफेद वस्तुएँ पोरसिलेन की भाँति प्रायः चिकन-प्रलेपन से ढँकी रहती हैं। परन्तु रंगीन वस्तुओं पर प्रायः साधारण नमक का चिकन प्रलेपन रहता है।

४. पोरसिलेन (Porcelain)—इस वर्ग में सभी श्वेत, अपारगम्य तथा चिकन-प्रलेपन से ढके मिट्टी के पात्र आते हैं। ये काफी पतले होने पर अल्प पारदर्शक होते हैं। ये वस्तुएँ सदैव शुद्ध श्वेत चीनी मिट्टी से बनायी जाती हैं। वस्तुओं के मिश्रण-पिण्ड (Body) को बहुत ही उच्च तापक्रम पर काँचीय किया जाता है।

५. तापसह वस्तुएँ (Refractories)—ये अग्नि-मिट्टियों से या उच्च तापसह पदार्थों से बनायी और बहुत ही ऊँचे तापक्रम पर पकायी जाती हैं। ये बिना चिकन प्रलेपन के तथा सरन्ध्र रहती हैं। ये भट्टियों के बनाने में, धातुओं तथा काँच के गलाने आदि में प्रयुक्त होती हैं।

भारतवर्ष में विभिन्न प्रकार के मृत्पात्रों के बनाने में काम आनेवाली मिट्टियाँ तथा खनिज काफी अधिकता से पाये जाते हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् इन खनिजों की अधिकाधिक खोज जारी है और विभिन्न स्थानों पर नये भण्डार मिले हैं। हमारी वर्तमान सरकार ने मृद्-उद्योग के विकास में विशेष रुचि दिखायी है,

और इस प्रसंग में भारत के केन्द्रीय भारी उद्योग मंत्री श्री मनुभाई एम० शाह के भाषण की कुछ पक्तियों का उद्धरण अप्रासंगिक न होगा। यह भाषण उन्होंने ९ फरवरी सन् १९५७ ई० को इण्डियन सेरेमिक सोसाइटी की २१ वीं साधारण वार्षिक सभा में मोरवी में दिया था।

“हम मृद्-उद्योग तथा पोरसिलेन के क्षेत्र में स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्रों, प्रलेपित टालियों तथा खपडों, कड़ी मिट्टी-नल तथा विद्युत्-रोधकों के विकास पर अधिक जोर दे रहे हैं। यद्यपि इस उद्योग की अधिकतर वस्तुएँ बड़े कारखानों में ही बनती हैं, परन्तु घरेलू उपयोग की तथा कलात्मक महत्त्व की बहुत-सी चीजें हाथ से भी बन सकती हैं। यही एक क्षेत्र है जिसमें दोनों स्तरों के सम्मिलित उत्पादन का कार्यक्रम बहुत महत्त्वपूर्ण है।” निम्नलिखित सारणी में विभिन्न वस्तुओं की वर्तमान वार्षिक उत्पादन-क्षमता, लाइसेंस-प्राप्त बढ़नेवाली क्षमता तथा वह उत्पादन-अन्तर जो पूरा करना है, दिया गया है।

इस सारणी में सभी उत्पादन टनों में दिये गये हैं।

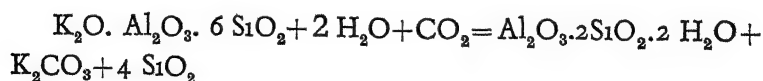
वस्तुनाम	वर्तमान वार्षिक उत्पादन- क्षमता	लाइसेंस- प्राप्त बढ़नेवाली क्षमता	प्रस्तावित बढ़नेवाली क्षमता	१९६०-६१ तक सम्पूर्ण प्राप्य क्षमता	१९६०-६१ तक आवश्यकता पूर्ति के लिए आवश्यक संपूर्ण क्षमता
बर्तन	१६,८९६	१४,४२०	२,७२४	३४,०४०	२४,५००
स्वास्थ्य सम्बन्धी पात्र	२,६४०	४,३२०	३,७६०	१०,७२०	८,०००
प्रलेपित टालियाँ	४,१०४	३,२६५	१,३८०	८,७४९	८,०००
कड़े मिट्टी-नल	५७,४२४	३३,८१०	१३,२००	१,०४,४३४	८०,०००
कड़े मिट्टी-जार	९,३६७	२८८	१०८	९,७६३	२१,३८०
उच्च तनाव विद्युत्- रोधक	८००	४,९८०	—	५,७८०	८,०००
न्यून तनाव विद्युत्- रोधक	५,४२४	११०,६०	३९६	१६,८८०	८,०००
दूसरी पोरसिलेन की विभिन्न विद्युत् की वस्तुएँ	—	१२	१५०	१६२	—
अन्य	६००	५४०	६६	१,२०६	२,१२०
योग	९७,२५५	७२,६९५	२१,७८४	१,९१,७३४	१,६०,०००

द्वितीय अध्याय

मिट्टियाँ तथा खनिज पदार्थ

मिट्टियाँ—मिट्टी को लैटिन भाषा में आरगाइल (Argile) कहते हैं। यह शब्द उन सूक्ष्मकणीय खनिज पदार्थों के लिए प्रयुक्त होता है जो बहुत-से खनिजों से मिलकर बने हों तथा जिनके मुख्य गुण प्रधानतः तीन हों—(१) गीले होने पर लचीलापन, (२) सूखने पर आकृति को धारण रखने की क्षमता, (३) गरम करने पर पूर्व आकार को बिना खोये ही कठोर हो जाना।

मिट्टी की उत्पत्ति—मिट्टी आग्नेय चट्टानों का विच्छेदित पदार्थ है। ये चट्टानें मुख्यतः एल्यूमिना (Al_2O_3) तथा रेत से बनी होती हैं। चट्टानें प्राकृतिक साधनों द्वारा विच्छेदित होकर अतिसूक्ष्म कणोंवाले लचीले या अर्द्ध लचीले पिण्ड में बदल जाती हैं। जब मूल चट्टान में चूना, मैगनीशिया, लोहा आदि अपद्रव्य होते हैं तो विच्छेदन से अशुद्ध मिट्टी मिलती है। फेल्सपार युक्त चट्टान (Fels pathic Rock) से अपेक्षाकृत शुद्ध श्वेत मिट्टी मिलती है जिसे केओलिन (Kaolin) कहते हैं। यह चट्टानों का विच्छेदन स्पष्ट रूप से किस प्रकार होता है, यह अभी गवेषणा का विषय बना हुआ है। विच्छेदन में होनेवाली क्रियाएँ इतनी जटिल हैं कि उनका केवल अपूर्ण ज्ञान ही प्राप्त हो सका है। विच्छेदन द्वारा चट्टान के शुद्ध मिट्टी में परिवर्तित हो जाने को केओलीनीकरण (Kaolinization) कहते हैं। चट्टानों के विच्छेदन में होनेवाली क्रिया को सरलतम ढंग से निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है—



पोटैशियम कार्बोनेट वर्षा के पानी में घुलकर, रसकर, निकल जाता है और सिलिका (SiO_2) मिट्टी के साथ मिला रहता है, जैसा कि लगभग सभी मिट्टियों में हम पाते हैं।

केओलिन बनने की विधि की परिकल्पना के अनुसार चट्टान पर निम्नलिखित चीजों की क्रियाएँ होती हैं —

- १ तल पर प्राकृतिक साधनों की ।
- २ धँसान तथा दलदल के ऊपर से नीचे जानेवाले पानी की ।
- ३ कार्बन डाई आक्साइड सहित नीचे से ऊपर चढ़नेवाले पानी की ।
- ४ गन्धकाम्ल घोल तथा हाइड्रोजन सल्फाइड ।
- ५ जल-विश्लेषण (Hydrolysis) ।

चट्टान के तल का प्राकृतिक साधनों द्वारा विच्छेदन, केओलीनीकरण की सर्वप्राचीन व्याख्या है। यह व्याख्या अब भी भूगर्भशास्त्र की सभी पाठ्य पुस्तकों में मिलती है। जिस गहराई तक चट्टानों का तल-विच्छेदन होता है वह भिन्न-भिन्न होती है। कुछ भागों में, विशेष कर प्राचीन जंगलों के नीचे, यह काफी गहराई तक जा सकती है। खुली चट्टानों में यह गहराई अस्तित्वहीन हो सकती है। स्वभावतः जोड़ की सीमा तथा विशेषता, जलवायु-सम्बन्धी विशेषताओं, चट्टानों की बनावट एवं खनिज सम्बन्धी विशेषताओं का तल-विच्छेदन की गहराई पर प्रभाव पड़ता है। एक बात, जिसे प्रत्येक प्रेक्षक सोचने को विवश होता है, यह है कि श्वेत प्राथमिक मिट्टी पाये जानेवाले क्षेत्र फेल्सपार चट्टानों (जिनसे यह मिट्टी बन सकती थी) के पाये जानेवाले क्षेत्र के अनुपात में बहुत कम है। अब हम जानते हैं कि प्रायः इस प्रतिकारक (Agent) द्वारा केओलीनीकरण नहीं होता। ग्रेनाइट (Granite) तथा दूसरी फेल्सपार-युक्त चट्टानों के प्राकृतिक विच्छेदन से प्राप्त मिट्टियों के गुण भिन्न होते हैं। चूँकि तल-विच्छेदन तनु अम्लों द्वारा होता है और यह विधि भी ओषदीकारक है। अतः नीचे की चट्टान में लोहा तथा मैंगनीशिया का अनुपात बढ़ जाता है। जहाँ केओलिन तल के प्राकृतिक विच्छेदन से बनी मालूम होती है वहाँ यह सम्भव है कि दलदल का पानी ही केओलिन बनने का कारण हो, भले ही इस पानी के अस्तित्व के चिह्न अब मिट गये हों।

दलदल व धँसान के नीचे के पानी में श्वेत केओलिन बनाने की क्षमता तो मालूम होती है, परन्तु इस विधि में केओलीनीकरण को नीचे की ओर अधिक दूरी तक ले जाने की क्षमता नहीं मालूम पड़ती। फिर भी जर्मनी में केओलीनीकृत अग्नि-चट्टान तथा बादामी कोयले की तहें साथ-साथ पायी जाती हैं। इससे इन तहों में केओलीनीकरण की सामर्थ्य होने का विश्वास दृढ़ होता है। अधिकतर मनुष्य

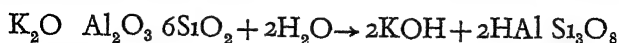
घँसान पानी सिद्धान्त का समर्थन इस कारण करते हैं कि इस पानी में कार्बनिक पदार्थ, ह्यूमिक (Humic) अम्ल तथा सम्बन्धित अम्ल और कार्बोनिक अम्ल रहते हैं जिससे अवकारक गुण आ जाता है। अतः नीचे की चट्टान में लोहे तथा मैंगनीशिया की मात्रा कम हो जाती है। कुछ केओलिनो, यथा हले (Halle) केओलिन में लाल और भूरा रंग मिलता है। यह रंग कार्बनिक पदार्थों के कारण होता है जो गरम करने पर जलकर दूर हो जाता है। यह रंग दलदल-जल से भी उत्पन्न किया जा सकता है।

तल के नीचे केओलीनीकरण से प्राप्त मिट्टी में एल्यूमिना की मात्रा अधिक होती है, कारण तल के ऊपर जो प्राकृतिक विच्छेदन होता है उस मिट्टी से कुछ मृत्सार (Clay-substance) धुल जाता है और सिलिका अधिक रह जाती है। कभी-कभी ही कार्बन-डाई-आक्साइड-युक्त चढ़नेवाला पानी स्थानीय केओलीनी-करण का कारण होता है। यह व्याख्या केओलिन उत्पत्ति के अधिकतर स्थानों पर लागू नहीं की जा सकती। गैगेल (Gagel) और स्ट्रेम (Stremme) ने इस विधि के उदाहरण-स्वरूप कार्ल्सवाद के निकट ग्रीस ह्यूबेल (Greiss hubler) पर ग्रेनाइट के केओलीनीकरण का वर्णन किया है। इस स्थान पर व दूसरे स्थान मेडीरा (Madeira) में कैनीकल (Canical) पर भी मूल ग्रेनाइट का लौह अश कुछ भागों से कम होकर कुछ भागों पर अधिक हो गया है। परन्तु पोटाश, सोडा तथा चूना काफी मात्रा में कम हो गया है। स्ताल (Stahl) के अनुसार दलदल जल से बनी केओलिन में जो हरा, बादामी तथा भूरा रंग मिलता है वह सोते के अम्लीय पानी से बनी केओलिन में नहीं मिलता।

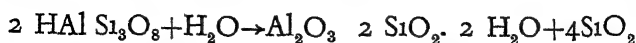
गन्धकाम्लयुक्त पानी कभी-कभी केओलीनीकरण का कारण होता है। यदि गन्धकाम्ल घोल ऊपर चढ़ता हुआ हो तो नीचे रसने की अपेक्षा क्रिया समझने में कम कठिनाई होगी। कारण ऊपर से नीचे रसने की अवस्था में यह स्पष्ट नहीं होता कि केओलिन लौह धब्बों से मुक्त कैसे हो जायगी। यह निश्चित है कि तनु गन्धकाम्ल फेल्सपार पर क्रिया करेगा और यह सम्भावना है कि यह क्रिया केओलीनीकरण की ओर एक प्रभावशाली प्रतिकारक (एजेण्ट) के रूप में कार्य करे। पर इस सिद्धान्त के समर्थन के लिए और भी पूर्णरूपेण परीक्षण की आवश्यकता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जल-विश्लेषण फेल्सपार के विच्छेदन का एक महत्वपूर्ण साधन है। परन्तु जल-विश्लेषण के साथ-साथ भास्मिक (Basic) पदार्थों को अलग करने का कोई साधन होना चाहिए। और्थोक्लेज फेल्सपार पानी में जल-विश्लेषित

हो जाता है तथा इसका थोड़ा-सा भाग पानी में घुल जाता है। यह घोल फेनोफथैलीन आदि सूचको की ओर क्षारीय होता है। स्पष्टता का ध्यान रखते हुए फेल्सपार के जल-विश्लेषण की क्रिया आदर्श सूत्र द्वारा इस प्रकार दर्शायी जा सकती है—



इस प्रकार पोटैशियम हाइड्रोक्साइड, कार्बन डाई-आक्साइड से क्रिया करके कार्बोनेट या बाई कार्बोनेट बना सकता है या दूसरे अम्लो के साथ क्रिया से लवण बना सकता है जो और्थोक्लेज या जल-विश्लेषण से बने अस्थायी यौगिक ($HAl \cdot Si_3O_8$) से अधिक घुलनशील होंगे। अस्थायी यौगिक ($HAl \cdot Si_3O_8$) न्यूनाधिक मात्रा में केओलिन व सिलीका बनाता हुआ विच्छेदित हो जाता है। यह सिलीका, स्फटिक (Quartz) या रेत के रूप में रहता है।



फेल्सपार के विच्छेदन से प्राप्त पोटैशियम हाइड्रोक्साइड कुछ केओलिन से क्रिया करके मस्कोवाइट (Muscovite) अर्थात् अभ्रक बना सकता है।

दूसरे बहुत-से पदार्थों की तरह केओलिन भी बहुत-सी विधियों में से किसी एक के द्वारा बन सकती है। इन सब विधियों में ठंडा या गरम पानी और कार्बोनिक अम्ल भाग लेते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण धंसान तथा दलदल केओलिन है। कारण इसमें लौह की मात्रा कम है। लौह अवकृत होकर घुलकर निकल जाता है। दूसरी विधियों द्वारा बनी हुई केओलिनो में, जिनमें हवा नहीं निकाल दी जाती, लौह शीघ्रता से जलयोजित कलिल (Colloidal-Hydrate) के रूप में रह जाता है और केओलिन का मूल्य घटा देता है।

मिट्टियाँ मुख्यतः दो भागों में बाँटी जा सकती हैं—

(१) प्राथमिक मिट्टियाँ (Primary or Residual clays) जैसे लेटेराइट (Laterite), केओलिन या चीनी मिट्टियाँ।

(२) गौण मिट्टियाँ (Secondary clays) या ढोयी हुयी मिट्टियाँ जैसे अग्नि-मिट्टी, बॉल-मिट्टी (Ball clay), शैल (Shales), लोम (Loams) तथा लोज (Loes) आदि।

प्राथमिक मिट्टी वह मिट्टी है जो उसी मूल स्थान पर पायी जाय जहाँ वह मूल चट्टान के विच्छेदन द्वारा बनी थी। इन मिट्टियों के रंगों में काफी भिन्नता रहती है।

जब प्राथमिक मिट्टी पानी, वर्षा, बर्फ तथा वायु आदि के द्वारा मूल स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायी जाती है तब वह गौण मिट्टी कहलाती है। गौण मिट्टियाँ प्रायः (सदैव नहीं) प्राथमिक मिट्टियों की अपेक्षा अशुद्ध होती हैं। गौण मिट्टी की तहे प्रायः पानी में तैरनेवाली मिट्टी के नीचे जमकर बैठ जाने से बनती हैं। अतः प्राथमिक मिट्टियों से गौण मिट्टियाँ परत-अलगाव द्वारा सरलता से पहचानी जा सकती हैं। प्रायः गौण मिट्टियों का नीचे की चट्टान से, जिस पर वे जमा होती हैं, कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु प्राथमिक मिट्टियों में वह होता है। अतः यह भी पहचान का एक साधन है।

लेटेराइट—यह एक विशेष प्रकार की प्राथमिक मिट्टी होती है जो बौक्साइट चट्टान से तल-विच्छेदन द्वारा बनती है। इसमें सिलिका का अधिक भाग दूर हो जाता है तथा एल्यूमिनियम और लोहे के हाइड्रोक्साइड मुख्य रूप से रहते हैं। जिन परिवर्तनों से यह बनी होती है वे स्थानीय विगेषताओं पर आधारित रहते हैं।

दो विशेष प्राथमिक लेटेराइट के सगठन नीचे दिये जाते हैं। प्रथम का उत्पत्ति-स्थान अमेरिका तथा दूसरी का भारतवर्ष में ही नालहाटी (Nalhati) है। भारत में उस लेटेराइट मिट्टी को, जिसमें लौह अधिक हो, मोरम (Morum) कहा जाता है। यह प्रधानतः सड़क बनाने तथा रेलवे प्लेटफार्म पर डालने के काम आती है और गीली होने पर बहुत चिपकनेवाली होती है, परन्तु सूखने पर बहुत ही कठोर हो जाती है।

	अमेरिका की लेटेराइट	नालहाटी की लेटेराइट
सिलिका	३५ १४	३८ २
टिटैनियम आक्साइड	० ७	×
एल्यूमिना	४० १२	४३ ३८
फेरिक आक्साइड	४ १२	२ १२
कैल्शियम आक्साइड	० ४५	४ ४३
मैगनीशियम आक्साइड	० २१	० ५३
पानी	१७ ८४	११ ८५
अघुलनशील पदार्थ	१ ४८	×
योग	१०० ०६	१०० ५१

मिट्टियाँ तथा खनिज पदार्थ

केओलिन—केओलिन चीनी शब्द काउलिंग (Kauling) का बिगड़ा रूप है जिसका अर्थ होता है ऊँचा टापू। काउलिंग एक पहाड़ का भी नाम है जो चीन में जाऊ-चाऊ-फू (Jau-Chau-Fu) के निकट है। यहाँ की मिट्टी प्राचीन चीन-निवासी पोरसिलेन बर्तन बनाने के काम में लाते थे।

अब यह शब्द प्रायः उन प्राथमिक मिट्टियों के लिए प्रयुक्त होता है जो साधारणतः रंग में श्वेत हो तथा ऐसी चट्टानों से बनी हो जिनकी रचना पूर्णतः फेल्सपार या ऐसे ही दूसरे खनिजों से हुई हो और इन चट्टानों में लौह आक्साइड बिलकुल नहीं हो या बहुत ही कम हो। इन मिट्टियों में दूसरे जलयोजित एल्यूमिनो सिलिकेट के साथ-साथ केओलिनाइट (Kaolinite) खनिज की अधिक मात्रा रहती है। इंग्लैण्ड में कार्नवाल तथा डैवोन नामक स्थानों से प्राप्त विच्छेदित ग्रेनाइट को धोने से जो श्वेत मिट्टी मिलती है उसी को चीनी मिट्टी (China clay) कहा जाता है। अमेरिका में केओलिन शब्द कुछ श्वेत गौण मिट्टियों के लिए भी प्रयोग किया जाता है, जैसे—दक्षिणी कैरोलीना (Carolina) तथा जार्जिया (Georgia) की श्वेत मिट्टियाँ। व्यावहारिक दृष्टि कोण से केओलिन और चीनी मिट्टी समान हैं जिनका, सगठन प्रायः इस प्रकार है—

सिलिका	४६ प्रतिशत
एल्यूमिना	४० „
पानी	१४ „
इसका सूत्र है—	$\text{Al}_2\text{O}_3 \cdot 2\text{SiO}_2 \cdot 2\text{H}_2\text{O}$

केओलिन घोना—एकदम खोदकर निकाली हुई केओलिन में सिलिका तथा अविच्छेदित चट्टान होती है। मिट्टी का उपयोग तभी हो सकता है जब रेत और दूसरे कठोर कणों को पानी से धोकर मिट्टी से अलग कर दिया जाय। जर्मनी तथा इंग्लैण्ड में प्रयुक्त होनेवाली दो विभिन्न केओलिन घोने की विधियों का वर्णन नीचे दिया जाता है —

१. इंग्लैण्ड की विधि—इंग्लैण्ड की मुख्य मिट्टी की तहें इंग्लैण्ड के दक्षिणी पश्चिमी भाग में हैं और कार्नवाल तथा डीवॉन के सूबे मुख्य रूप से मिट्टी की मूल्यवान् खदानों के लिए प्रसिद्ध हैं। मिट्टी की तह पृथ्वी के ऊपरी तल से १० से २० फुट नीचे मिलती है। मिट्टी की तह के ऊपर के भाग को ओवर बर्डन (Over-Burden) कहा जाता है तथा मिट्टी निकालने से पूर्व इसे दूर कर देना चाहिए।

केओलिन-युक्त विच्छेदित चट्टान को हाथ की कुदाल की सहायता से तोड़ देते हैं या बारूद द्वारा उड़ा देते हैं। इसमें लगी हुई मिट्टी को पानी की शक्ति-शाली फुहार से धोते हैं। चूँकि विभिन्न परतों में विभिन्न प्रकार की मिट्टी होती है, अतः ठीक ढंग से विभिन्न परतों को अलग-अलग धोना चाहिए तथा बाद में उन्हें इस प्रकार मिलाना चाहिए कि उत्पादित मिट्टी रंग, गुण आदि में एक ही स्तर की रहे। इस सबके लिए अनुभव की आवश्यकता है।

मिट्टी धोये हुए पानी की सब धाराएँ मुख्य नाली में इकट्ठी होती हैं। इस नाली से यह पानी एक उथले हौज में जमा होता है जिसे 'सैण्ड पिट' कहा जाता है। इस हौज में पानी में तैरनेवाले कुछ भारी कण नीचे बैठ जाते हैं। इसके पश्चात् मिट्टी-पानी पम्प द्वारा खान के ऊपर पहुँचाया जाता है। इस मिट्टी-पानी में रेतकण तथा अभ्रककण काफी मात्रा में तैरते रहते हैं। यहाँ मिट्टी-पानी की धारा ताजे पानी की दूसरी धारा से मिला दी जाती है। इस प्रकार मिट्टी-पानी की धारा और पतली हो जाती है तथा उसका वेग भी बढ़ जाता है। धारा का वेग इस कारण बढ़ाते हैं कि प्रायः मिट्टी शुद्ध करने का कारखाना खान से दूर होता है और यह मिट्टी-पानी वहाँ नलों द्वारा पहुँचाया जाता है। धारावेग अधिक होने से इस बीच में मिट्टी के कण जमकर नलों में नीचे नहीं बैठ पाते। इस धाराद्रव में लगभग ३ प्रतिशत ठोस रहते हैं। यह मिट्टी-पानी-धारा मिट्टी-शोधक कारखाने के पास पहुँचकर एक लम्बे-चौड़े हौज में गिरती है जिसे माइका (Mica) कहते हैं।

माइका लम्बा तथा उथला, लगभग २०० फुट लम्बा, हौज होता है। वह पाँच या छ भागों में विभाजित होता है। प्रत्येक भाग पूर्ववाले भाग से कुछ नीचा होता है। प्रत्येक भाग को पुनः १८-२० इंच चौड़ी, १ फुट गहरी, उथली, नालियों में विभाजित किया जाता है। मिट्टी-पानी-धारा इन नालियों में मन्द गति से (लगभग ५० फुट प्रति मिनट) बहती है। धारा का वेग उत्पादित मिट्टी के कण-आकार के अनुसार घटाया-बढ़ाया जाता है। माइका में धारा के प्रवेश-स्थान पर ही रफ ड्रैग (Rough Drag) कहा जानेवाला दूसरा हौज होता है जो लगभग २५ फुट लम्बा, १०-१२ फुट चौड़ा और ३ फुट गहरा होता है। मिट्टी-पानी-धारा के माइका में पहुँचने से पूर्व ही इन रफ ड्रैगों में सूक्ष्मकणीय रेत बैठ जाती है और माइका में केवल अभ्रक के सूक्ष्म कण तथा मिट्टी के अपेक्षाकृत बड़े कण बैठ जाते

है। यहाँ जमकर बैठनेवाला पदार्थ उत्पादित मिट्टी का लगभग २०-३० प्रतिशत होता है और कागज, पेण्ट, वस्त्र आदि उद्योगों में प्रयोग किया जाता है।

अब परिशोधित मिट्टी युक्त पानी एक गढ़े में गिरता है। यह गढ़ा शकु आकार का एक सीमेण्ट-निर्मित कुआँ होता है जिसका ऊपरी व्यास १५-२० फुट तथा गहराई १० फुट होती है। नीचे तली पर लगभग एक इंच चौड़ा एक छिद्र होता है जो आवश्यकतानुसार



घटाया-बढ़ाया जा सकता है। यहाँ मिट्टी-पानी वेगहीन होने से मिट्टी के कण नीचे बैठ जाते हैं और बैठी हुई गीली मिट्टी इस छिद्र द्वारा निकाल ली जाती है। इन गढ़ों की विभिन्न ऊँचाइयों पर छिद्र होते हैं जिनसे होकर मिट्टी के नीचे बैठ जाने पर साफ पानी निकाला जा सके। यह पानी पुनः खानों में प्रयुक्त होता है।

चित्र १ इंग्लैण्ड की खान में माइका का दृश्य

इस गीली मिट्टी में प्रायः २५ प्रतिशत ठोस पदार्थ रहते हैं। इस गीली मिट्टी को नलों में बहाकर बहुत दूर सुखानेवाली भट्टियों के पास ले जाते हैं। इंग्लैण्ड में गीली मिट्टी ले जानेवाली एक पाइप-लाइन लगभग ५ मील लम्बी १२ इंच व्यास-वाली है। सुखानेवाली भट्टियों के पास यह गीली मिट्टी एक बड़े आयताकार हौज में गिरती है जिसे जमाव हौज (Settling tank) कहा जाता है। यहाँ मिट्टी नीचे बैठ जाती है और पानी ऊपर आ जाता है। हौज की दीवारों से इकट्ठा हुआ पानी बाहर निकाल दिया जाता है। अब मिट्टी काफी गाढ़ी होती है और इसमें लगभग ५० प्रतिशत ठोस पदार्थ रहते हैं। इस गाढ़ी मिट्टी को खुली हुई लम्बी भट्ठी में चढ़ाया जाता है जहाँ भट्ठी को आग द्वारा गरम करके मिट्टी सुखा ली जाती है।

ये भट्ठियाँ जमाव हौज के निकट ही, कुछ नीचे धरातल पर, बनायी जाती हैं जिससे जमाव हौजो से ट्रको द्वारा मिट्टी सरलतापूर्वक भट्ठियो मे पहुँचायी जा सके । ये भट्ठियाँ लगभग १२० फुट लम्बी, २०-२५ फुट चौड़ी होती हैं । भट्ठी का फर्श अग्नि-मिट्टियो की टालियो से ढँका रहता है तथा उसके नीचे गैस बहने के लिए नालियाँ रहती हैं । फर्श के नीचे एक सिरे की ओर आग जलायी जाती है तथा गरम गैस भट्ठी के फर्श के नीचे की नालियो मे होकर दूसरी ओर चिमनी द्वारा बाहर निकल जाती है । इन भट्ठियो मे गाढी मिट्टी लगभग ६ इंच मोटी फैला दी जाती है और काफी सूख जाने पर छोटे-छोटे टुकडो के रूप मे बाहर निकाल ली जाती है । इस सूखी मिट्टी मे पानी ८-१० प्रतिशत तक रहता है ।

२ जर्मन विधि—जर्मनी मे केओलिन धोने की विधि मे इंग्लैण्ड की विधि की अपेक्षा यन्त्रो का अधिक उपयोग होता है । जर्मनी मे केओलिन यन्त्रशक्ति से खानो से निकाली जाती है और ट्रको द्वारा भण्डारगृह मे ले जायी जाती है । भण्डार-गृह से यह मिट्टी एक क्षैतिज मिश्रण-कुण्ड मे गिरायी जाती है, जिसमे एक शक्ति-शाली मिश्रक भी लगा रहता है । इसमे पानी डालकर मिश्रक द्वारा मिट्टी मिलाकर निकाली जाती है । यह मिट्टी-पानी कुण्ड की दीवारो मे बने छिद्रो द्वारा निकाल लिया जाता है और रेत तथा दूसरे पदार्थ ककड आदि मिश्रण-कुण्ड मे ही रह जाते हैं । इन ककडो आदि को समय-समय पर कुण्ड से बाहर निकाल लिया जाता है ।

इस मिश्रण-कुण्ड से निकलनेवाला मिट्टी-पानी एक दूसरे हौज मे गिरता है जहाँ बड़े कणवाली रेत को जमकर नीचे बैठ जाने दिया जाता है । हौज से रेत को छिद्रयुक्त बाल्टियो वाले रहट की सहायता से निकाल लिया जाता है और निकली हुई रेत गाडियो द्वारा बाहर ले जायी जाती है । इस हौज से मिट्टी-पानी पास मे बने हुए दो बड़े हौजो मे गिरता है । इन हौजो मे धारा-वेग कम हो जाने से रेत के सूक्ष्म कण भी नीचे बैठ जाते हैं । यहाँ से हाथ की हेगी द्वारा रेत समय-समय पर हटा दी जाती है ।

इन हौजो के ऊपरी किनारो से मिट्टी-पानी इंग्लैण्ड-विधि की माइका-जैसी नालियो मे जाता है । इनमे रेत के सूक्ष्मतम कण तथा अभ्रक-कण बैठ जाते हैं और समय-समय पर हटा दिये जाते हैं ।

इसके पश्चात् मिट्टी-पानी जमाव हौजों मे जाता है जहाँ मिट्टी को नीचे बैठ

जाने दिया जाता है। स्वच्छ पानी साइफन की सहायता से फिर पानी के हौज में भेज दिया जाता है जहाँ से इसे भण्डारगृह के पास बने ताजे पानी के हौज में पम्प द्वारा भेज देते हैं।

जमाव हौज से प्राप्त गीली मिट्टी जल-निष्कासन यन्त्र (Filter Press) में पम्प की सहायता से भेजी जाती है। इसमें मिट्टी को दबाकर पानी निकालकर कड़ी पट्टियों के रूप में ले आते हैं। जल-निष्कासक से प्राप्त भीगी पट्टियों को सुखानेवाले कमरों में लकड़ी के ताखों पर सुखाया जाता है। सुखानेवाले कमरों को वाष्प-नली द्वारा गरम करते हैं। पूरा कारखाना इस प्रकार बनाया जाता है कि केवल जल-निष्कासको की संख्या बढ़ाकर ही उत्पादन बढ़ाया जा सके।

भारतवर्ष में मिट्टी धोने के छोटे कारखानों में मिट्टी धोने की विधि बहुत सरल है। विच्छेदित ग्रेनाइट चट्टानें हाथ द्वारा खोदी और चूर्ण की जाती हैं। इसके पश्चात् चूर्ण इतने काफी पानी से धोया जाता है कि मिली हुई ककड़ी, रेत आदि से मिट्टी धुलकर निकल जाय। तब मिट्टी-पानी कम चौड़ी, परन्तु लम्बी नालियों में होकर ले जाया जाता है। यहाँ रेत के बड़े कण तथा ककड़ आदि नीचे बैठ जाते हैं। इसके पश्चात् छोटे-छोटे जमाव हौजों में मिट्टी को बैठ जाने दिया जाता है। आधुनिक कारखानों में इन हौजों से प्राप्त गीली मिट्टी पम्प द्वारा लोहे के जल-निष्कासकों में भेजकर छोटी-छोटी पट्टियों के रूप में दबा दी जाती है। बाद में इन पट्टियों को धूप में सुखाते हैं। जिन कारखानों में जल-निष्कासक नहीं हैं वहाँ जमाव हौजों से ही गीली मिट्टी निकालकर खुली धूप में सुखाते हैं। इसी कारण ऐसे कारखाने वर्षाकाल में बन्द रखे जाते हैं। कुछ मिट्टियाँ धोने पर भी हलके पीले रंग की रहती हैं। इन मिट्टियों पर थोड़ा नील दिया जाता है। इससे पीला रंग समाप्त या कम हो जाता है। इसके लिए एक छोटा-सा 'नीलघर' साइका से जमाव-हौजों की ओर जानेवाली नाली के ऊपर बनाया जाता है। साइफन या किसी दूसरी विधि से नील का धोल नीलघर से एक निश्चित गति से मिट्टी की बहनेवाली धारा में गिराया जाता है। यह नील धुली हुई मिट्टी को उसी प्रकार और भी सफेद बनाता है जिस प्रकार धोबी कपड़ों पर नील देकर उन्हें और अधिक सफेद लगने-वाले बना देता है।

केओलिन-शोधन—वी० श्वेरिन (V. Schwerin) की गवेषणाओं के आधार

पर कार्ल्सवाद के निकट मिट्टी शुद्ध करने की एक नयी विधि निकाली गयी है। यह विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि पानी में तैरते मिट्टी-कणों पर ऋण (-) आवेश होता है तथा स्फटिक, पाइराइटोज आदि रहनेवाले अपद्रव्यों के कणों पर या तो धन (+) आवेश रहता है या मिट्टी कणों की अपेक्षा कम ऋण आवेश रहता है। हाइड्रोक्साइल आयन ऋण आवेशवाले मिट्टीकणों की धन ध्रुव की ओर जाने की गति बढ़ा देती है। घुलनशील लवणों की उपस्थिति इस क्रिया में विषमता उत्पन्न कर देती है। चेकोस्लोवाकिया में कार्ल्सवाद के निकट चोडोव (Chodov) में स्थित इलेक्ट्रो ओसमोसिस लिमिटेड नामक कम्पनी ने इस सिद्धान्त का मिट्टी शुद्ध करने में उपयोग किया है।

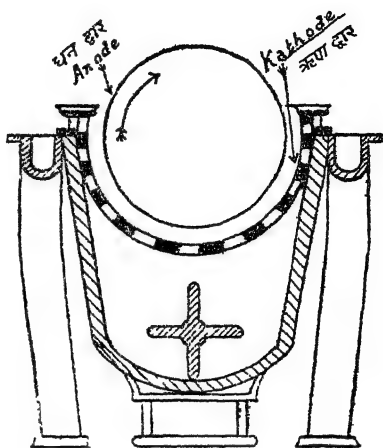
इस विधि में खान से निकली केओलिन लगभग ५-६ गुने पानी के साथ मिलाकर आवश्यक सोडियम सिलिकेट घोल के साथ अच्छी तरह यहाँ तक मिलायी जाती है कि मिट्टी काफी पतले कीचड़ के रूप में आ जाय। सोडियम सिलिकेट मिट्टी के मिले हुए कणों को अलग-अलग कर देता है। अब यह पतली मिट्टी कम चौड़ी नालियों में बहायी जाती है। जहाँ बड़े कणवाली अशुद्धियाँ बैठ जाती हैं। अब इस मिट्टी-पानी को एक जमाव-कुण्ड में भेजा जाता है जहाँ पर बड़े कणवाली मिट्टी का थोड़ा भाग जमकर नीचे बैठ जाता है। यहाँ से मिट्टी-पानी का अधिकांश भाग विद्युत्-रसाकर्षण यन्त्र (Electro-Osmosis-Plant) में ले जाया जाता है। इस रसाकर्षण यन्त्र में मिट्टी-पानी पर विद्युत्-धारा की क्रिया से केओलिन के सूक्ष्मतम कण धन ध्रुव पर लसलसी मिट्टी के रूप में जमा होते हैं और अपद्रव्य या तो पानी में ही रह जाते हैं या ऋण ध्रुव पर जमा हो जाते हैं। यह अपद्रव्य एक यन्त्र द्वारा निरन्तर हटाये जाते रहते हैं।

विद्युत्-रसाकर्षण यन्त्र में एक सीसा धातु का बेलन होता है जो धीरे-धीरे पृथ्वी के समानान्तर धुरी पर एक नाँद में घूमता है। इस नाँद में मिट्टी-पानी आता है। बेलन का निचला भाग इस मिट्टी-पानी में डूबा रहता है। बेलन के डूबे हुए भाग के चारों ओर एक अर्द्ध वृत्ताकार पीतल की जाली का ऋण द्वार होता है। बेलन स्वयं धन द्वार का काम करता है।

मिट्टी-पानी इन दो द्वारों के बीच बहाया जाता है। मिट्टी-पानी के बहाव की दिशा विद्युत्-धारा के बहाव की दिशा पर लम्ब रूप होती है। प्रयोग की जानेवाली

विद्युत्-धारा की वोल्टता ११० वोल्ट तथा शक्ति ०.०१ एम्पियर प्रतिवर्ग सेण्टीमीटर होती है। नाद में दो लकड़ी के शक्ति-शाली विलोडक लगे रहते हैं जिससे नाद में मिट्टी के जमकर बैठ जाने की सम्भावना न रहे।

लगभग १० मिलीमीटर मोटी एक शुद्ध मिट्टी की तह (२०-२५% पानी सहित) बेलन के पृष्ठभाग पर जम जाती है जिसे चाकू द्वारा ट्रको में भरकर जल-निष्कासको की क्रिया को पहुँचा दी जाती है। जल-निष्कासको द्वारा यह गीली मिट्टी पट्टियों के रूप में दबा दी जाती है। इसके बाद उत्तप्त सुरंग में सुखा लेते हैं।



चित्र २ विद्युत्-रसाकर्षण यन्त्र

विद्युत्-रसाकर्षण यन्त्र से निकला हुआ पानी पुन मिट्टी धोने के काम में लाया जाता है। एक यन्त्र द्वारा लगभग ९०० किलोग्राम प्रतिदिन बहुत ही श्रेष्ठ केओलिन निकल सकती है। यन्त्र में लगभग २०० किलोवाट प्रतिघण्टा विद्युत् खर्च होती है।

उपर्युक्त प्रकार के बेलन-युक्त विद्युत्-रसाकर्षण यन्त्र के स्थान पर एक विशेष प्रकार के जल-निष्कासन यन्त्र भी इसी कार्य के लिए प्रयोग किये जा सकते हैं। यह जल-निष्कासक भी साधारण ढग से लगाये जाते हैं। केवल अन्तर इतना होता है कि इनकी थालियों में कठोर सीसे के धन धार, छिद्रयुक्त पीतल की प्लेट के ऋण धार तथा विद्युत्-धारा बहाने के लिए पृथक्कृत तार लगे रहते हैं। पम्प की सहायता से मिट्टी-पानी जल-निष्कासक में भेजा जाता है। मिट्टी-पानी की यन्त्र में जाते समय की गति यन्त्र से निकले हुए पानी के अनुसार होती है। जैसे ही जल-निष्कासक पूरा भर जाता है और मिट्टी में पानी की मात्रा लगभग २० प्रतिशत होती है तभी विद्युत्-धारा का बहना बन्द कर दिया जाता है तथा जल-निष्कासक यन्त्र खोलकर मिट्टी की पट्टियाँ बाहर निकाल ली जाती हैं। ये रसाकर्षण जल-निष्कासक यन्त्र अधिक दबाव पर काम नहीं करते। अतः हल्के आकार के बनाये जाते

है। एक वर्ग मीटर सतहवाली ५० थालियोवाला एक यन्त्र २५,००० किलोग्राम मिट्टी प्रतिदिन निकालता है। प्रति हजार किलोग्राम १८ किलोवाट आवर विद्युत् खर्च होती है।

इस विधि द्वारा शुद्ध की गयी केओलिन के दो नमूनो (A तथा B) का विश्लेषण यहाँ दिया जाता है। एक विश्लेषण शुद्ध करने से पूर्व का तथा दूसरा शुद्ध करने के पश्चात् का है।

आक्साइड	प्राकृतिक केओलिन (निस्तापित)		विशुद्ध केओलिन (निस्तापित)	
	A	B	A	B
सिलीका	७१ २३	६२ ५२	५५ १२	५२ ९०
एल्यूमिना	१९ ५५	३५ ९३	४२ ९०	४५ ५०
फेरिक आक्साइड	१ ७९	१ ३५	१ ५९	१ १६

शुद्धि के पश्चात् मिट्टी का गलन ताप ६०° से ८०° से० तक बढ़ जाता है।

केओलिनो का वर्गीकरण—साधारण धोने से प्राकृतिक केओलिन के अपद्रव्य पूर्ण रूपेण दूर नहीं हो पाते हैं। अतः अपद्रव्यों की उपस्थिति के विचार से केओलिनो को निम्न भागो में बाँटा जा सकता है।

१. शुद्ध केओलिन—इस केओलिन में मुक्त सिलीका की मात्रा ३ प्रतिशत तथा द्रावको की मात्रा २ प्रतिशत से अधिक नहीं होती। पकाने के पश्चात् सर्वश्रेष्ठ केओलिन दूधिया श्वेत रंग का पदार्थ बन जाती है। यह पोरसिलेन-निर्माण, उत्कृष्ट चिकन-प्रलेपित वस्तु-निर्माण तथा मिट्टी के अतिरिक्त बहुत-से दूसरे उद्योगो में काम आती है।

२. क्षारीय केओलिन—इसमें लगभग ५ प्रतिशत क्षार, फेल्सपार तथा अभ्रक से आ जाते हैं। लोहा २ प्रतिशत तक हो सकता है। इस केओलिन को बड़ी सावधानी से धोकर शुद्ध किया जा सकता है। धोने से क्षारो का अधिकांश भाग निकल जाता है, परन्तु धोकर शुद्ध करने पर भी यह केओलिन प्रथम प्रकार की केओलिन से घटिया ही रहती है। यह केओलिन चिकन-प्रलेपित मृद-वस्तुएँ तथा उत्कृष्ट मृत्पात्र बनाने के काम आती है।

३. बालूमय केओलिन (Siliceous-kaolins)—इस प्रकार की केओलिन में २५ प्रतिशत तक मुक्त सिलीका या बालू इतने सूक्ष्म कणों के रूप में रहती है कि स्पर्श भी अनुभव न किया जा सके। ये मिट्टियाँ बहुत लचीली नहीं होती, जैसा कि उनके सगठन से पता चलता है, तथा पोरसिलेन और कुछ प्रकार की फिआन्स वस्तुओं के बनाने में काम आती हैं जहाँ मिश्रण-पिण्ड का अधिक लचीला होना आवश्यक नहीं होता।

४. क्षारीय तथा सिलीकामय केओलिन—इनमें सिलीका तथा क्षार दोनों की मात्रा काफी रहती है। इस प्रकार की केओलिन के गुण दूसरे तथा तीसरे वर्ग की मिट्टियों-जैसे हैं, परन्तु ये अपेक्षाकृत कम तापसह्य होती हैं।

५. लौहमय केओलिन—इनमें लौह आक्साइड काफी मात्रा में रहता है जिसके कारण इनसे बनी वस्तु को पकाने के पश्चात् श्वेत होने में कठिनाई होती है। यदि इनमें क्षार अधिक मात्रा में न हो तो मुख्यतः तापसह्य पदार्थों के बनाने में काम आती हैं। अधिक चूने की मात्रावाली केओलिनो को अग्रेजी में काल्केरियस (Calcareous) कहा जाता है।

केओलिन के गुण—केओलिन या चीनी मिट्टी के गुण लगभग शुद्ध पदार्थों के गुण समझे जा सकते हैं क्योंकि केओलिन में उपस्थित अपद्रव्यों के कारण उनके गुण काफी बदल जाते हैं। कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति के कारण केओलिन तथा चीनी मिट्टियों के रंग श्वेत या मलाई रंग से लेकर पीले भूरे रंग के बीच होते हैं, परन्तु पकाने पर यह कार्बनिक रंगनेवाले पदार्थ जल जाने चाहिए और बिल्कुल श्वेत पदार्थ बच जाना चाहिए। चीनी मिट्टी का रंग टुरमैलीन के कारण काफी परिवर्तित हुआ समझा जा सकता है। टुरमैलीन की उपस्थिति मिट्टी में हल्का या गहरा नीला रंग देने की प्रवृत्ति रखती है। इसमें लौह की उपस्थिति हल्का पीला रंग उत्पन्न करती है जो पकाये जाने के पश्चात् और भी स्पष्ट हो जाता है। मृदु स्पर्श भी केओलिन का एक विशेष गुण है। चीनी मिट्टी और केओलिन में मृदु स्पर्श तथा चिकनाई का कारण कणों की अति सूक्ष्मता तथा परतमय होना है। साधारण आँख द्वारा देखने पर चीनी मिट्टी रचनाहीन प्रतीत होती है, परन्तु शक्ति-शाली सूक्ष्मदर्शी या अणुवीक्षण यंत्र (Microscope) द्वारा देखने पर पता चलता है कि इसके कण परतमय हैं। अन्य अधिक लचीली मिट्टियों की अपेक्षा चीनी मिट्टी

मे लचीलापन बहुत कम है। अधिक लचीली मिट्टियों में सबसे महत्वपूर्ण इंग्लैण्ड की बॉल-मिट्टी (Ball-clay) है। बॉल-मिट्टी में लचीलापन बहुत ही सूक्ष्म कणों, कार्बनिक पदार्थों तथा घुलनशील लवणों की उपस्थिति के कारण है। ठीक प्रकार से धुली केओलिन की सूक्ष्मता इस क्रम की हो कि २०० नम्बर की चलनी से पूरा पदार्थ छनकर निकल जाय और कम से कम १० प्रतिशत मिट्टी २ फुट प्रति घटा वेगवाली पानी की धारा द्वारा बहकर चली जाय।

केओलिन में घुलनशील रंगों और घुलनशील लवणों को अवशोषित करने तथा उन्हें धारण करने का एक विशेष गुण है। चीनी मिट्टी पर तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की क्रिया नहीं होती, पर उबलते हुए गन्धकाम्ल की निरन्तर क्रिया से मिट्टी विच्छेदित हो जाती है। सैगर द्वारा उपस्थित मिट्टियों के रेशनल विश्लेषण (Rational-Analysis) का आधार चीनी मिट्टी पर सान्द्र गन्धकाम्ल की क्रिया ही है, परन्तु इंग्लैण्ड के मैलर (Mellor) ने जर्मनी में उपर्युक्त विश्लेषण की साधारण मान्यता के विरुद्ध निम्नलिखित कारण बताये हैं। अभ्रक कुछ मिट्टियों का मौलिक अंश होता है और अभ्रक के सूक्ष्म कण व्यावहारिक रूप में सान्द्र गन्धकाम्ल द्वारा सदैव ही विच्छेदित हो जाते हैं। मृत्सार को मिट्टी में उपस्थित फेल्सपार की हानि बिना घुलाना भी कठिन है। गन्धकाम्ल की क्रिया किसी सीमा तक स्फटिक के कणों पर भी प्रभाव डालती है। इस प्रकार गन्धकाम्ल की क्रिया कराने के पश्चात् क्षार की क्रिया से कुछ स्फटिक-कण भी दूर हो सकते हैं।

८००° से ९००° से० तक गरम करने पर चीनी मिट्टी हलके गुलाबी रंग का कठोर सरन्ध्र पिण्ड बन जाती है जिस पर अम्लों की क्रिया सरलतापूर्वक होती है। इस गुलाबी रंग का कारण यह है कि मिट्टी में उपस्थित लौह यौगिक, गरम करने पर, फेरिक आक्साइड के रूप में अलग हो जाते हैं और इस फेरिक आक्साइड का रंग लाल है। शुद्ध चीनी मिट्टी को १,१००° से० पर गरम करने से काफी कठोर श्वेत, अकाचीय परन्तु घना पिण्ड प्राप्त होता है। यह पिण्ड शीघ्रता से पानी नहीं सोखता यद्यपि जीभ द्वारा परीक्षा में यह सरन्ध्र मालूम होता है। इस अवस्था में इस पिण्ड पर अम्लों की क्रिया नहीं होती।

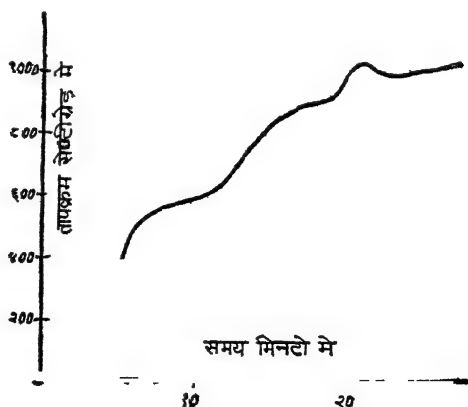
साधारणतः चीनी मिट्टी को अगलनीय माना जा सकता है। कारण इसका गलन ताप १७७०° से० से अधिक है। यदि मिट्टी में चूना या सिलिका किसी

अनुपात में मिला दिये जायें तो मिश्रण का गलनाङ्क कम हो जाता है। बड़े पिण्डों, जैसे ईंटों में, अधिक तापसहता (Refractoriness) होती है। कारण पिण्ड में ताप धीरे-धीरे घुसता है। केवल चीनी मिट्टी ही भट्टियों के अस्तर (lining) आदि के लिए सन्तोषजनक नहीं है, कारण इसमें ससजक बल (Cohesive-force) नहीं होता। साथ ही चीनी मिट्टी की बनी ईंटें अधिक काल तक बार-बार गरम होना व ठंडा होना तथा कोयले की महीन धूलि का सक्षारक प्रभाव सहन नहीं कर सकती।

११०° से० तक गरम करने से साधारण चीनी मिट्टी का लगभग ५-६ प्रतिशत पानी उड़ जाता है और आगे लगभग ६००° से० तक गरम करने से रवे का केलासन जल अलग होना प्रारम्भ हो जाता है। ८००° से० पर केलासन जल पूरी तरह अलग हो जाता है। लगभग ९००° से० पर एनहाइड्राइड (Anhydride), मुक्त एल्यूमिना और मुक्त सिलिका में विच्छेदित हो जाता है। लगभग ११००° से० तक गरम करने पर सिलिका और एल्यूमिना संयोग कर सिलिमेनाइट (Sillimanite — $Al_2O_3 \cdot 2SiO_2$) बनाते हैं, परन्तु इस तापक्रम से अधिक तापक्रम पर एक नया यौगिक बनता है जिसे मूलाइट (Mullite) कहते हैं। मूलाइट का सगठन-सूत्र $3Al_2O_3 \cdot 2SiO_2$ है। कुछ विशेषज्ञों का विचार है कि अकेला-सीय अवस्था में ९००° से०

पर ही मूलाइट बनना प्रारम्भ हो जाता है, परन्तु जैसे-जैसे तापक्रम ११००° से० के ऊपर पहुँचता है मूलाइट केलास बनना प्रारम्भ हो जाते हैं।

यदि केओलिन गरम करने पर तापक्रम का बढ़ाना दिखाने के लिए एक रेखा-चित्र खींचा जाय तो पता चलता है कि तापक्रम समान रूप से नहीं बढ़ता। लगभग ६००°



चित्र ३. केओलिन पर ताप-प्रभाव का रेखाचित्र
से० के निकट वक्र (Curve), तथा कुछ समय तक अक्ष के समानान्तर हो जाता

है। इससे पता चलता है कि दिया हुआ ताप केओलिन के केलास जल को निकालने में व्यय हो रहा है। ९००° से० पर वक्र पुनः अक्ष के समानान्तर हो जाता है, जब कि मिट्टी एनहाइड्राइड मुक्त सिलीका, मुक्त एल्यूमिना तथा मुक्त लौह आक्साइड में विच्छेदित होती है। इसी कारण श्वेत मिट्टी इस अवस्था में गुलाबी रंग की हो जाती है। अम्लो और क्षारो का प्रभाव शीघ्र होने लगता है। ऊँचे तापक्रम पर वक्र एकदम उठता है जो इस समय उष्माक्षेपक क्रिया का सूचक है। यह उष्माक्षेपक क्रिया सम्भवतः एल्यूमिना और सिलीका के मिलकर सिलीमेनाइट या मूलाइट बनने के कारण होती है। मिट्टी में अपद्रव्य उपस्थित रहने की अवस्था में इन विशेष परिवर्तनों को देखने तथा पहिचानने में कठिनाई होती है।

केओलिन के उपयोग—चीनी मिट्टी या केओलिन मृत्पात्र बनाने के अतिरिक्त कागज बनाने, कपड़ा छापने, फिटकरी तथा अल्ट्रामैरीन नामक रंगों के बनाने में बहुत प्रयोग की जाती है। केओलिन धोने से प्राप्त सूक्ष्मकणीय अभ्रक साधारण कागज तथा पेपरबोर्ड आदि में भार प्रदान करने के लिए प्रयोग की जाती है।

भारत में केओलिन के उत्पत्ति-स्थान—भारत के बहुत-से स्थानों पर विभिन्न गुणोंवाली शुद्ध व अशुद्ध केओलिने मिलती हैं। इनमें से कुछ खानों का वर्णन इस प्रकार है —

१. **आसाम** में गैरो, खासी तथा जयन्तिया पहाड़ों पर और लखीमपुर, शिलांग एवं ब्रह्मकुण्ड जिलों में केओलिने मिलती हैं। ये श्वेत मिट्टियाँ न्यूनाधिक सिलीकामय हैं।

२. **बंगाल** में सक्कम नदी के निकट दार्जिलिंग जिले में केओलिन मिलती है। बर्दवान, वीरभूमि तथा बाँकुरा जिले में भी श्वेत या लगभग श्वेत मिट्टियाँ मिलती हैं, परन्तु ये मिट्टियाँ श्वेत पोरसिलेन पात्र बनाने के लिए उपयोगी नहीं हैं।

३. **बिहार** में केओलिन की खानें सबसे अधिक हैं और इनसे निकलनेवाली मिट्टियाँ भी उत्कृष्ट कोटि की हैं। बिर की महत्त्वपूर्ण अच्छी खानें, भागलपुर जिले में समुकिया तथा पथरघट्टा, सन्थाल परगना जिले में मगल-हाट व तलझारी एवं मुँगेर जिले में सीमुलतला और झाझा हैं। इन महत्त्वपूर्ण खानों के अतिरिक्त दूसरे स्थानों पर कुछ छोटी-छोटी खानें भी हैं जैसे राजमहल पहाड़ियों में काटझी, करनपुर, दोधनी आदि। मुँगेर शहर के निकट नवाडीह और पीर पहाड़ में भी हैं। राँची जिले में कुछ कम शुद्ध श्वेत मिट्टी की खानें हैं।

उत्तर प्रदेश केओलिन की खानों के क्षेत्र में बिहार के बराबर सौभाग्यशाली नहीं है। कुछ स्थान, जहाँ पर श्वेत मिट्टी पायी जाती है, निम्नलिखित हैं।

नैनीताल, अलमोडा और मिर्जापुर के निकट जलने पर श्वेत होनेवाली मिट्टियों की कुछ खानें हैं। बाँदा जिले में लखनपुर के पास श्वेत मिट्टी की खान है, परन्तु उसमें पीले गेरू की तह भी मिली हुई है। मिट्टी श्वेत तथा लचीली है। ठीक तरह से पकाने पर मिट्टी का उपयोग कड़ी मिट्टी-वस्तुओं के बनाने में किया जा सकता है, परन्तु इससे दूधिया श्वेत मृत्पात्र नहीं बन सकते।

दिल्ली में नयी दिल्ली से लगभग १० मील की दूरी पर कुसुमपुर में मिट्टी की खानों से मिट्टी प्राप्त की जाती है। एक दूसरी ऐसी ही खान अलवर के पहाड़ों में लोटा नदी के पास बुचारा में है।

जम्मू-काश्मीर में श्वेत मिट्टी की खानें, विशेष कर जम्मू प्रान्त के चकर सगर-मार्ग और सलाल स्थानों में हैं। ये मिट्टियाँ बौक्साइट खानों की निचली तह में पायी जाती हैं, अतः सदैव रंग में श्वेत और शुद्ध नहीं होती।

दक्षिणी भारत में श्वेत केओलिन की बहुत-सी अच्छी खानें हैं। इनमें से कुछ बेलगाँव, रतनागिरि, 'कैसल राँक' बम्बई राज्य में हैं। बगलोर, मैसूर तथा ट्रावनकोर-कोचीन में स्थित कारखाने उच्च कोटि के पोरसिलेन पात्र बनाने में वहाँ की स्थानीय केओलिन का ही प्रयोग करते हैं।

मद्रास में श्वेत मिट्टी जिन जिलों में मिलती है वे ये हैं—चेगलीपत्त, गोदावरी और गण्टूर, नेलौर, दक्षिणी कनारा, दक्षिणी अर्काट, बेलारी, कुडापा, कर्नूल आदि।

उड़ीसा में बहुत-से स्थानों पर केओलिन की अच्छी खानें हैं। कटक जिले में नारज और ब्राह्मन विल, पुरी जिले में खारी मुण्डिया और बरथाली मुण्डिया हैं। गजाम जिले में श्वेत चीनी मिट्टी बहुत-से स्थानों पर मिलती है जैसे गुन्दारन्ध, पोलोसारा और बुगूदा। सभलपुर जिले में केओलिन, दियासर, घाचा मरूआ, पहर-सिगीरा में मिलती है। श्वेत मिट्टी सरायकेला, रायगढ़ और मयूरभंज के बहुत-से स्थानों में भी पायी जाती है। कुछ भारतीय केओलिनो के विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं—

केओलिन	सिलीका	एल्यूमिना	फेरिक- आक्सा इड	कैल्शि- यम आ- क्साइड	मैगनीशि- यम आ- क्साइड	क्षार	हानि
मगलहाट (बिहार)	४६ ५६	३७ ५२	१ ७३	० ५९	० ३६	० ५८	१२ २१
पथरघट्टा (बिहार)	४७ ५४	३७ १८	१ २६	० ८४	१ ०२	० ३५	१२ १२
समुकिया (बिहार)	४७ १४	३८ ५६	१ ०१	० ५३	० २२	० ४७	१३ ३२
कैसेल राँक (बम्बई)	५३ ८०	३२ ६०	१ ५०	१ ३०	—	—	१० ८०
ट्रावनकोर	४६ १०	३९ ५०	१ २०	—	—	—	१४ २०
चित्तल दुर्ग (मैसूर)	४४ ४२	३८ ९०	१ ५३	१ २९	० ०१	—	१३ १८
रान्सीपुर (बडौदा)	४६ २५	३७ ७०	० ५३	० ३२	० २५	० ४३	१३ ८०
बाँदा (उत्तर-प्रदेश)	४३ ९२	४१ १२	० ७२	—	—	० ५३	१३ ७३

गौण मिट्टियाँ—गौण मिट्टियाँ अपने मूल उत्पत्ति-स्थान पर नहीं पायी जाती, वरन् कुछ प्राकृतिक साधनों द्वारा अपने वर्तमान स्थान को ले आयी जाती हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हुए भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तनों के कारण प्रायः गौण मिट्टियाँ प्राथमिक मिट्टियों की अपेक्षा अधिक लचीली होती हैं। प्रकृति में बहुत प्रकार की गौण मिट्टियाँ पायी जाती हैं, परन्तु मुख्य रूप से मृद-उद्योग में काम आनेवाली गौण मिट्टियों को तीन विभिन्न भागों में बाँटा जा सकता है। यह विभाजन इन मिट्टियों की तापसहता के आधार पर किया गया है। ये वर्गीकरण निम्नलिखित हैं—

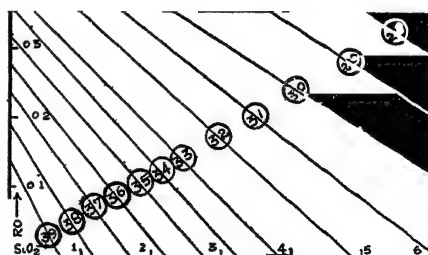
१ तापसह या दुर्गल मिट्टियाँ—इन मिट्टियों में पकाते समय उच्च तापक्रम को सहन करने की विशेषता होती है। वास्तव में सभी प्राथमिक शुद्ध मिट्टियाँ इस वर्ग में आ जाती हैं, परन्तु इस वर्ग की सबसे महत्वपूर्ण मिट्टियों को अग्नि-मिट्टियाँ कहा जाता है। इन अग्नि-मिट्टियों का गलनाङ्क अधिक होता है और ये कोयले की खान के नीचे पायी जाती हैं। किसी पदार्थ की तापसहता को केवल तापक्रम द्वारा प्रकट करना उचित नहीं है, कारण तापसहता पर ताप देने की अवस्थाओं का भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ सिलीका या विशुद्ध बालू साधारणतः अत्यधिक तापसह होती है, परन्तु भट्ठी में कोयले की राख की उपस्थिति में सिलीका ईंट शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। एक तापसह ईंट, जो बिना किसी भार के उच्च ताप सह सकती है, उस तापक्रम से बहुत कम तापक्रम पर ही टूट जायगी, यदि गरम करने

के समय उस पर बड़ा भार रख दिया जाय। अपने कार्य के लिए हम लोग उस पदार्थ को तापसह पदार्थ कहेंगे जो ओषदीकारक वातावरण में बिना दबाव या भार के 150° से० तक गरम करने पर पिघलने का कोई बाहरी चिह्न न प्रकट करे, साथ ही गरम करते समय तापक्रम भी 10° से० प्रति मिनट के हिसाब से बढ़ रहा हो।

मिट्टी की तापसहता और रासायनिक सगठन के बीच सम्बन्ध मालूम करने के बहुत-से प्रयास किये गये हैं, पर शुद्ध मिट्टियों के अतिरिक्त ये प्रयास सफल नहीं हुए। बर्टलैण्ड (Bertland) ने मिट्टी में एल्यूमिना के प्रतिशत और उसकी तापसहता के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बहुत-से प्रयोग किये, परन्तु वह केवल यही पता लगा पाया कि जिन मिट्टियों में एल्यूमिना का अधिक प्रतिशत रहता है, वे ही अधिक तापसह होती हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ पता नहीं लग सका।

इस दिशा में सबसे सफल प्रयास लडविग (Ludwig) का है जिसने यह मान लिया कि मिट्टियों में द्रावक पदार्थ ठोस घोल के रूप में रहते हैं जिनमें मिट्टी घोलक का काम करती है। एल्यूमिना को इकाई बनाते हुए उसने मिट्टियों का सगठन सूत्र $XRO \cdot Al_2O_3 \cdot Y SiO_2$ के रूप में रखा। इस सूत्र में RO सम्पूर्ण क्षारीय पदार्थों को प्रकट करता है। X और Y के बीच रेखाचित्र खींचने पर उसने एक चार्ट पाया जिसमें सैगर शकु की सीमाएँ बताती हुई कर्ण रेखाएँ खींची गयी थी। इस प्रकार मिट्टी का कोई सगठन ऐसी किन्हीं दो रेखाओं के बीच पड़ता है। वह उन रेखाओं पर लिखे सैगर शकुओं के तापक्रमों के बीच किसी तापक्रम पर पिघल जायगा।

यह चार्ट अधिक तापसह मिट्टियों के गलनाङ्क निर्धारित करने में सहायक है, परन्तु सम्पूर्ण क्षार RO, ६ प्रतिशत से अधिक हो तो इस चार्ट पर विश्वास नहीं किया जाता। इस चार्ट की अधिक क्षेत्रों में अनुपयोगिता का कारण यह है कि अग्नि-



मिट्टियाँ समान पदार्थ नहीं होती और द्रावक भी पूरे पदार्थ में समान रूप से वितरित नहीं होता। इस कारण हम उसे ठोस घोल नहीं मान सकते जो कि चार्ट का आधार है। इस चार्ट से पता चलता है और व्यवहार में भी इसकी पुष्टि होती है कि एल्यूमिनियम को छोड़कर लगभग सभी धातुओं के आक्साइडों का या सिलिका का अनुपात बढ़ाने से अग्नि-मिट्टी की

तापसहता कम हो जाती है। धातु आक्साइड के कण-आकार का तापसहता पर विभिन्न प्रभाव पड़ता है। बड़े कणवाले आक्साइड का प्रभाव सूक्ष्म कणवाले उसी आक्साइड की अपेक्षा कम होगा अर्थात् धातु आक्साइड के कण बड़े होने पर मिट्टी का गलनाक अधिक कम नहीं होगा।

अग्नि-मिट्टियाँ—ये मिट्टियाँ अधिक तापसह तथा लचीली होती हैं जो प्रायः पत्थर के कोयले की खानों के नीचे पायी जाती हैं। ये मिट्टियाँ अधिक एल्यूमिनामय मिट्टी से लेकर अधिक सिलिकामय मिट्टी तक सगठन में भिन्न-भिन्न होती हैं। ये मिट्टियाँ विभिन्न कार्यों के लिए तापसह वस्तुएँ बनाने के काम आती हैं। ये मिट्टियाँ प्रायः रंग में हरी, भूरी, ठोस, घनी तथा विभिन्न सीमा की कठोरता लिये रहती हैं। वातावरण में खुली छोड़ देने से इन मिट्टियों के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और पानी सोखने पर लचीली मिट्टी में बदल जाती है। कुछ भूगर्भ शास्त्र वेत्ताओं का विश्वास है कि प्राचीन काल में ये मिट्टियाँ पृथ्वीतल की साधारण मिट्टियाँ थी जिन पर पेड़-पौधे उग आये जो आगे चलकर इस मिट्टी के ऊपर कोयला की तह बन गये। इन पुरानी मिट्टियों पर पेड़ उगने के कारण उनके क्षार दूर हो गये और मिट्टियाँ तापसह बन गयीं। दूसरे विशेषज्ञों का कहना है कि वास्तविक अग्नि-मिट्टियाँ कोयले की निचली परत के ओषदीकरण से बनी हैं। इस सिद्धान्त का आधार यह है कि कोयले की राख और अग्नि-मिट्टी का रासायनिक सगठन लगभग समान पाया जाता है। इसके आगे भी उनका तर्क है कि यदि ये विशेष मिट्टियाँ मूल रूप में पृथ्वी के धरातल की साधारण मिट्टियाँ थी तो निचली तह में ऊपरी तह की अपेक्षा चूना आदि दूसरे क्षारों की मात्रा अधिक होनी चाहिए तथा जैसे-जैसे ऊपर आते जायें मिट्टी शुद्ध होती जानी चाहिए, पर ऐसा नहीं पाया जाता।

एक ही खान के विभिन्न भागों की अग्नि-मिट्टियाँ एक-सी नहीं होती। सभी अग्नि-मिट्टियों में केओलिन की अपेक्षा सिलिका अधिक होती है, परन्तु बॉल-मिट्टियों की अपेक्षा क्षार कम होते हैं। प्रायः दूसरे अपद्रव्यों के साथ मुक्त सिलिका भी इनमें होती है जिसका मिट्टी के गुणों पर काफी प्रभाव पड़ता है।

अग्नि-मिट्टी की श्रेष्ठता का पता लगाने में रासायनिक विश्लेषण का कम महत्त्व है। रासायनिक विश्लेषण से केवल द्रावको, सिलिका तथा एल्यूमिना प्रतिशत का पता चल सकता है। तापसहता गरम करने के आधार पर निश्चित करनी चाहिए। इसके लिए मिट्टी को त्रिपाखंडवाले शकु के आकार का बना लेते हैं। इस शकु की

ऊँचाई आधार की एक भुजा से कम से कम चार गुनी होनी चाहिए। यह शकु दूसरे प्रामाणिक सैगर शकु के साथ परीक्षण भट्टियों में रख दिया जाता है और जिस तापक्रम पर मिट्टी का शकु झुक जाता है वह तापक्रम दूसरे सैगर शकु द्वारा जान लिया जाता है। इस गरम करने की परीक्षण-विधि को 'पाइरोमीट्रिक कोन ईक्विवैलेण्ट' (Pyro-metric Cone equivalent) या संक्षेप में पी० सी० ई० कहा जाता है।

अग्नि-मिट्टी की तापसहता और उसके लचीलेपन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो मिट्टियाँ सूखने पर कड़ी व अभेद्य हो जाती हैं वे गरम करने पर शीघ्र काँचीय होकर घना व अपारगम्य पिण्ड बन जाती हैं। इस प्रकार की तापसह मिट्टियों को उच्चतम तापसह मिट्टियों की अपेक्षा काँच गलाने की भट्टियों के बनाने में प्राथमिकता दी जाती है। कारण ये मिट्टियाँ लचीलेपन के कारण शीघ्र ही अधिक घनी हो जाती हैं और पिघले हुए काँच की इन पर क्रिया नहीं होती। साथ ही जो मिट्टी शीघ्र घनी हो जाती है, उन पर धातुमल (Slag) का प्रभाव कम होता है, अतः कुछ क्षेत्रों में अधिक तापसह मिट्टियों की अपेक्षा इन मिट्टियों को प्राथमिकता दी जाती है।

मार्ल्स (Marls)—यह पदार्थ प्रकृति में पाया जानेवाला मिट्टी तथा अधिक मात्रा में चाक या चूना पत्थर का मिश्रण है। परन्तु इंग्लैण्ड में यह शब्द उन औसत तापसहतावाली साधारण अग्नि-मिट्टियों के लिए भी प्रयोग किया जाता है, जो वहाँ अधिकता से मिलती हैं। ये मिट्टियाँ वहाँ प्रधानतः पोरसिलेन पात्र पकाने के छोटे बक्स (Sagars) तथा निम्न कोटि की अग्नि-ईंटे बनाने में काम आती हैं।

कड़ी अग्नि-मिट्टियाँ (Flint-Fire-clays)—ये अधिक एल्यूमिना युक्त मिट्टियाँ हैं जो चकमक पत्थर की भाँति कठोर होती हैं तथा पानी के साथ बॉल-यन्त्र में पीसने के पश्चात् ही प्रयोग की जा सकती हैं।

अग्नि-मिट्टियों का शोधन—रासायनिक विश्लेषण में मिट्टी में लोहे की उपस्थिति लौह आक्साइड (Fe_2O_3) के रूप में ही बतायी जाती है। परन्तु मिट्टी में लोहा साधारणतः माक्षिक (FeS_2), सिडेर्राइट (Siderite) या कार्बोनेट ($FeCO_3$) के रूप में रहता है। केवल थोड़ा-सा भाग ही लौह आक्साइड के रूप में रहता है। ये अपद्रव्य कण-आकार के आधार पर निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटे जा सकते हैं—

(अ) २०० नम्बर की चलनी से बड़े कण।

(आ) २००-३५० नम्बर की चलनी के बीच के कण ।

(इ) कलिल आकार तक के सूक्ष्मतम कण ।

प्रथम वर्ग के कण मिट्टी पकाने पर उसमें काले या बादामी चिह्न डाल देते हैं । भट्टियों में इस प्रकार मिट्टी की ईंटें प्रयोग करने पर ये लौहकण धातुमल बनाते हैं और अलग हो जाते हैं । उससे ईंट का जीवन भी कम हो जाता है । इस प्रकार के लौह अपद्रव्य विद्युत्-चुम्बक द्वारा अलग किये जा सकते हैं । उसके लिए शक्तिशाली विद्युत्-चुम्बक की आवश्यकता होगी, कारण लौह यौगिक लोहे की धातु की अपेक्षा बहुत ही कम चुम्बकमय होते हैं । शुद्ध लोहे की अपेक्षा पाइराटीज या माक्षिक में ०.२३ प्रति शत तथा सीडेराइट में १.८२ प्रति शत चुम्बक शक्ति होती है । यह पता लगाया जा चुका है कि इन कणों को ४००° से ६००° से० तक गरम करके बहुत महीन चूर्ण में पीस लेने से सर्वाधिक चुम्बकीय आकर्षण उत्पन्न होता है । कण जितने ही सूक्ष्म होंगे चुम्बकीय आकर्षण उतना ही अधिक होगा । यह मिट्टी घूमनेवाली भट्टियों में उत्पादक गैस को जलाकर निस्तापित की जाती है ।

जब द्वितीय वर्ग के लौह अपद्रव्यवाली मिट्टी पकायी जाती है तो लौह यौगिक के कण मिट्टी की अपेक्षा बहुत कम तापक्रम पर ही पिघल जाते हैं और छोटे-छोटे धब्बों के रूप में फैल जाते हैं । इन धब्बों का आकार मूल आकार का कई गुना बड़ा होता है और ये धब्बे उसी प्रकार फैलते हैं जैसे सोख्ता कागज पर रोशनाई फैलती है । यह अपद्रव्य फिल्म फ्लोटेशन की विधि से दूर किये जा सकते हैं । इसी प्रकार की विधि प्रायः निकिल, ताँबे या सीसे की अयस्को (ores) में धातु का अनुपात बढ़ाने में प्रयोग की जाती है । लौह यौगिक भी इस विधि से प्रभावित होते हैं । मिट्टी चूर्ण तथा पानी में, जब चीड़ का तेल, क्रीओजोट तेल (creosote-oil) मिट्टी का तेल आदि डालकर घोटा जाता है तो मिट्टी में उपस्थित लौह यौगिक पर झाग के रूप में तैरने लगते हैं और अलग कर लिये जाते हैं । मिट्टी या रेत के कण इस तैल पानी के पायस (emulsion) से प्रभावित नहीं होते । अतः रेत व मिट्टी तली में बैठी रह जाती है । एक टन मिट्टी के लिए ४०० गैलन पानी, एक पाइण्ट समान अनुपातवाले मिट्टी के तेल और क्रीओजोट तेल के मिश्रण का प्रयोग किया जा सकता है ।

तृतीय वर्ग के अपद्रव्य अधिकतर लोहे के आक्साइड होते हैं । यह मिट्टी में इतने समान रूप से मिले रहते हैं कि किसी व्यापारिक विधि द्वारा नहीं दूर किये

जा सकते। ऐसी मिट्टी पकाने पर हाथीदाँत के रंग की या भूरे रंग की हो जाती है।

भारत में अग्नि-मिट्टी के उत्पत्ति-स्थान—(१) बगाल में रानीगंज के कोयले की खान।

(२) बिहार की राजमहल पहाड़ियों का पश्चिमी भाग तथा भागलपुर जिले में पथरघट्टा।

(३) बिहार के डाल्टनगंज के कोयला के क्षेत्र में राजाहरा।

(४) मध्य प्रदेश में कटनी और जबलपुर।

(५) मध्य भारत में उमरिया, बगलोर जिले में गोलाहली तथा मैसूर के विभिन्न स्थान।

(६) आसाम में खासी और जयन्तिया पहाड़ियों पर उमरिया सवाई।

२ गलनशील मिट्टियाँ—गलनशील मिट्टियाँ वे मिट्टियाँ हैं जो पोरसिलेन-ताप अर्थात् 1350° से० पर कौंचीय हो जाती हैं या आंशिक रूप से गल जाती हैं। इन मिट्टियों में तापसह मिट्टियों की अपेक्षा द्रावक अधिक मात्रा में रहते हैं। इन द्रावकों की अधिक मात्रा के ही कारण ये मिट्टियाँ कड़े मिट्टी बर्तन, स्वास्थ्य-सम्बन्धी तथा रसायन उद्योग-सम्बन्धी पात्र बनाने के काम आती हैं।

बॉल-मिट्टियाँ—ये विशेषतः इंग्लैण्ड में पायी जानेवाली शुद्ध तथा काफी लचीली गौण मिट्टियाँ हैं। ये मिट्टियाँ पोरसिलेन ताप पर कौंचीय तो हो जाती हैं, पर आकार नहीं बदलती। इन्हीं गुणों के कारण यह मिट्टी दूसरी मिट्टियों के साथ श्वेत प्रलेपित मृत्पात्र तथा कड़े मिट्टी बर्तन बनाने के काम आती हैं। डारसेट (Dorset) तथा डीफानशायर की कुछ बॉल मिट्टियों में इतनी पर्याप्त तापसहता है कि वे अग्नि-मिट्टी की श्रेणियों में रखी जा सकती हैं। भूगर्भ-शास्त्र वेत्ताओं का कहना है कि यह मिट्टी मूलरूप से ग्रेनाइट पहाड़ियों से धुल गयी थी और देश के निचले भागों में जमा हो गयी। अन्त में पृथ्वी के धरातल से दब गयी। मिट्टी का कुछ काला रंग मुख्यतः कार्बनिक अशुद्धताओं व जले हुए वनस्पति पदार्थों की उपस्थिति के कारण है।

बॉल-मिट्टी के साथ लिग्नाइट या जली लकड़ी के बड़े पिण्ड प्रायः मिलते

है। यह जली लकड़ी पत्थर का कोयला बनने की कई दशाओं को पार कर चुकी होती है। ये लिग्नाइट के टुकड़े हाथ द्वारा अलग किये जाते हैं। डैफॉनशायर में मिट्टी की खानें प्रायः ६०-८० फुट की गहराई तक होती हैं। खदान की तली तक कुओं के आकार का एक गड्ढा खोद लेते हैं तथा मिट्टी हाथ की कुदाली से खोदी जाती है। मिट्टी के टुकड़े गड्ढे के मुँह के पास ही ऊँचे ढेरों के रूप में इकट्ठे कर दिये जाते हैं और तुषार-वर्षा आदि के द्वारा प्राकृतिक विच्छेदन के लिए छोड़ दिये जाते हैं। कुछ पुराने खान-विशेषज्ञों का कहना है कि एक रात का पाला व वर्षा वर्षों के ढँके रखने से अधिक लाभकारी है। गर्मियों में मिट्टी के ढेर को नम रखने के लिए प्रायः इस पर पानी छिड़कते हैं। मृत्तिका-उद्योग में बॉल-मिट्टी खान से निकालकर सीधी प्रयोग की जाती है। इसे प्रयोग से पूर्व धोकर शुद्ध नहीं करना पड़ता।

रासायनिक सगठन में बॉल-मिट्टी चीनी मिट्टी से बहुत भिन्न नहीं है सिवाय इसके कि बॉल-मिट्टी में क्षारों तथा लोहे की अधिक मात्रा रहती है। पकाने पर बॉल-मिट्टी अधिक कौंचीय होती है और उतनी श्वेत नहीं हो पाती जितनी कि चीनी मिट्टी। साधारण बॉल-मिट्टी पूरी सूखी होने पर लगभग ६-१० प्रतिशत तक भार में कम हो जाती है और रक्त उष्मा तक गरम करने पर १५-२० प्रतिशत तक भार में और कम हो जाती है। बॉल-मिट्टी में प्रायः ३-४ प्रतिशत कार्बन लिग्नाइट या वनस्पति से उत्पन्न किसी दूसरे कार्बनिक पदार्थ के रूप में रहता है, परन्तु विश्लेषण में इसे इस रूप में कभी-कभी ही प्रकट करते हैं।

दुर्गल या तापसह और गलनशील मिट्टियों में भेद समझने के लिए कुछ विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं।

कुछ गौण मिट्टियों के विश्लेषण—

मिट्टियाँ	सिलिका	एल्यूमिना	फेरिक- आक्साइड	कैल्शियम आक्साइड	मैगनीशियम आक्साइड	क्षार	निस्तापन से हानि
१	४७.५५	३७.८७	१.०५	०.२१	०.०९	१.२८	१२.५८
२	४९.१२	३५.७३	०.५६	०.१८	०.२४	१.८६	११.९२
३	६३.४०	२४.५०	१.३०	०.४०	०.१०	१.६०	८.५०
४	६१.२०	२५.४७	१.४४	०.१३	X	१.४१	१०.२५
५	५३.९८	२९.४७	३.०७	०.२८	०.३५	१.६२	१०.१०

- १ जर्मनी के थूरिंगिया (Thuringia) की लचीली मिट्टी ।
- २ इंग्लैण्ड के डैफॉन की लचीली मिट्टी ।
- ३ मध्य प्रदेश में जबलपुर की अग्नि-मिट्टी ।
- ४ पश्चिमी बंगाल में रानीगज कोयला की अग्नि-मिट्टी ।
- ५ इंग्लैण्ड के स्टावर ब्रिज (Stour Bridge) की अग्नि-मिट्टी ।

बेण्टोनाइट (Bentonite)—यह एक विशेष प्रकार की मिट्टी है जिसे ज्वालामुखी की राख तथा टफ (Tuft) के काँचीय कणों का विच्छेदित रूप कहा जाता है। यह सदैव भिन्न गहराइयों पर प्रायः रेत, मिट्टी या शेल के साथ मिलती है।

बेण्टोनाइट भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि बहुत-से देशों के काफी भागों में मिलती है और मुख्य रूप से निम्नलिखित कामों में प्रयोग की जाती है—

आलम्बन कारक (Suspending-agent) के रूप में मृद-उद्योग के चिकन-प्रलेपन तथा काँच-कलई में, पेट्रोलियम तथा दूसरे तेलों को पानी-रहित तथा शुद्ध करने में, कपड़े रँगने में रंग-स्थापक के रूप में और ढलाई में रेत के साँचे को जमाने के लिए और मिट्टी-उद्योग में लचीली मिट्टी के स्थान पर इसका प्रयोग करते हैं। साधारण पेंसिलों, खडिया की रंगीन पेंसिलों, औषधियों तथा कान्तिवर्धक पदार्थों के निर्माण में इसका उपयोग होता है।

रासायनिक सगठन में बेण्टोनाइट में बॉलमिट्टी की अपेक्षा सिलीका, चूना तथा मैगनीशिया अधिक होता है, परन्तु एल्यूमिना की मात्रा बहुत कम होती है। लौह की मात्रा काफी भिन्न होती है, परन्तु प्रायः बॉल-मिट्टी या केओलिन से बहुत अधिक रहती है।

बेण्टोनाइट के रंगों में भी काफी अन्तर पाया जाता है। पीले मलाई रंग से लेकर मासल (Buff) रंग तक के रंग साधारणतः मिलते हैं, परन्तु भूरे, गुलाबी और पीले रंग भी मिलते हैं।

बनावट में यह प्रायः सपीडित और कठोर होती है, परन्तु कुछ नमूने असपीडित तथा सरल के भी मिलते हैं।

पानी का अवशोषण करने पर बेण्टोनाइट फूल जाती है और चूर-चूर हो जाती है। कुछ नमूनों में बहुत सूक्ष्म कणों की काफी मात्रा रहती है जो स्थायी रूप से पानी में आलम्बन के रूप में रहते हैं।

बेण्टोनाइट के दो विशिष्ट विश्लेषण यहाँ दिये जाते हैं, प्रथम गुलाबी बेण्टोनाइट के धुले हुए नमूने का है, दूसरा बिना धुली साधारण बेण्टोनाइट का है।

	(१)	(२)
सिलीका	५१.५६	५०.३३
टिटैनियम आक्साइड	०.७८	—
एल्यूमिना	१३.४२	१६.४२
फेरिक आक्साइड	३.२२	२.४२
कैल्शियम आक्साइड	२.०४	१.३९
मैगनीशियम आक्साइड	४.९४	४.१०
पोटैशियम आक्साइड	०.३८	१.००
सोडियम आक्साइड	०.२४	०.१२
पानी	२३.४६	२३.९५
योग	१००.०४	९९.७३

३ सहज गलनीय (Fusible) मिट्टियाँ—ये मिट्टियाँ प्रायः अपेक्षाकृत कम तापक्रम पर ही गल जाती हैं और आकार खो देती हैं। इनमें से कुछ मिट्टियाँ पोर-सिलेन तापक्रम से पूर्व पूर्णरूपेण नहीं गलती और साधारण मृत्पात्र बनाने तथा खपड़े बनाने में लाभदायक होती हैं। अधिक साधारण नमूने साधारण ईंटों के बनाने में काम आते हैं। इन मिट्टियों में प्रायः सिलीका (अधिकतर मुक्त रूप में) तथा द्रावको, जैसे चूना, लोहा, सोडा, पोटाश आदि की मात्रा अधिक रहती है। यह द्रावक रक्त ऊष्मा पर संयोग करके गलनीय सिलीकेट बनाते हैं जो अधिक तापक्रम पर गरम करने से पिघल जाते हैं।

इन सहज गलनीय मिट्टियों के रंग काफी भिन्न होते हैं। पकी हुई मिट्टी लाल या नारंगी से लेकर पीले रंग तक की या फिर बादामी या हरे-पीले रंग की होती है। यह रंगों की भिन्नता मिट्टी में उपस्थित लौह यौगिकों तथा चूना मैगनीशिया आदि दूसरे पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करती है। बहुत-सी मिट्टियों से बढ़िया पात्र बन सकते हैं यदि उन्हें एकदम ठीक तापक्रम तक गरम किया जाय। इसी ठीक तापक्रम तक गरम करने की सफलता पर ही मिट्टी का व्यापारिक मूल्य निर्भर करता है। साधारण मिट्टियों से उत्कृष्ट पात्र बनाने के लिए मिट्टी-कणों का समान आकार व रंगभिन्नता का संतोषजनक होना आवश्यक है।

उत्तर भारत में साधारण मृद्-उद्योग के लिए गंगा की धारा से इकट्ठी हुई मिट्टी, मिट्टी पाने का एक अच्छा साधन है। बिहार में भागलपुर के पास गंगा द्वारा जमा की हुई मिट्टी के विश्लेषण से निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए हैं—

	(१)	(२)
सिलीका	५७ १८	६४ ५३
एल्यूमिना	११ ७१	१३ २८
फेरिक आक्साइड	८ २४	६ ४६
कैल्शियम आक्साइड	७ ८३	२ ७२
मैगनीशियम आक्साइड	१ ८९	० ८७
पोटैशियम आक्साइड	१ ४४	
सोडियम आक्साइड	३ ८९	५ ३२
हानि	७ ७५	६ ८३
	<u>९९ ९३</u>	<u>१०० ०१</u>

(१) भागलपुर की गंगा मिट्टी का विश्लेषण है तथा (२) अधिकतर ग्रामीण कुम्हारों द्वारा प्रयोग की जानेवाली एक तालाब की मिट्टी का विश्लेषण है।

यह भागलपुर की मिट्टी 1000° से 0° से नीचे पकाने पर गहरे लाल रंग की हो जाती है और लगभग १० प्रतिशत पानी सोख लेती है, परन्तु 1040° से 0° पर आकार खोना प्रारम्भ कर देती है। इस पर चिकन-प्रलेपन अच्छा होता है और छत के खपड़े तथा साधारण चिकन-प्रलेपित मृत्पात्र बनाने के लिए उपयोगी है। साधारण मृत्पात्रों के बनाने में जलने पर लाल होनेवाली मिट्टी के पकाने के तापक्रम का परास (मध्यमान या रेज) बहुत ही कम है। अतः पकाने की क्रिया बहुत ही सावधानीपूर्वक करनी चाहिए। जब इन साधारण मिट्टियों में लगभग १०-२० प्रतिशत अच्छी अग्नि-मिट्टी मिला दी जाती है तो पकाने के तापक्रम का परास काफी अधिक हो जाता है और पके बर्तन की ध्वनि में भी काफी सुधार हो जाता है।

शैल (Shales)—यह प्रकृति द्वारा कड़ी हो गयी मिट्टी है जो ऊपर की तहों के भार के दबाव से दबकर बहुत ही सपीडित हो गयी है। इस प्रकार की मिट्टियाँ प्रायः परतवाली तहों में मिलती हैं। इनका स्थान कठोर तथा नर्म मिट्टियों के बीच

रहता है। शेल मिट्टियाँ बनावट में बहुत भिन्न होती हैं। इनका उपयोग बनावट के आधार पर ही विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता है।

लोम (Loames)—इसमें मिट्टी, रेत तथा वनस्पति मोल्ड (Moulds) रहते हैं। अमेरिका में यह प्रायः टॉली व ईटों के बनाने में प्रयोग की जाती है।

लोइज (Loess)—ये जलधारा-द्वारा जमा की हुई अशुद्ध मिट्टियाँ हैं जो प्रायः चूनेदार (Calcareous) होती हैं। ये मिट्टियाँ प्रायः पानी द्वारा जमा की जाती हैं, परन्तु किसी समय में हवा द्वारा भी बनायी गयी हो सकती हैं। अमेरिका की मिसिसिपी नदी की घाटी में ये मिट्टियाँ बहुत प्रचलित हैं और साधारण ईंटें बनाने में काम आती हैं। लोइज मिट्टियों का रंग पीले से बादामी तक होता है। गंगा नदी की घाटी की धारावाली मिट्टी इस श्रेणी में आती है तथा साधारण ईंटें बनाने में प्रयुक्त होती हैं।

मिट्टियों में अपद्रव्य—अपद्रव्यों के विचार से मिट्टी में सिलिका निम्नलिखित रूपों में रहती है—

१ जलयोजित (Hydrated) सिलिका।

२ मुक्त सिलिका, यथा स्फटिक, बालू पत्थर (Sand-Stone), चकमक पत्थर आदि।

३ सिलिकेट या संयोग की हुई सिलिका यथा फेल्स्पार, अभ्रक आदि।

जलयोजित सिलिका प्रायः कलिल जेल के रूप में रहती है और इसे कलिल सिलिका कहा जा सकता है। कार्बनिक कलिल जेल तथा सिलिका कलिल जेल में यही अन्तर है कि सिलिका कलिल जेल मिट्टी के लचीलेपन को बढ़ाता नहीं है।

मुक्त सिलिका मिट्टी में अधिकतर अकेलास सिलिका, यथा चकमक पत्थर, चर्ट (Chert), कालकेडोनी (Calcedony) आदि के रूप में रहती है या स्फटिक तथा रेत आदि के रूप में केलासीय सिलिका के रूप में रहती है। अकेलास सिलिका अच्छी मिट्टियों में नहीं पायी जाती। बालू शब्द स्फटिक क्वार्ट्जाइट (Quartzite) या दूसरे अधिक सिलिका-मय खनिजों के छोटे कणों के लिए प्रयुक्त होता है।

किसी बालू या रेत का मृद-उद्योग में मूल्य उसमें उपस्थित सिलिका की प्रतिशत मात्रा पर निर्भर करता है। शुद्धतम रेत में शत-प्रतिशत सिलिका होती है। पर कुछ रेतों में केवल ४० प्रतिशत ही सिलिका अर्थात् सिलिकान आक्साइड (SiO_2) रहता

है। फेल्सपार या अभ्रकमय (Felspathic and micaceous) बालू से पात्र में क्षारों की मात्रा अधिक हो जाती है जिससे पके हुए पात्र के गुणों में काफी अन्तर आ सकता है, जैसे पात्र कम तापक्रम पर ही काँचीय हो सकता है, पकने से पूर्व ही अपना आकार खो सकता है। जब शुद्ध रेत नहीं मिलती हो तो अभ्रकमय रेत की अपेक्षा फेल्सपारमय रेत का प्रयोग किया जाता है। ऐसा इस कारण है कि अभ्रकमय रेत के कण पतले होने के कारण ताप द्वारा सरलता से प्रभावित होते हैं, यद्यपि स्वयं अभ्रक फेल्सपार की अपेक्षा ऊँचे तापक्रम पर गलता है। शुद्धतम मिट्टी में रेत मिलाने से उसकी तापसहता कम हो जाती है। कारण मुक्त सिलिका एल्यूमिना के साथ संयोग करके सिलिकोएल्यूमिनो सुद्राव (Eutectic) बनाता है। सन् १८८० ई० में सैगर ने दर्शाया कि ९० प्रतिशत सिलिका और १० प्रतिशत एल्यूमिना मिलकर १६५०° से० पर गलनेवाला सुद्राव मिश्रण बनते हैं। बौवेन (Bowen) और ग्रेग (Greig) ने सन् १९२४ ई० में दिखाया कि सिलिका एल्यूमिना के सुद्राव मिश्रण में ९४.५ प्रतिशत सिलिका तथा ५.५ प्रतिशत एल्यूमिना होती है जो १५४५° से० पर गल जाता है। शीघ्रता से ठंडा करने पर गला पदार्थ एकाग्र मूलाइट केलास को बनाते हुए सादे काँच में बदल जाता है। परन्तु धीरे-धीरे स्वतः ठंडा होने से यह गला पदार्थ मूलाइट और क्रिस्टोबेलाइट (Cristobalite) के कणों में बदल जाता है।

संक्षेप में लचीली मिट्टी में सिलिका की उपस्थिति, मिट्टी का लचीलापन, सिकुड़न, ऐठने व चटकने की धारणा एवं तनन-क्षमता तथा चापशक्ति को घटाती है। साथ ही रेत के कारण पात्र की पकाने के बाद रन्ध्रता और आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनों को सहने की शक्ति बढ़ती है।

क्षार—मिट्टी में क्षार घुलनशील लवणों या अघुलनशील यौगिकों के रूप में हो सकता है। मिट्टी में क्षार की उपस्थिति के निम्नलिखित प्रभाव हैं—

(अ) गलनशीलता में वृद्धि।

(आ) सुखाने पर या पकाने पर पात्रों की सतह पर छादनी या नोनी का उत्पन्न होना।

(इ) पानी के साथ मिलाने पर मिट्टी का लचीलापन कम करना। अतः पात्र ढालने में सरलता उत्पन्न करना।

सबसे अधिक साधारण रूप में मिट्टी में क्षार, आल्कली, एल्यूमिनो सिलिकेट यथा फेल्सपार अभ्रक आदि के रूप में रहते हैं। यद्यपि विश्लेषण में क्षार सदैव पोटैशियम आक्साइड (K_2O) तथा सोडियम आक्साइड (Na_2O) के द्वारा ही प्रकट किये जाते हैं, परन्तु यह आक्साइड इस रूप में मिट्टी में बहुत ही कम मिलते हैं। तापसह मिट्टी में राख व क्षारों की कुछ मात्रा रहने से उसकी शक्ति बढ़ जाती है, कारण क्षार व राख मिट्टी कणों को जोड़कर रखते हैं, अतः मिट्टी को मजबूत पिण्ड में बदल देते हैं। कभी-कभी पकाते समय अधिक तापक्रम आने पर क्षारों का कुछ अंश वाष्प बनकर उड़ जाता है और पदार्थ अधिक तापसह हो जाता है।

सर्वाधिक साधारण रूप में अभ्रक मस्कोवाइट या पोटाश अभ्रक के रूप में मिट्टी में रहती है। यह पोटाश व एल्यूमिना का द्विगुण सिलिकेट (Double Silicate) है तथा मोटे रूप से इसे सूत्र $K_2O, 3 Al_2O_3, 6 SiO_2$ द्वारा दर्शाया जा सकता है। रीक ने इसका द्रवणांक 1395° से० पाया था। तापसह मिट्टियों के गलने पर अभ्रक का प्रभाव 1200° से० से पूर्व कभी-कभी ही अनुभव करने योग्य होता है, परन्तु जब अभ्रक-कण बहुत ही सूक्ष्म हों तो बहुत कम तापक्रम पर ही प्रभाव होना प्रारम्भ हो जाता है।

मूरे (Morey) और बौवेन ने 1925 ई० में दिखाया कि सोडियम मेटा सिलिकेट (Na_2O, SiO_2) तथा मुक्त सिलिका के मिश्रण से बहुत-से सुद्राव मिश्रण बनते हैं। 77 भाग Na_2O, SiO_2 और 23 भाग सिलिका का मिश्रण 480° से० पर पिघलता है, जब कि 43 भाग Na_2O, SiO_2 तथा 47 भाग SiO_2 का मिश्रण 693° से० पर ही पिघलता है। सोडियम मेटा सिलिकेट का द्रवणांक 1044° से० है।

कार्बनिक यौगिक—यदि मिट्टी में इनकी उपस्थिति हो भी तो 5 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए, अन्यथा मिट्टी शायद ही कभी कार्योंपयोगी होती है। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों के प्रभाव निम्नलिखित हैं —

- (१) पकाने के पूर्व तथा पश्चात् भिन्न रंग।
- (२) ह्यूमस के कारण लचीलेपन में वृद्धि।
- (३) पकाने के पश्चात् मिट्टी की रूद्धता में वृद्धि।
- (४) गीली अवस्था में पानी का अधिक अवशोषण, परिणाम-स्वरूप अधिक

सिकुडन।

(५) मिट्टी पकाने में ईंधन का कम लगना, विशेष कर जब लिग्नाइट जैसे कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति हो जो स्वयं जलकर ईंधन का काम करते हैं।

कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति से लौह आक्साइड पर कार्बनिक पदार्थों का शक्तिशाली अवकारक प्रभाव होता है, जो काफी बाधक है क्योंकि अवकृत लौह आक्साइड सिलिका से संयोग कर धातुमल बनाते हैं। अतः धातुमल बनने से पूर्व ही कार्बन को अधिक आक्सीजन की उपस्थिति में जला डालने में काफी सावधानी की आवश्यकता है।

चूना तथा मैगनीशिया—मिट्टी में यौगिक प्रायः कार्बोनेट या सल्फेट के रूप में रहते हैं। मिट्टी में इन यौगिकों की मात्रा अधिक सीमा तक मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। मिट्टी पर चूना तथा मैगनीशिया की क्रिया बहुत ही पेचीदी है और क्रिया का वास्तविक रूप अभी तक स्पष्ट नहीं ज्ञात हो सका है।

रीक द्वारा मिट्टी पर चूने का प्रभाव दिखाया जा चुका है। उनके अनुसार ३५ प्रतिशत चूना मिट्टी का गलनाङ्क कम करके 1230° से० कर देता है, परन्तु चूने का प्रभाव मिट्टी में उपस्थित दूसरे द्रावकों के कारण बदला जा सकता है। जब चूने के साथ-साथ क्षार भी उपस्थित हो तो मिट्टी का गलनाङ्क उतना कम हो जाता है जिस पर मिट्टी गलकर काँच जैसा पदार्थ बन जाती है। कारण जिस तापक्रम पर पोटैश के सिलिकेट व उनके एल्यूमिनो सिलिकेट बनते हैं वह तापक्रम चूने के सिलिकेट व एल्यूमिनो सिलिकेट बनने के तापक्रम से कम होता है। ये गले हुए पदार्थ दूसरे पदार्थों के लिए घोलक या विलायक का काम करते हैं।

रैन्किन और राइट (Wright) ने १९१५ ई० में दिखाया कि चूने तथा मुक्त सिलिका के संयोग से बहुत-से यौगिक बनते हैं। लगभग 1200° से० पर मेटा सिलिकेट या उल्स्टोनाइट (Wollastonite CaO SiO_2) प्रकट होता है। ५४५ भाग चूना तथा ४५५ भाग सिलिका संयोग करके $3\text{CaO} \cdot 2\text{SiO}_2$ यौगिक बनता है जो 1455° से० पर पिघलता है।

रीक के अनुसार ४५ प्रतिशत मैग्नेसाइट (Mg CO_3) मिट्टी का गलनाङ्क 1300° से० कर देता है, परन्तु इसकी अधिक मात्रा से तापसहता बढ़ जाती है।

रैन्किन और मर्विन (Merwin) ने १९१८ ई० में पता लगाया कि २०३ भाग MgO , १८३ भाग Al_2O_3 और ६१४ भाग SiO_2 मिलकर 1385° से०

पर पिघलनेवाला सुद्राव मिश्रण बनाते हैं। फर्ग्यूसन (Ferguson) और मर्विन ने १९१९ ई० में ३० ६ भाग चूना, ८ भाग मैगनीशियम आक्साइड और ६१ ४ भाग सिलीका से एक १३२०° से० पर गलनेवाला सुद्राव मिश्रण बनाया।

मैगनीशिया और मैगनेसाइट मिट्टी की सिकुड़न बढ़ाते हैं तथा मिट्टी का लचीलापन घटा देते हैं, परन्तु ऐसे मिश्रण से बने पात्र पकाने के समय अच्छी सीमा तक अपनी आकृति नहीं खोते। मिट्टी में चूना या खडिया अधिक रहने पर मिट्टी के गलन-ताप का परास घट जाता है। अतः इस मिश्रण से बने पात्र बड़ी सरलता से आवश्यकता से अधिक पक जाते हैं। ऐसा लगता है कि पिघला हुआ मैगनीशिया यौगिक काफी श्यान तथा चिपचिपा होता है, जब कि चूने का इसी प्रकार का यौगिक काफी पतला और बहनेवाला द्रव होता है जो सरलता से आसपास के कणों से क्रिया कर सकता है।

मिट्टी में चूने की उपस्थिति का विशेष प्रभाव पात्र पकाने के पश्चात् उसके रंग पर पड़ता है। जो मिट्टी काफी लोहे के कारण पकाने पर लाल हो जाती है उसी मिट्टी में यदि चूना मिलाकर अवकारक वातावरण में पकाया जाय तो मासल रंग की हो जायगी। अधिक तापक्रम पर पहले पीली हरी, फिर हरी हो जायगी। लोहा, चूना तथा सिलीका के साथ संयोग करके लाइम आयरन सिलीकेट बनाता है। अतः चूने तथा रेत की उपस्थिति में लोहे के कारण उत्पन्न लाल रंग प्रायः कम हो जाता है। अन्त में हरा रंग चूना तथा फेरस सिलीकेट के पूर्ण विकास के कारण होता है। यह रंग साधारण काँच में काफी स्पष्ट रूप से रहता है। लोहा चूने के साथ फेरिक अवस्था में संयोग नहीं करता जिससे अविराम भट्ठी में से पात्र प्रायः मासल रंग की धारी सहित लाल रंग के या लाल रंग की धारी सहित मासल रंग के होते हैं, कारण अविराम भट्ठी में वातावरण आक्सीकारक होता है।

लौह यौगिक—सभी प्राकृतिक मिट्टियों में लौह यौगिक निश्चित रूप से मिलते हैं तथा मिट्टी शुद्ध करने में सर्वाधिक सावधानतापूर्ण प्रयास के बाद भी मिट्टी से पूरा लोहा दूर करने में सफलता नहीं मिलती। मिट्टी में उपस्थित लोहे के मुख्य यौगिक दो प्रकार के आक्साइड (न्यूनाधिक जलयोजित अवस्था में), कार्बोनेट और सल्फाइड होते हैं।

सौसमन (Sosman) और मर्विन ने १९१६ ई० में पता लगाया कि चूने तथा लोहे के आक्साइडों के बीच १०२३° से० पर गलनेवाले सुद्राव मिश्रण का संगठन, ८ प्रतिशत चूना तथा ९२ प्रतिशत फेरिक आक्साइड है।

कुछ मिट्टियों के पात्रों का लाल रंग ऊपर से देखने में लौह आक्साइड के कारण होता है, परन्तु पकाने पर सफेद हो जानेवाली मिट्टी में उतना ही कृत्रिम लौह आक्साइड मिलाकर रंग की वही आभा लाने के प्रयास पूर्ण सफल नहीं हुए हैं। कृत्रिम लौह आक्साइड से प्राप्त रंग बादामी लाल होता है, परन्तु प्राकृतिक मिट्टी की अपेक्षा बहुत कम गहरा और बहुत कम चमकदार होता है।

फेरस आक्साइड मिट्टी में रहता तो है, पर बहुत ही कम मिट्टियों में रहता है। यह भट्ठी में ईंधन-गैसों के या मिट्टी में ही उपस्थित कार्बनिक पदार्थों के अवकारक प्रभाव से बना करता है। यह आक्साइड सिलिका से बड़ी शीघ्रता से संयोग कर हरे रंग का धातुमल जैसा यौगिक बनाता है। रीक के अनुसार फेरस आक्साइड और मिट्टी के सुद्राव मिश्रण का सूत्र $2 \text{FeO} \cdot \text{Al}_2\text{O}_3 \cdot 2\text{SiO}_2$ है। यह सुद्राव मिश्रण ३९ प्रतिशत फेरस आक्साइड और ६१ प्रतिशत मिट्टी से मिलकर बनता है तथा 1140° से० पर गलता है। मैगनीशियम आक्साइड की अपेक्षा फेरस आक्साइड से अधिक तरलता आती है।

लौह कार्बोनेट तथा सल्फाइड दोनों 1000° से० से अधिक गरम करने पर फेरस आक्साइड तथा विभिन्न गैसों में विच्छेदित हो जाते हैं। ये गैसें पके हुए पात्रों के लिए हानिकर होती हैं। यदि भट्ठी का वातावरण काफी आक्सीकारक है तो अस्थायी फेरस आक्साइड लाल फेरिक आक्साइड में बदल जाता है। यह फेरिक आक्साइड काफी तापसह है और पके हुए पात्रों को अधिक हानिकर नहीं है। अतः 700° से 900° से० के बीच भट्ठी के वातावरण का तीव्र आक्सीकारक तथा जहाँ तक हो सके कार्बन डाई आक्साइड और सल्फर डाई आक्साइड से मुक्त रहना बहुत ही महत्वपूर्ण है। अवकारक वातावरण में फेरस आक्साइड थोड़ी मात्रा में रहने पर हल्की नीली आभा उत्पन्न करता है। आक्साइड की मात्रा बढ़ाने से रंग शीघ्रता से गहरा होता जाता है और अन्त में धातवीय चमक पैदा हो जाती है।

टिटैनियम—मिट्टियों में टिटैनियम अधिकतर रूटाइल ($\text{Rutile}—\text{TiO}_2$) या टिटैनैइट ($\text{Titanite}—\text{Ca TiO}_3$) के रूप में रहता है और शक्तिशाली द्रावक का कार्य करता है। अधिक तापसह मिट्टी होने के लिए मिट्टी में इसकी मात्रा २ प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। १० प्रतिशत रूटाइल के ओलिन के गलन तापक्रम को लगभग 1000° से० कम कर देता है।

लचीलापन—मिट्टी का लचीलापन उसका वह गुण है जिसके कारण मिट्टी बिना चटके बाहरी बल की उपस्थिति में अपनी आकृति बदल लेती है। दूसरे शब्दों में उस पदार्थ को लचीला कहते हैं जो गूँधा जा सके या जिसे दबाव द्वारा इच्छित आकृति दी जा सके और दबाव हटाने के बाद भी वह उसी आकृति में रहे।

इस साधारण परिभाषा के अनुसार अधिकतर धातुएँ लचीले ठोस हैं जिनकी आकृति बदलने के लिए अधिक दबाव की आवश्यकता पड़ती है। मिट्टियों में लचीलापन उनमें पानी डालने के पश्चात् ही आता है। प्रत्येक प्रकार की मिट्टी को अपना अधिकतम लचीलापन उत्पन्न करने के लिए पानी की एक निश्चित मात्रा की आवश्यकता होती है। अधिक पानी डालने पर मिट्टी चिपकने लगती है और कम पानी रहने पर लचीलापन कम होता है और आकृति देने के लिए अधिक दबाव की आवश्यकता होगी। अधिकतम लचीलापन उत्पन्न करने के लिए आवश्यक पानी को, लचीलेपन का पानी (Water of Plasticity) कहा जाता है। इस लचीलेपन के पानी की मात्रा मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। यदि आकृति देनेवाला दबाव बढ़ा दिया जाय तो इस लचीलेपन के पानी की मात्रा कम हो जायगी। जे० डब्ल्यू० मेल्लर (J. W. Mellor) ने १९२२ ई० में पता लगाया कि श्वेत मृत्पात्रों के बनाने में दबाव १ से २०० किलोग्राम प्रति वर्ग सेण्टीमीटर बढ़ाने से आवश्यक पानी की मात्रा २६.४ प्रतिशत से कम होकर ५.६ प्रतिशत हो जाती है। यह पानी मिट्टी के लचीलेपन बढ़ने से भी बढ़ जाता है।

समय-समय पर मिट्टी के लचीलेपन के कारण की व्याख्या करने के बहुत से प्रयास किये गये हैं, परन्तु उनमें से कोई पूर्ण सन्तोषजनक नहीं है। लचीलेपन के विभिन्न प्रस्तावित सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

- (अ) मिट्टी-कणों का आकार और आकृति।
- (आ) मिट्टी-कणों की समष्टि (Aggregation)।
- (इ) मिट्टी-कणों का पानी के प्रति आकर्षण।
- (ई) घुलनशील लवणों तथा कार्बनिक कलिल पदार्थों की उपस्थिति।
- (उ) मिट्टी के कलिल कणों पर पानी का प्रभाव।

व्हीलर (Wheeler) ने सन् १८९६ ई० में पता लगाया कि स्फटिक और चूना पत्थर को महीन कर २०० न० की चालनी से छानने पर उनमें थोड़ा लचीलापन

है कि फ्लोरिडा की केओलिन सोडियम हाइड्रोक्साइड को ०.२५ प्रतिशत तक पूरी तरह सोख सकती है। ऐसले (Asley) ने मिट्टियों की इस अवशोषण-शक्ति का उनके लचीलेपन ज्ञात करने में उपयोग किया है।

रोहलैण्ड (P Rohland) ने १९०२ ई० में कहा कि लचीली मिट्टियाँ लचीले-पनरहित अकेलासीय कणों से मिलकर बनी हैं जिनके चारों ओर कलिल जेल की झिल्ली होती है। जब अधिकतम लचीलापन विकसित हो जाता है तब यह झिल्ली पानी से संपृक्त हो जाती है। जब मिट्टी सूखी होती है तब कलिल पदार्थ कठोर हो जाता है और उसका श्लैषीय (Gelatinous) गुण नष्ट हो जाता है, जिससे ठोस कण एक दूसरे के ऊपर उतनी सरलता से नहीं फिसल सकते जितनी सरलता से कि गीली अवस्था में। दूसरी ओर यदि पानी अधिक मिलाया गया है तो चारों ओर के पदार्थ में ठोस कण तैरने लगते हैं और मिट्टी तरल हो जाती है। उसने और भी प्रस्ताव रखा कि पदार्थ के जल-विश्लेषण की सीमा पर भी लचीलापन निर्भर है। इस प्रकार केओलिन में, जिसमें शायद कुछ ही जल-विश्लेषण होता हो, कम लचीलापन है जब कि अधिक लचीली बॉल-मिट्टी में जल-विश्लेषण बहुत अधिक होता है। मिट्टी में होनेवाले जल-विश्लेषण की सीमा मुख्यतः मुक्त क्षार की उपस्थिति, काफी उच्च तापक्रम तथा क्रिया होने के समय पर निर्भर करती है। मेलर ने पता पता लगाया कि यदि 300° से० पर पानी के साथ दबाव की उपस्थिति में पिसे हुए फेल्सपार या कार्निश पत्थर या पके हुए मृत्पात्रों के चूर्ण को कई दिन तक गरम किया जाय तो उनके कणों पर एक श्लैषीय परत जम जाती है जिसके कारण उनमें थोड़ा लचीलापन आ जाता है। क्षारों की अनुपस्थिति में यह क्रिया स्पष्ट नहीं होती।

बोल (G A Bole) ने १९२२ ई० में कहा कि मिट्टियों में लचीलापन मिट्टीकण के चारों ओर के कलिल पदार्थ की अवशोषित झिल्ली के कारण होता है। मिट्टी के कण ऋण आवेशवाले तथा झिल्ली धन आवेशवाली होती है। जब कोई ऐसा शक्ति-शाली विद्युद्विश्लेष्य (Electrolyte) मिट्टी में मिलाया जाता है जिस पर मिट्टी के कण-जैसा ही आवेश हो तो झिल्ली शक्तिशाली आयन द्वारा अवशोषित कर ली जाती है और मिट्टी के कण छूट जाते हैं। झिल्ली के कण, जो अब तक अवशोषित कलिल झिल्ली से जुड़े हुए थे, समान आवेश होने के कारण एक दूसरे को दूर हटाते हैं। मिट्टी के गाढ़े घोल की स्थानता कम होकर पदार्थ में अधिक तरलता उत्पन्न होगी। जब कलिल

झिल्ली के समान आवेशवाला कोई विद्युद्विश्लेष्य मिलाया जाय तो कलिल झिल्ली को मिट्टी के कणों की ओर ढकेलेगा और इस प्रकार झिल्ली की मोटाई बढ़ जायगी। जब कलिल झिल्ली की मोटाई सर्वाधिक हो तो मिट्टी में अधिकतम लचीलापन रहता है।

विभिन्न कालों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा व्यक्त किये गये विचारों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि मिट्टी का लचीलापन मुख्य दो कारणों से होता है—

- (१) मिट्टीकणों की अति सूक्ष्मता।
- (२) मिट्टीकणों की परतदार आकृति।

मिट्टी के कणों का आकार समझने के लिए यदि हम हाइड्रोजन के एक परमाणु के आकार को इकाई मान ले तो केओलिन के सूक्ष्म कण का आकार दस हजार होगा और बेण्टोनाइट मिट्टियों के बहुत सूक्ष्म कणों का आकार केवल एक हजार होगा। यही कारण है कि बेण्टोनाइट मिट्टियाँ पानी में कई दिनों तक आलम्बन रूप में रहती हैं और श्वेत मिट्टी के कण कुछ ही घण्टों में बैठ जाते हैं। यह सत्य है कि किसी भी मिट्टी में सभी कण एक ही आकार के नहीं होते और बहुत सूक्ष्म कण मिट्टी की कलिल प्रकृति में वृद्धि करते हैं। ये कलिल रंग पदार्थों व घुलनशील लवणों को अवशोषित कर सकते हैं।

बहुत ही सूक्ष्म आकार के कारण साधारण सूक्ष्मदर्शी (या अणुवीक्षण यंत्र) द्वारा मिट्टीकणों के केलासों का अध्ययन नहीं किया जा सकता। परन्तु आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक सूक्ष्मदर्शी द्वारा मिट्टी के सूक्ष्म कणों की परतें स्पष्ट दीख जाती हैं। यह देखा गया है कि केओलिन मिट्टी में केओलीनाइट के साथ दूसरे केलास भी होते हैं। अब तक केओलिन में केवल केओलीनाइट के केलासों की ही उपस्थिति मानी जाती थी। इन भिन्न केलासों के कारण ही केओलिनो के गुण भिन्न होते हैं।

जब मिट्टी के साथ पानी मिलाया जाता है तो यह मिट्टी के कणों के बीच में होकर धीरे-धीरे अन्दर प्रवेश करता है और कणों को गीला करता है। इस गीली अवस्था में चपटे कण एक दूसरे के ऊपर सरलता से गतिमान् हो सकते हैं। दो कणों के बीच में पानी की पतली झिल्ली स्नेहक (लूब्रिकेंट) का काम करती है। कणों की यह सरलतापूर्ण गति उनके चपटे आकार के कारण होती है। यदि मिट्टीकण रेत-कण की भाँति होते तो मिट्टीकण इतनी सरलता से नहीं चल पाते, कारण गोल कण एक दूसरे से बिन्दु स्पर्श की स्थिति में होते हैं। मिट्टी के गीले कणों की यह स्वतन्त्र गति ही मिट्टी के लचीलेपन का कारण है। मिट्टी के कण जितने ही सूक्ष्म होंगे उन्हे

गीला करने के लिए उतने ही अधिक पानी की आवश्यकता होगी और मिट्टी अधिक लचीली होगी ।

जब गीली मिट्टी का पिण्ड सूख जाता है तो चपटे कण ससक्ति-बल के कारण एक दूसरे के निकट आ जाते हैं और एक दूसरे से उसी तरह चिपट जाते हैं जिस तरह दो काँच की चद्दरे एक दूसरे के ऊपर रखने से चिपक जाती हैं । जब सुखाते समय मिट्टी-कण पास आ जाते हैं तो मिट्टी कुछ सिकुड़ जाती है और जब सूखने के पश्चात् कण चिपट जाते हैं तो सूखा पिण्ड पूर्व की अपेक्षा अधिक कठोर हो जाता है । जब मिट्टीकण अति सूक्ष्म होते हैं तो उनमें ससक्ति-बल अधिक होता है और मिट्टी का पिण्ड सुखाने के पश्चात् और भी कठोर हो जाता है, जैसा कि अधिक लचीली मिट्टियों में देखा जाता है । अतः अधिक सूक्ष्म कणवाली मिट्टी कम लचीली मिट्टी की अपेक्षा, लचीलेपन के लिए अधिक पानी लेती है, सूखने पर अधिक सिकुड़ती है और सूखने के पश्चात् अधिक कठोर हो जाती है ।

लचीलेपन का नापना—मिट्टियों के लचीलेपन नापने की समस्या का कोई बहुत सन्तोषजनक हल नहीं निकला है । समय-समय पर बहुत-सी विधियाँ प्रस्तावित की गयी हैं, परन्तु उनमें से अधिक के विरुद्ध कोई-न-कोई आक्षेप उठ चुका है ।

सबसे अधिक प्रयोग में आनेवाली विधि में जो आज भी प्रयोग की जाती है, मिट्टी के लचीलेपन का स्पर्श से अनुमान लगाया जाता है और मिट्टी को अधिक लचीली या अल्प लचीली की श्रेणियों में वर्गीकृत कर देते हैं । एक अनुभवी व्यक्ति यह कार्य काफी सन्तोषजनक ढंग से कर सकता है ।

यन्त्र द्वारा लचीलापन नापने के लिए बिशोफ (Bischof) ने प्रस्ताव रखा कि लचीली मिट्टी को एक चौड़े सिलिण्डर के छिद्र में से दबाव के साथ निकाला जाय जब तक कि इस प्रकार बनी पेन्सिल स्वतः न टूट जाय । मिट्टी की बनी पेन्सिल की लम्बाई टूटते समय जितनी ही अधिक होगी वह मिट्टी उतनी ही अधिक लचीली होगी ।

किसी मिट्टी के अधिकतम लचीलेपन को ज्ञात करने के लिए लान्गेन बैक (Langen beck) और ग्राउण्ट (Grount) ने विकाट की सुई (Vicats needle) के प्रयोग को प्रस्तावित किया है । ग्राउण्ट ने सन् १९०५ ई० में ७ वर्ग सेण्टीमीटर क्षेत्रिज काट की विकाट की सुई को आधे मिनट में ४ सेण्टीमीटर की गहराई तक घुसाने के लिए आवश्यक शक्ति भार द्वारा नापी ।

बी० जोके ने १९०४ ई० में परख बेलन तैयार किया जो ६० मिलीमीटर ऊँचा व ३० मिलीमीटर व्यास का था। उसने ताजा बने बेलनो पर यन्त्र द्वारा इतना बल लगाया कि वे दो भागो में टूट गये। उसने इस विकृति (Deformity) को पदार्थ की तनन क्षमता (Tensile-strength) से गुणा किया और इस गुणनफल का नाम उसने लचीलापन गुणाक रखा। इस विधि के विरुद्ध यह आक्षेप लगाया जाता है कि इसमें परख बेलन की प्रसार-सीमा खींचनेवाले बल की मात्रा तथा लगाने की गति पर निर्भर करती है। खींचनेवाले बल की गति अधिक होने पर बेलन की प्रसार-सीमा बढ़ जाती है।

ऐसले ने १९११ ई० में मिट्टी में उपस्थित कलिल की अवशोषण-शक्ति मालाशाइट ग्रीन (Malachite green) के घोल द्वारा निकाली। यह विलयन ६ ग्राम मालाशाइट को १ लीटर पानी में घोलकर बनाया गया था। उसने सलाह दी थी कि किसी मिट्टी में उपस्थित कलिल की मात्रा उस मिट्टी के लचीलेपन का एक अनुमान है। आलोचको, विशेष कर मेलर (१९२२ ई०) द्वारा इस बात की ओर सकेत किया गया कि मिट्टियों में उपस्थित कलिल भिन्न प्रकार के तथा भिन्न अवशोषण-शक्तिवाले होते हैं। काले रंग की बॉल-मिट्टी में कार्बनिक कलिल की काफी मात्रा होती है जो प्राथमिक केओलिन में उपस्थित कलिल से भिन्न होना चाहिए। मिट्टी में घुलनशील लवणों की उपस्थिति का रंग पदार्थों पर कुछ प्रभाव होना चाहिए।

ऐटरबर्ग (Atterberg) ने सन् १९११ ई० में लचीलापन-अङ्क (Plasticity-number) का प्रस्ताव इस कल्पना के आधार पर रखा कि मिट्टियों का लचीलापन उसी मिट्टी के पानी की उस मात्रा की उस सीमा के अनुसार घटता-बढ़ता है जिस सीमा के अन्दर मिट्टी कार्योंपयोगी रहे। अधिक लचीली मिट्टियों की सीमा अधिक होती है।

ऐटरबर्ग ने पानी की विभिन्न मात्राओं के आधार पर मिट्टी की अवस्थाओं को ५ भागों में बाँटा है, जो इस प्रकार हैं—

(क) तरलता की ऊपरी सीमा या वह अवस्था जब मिट्टी घोला (Clay slip) पानी की तरह बहे।

(ख) तरलता या बहाव की निचली सीमा जब कि मिट्टीपिण्ड के दो भाग उथली तश्तरी में हाथ द्वारा चलाये जाने पर कठिनता से ही साथ-साथ चल सके, जिसको साधारणतः मिट्टी का गारा (Clay-mud) कहा जाता है।

(ग) औसत लचीलापन या वह दशा जिसमें मिट्टी सर्वाधिक कार्योपयोगी होती है और चिपकनी नहीं होती। इस अवस्था में मिट्टी धालुओं पर नहीं चिपकेगी।

(घ) बेलन सीमा। इस अवस्था में मिट्टी को आधार-तल पर हाथ द्वारा रगड़कर उसके तार नहीं बनाये जा सकते। कार्योपयोगी अवस्था की यह निचली सीमा है।

(ङ) वह अवस्था जिसमें गीली मिट्टी के कण दबाव लगाने पर जुड़े बिना नहीं रह सकते।

दूसरी और चौथी अवस्थाओं में पानी की मात्रा निर्धारित की जाती है और अन्तर को मिट्टी के लचीलेपन-अङ्क के रूप में प्रकट करते हैं।

इन पानी की मात्राओं को निर्धारित करने के लिए ५ ग्राम मिट्टी को १२० नम्बर की चलनी में छानकर चूर्ण में बदल देते हैं। इस चूर्ण को पोरसिलेन की तश्तरी में रखकर उसमें इतना पानी डाला जाता है कि मिट्टी लेई या गारे जैसी बन जाय। इसके बाद इसे एक सेण्टीमीटर मोटी परत में फैला देते हैं। एक त्रिभुजाकार भाग इस गारे में से काट लिया जाता है। अब तश्तरी को हाथ से जल्दी-जल्दी थपथपाते हैं। तत्पश्चात् इतनी मिट्टी और डालते हैं कि पिण्ड इतना कड़ा हो जाय कि कठिनता से साथ-साथ बह सके। अब पानी की मात्रा निर्धारित की जाती है। बेलन-सीमा निर्धारित करने के लिए कड़ी अवस्था में मिट्टी कागज पर डोरे बनाने के लिए बेली जाती है। इसके बाद इसमें इतनी मिट्टी और डाली जाती है कि मिट्टी का डोरा चटक जाय। इस समय फिर पानी की मात्रा निर्धारित करते हैं। यह मात्रा बेलन-सीमा बताती है।

इस विधि में व्यक्तिगत कुशलता अधिक निहित है तथा एक ही मिट्टी विभिन्न व्यक्तियों द्वारा परीक्षा करने पर भिन्न अङ्क देती है।

मेयर द्वारा १९२२ ई० में सिरञ्जर व एमरी (Sringer and Emery) विधि का वर्णन किया गया है। इस विधि में लचीली मिट्टी से दो सेण्टीमीटर व्यास की एक गोली बनायी जाती है। इस गोली को एक काँच के तख्ते पर रख ऊपर से एक पिस्टन द्वारा दबाया जाता है। इस पिस्टन की ऊपर-नीचे की गति नापी जा सकती है। पिस्टन को धीरे-धीरे इतना दबाया जाता है कि गोली दबकर चटक जाय।

अब अगर P (पी) गीली मिट्टी का लचीलापन बताये, R (आर) पिस्टन का वह अधिकतम दबाव बताये जिसे गोली सहन कर सकी है और S (एस) विकृति की

वह मात्रा है जो गोली में चटकने से पूर्व आयी थी तो A (ए) और B (बी) को नियताङ्क मानकर यह समीकरण प्राप्त होता है—

$$P = K (R + A) (S + B)$$

यदि एक ही यन्त्र सदैव प्रयोग किया जाय तो K , A तथा B का मान मालूम करना आवश्यक नहीं है और हम निम्नलिखित समीकरण प्रयोग कर सकते हैं—

$$P = R \times S$$

हॉल (Hall) ने इस विधि का विरोध किया है, कारण एक ही मिट्टी से हर बार एक ही परिणाम पाना कठिन होगा क्योंकि पानी की विभिन्न मात्राओं से लचीलापन भिन्न हो जायगा।

क्लिटमोर ने १९३५ ई० में मिट्टियों का लचीलापन नापने की एक नयी विधि निकाली। इस विधि में एक उपकरण द्वारा एक निश्चित भार का पिस्टन प्रयोग किया जाता है। इस पिस्टन के नीचे का भाग अर्द्ध गोले के आकार का होता है। इस पिस्टन को लचीली मिट्टी के पिण्ड पर निश्चित समय तक रखकर पिस्टन की पिण्ड में धँसान नापी जाती है। अपने निरीक्षणों के आधार पर उसने यह सूत्र निकाला—

$$d = a \times t \times p$$

यहाँ d = निश्चित समय में धँसाने की दूरी है।

a तथा t अर्द्धगोले में प्रयुक्त भार, अर्द्धगोले के व्यास तथा मिट्टी के गुणों पर निर्भर है।

p = मिट्टी के लचीलेपन की नाप है।

क्लिटमोर का कहना है कि अर्द्धगोलाकार पिस्टन-भाग को धँसाने में कोई ऐसी बाधा नहीं होती जैसी कि चपटे पिस्टन को धँसाने में होती है। बड़े कण चपटे पिस्टन के किनारों पर धँसाने में बाधा डालते हैं।

मिट्टियों पर विद्युद्विश्लेष्य का प्रभाव—जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, मिट्टियाँ, प्राकृतिक साधनों द्वारा चट्टानों के विच्छेदन से बनी हैं, जिनमें से धुलनशील भाग निकल गया है। इस प्राथमिक मिट्टी पर पानी की निरन्तर अधिककालीन क्रिया से कुछ अधुलनशील भाग कलिल पदार्थ में बदल गया है। अर्थात् कण इतने सूक्ष्म हो गये

है कि पानी में काफी समय तक आलम्बन रूप में रहेंगे और बड़े कणों की भाँति जमकर बैठ नहीं जायेंगे। इस कलिल पदार्थ की किसी मिट्टी में मात्रा, मुख्य रूप से उसके पूर्व इतिहास और पानी के क्रियाकाल पर निर्भर करती है। इंग्लैण्ड में चीनी मिट्टी धोने की पुरानी विधि से (जिसमें मिट्टी पानी के साथ नलों द्वारा मीलों ले जायी जाती है) जर्मनी की शीघ्रतापूर्ण विधि की अपेक्षा अधिक लचीली मिट्टी मिलती है। बॉल-मिट्टियों में, जिन पर अधिक काल तक पानी की क्रिया होती रही थी, चीनी मिट्टी की अपेक्षा अधिक कलिल पदार्थ रहता है। मिट्टी में उपस्थित कलिल पदार्थ कार्बनिक तथा अकार्बनिक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। कलिल घोल तथा वास्तविक घोल की पहचान एक शक्तिशाली प्रकाश-पुंज भेजकर की जाती है। ऐसा करने पर कलिल घोल गँदला दीखेगा और वास्तविक घोल पूर्ण स्वच्छ दीखेगा। कलिल पदार्थ अल्ट्रा फिल्ट-रेशन द्वारा अलग किये जा सकते हैं। इसके लिए कलिल जिलेटिन या जानवर की झिल्ली का प्रयोग किया जाता है।

जब अम्ल, किसी धातु का अम्लीय लवण या साधारण नमक, किसी कलिल घोल में डाले जाते हैं तो सूक्ष्म कण स्कंदित (Coagulate) हो जाते हैं और कलिल जेल बनकर नीचे बैठ जाते हैं। इस परिवर्तन को कलिल का ऊर्णन (Flocculation or Agglomeration) कहते हैं। जब अमोनिया या क्षारों के हाइड्रोक्साइड, कार्बोनेट, सिलिकेट या बोरेट को थोड़ी मात्रा में कलिल जेल में डाल दिया जाता है तो इसकी उलटी क्रिया होती है अर्थात् जेल घुलकर कलिल घोल बन जाती है। कलिल जेल से कलिल घोल बनने की क्रिया को विह्वनन (Deflocculation or peptization) कहते हैं। इस कार्य में प्रयुक्त होनेवाले रासायनिकों को विद्युद्विश्लेष्य कहा जाता है।

जो लवण अम्लीय (H^+) या भास्मिक (OH^-) आयनों में विच्छेदित हो जाते हैं ऊर्णन या विह्वनन का कारण बन सकते हैं। अमोनियम क्लोराइड, मैगनीशियम सल्फेट और बोरेक्स को जब काँच कलई में विद्युद्विश्लेष्य की तरह प्रयोग किया जाता है तो ये ऊर्णन करके काँच कलई के बैठने में सहायता करते हैं।

जब मिट्टी शुद्ध पानी में आलम्बित की जाती है तो यह साधारण सूचको से कोई क्रिया नहीं करती, परन्तु जब थोड़ी-सी मात्रा में क्षार डाल दिया जाता है तो इससे मिट्टी के कणों का आकीर्णन (Dispersion) बढ़ जाता है। मिट्टी-पानी आलम्बन

की श्यानता कम हो जाती है। इस क्रिया की व्याख्या इस सिद्धान्त द्वारा की जाती है कि ऋण (-) आवेशवाले मिट्टी कण समान आवेशवाले (OH^-) हाइड्रॉक्साइल आयन द्वारा दूर हटाये जाते हैं। यह OH^- आयन माध्यम का आकीर्णन बढ़ा देता है या मिट्टी कणों का विहनन उत्पन्न करता है। यह आकीर्णन क्षार की एक निश्चित मात्रा तक बढ़ता ही जाता है, पर उससे अधिक क्षार होने पर आकीर्णन कम हो जाता है या दूसरे शब्दों में मिट्टी का ऊर्णन प्रारम्भ हो जाता है। हॉल ने १९२३ ई० में पता लगाया कि विभिन्न मिट्टियों का अधिकतम विहनन बिन्दु पी० एच (PH) ११ और १२ के बीच होता है।

जब ढलाई में प्रयोग होनेवाले मिट्टी-घोले को कुछ समय तक रखने की आवश्यकता हो तो अनुभव से यह पता चला है कि यदि मिट्टी-घोला बनाते समय अधिक विहनन के लिए आवश्यक क्षार प्रयोग किया गया है तो ऊर्णन की प्रवृत्ति पायी जाती है, परन्तु यदि इससे अधिक क्षार का प्रयोग किया जाय तो ऊर्णन नहीं होता। इस तथ्य की व्याख्या इस सिद्धान्त द्वारा की जाती है कि क्षार का कुछ भाग मिट्टी-कणों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है तथा ये मिट्टी-कण पानी और क्षार की अधिककालीन क्रिया से और अधिक छोटे भागों में टूट जाते हैं। विद्युद्विश्लेष्य का भी कुछ भाग मिट्टी में उपस्थित घुलनशील लवणों (विशेष कर सल्फेट) से रासायनिक क्रिया करके खर्च हो सकता है।

जब मिट्टी-घोले में कोई अम्ल या धातु का अम्लीय लवण डाला जाता है तो उलटी क्रिया होती है। मिट्टी के सूक्ष्म कण आपस में स्कन्दित हो जाते हैं और अपने बीच काफी पानी डकट्टा कर लेते हैं। इससे मिट्टी की श्यानता तथा लचीलापन बढ़ जाता है। एक सीमा तक पहुँचने पर मिट्टी के कण जमकर शीघ्रता से बैठने प्रारम्भ हो जाते हैं। हॉल ने पता लगाया कि बहुत-सी मिट्टियों की जमकर बैठने की अधिकतम गति २.७ से ४ पी एच (PH) तक होती है। इन सीमाओं में इतना बड़ा अन्तर विभिन्न मिट्टियों में उपस्थित कलिल की अधिक विभिन्न प्रकृतियों के कारण होता है। अम्ल डालकर मिट्टियों का लचीलापन बढ़ाने के सिद्धान्त का उपयोग विशेष कर पोरसिलेन उद्योग में अल्प लचीली मिट्टियों की कार्योपयोगिता बढ़ाने के लिए किया जाता है।

रक्षक कलिल—जिलेटिन, गोद, टैनिन या डैक्सट्रिन जैसे पदार्थ जब मिट्टी आलम्बन में डाले जाते हैं तो ये यौगिक सरलतापूर्वक पानी से आकीर्णित हो जाते हैं तथा मिट्टी कणों के चारों ओर इन कलिल पदार्थों की एक परत चढ़ जाती है जिसके

कारण अम्ल या अम्लीय लवणों की क्रिया अब मिट्टी में उपस्थित कलिल पर आगे नहीं होती। अतः इन पदार्थों को 'रक्षक कलिल' कहते हैं। रक्षक कलिल मिट्टी घोले का विहनन भले ही न कर सके पर ये दूसरे अम्लीय प्रकृतिवाले पदार्थों द्वारा घोले का ऊर्णन या जमकर नीचे बैठना रोक देते हैं। जो मिट्टी-घोला अधिक समय तक छोड़ देने पर स्कदित हो जाता है, वह टैनिक या गैलिक ऐसिड मिलाने पर स्कदित नहीं होगा। अतः ये पदार्थ रक्षक कलिल पदार्थ के रूप में प्रयोग किये जाते हैं।

कलिल की इन विशेषताओं का मिट्टियों के शुद्ध करने में तथा ढलाई के लिए मिट्टी घोला तैयार करने में उपयोग किया जाता है। मिट्टी का ढलाई-घोला बनाने में थोड़ी-सी विद्युद्विश्लेष्य की मात्रा डालकर उसे पतला कर लिया जाता है। ठीक प्रकार से बने ढलाई-घोले में इतना कम पानी लगता है कि बिना विद्युद्विश्लेष्य के इतने कम पानी में केवल कड़ी कीचड़ ही बनेगी। किसी विशेष मिट्टी में प्रयोग किये जानेवाले विद्युद्विश्लेष्य का प्रकार और उसकी मात्रा वास्तविक प्रयोग द्वारा निश्चित की जाती है। मिट्टी में घुलनशील लवणों की उपस्थिति इस प्रकार मिट्टी-घोला बनाने में बाधा डालती है।

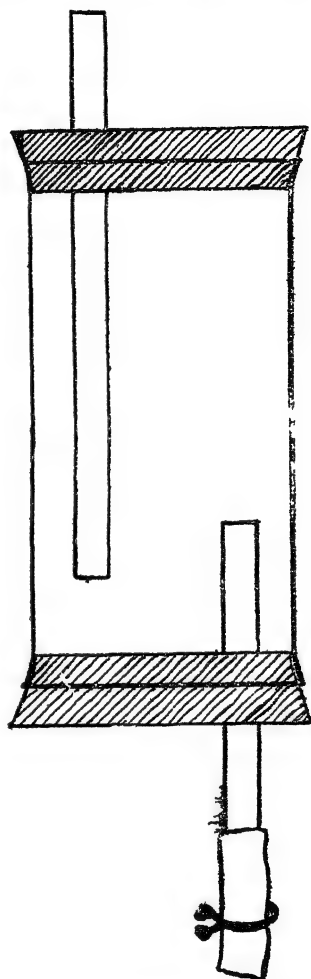
विद्युद्विश्लेष्य का निर्धारण—किसी मिट्टी या मिट्टियों के मिश्रण से ढलाई मिट्टी-घोला तैयार करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोग द्वारा उस विद्युद्विश्लेष्य का प्रकार व उसकी ठीक मात्रा निर्धारित की जाय जो मिट्टी-घोले को अधिकतम तरलता या बहाव प्रदान कर सके। उत्पन्न बहाव का परिमाण मिट्टी के श्यानता-परिवर्तन पर निर्भर करता है। मिट्टी की श्यानता नापने के लिए बहुत से उपकरण व बहुत-सी विधियाँ प्रस्तावित की गयी हैं। कार्य में सरलतम तथा सरलता से प्राप्त होनेवाले उपकरण का वर्णन यहाँ दिया गया है।

इस उपकरण में एक फुट लम्बी १ ५ इंच चौड़ी काँच की नली के दोनों सिरों पर कार्क लगा रहता है। ऊपर के कार्क में $\frac{1}{8}$ इंच व्यासवाली एक कम चौड़ी काँच की नली लगी रहती है और नीचे के कार्क में एक ऐसी ही कम चौड़ी नली लगी रहती है। निचली कम चौड़ी नली के नीचे के सिरे पर एक रबड़ नली जुड़ी रहती है। खड़ी नली के निचले सिरे पर एक चिमटी (Pinch-cock) लगी रहती है।

परीक्षण के लिए मिट्टी में पहले लगभग ६० प्रतिशत पानी मिलाकर उसे गाढ़े घोले के रूप में परिवर्तित कर लिया जाता है। उसके पश्चात् विद्युद्विश्लेष्य की बहुत

थोड़ी मात्रा (०.०५ प्रतिशत) घोले में डालकर कुछ समय तक अच्छी तरह मिलाया जाता है। अब घोल कुछ पतला ज्ञात होता है। यह पतला घोल श्यानतामापक (Viscometer) में भर दिया जाता है और नीचे की नली से चिमटी खोलकर बहने दिया जाता है। चौड़ी नली के पार्श्व में लगे दो चिह्नों के बीच बहाव का समय ज्ञात कर लिया जाता है। उसके बाद घोल में और अधिक विद्युद्विश्लेष्य मिलाकर बहाव का समय पूर्ववत् ज्ञात कर लिया जाता है। इस प्रकार प्रयोग कई बार दुहराया जाता है। अधिक विद्युद्विश्लेष्य डालने से बहाव समय कम होते-होते न्यूनतम होकर फिर बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है।

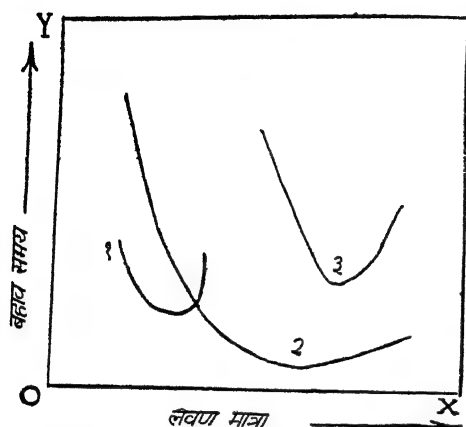
विहननकरण में सोडियम कार्बोनेट व सोडियम सिलिकेट के विशेष अन्तर का समय-समय पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अध्ययन किया गया है तथा उसका वर्णन भी किया गया है। साधारण श्वेत मृत्पात्रों तथा पोरसिलेन के पात्रों को बनाने के लिए मिट्टी-घोला बनाने में सोडियम सिलिकेट अधिक तरलता उत्पन्न करता है और सोडियम कार्बोनेट की अपेक्षा कम Na_2O की मात्रा से ही करता है। यदि सिलिकेट में सिलिका का अनुपात अधिक हुआ तो घोल पुनः शीघ्रता से जम जाता है। वेब (Web) को १९३४ ई० में विश्वास था कि अधिकतम तरलता उत्पन्न करनेवाले सिलिकेटों का सगठन $\text{Na}_2\text{O} \ 2.3$ to $2.5 \ \text{SiO}_2$ होता है।



चित्र ५ मिट्टी-घोले के लिए श्यानतामापक (विस्कोमीटर)

व्यवहार में सोडियम कार्बोनेट, सोडियम सिलिकेट और कास्टिक सोडा का,

प्रयोग मिट्टी का ढलाई घोला बनाने में अधिक होता है। उनके गुणों में अलग-अलग अन्तर चित्र ६ के रेखाचित्रों से देखा जा सकता है।



(१) कास्टिक सोडा।

(२) सोडा कार्बोनेट।

(३) सोडा सिलीकेट।

जब सोडा कार्बोनेट मिट्टी के गाढ़े घोल में मिलाया जाता है तो इस लवण की बहुत थोड़ी-सी मात्रा के मिलाने से ही घोला पतला हो जाता है, परन्तु बाद में किसी सीमा तक

चित्र ६ विभिन्न विद्युद्विश्लेष्यों का प्रभाव

और अधिक मात्रा बढ़ाने से घोल और अधिक पतला नहीं होता। यह दशा उसी लवण के दो-चार बार और मिलाने पर भी रहती है तथा उसके पश्चात् जैसा कि रेखाचित्र २ में दिखाया गया है, घोला फिर गाढ़ा होना प्रारम्भ हो जाता है।

कास्टिक सोडा का प्रभाव सोडा कार्बोनेट के प्रभाव से बिल्कुल भिन्न है। कास्टिक सोडा की बहुत थोड़ी-सी मात्रा गाढ़े घोल को काफी तरल बना देती है और मिट्टी की स्थिर अवस्था भी अल्प काल तक ही रहती है। उसके बाद पतला घोला बहुत शीघ्रता से गाढ़ा होना प्रारम्भ कर देता है, जैसा कि रेखाचित्र १ में इन सब दशाओं को स्पष्ट दिखाया गया है।

रेखाचित्र ३ मिट्टी के गाढ़े घोलों पर केवल अकेले सोडा सिलीकेट का प्रभाव दिखाता है। यह सोडा कार्बोनेट की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से तरलता उत्पन्न करता है, परन्तु उतनी शीघ्रता से नहीं जितनी कि कास्टिक सोडा से होती है। घोल का स्थिर काल भी कास्टिक सोडा की भाँति कम है, पर लवण की अधिकता घोल को कास्टिक सोडा की अपेक्षा धीरे-धीरे, परन्तु सोडा कार्बोनेट की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से गाढ़ा कर देती है।

अम्ल प्रभाव (Souring)—गीली मिट्टी का लचीलापन बढ़ाने के लिए

इसे नम व ठंडी जगह में कुछ दिनों तक रखा जाता है जिससे उस पर प्राकृतिक प्रभाव हो सके। इस विधि की सम्भावित क्रिया में कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन से तनु अम्ल घोल बनते हैं। ये अम्ल मिट्टी के सूक्ष्म कणों का ऊर्ध्वन करके लचीलेपन को बढ़ाने की प्रवृत्ति रखते हैं। यदि मिट्टी में क्षारों की मात्रा अधिक हुई तो इस विधि द्वारा मिट्टी के लचीलेपन में वृद्धि सीमित या समाप्त हो सकती है। सैगर ने प्रस्ताव रखा कि यदि किसी मिट्टी में क्षारों की मात्रा अधिक हो तो थोड़ी मात्रा में पुराना सिरका (Vinegar) या तनु ऐसेटिक एसिड मिला देना चाहिए। इससे मिट्टी-कणों पर अम्ल-क्रिया अच्छी तरह होती है। कारण मिट्टी के क्षार सिरका से उदासीन हो जाते हैं।

रोहलैण्ड ने नियम निकाला कि अम्ल-क्रिया ठंडे वातावरण में होनी चाहिए, कारण मूलरूप से यह एक कलिल क्रिया है, परन्तु स्पूरियर (H Spurrier) और वाट्स (A S Watts) का विचार है कि अम्ल-क्रिया के समय 20° - 25° फारेन हाइट तापक्रम को प्राथमिकता देनी चाहिए। पुराने कुम्हारों का विचार है कि जल-निष्कासन यन्त्र द्वारा छानी गयी और सुरग भट्ठी द्वारा शीघ्रता से सुखायी गयी मिट्टी का लचीलापन कम होता है, परन्तु सुखानेवाले कड़ाहों में धीमी आँच से सुखायी गयी मिट्टी का लचीलापन अधिक होता है।

ग्लिक और बेकर (Glick and Baker) के प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि इस विधि द्वारा मिट्टी का लचीलापन बढ़ाने में जीवाणु महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। एक मिट्टी का मिश्रण लिया गया जिसमें प्रारम्भ में कई प्रकार के जीवाणु थे। कुछ मास के पश्चात् देखा गया कि उसमें जीवाणु कम प्रकार के रह गये हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी है तथा मोल्ड और ईस्ट (Yeast) की अनुपस्थिति भी पायी गयी। इन अन्वेषकों के अनुसार जीवित जीवाणुओं के विकास का सर्वोत्तम तापक्रम 45° फ है और यह पता लगा था कि लगभग एक मास तक लचीलेपन में क्रमशः विकास होता है, उसके बाद लचीलेपन का विकास घट जाता है।

मिट्टियों का लचीलापन, कलिल जेल, एल्यूमिना, गरम स्टार्च, डैक्सट्रिन, जिलेटिन, ग्लाइकोजन या दूसरे एन्जाइमो (Enzymes) और टैनिन मिलाने से बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार का कृत्रिम या तथाकथित लचीलापन प्राकृतिक लचीलेपन से बिल्कुल भिन्न है। प्राकृतिक लचीलेपन में थोड़ी-सी वृद्धि पीसने तथा पानी के साथ

काफी समय तक गूंधने से हो जाती है। पानी के गूंधने से मिट्टी-पदार्थों में जल-विश्लेषण हो जाता है।

प्राकृतिक प्रभाव (Weathering)—इस विधि में मिट्टी पर वातावरण अर्थात् सूर्य, वर्षा, पाला, बर्फ और हवा आदि की क्रिया होने दी जाती है। बारी-बारी से गरम व ठंडे होने से मिट्टी कण सूक्ष्म कणों में टूट जाते हैं और पानी की निरन्तर अधिककालीन क्रिया से जल विश्लेषित होकर अधिक कलिल पदार्थ बनाते हैं, और इस प्रकार मिट्टी का लचीलापन बढ़ जाता है। प्राकृतिक क्रियाएँ मिट्टी में अपद्रव्यों को भी कम करती हैं। मिट्टी में उपस्थित अधुलनशील लौह-लवण, पानी और हवा की क्रिया द्वारा घुलनशील हो जाते हैं। वर्षा द्वारा ये घुलनशील लवण घुलकर निकल जाते हैं और मिट्टी अधिक तापसह तथा समाग्न हो जाती है। एक अग्नि-मिट्टी के प्राकृतिक क्रियाओं से पूर्व और पश्चात् के निम्नलिखित आपेक्षिक अध्ययन से प्राकृतिक क्रियाओं का प्रभाव स्पष्ट हो जायगा।

	प्राकृतिक क्रियाओं के	
	पूर्व	पश्चात्
सिलिका	६४ ६२	६४ ७
एल्यूमिना	२१ ६५	२२ ९
फेरिक आक्साइड	१ ४८	१ ३
कैल्शियम आक्साइड	१ ९८	१ ०
क्षार	१ ६२	० ७
हानि	८ ५२	९ ५
योग	९९ ८७	१०० १

जिन मिट्टियों में प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा अपद्रव्य विशेष मात्रा में कम नहीं होते उन मिट्टियों में भी अपद्रव्यों के हानिकर प्रभाव काफी कम हो जाते हैं। लौह तथा दूसरे अपद्रव्य इस क्रिया से बहुत ही सूक्ष्म कणों में विभाजित हो जाते हैं और पूरे पिण्ड में समान रूप से फैल जाते हैं। इसको पकाने पर इनकी उपस्थिति से कोई हानि नहीं होती।

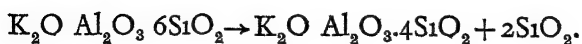
फेल्सपार—फेल्सपार कुछ खनिजों के वर्ग का नाम है। ये खनिज चट्टानों के महत्वपूर्ण अवयव होते हैं। आग्नेय चट्टानों में उपस्थित लगभग ६० प्रतिशत खनिज फेल्सपार होते हैं। इनका साधारणतया मान्य सूत्र $RO \cdot Al_2O_3 \cdot 6SiO_2$ है,

जिसमें R_2O पोटाश, सोडा या चूना जैसे भास्मिक आक्साइड को प्रदर्शित करता है। साधारणतया एक अच्छे फेल्सपार का संगठन इस प्रकार होता है—सिलिका ६५%, एल्यूमिना १८% और पोटैशियम आक्साइड १६.५%। श्वेत मृत्पात्र बनाने के लिए प्रयोग किये जानेवाले फेल्सपार में लौह आक्साइड ०.५% से अधिक नहीं होना चाहिए।

विभिन्न प्रकार के फेल्सपार एक दूसरे से पूर्ण रूपेण अलग-अलग नहीं किये (पहचाने) जा सकते। एक प्रकार का फेल्सपार दूसरे प्रकार के फेल्सपार में धीरे-धीरे बदला करता है। इस प्रकार सोडा फेल्सपार या अल्बाइट (Albite) सोडा से पोटाश में बदलता है। इस परिवर्तन में आपेक्षिक घनत्व २.५ से २.६ तक बदलता है। ऑर्थोक्लेज (orthoclase) फेल्सपार का आपेक्षिक घनत्व प्रायः २.५ होता है। ऑर्थोक्लेज फेल्सपार का मुख्य प्रकार है जिसका मृद-उद्योग में प्रायः प्रयोग किया जाता है।

शुद्ध क्षार फेल्सपार पारदर्शक व रंगहीन होते हैं। पारदर्शक फेल्सपार को चन्द्र-कान्त मणि (Moon-Stone) कहा जाता है और हीरे के रूप में उसका प्रयोग होता है। बहुत से फेल्सपारों का रंग उनमें सूक्ष्मकणीय पदार्थों की उपस्थिति से होता है। ये कण वर्णक (Pigment) की तरह काम करते हैं। कुछ फेल्सपार कणों की अपारदर्शकता बहुत से रंगहीन पदार्थों के समुदाय की उपस्थिति से होती है। पीली, गुलाबी व लाल रंग की आभाए फेरिक आक्साइड की उपस्थिति से आ सकती हैं यद्यपि निस्तापन के पश्चात् स्कैण्डेनेविया के लाल फेल्सपार में वही के सफेद फेल्सपार की अपेक्षा अधिक श्वेत आभा होती है। गुलाबी फेल्सपार में एक ही आभा रहती है। चूना फेल्सपार या ऐनोर्थाइट (Anorthite) में गहरे भूरे रंग का फेल्सपार अधिक मिलता है।

ऑर्थोक्लेज का एक निश्चित गलनाङ्क नहीं होता। यह प्रायः बढ़ते हुए तापक्रम के साथ-साथ धीरे-धीरे गलता है। यदि महीन चूर्ण के रूप में हो तो अपेक्षाकृत कम तापक्रम पर व सरलतापूर्वक गलता है। फेल्सपार के गलनाङ्क ११३०° से १२००° से ० तक हैं। ११७०° से ० पर निस्तापन करने से फेल्सपार कुछ फैलता है। अतः आपेक्षिक घनत्व भी कुछ कम हो जाता है। कारण कुछ ऑर्थोक्लेज लूसाइट (Lucite) में बदल जाता है।



पिघला हुआ फेल्सपार दूधिया श्वेत रंग का मालूम होता है। अल्बाइट के चूर्ण को भिगोने पर यह लाल लिटमस को नीला कर देता है, कारण पानी द्वारा खनिज का

जल-विश्लेषण होकर आल्कली सिलीकेट बनता है। जब और्थोक्लेज को पानी के साथ महीन पीसा जाता है तो अमोनियम लवण, चूना या जिप्सम-जैसे पदार्थों के मिलाने से पानी में घुलित क्षार की मात्रा बढ़ जाती है। फेल्सपार पर प्राकृतिक प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ते हैं तथा इस क्रिया में सर्वसाधारण अन्तिम उत्पादन स्फटिक और केओलिन हैं, परन्तु दूसरे जलयोजित एल्यूमिनियम सिलीकेट भी बनते हैं।

सैगर के अनुसार पोरसिलेन पकाते समय फेल्सपार में भास्मिक गुण रहते हैं और इस तापक्रम पर क्षारों के साथ अति सतृप्तीकरण दिखाते हैं। यदि पिण्ड में स्फटिक न हो तो यह क्षार मिट्टी से क्रिया करके न तो काँचीय पदार्थ ही बनाते हैं और न चमक ही उत्पन्न करते हैं, परन्तु यदि स्फटिक हो तो यह स्फटिक क्षार से क्रिया करता है और पोरसिलेन की काँचीय और चिकने होने की विशेषता प्रकट होती है।

कुछ और्थोक्लेज फेल्सपार के विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं—

और्थोक्लेज का प्रकार	सिलीका	एल्यू-मिना	लोह आक्सा-इड	चूना	मैगनी-शिया	क्षार	हानि
१ नार्वे का	६४ ७०	२० २२	० ०८	नाममात्र	शून्य	१४ ७८	० ७८
२ स्वीडन का	६५ ८५	१९ ३२	० २४	० ५६	० ०८	१४ १०	० ७०
३ जर्मन (Bayern)	६४ १०	२१ ४६	० ३४	० ४४	० १२	१३ ०५	० ६६
४ भारतीय (अ) अलवर	६८ ९६	१८ २६	० १८	० ५५	० ५०	११ ५८	० ५०
(आ) अजमेर	६४ २०	२१ ३३	० ०५	० १४	० ०६	१३ ६१	० ६०
(इ) बगलोर (अर्जुनावेथ)	६५ ६१	१८ १२	० ०८	० २९	नाममा	१६ १२	० ०८
(ई) रामगढ़ (बिहार)	६५ ४४	१९ ८४	० ०३	० ८५	० १४	१३ ८५	० ३०
(उ) गया (गुर्पा)	६३ ८३	२१ ११	० ०८	० २१	० ०७	१३ २५	० २८

चीनी पत्थर—यह पत्थर आशिक विच्छेदित ग्रेनाइट चट्टान होती है जो प्रायः ताजे व आशिक केओलीनीकृत स्फटिक और फेल्सपार की बनी होती है। रासायनिक संगठन में पेग्मेटाइट (Pegmatite) चट्टान की भाँति होती है और फेल्सपार के स्थान पर प्रयुक्त की जाती है। इस पदार्थ का इंग्लैण्ड में बहुत प्रयोग होता है और विशेष कर एक स्थानीय प्रकार के, कार्नवाल के निकट अधिक पाये जानेवाले पत्थर का अधिक उपयोग किया जाता है। इसे कार्निश स्टोन कहते हैं। यह एक पीली साधारण आकार के कणोवाली ग्रेनाइट चट्टान है जिसमें फेल्सपार इतनी

काफी केओलीनीकृत अवस्था में मिलता है कि यह टूटने पर चूर्ण हो जाती है। चीनी पत्थर और चीनी मिट्टी की आशिक केओलीनीकृत चट्टान में कोई स्पष्ट विभाजन-रेखा नहीं है। कभी-कभी तो ये दोनों एक दूसरे के पास एक ही खान में से खोदकर निकाले जाते हैं।

चीनी पत्थर इतना कठोर होता है कि चीनी मिट्टी की चट्टान की भाँति सरलता से तोड़ा नहीं जा सकता। इसे साधारण ग्रेनाइट चट्टान की भाँति ही बारूद की सहायता से तोड़कर, खोदकर निकाला जाता है।

चीनी पत्थर कई प्रकार का होता है, परन्तु जिसकी कुम्हारों द्वारा अधिक माँग है वह कठोर तथा हल्के बैंगनी रंग का होता है। यह बैंगनी रंग, बैंगनी फ्लोरस्पर (Fluorspar) की उपस्थिति से होता है।

यह पत्थर बड़े-बड़े लकड़ी के हौजों में पानी के साथ पीसा जाता है। इन हौजों का फर्श कठोर पत्थर से बनाया जाता है जो सरलतापूर्वक स्वयं न रगड़ा जा सके। पीसने के लिए एक भारी पत्थर का टुकड़ा हौज में चक्की की भाँति यन्त्र-द्वारा घुमाया जाता है। इस घूमनेवाले पत्थर तथा फर्श के पत्थर के बीच चीनी पत्थरों के टुकड़े रगड़ने से पिसकर महीन चूर्ण हो जाते हैं और पानी के साथ घोला बन जाते हैं। घोला अवस्था में ही प्रायः इन्हें कुम्हारों को बेचा जाता है। घोला अवस्था में चीनी पत्थर फेल्सपार के घोल की अपेक्षा अधिक चिपचिपा होता है।

चीनी पत्थर का आपेक्षिक घनत्व लगभग २.६ है और यह लगभग १२००° से० पर पिघलकर काँच जैसा पिण्ड हो जाता है।

चीनी पत्थर के कुछ विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं।

पत्थर प्रकार	सिलिका	एल्यू-मिना	लौह आक्सा-इड	चूना	मैगनी-शिया	क्षार	हानि
इंग्लैण्ड का (कठोर बैंगनी)	७०.३१	१६.७५	१.५०	१.३०	०.०८	७.३१	२.५८
अमेरिका का (Texas)	६८.८८	१६.७७	०.८३	०.९९	०.१७	६.७७	५.७९
फ्रांस का (Limoges)	७६.११	१४.६१	०.६६	१.४४	०.४२	६.०२	१.२३
चीन का (Pe-tun-se)	७५.९०	१३.९०	०.७०	०.४०	नाममात्र	५.१७	२.७०
जर्मनी का पैगमेटाइट	८२.४९	११.०५	०.४१	०.०५	नाममात्र	४.१७	१.८८

स्फटिक और चकमक पत्थर (Quartz & Flints)—यह प्रकृति में बहु-तायत से मिलनेवाले सिलीका के विभिन्न रूप हैं। सिलीका के ये रूप मुख्य तीन भागों में रखे जा सकते हैं—(१) केलासीय, (२) जलयोजित, (३) अकेलासीय। केलासीय सिलीका के तीन रूप हैं—स्फटिक, ट्राइडाइमाइट (Tridymite) तथा क्रस्टो-बेलाइट। ये तीनों केलासीय रूप भौतिक गुणों में एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं, परन्तु सबका एक ही रासायनिक संगठन SiO_2 होता है। शुद्ध होने पर स्फटिक बिल्कुल रंगहीन तथा पारदर्शक होता है और प्रकाश विज्ञान में काम आता है। यह क्रिस्टल (Crystal) कहलाता है। हिन्दी में क्रिस्टल को बिल्लौर कहा जाता है और रत्नपत्थर के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है, परन्तु यह कभी-कभी ही पूर्णरूपेण शुद्ध अवस्था में पाया जाता है। प्रायः थोड़ी मात्रा में अपद्रव्य रहते हैं जो क्रिस्टल को रंग प्रदान करते हैं या अपारदर्शक बना देते हैं। इसका आपेक्षिक घनत्व २.६५ होता है।

लगभग 470° से 0° पर गरम करने से स्फटिक क्रिस्टल दूसरे रूप ट्राइडाइमाइट में बदल जाता है। ऐसा करने में इसका आयतन १६ प्रतिशत बढ़ जाता है तथा आपेक्षिक घनत्व कम होकर २.२७ हो जाता है और आगे 1470° से 0° तक गरम करने पर आपेक्षिक घनत्व बढ़कर २.३४ हो जाता है तथा आयतन लगभग २ प्रतिशत और कम हो जाता है। इस रूप को क्रस्टोबेलाइट कहते हैं। 1720° से 0° तक गरम करने से यह क्रस्टोबेलाइट २.२१ आपेक्षिक घनत्ववाले सिलीका काँच में बदल जाता है और आयतन में लगभग २० प्रतिशत वृद्धि हो जाती है। इन विभिन्न अवस्थाओं में अणु गति बहुत कम होती है और प्रायः साधारण तापक्रम पर अधिक समय तक दो भिन्न अवस्थाएँ साथ-साथ रखी जा सकती हैं, यद्यपि प्रवृत्ति स्थायी रूप में बदलने की पायी जाती है।

दूधिया पत्थर या उपल (Opal) अकेलास तथा जलयोजित सिलीका है जिसमें लगभग १२ प्रतिशत तक पानी रहता है। इसके कुछ चुने हुए नमूने रत्न-पत्थर के रूप में काफी अच्छे समझे जाते हैं। कारण यह साधारण प्रकाश के सातों रंगों को अवर्णनीय चमक की पूर्ण उज्ज्वल आभा में प्रतिबिम्बित करता है।

चकमक पत्थर, चर्ट (Chert) तथा चैलसीडोनी (Chalcedony) में न्यूनाधिक अकेलास सिलीका होती है। कुछ केलासीय सिलीका भी इतनी थोड़ी मात्रा में मिली रहती है कि उसका पता लगाना कठिन होता है। अतः यह खनिज केवल

अकेलास सिलीका ही समझे जाते हैं परन्तु अब इन्हें सूक्ष्म-केलास कणमय (Crypto crystalline) माना जाता है।

चकमक पत्थर प्रकृति में भूरे या काले रंगों के छोटे टुकड़ों या पिण्डों के रूप में मिलते हैं। ये नाभिक (nucleus) पदार्थों के चारों ओर सिलीका के धीरे-धीरे अवक्षेपण से बने समझे जाते हैं। इनमें कभी-कभी सूक्ष्म मात्रा में समुद्री मछलियों, स्पंज या दूसरे समुद्री जीवाणुओं की उपस्थिति पायी जाती है। इनमें प्रायः ९५ प्रतिशत सिलीका होती है। मुख्य अपद्रव्य खडिया और कार्बनिक पदार्थ होते हैं। चकमक पत्थर का आपेक्षिक घनत्व लगभग २.६ होता है, यह लगभग १७२०° से० पर पिघलता है। गरम करने पर आपेक्षिक घनत्व कम होता है और स्फटिक की अपेक्षा प्रसार अधिक होता है। मृद्-उद्योग में काम आनेवाले निस्तापित चकमक पत्थर का आपेक्षिक घनत्व २.३ से २.४ तक होता है। निस्तापित करते समय भूरे रंग का चकमक पत्थर काले की अपेक्षा जल्दी चूर्ण हो जाता है, कारण भूरे में प्रसार की गति अधिक होती है। चकमक पत्थर में रंग प्रदान करनेवाले पदार्थ नाइट्रोजनयुक्त हाइड्रोकार्बन होते हैं जो ताप द्वारा सरलता से विच्छेदित हो जाते हैं।

स्फटिक और चकमक पत्थर को १३००° से० पर गरम करने से विभिन्न प्रभाव होते हैं। एक में दूसरे की अपेक्षा प्रसार अधिक शीघ्रता से होता है तथा उसी हिसाब से आ० घनत्व कम होता जाता है। गरम करने पर चकमक में परिवर्तन बहुत शीघ्र होता है जब कि स्फटिक में यह परिवर्तन अपेक्षाकृत धीमी गति से होता है। १७००° से० पर ३ घण्टे गरम करने से लगभग ६५ प्रतिशत स्फटिक कम घने रूप में बदल जाता है जब कि केवल १४००° से० पर तीन घण्टे गरम करने से लगभग पूरा चकमक पत्थर कम घने रूप में बदल जायगा। गरम करने पर चकमक पत्थर की केवल प्रसार गति ही स्फटिक की अपेक्षा बहुत अधिक नहीं होती, वरन् उसका आपेक्षिक घनत्व भी स्फटिक की अपेक्षा बहुत अधिक कम हो जाता है। रीक और एण्डाल (Endall) ने १९१३ ई० में दिखाया कि चकमक पत्थर का आपेक्षिक घनत्व कठोर पोरसिलेन भट्ठी में एक बार पकाने के पश्चात् २.२३ हो जाता है, जब कि स्फटिक का इसी भट्ठी में १० बार पकाने पर २.३३ होता है। अतः यह आशा नहीं करनी चाहिए कि मिट्टी के पात्रों में पकाने के पश्चात् स्फटिक तथा चकमक का समान व्यवहार होगा।

उच्च तापक्रम पर पकाया गया चकमक पत्थर कम तापक्रम पर पकाये गये चकमक

पत्थर की अपेक्षा अधिक क्रियाशील होता है। बिना पकाये गये चकमक या स्फटिक तथा मिट्टी के मिश्रण से बने पात्रों पर चिकन-प्रलेप सरलता से नहीं होता परन्तु उच्च तापक्रम पर पकाये गये चकमक या स्फटिक तथा मिट्टी के मिश्रण से बने पात्रों पर चिकन-प्रलेप सरलता से हो जाता है। जो सिलीका निस्तापित न की गयी हो वह दूसरे पदार्थों से कम शीघ्रता से संयोग करती है। अतः यदि उच्च तापक्रम पर पात्र न पकाये जायें तो कठिनाई हो सकती है। यूरोपीय देशों के कुम्हार बिना पकायी गयी रेत का प्रयोग करते हैं, इसीलिए अपने पात्रों को इंग्लैण्ड के कुम्हारों के पात्रों की अपेक्षा वे उच्च तापक्रम पर पकाते हैं। कारण इंग्लैण्ड के कुम्हार सदैव निस्तापित चकमक का प्रयोग करते हैं।

पीसे हुए पदार्थ पर पीसने की विधि का भी कुछ प्रभाव पड़ता है। सूखे पीसे चकमक में गीले पीसे चकमक की अपेक्षा अति सूक्ष्म कण कम मात्रा में रहते हैं। चकमक और स्फटिक दोनों के कणों की सूक्ष्मता का मिट्टी के पात्रों पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ता है। सिलीका के कणों की सूक्ष्मता फेल्सपार के कणों की सूक्ष्मता की अपेक्षा पकाने के तापक्रम को कम करने में अधिक प्रभाव डालती है। चकमक व स्फटिक के कणों की सूक्ष्मता में वृद्धि उनके आयतन में वृद्धि करती है। पात्र में सिलीका के कण जितने ही सूक्ष्म होंगे पकाने पर पात्र उतना ही कम रन्ध्रमय होगा तथा उस पर चिकन-प्रलेपन भी उतना ही कम चटकेंगा, परन्तु पात्र के चटकने की सम्भावना अधिक हो जायगी।

अस्थि राख—यह जानवरों की, विशेष कर बैलों की हड्डी जलाकर बनायी जाती है। मिट्टी के पात्रों के लिए घोंडे व सुअर की हड्डियों का प्रयोग अस्थि राख बनाने में नहीं होता। कारण इससे पके हुए पात्र पर रंग उत्पन्न हो जाता है। अस्थि राख कार सायनिक सगठन कैल्शियम फास्फेट $\text{Ca}_3(\text{PO}_4)_2$ है और इसका प्रयोग अधिकतर बोन चाइना बनाने में होता है।

हड्डियों को सर्वप्रथम पानी में उबाल कर साफ कर लेते हैं तब सावधानी से जलाते हैं। पूर्ण रूप से जली हुई हड्डियों को महीन पीसकर पानी के साथ मिलाने से लचीलापन बिल्कुल नहीं विकसित होता। अतः वे पात्रों के बनाने में अनुपयोगी हैं। ठीक प्रकार से जलायी गयी हड्डियों में प्रायः १ से २ प्रतिशत तक कार्बन रहने दिया जाता है। अतः जलाने के पश्चात् रंग हल्का भूरा होता है। पूरी तरह से जली हड्डियों

की भाँति स्वच्छ सफेद रंग नहीं होता। सूत्र के अनुसार ट्राई कैल्शियम फास्फेट में ५४ प्रतिशत कैल्शियम आक्साइड तथा ४५ प्रतिशत फास्फोरस पैण्टोक्साइड (P_{205}) होता है, पर हड्डियो की राख में यह प्रतिशत नीचे दी हुई सारिणी के अनुसार बदलता रहता है।

आक्साइड	अस्थि राखों के नमूने			
	१	२	३	४
कैल्शियम आक्साइड	५५०	५२६	५४०	४१७
फास्फोरस पैण्टोक्साइड	३९६	४१४	३९९	२६५
फेरिक आक्साइड	०००३	X	०००४	०००२
सिलिका	१०	१४०	०७	०९
क्षार	X	१६	१९	२९
कार्बनिक पदार्थ	४.५	२६	५५	२७७
योग	१००.१०३	९९६	९८००४	९९७०२

नम्बर १ से ३ तक के नमूने जली हड्डियो के हैं तथा ४ नम्बर का नमूना बिना जली हड्डी का है।

जिप्सम प्लास्टर (Plaster of Paris)—जब जिप्सम ($CaSO_4 \cdot 2H_2O$) का चूर्ण लगभग 120° से० पर गरम किया जाता है तब जिप्सम का एक अणु अपने केलासीय जल का १॥ अणु खो देता है और जिप्सम ($CaSO_4$) $2H_2O$ में परिवर्तित हो जाता है। इस अवस्था में जिप्सम चूर्ण सफेद व मुलायम होता है जिसे जिप्सम प्लास्टर या पेरिस का प्लास्टर कहते हैं। इसके द्वितीय नामकरण का कारण यह है कि पेरिस के निकट जिप्सम की बड़ी खानें हैं। यह प्लास्टर पानी के साथ मिलाने के कुछ समय पश्चात् एक कठोर पिण्ड में बदल जाता है। अगर जिप्सम को 200° से० से ऊपर तक गरम किया जाय तो वह अजल कैल्शियम सल्फेट बन जाता है। यह अजल सल्फेट पानी मिलाने पर कठोर नहीं होता। अतः मृत प्लास्टर (Dead Burnt Plaster) कहलाता है। बोरेक्स या फिटकरी मिलाने से प्लास्टर के जमने की गति घट जाती है, परन्तु साधारण नमक इस गति को बढ़ा देता है। फिटकरी जमे हुए प्लास्टर को अधिक कठोर बनाती है।

सूखे चूर्ण से लचीला पिण्ड बनाने में आवश्यक पानी की मात्रा का जमे हुए प्लास्टर पर काफी प्रभाव पड़ता है। घनत्व, रन्ध्रता और कठोरता सभी इस मिलानेवाले

पानी की मात्रा के अनुसार बदलते हैं। अतः विभिन्न कार्यों के लिए प्लास्टर का उपयोग करते समय इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए। मूर्तियों, अलंकार तथा सजावट की वस्तुओं और ढालने के लिए साँचे बनाने में जिप्सम प्लास्टर एक महत्वपूर्ण पदार्थ है। प्लास्टर के जमते समय जो थोड़ा-सा प्रसार होता है उसके कारण साँचे की सूक्ष्मताओं का बहुत स्पष्ट पुनरुत्पादन करने की क्षमता इसमें आ जाती है।

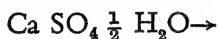
ठीक प्रकार का जिप्सम सगमरमर जैसा सफेद होता है, परन्तु यह इतना मुलायम होता है कि चाकू से सरलता से खुरचा जा सके। पत्थर के सम्पूर्ण जलयोजित होने से पूर्व इसका रंग गहरा भूरा होता है और कठोरता भी इतनी रहती है कि सरलता से चाकू द्वारा खुरचा जा सके। अजल जिप्सम सीमेण्ट बनाने के काम आता है।

जिप्सम के बड़े-बड़े पिण्ड सबसे पूर्व हवा में सुखाये जाते हैं तब जबड़ा चूर्णक यन्त्र द्वारा लगभग २ इंच व्यासवाले छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़े जाते हैं। इसके बाद इसे लोहे की तश्तरियों में इकट्ठी तब में फैला देते हैं। ये तश्तरियाँ ट्रौलियों में रख दी जाती हैं। इस अवस्था में पत्थरों में प्रायः २३-२५ प्रतिशत पानी रहता है। अब ट्रौलियाँ छोटी बन्द भट्ठियों (Muffled tunnel) में भेज दी जाती हैं। ये भट्ठियाँ बाहर से कोयले द्वारा १८०-१९०° से० तापक्रम तक गरम की जाती हैं। भट्ठी में ट्रौलियाँ लगभग ४८ घण्टे रखी जाती हैं। विभिन्न ट्रौलियों से निश्चित समय पर नमूने निकाले जाते हैं और पत्थर में पानी की मात्रा निर्धारित की जाती है। जब ट्रौलियों के पत्थर में पानी की मात्रा का मध्यमान लगभग ६ प्रतिशत होता है तब ट्रौलियाँ भट्ठी से निकाल ली जाती हैं।

इस प्रकार पकाया हुआ जिप्सम बहुत मुलायम होता है और पत्थर की चक्कियों में उसी प्रकार पीस लिया जाता है जिस प्रकार आटा पीसा जाता है। ये पीसनेवाले पत्थर एक स्थिर पत्थर के दोनों ओर घूमते हैं। जले हुए जिप्सम के छोटे-छोटे टुकड़े ढालने के लिए पीसनेवाले पत्थरों के बीच में छिद्र होते हैं। इस प्रकार पीसने के पश्चात् प्लास्टर चूर्ण का लौह अपद्रव्य विद्युत्-चुम्बक द्वारा अलग कर लिया जाता है। उसके पश्चात् पुनः आवश्यक सूक्ष्मता के अनुसार उसे दुबारा पीसा जाता है। एक अच्छी तरह पीसा गया प्लास्टर १०० नम्बर की चलनी से छानने पर पूरा निकल जायगा। जब थोड़ी मात्रा में प्लास्टर बनाना हो तो जिप्सम को पहले चूर्ण कर लेते हैं, छानते हैं और तब लोहे के कड़ाहों में खुली आँच पर पकाते हैं। बीच-बीच में उसे चलाकर

मिलाते भी रहते हैं जिससे प्लास्टर समान रूप से पके। जैसे ही केलास जल दूर होना प्रारम्भ होता है, पत्थर चूर्ण बड़ी शीघ्रता से उबलने लगता है और जब लगभग ४५ मिनट में यह उबलना करीब-करीब बन्द हो जाता है उस समय प्लास्टर उपयोग के लिए तैयार है।

उच्च स्तर के गुण रखने के लिए बनाये हुए प्लास्टर के प्रत्येक नमूने की अच्छी तरह परीक्षा करनी चाहिए। प्लास्टर के साथ मिलाने से जो ताप उत्पन्न होता है, सर्वप्रथम इस ताप का निर्धारण करना चाहिए। यह निर्धारण जले हुए प्लास्टर के सगठन पर काफी नियन्त्रण रखता है।



(६२ प्रति शत पानी)



(२०९ प्रति शत पानी)

एक प्याला भर प्लास्टर एक प्याले भर पानी के साथ लगभग ५ मिनट तक मिलाया जाता है और तब गाढ़े पिण्ड में थर्मामीटर डालते हैं। अच्छी प्रकार बने प्लास्टर में तापक्रम लगभग १०°—१५° से० तक बढ़ता है।

प्लास्टर के जमने में प्रसार भी होता है। इस प्रसार का भी निर्धारण करना चाहिए। इसके लिए प्लास्टर एक लोहे के चक्र के भीतर जमाया जाता है। इस चक्र में एक कटान रहता है जिसमें सूचक (Index) लगा रहता है। प्रसार इसी सूचक से नापा जाता है। समान दशाओं में प्लास्टर के प्रत्येक नमूने के लिए पानी की निश्चित मात्रा के साथ ताप की एक निश्चित मात्रा ही उत्पन्न करनी चाहिए तथा एक निश्चित मात्रा में ही प्रसार होना चाहिए। यदि भिन्नता दीखे तो उसका कारण कच्चे माल में या पकाने की विधि में खोजना चाहिए।

जिप्सम पंजाब में झेलम के पास और राजपूताना में मारवाड़, बीकानेर तथा जोधपुर में काफी मिलता है। अभी हाल में उत्तरप्रदेश में हरिद्वार के पास भी जिप्सम की अच्छी खान पायी गयी है। मद्रास के त्रिचनापल्ली जिले में भी जिप्सम की खानों का विस्तृत क्षेत्र पाया गया है।

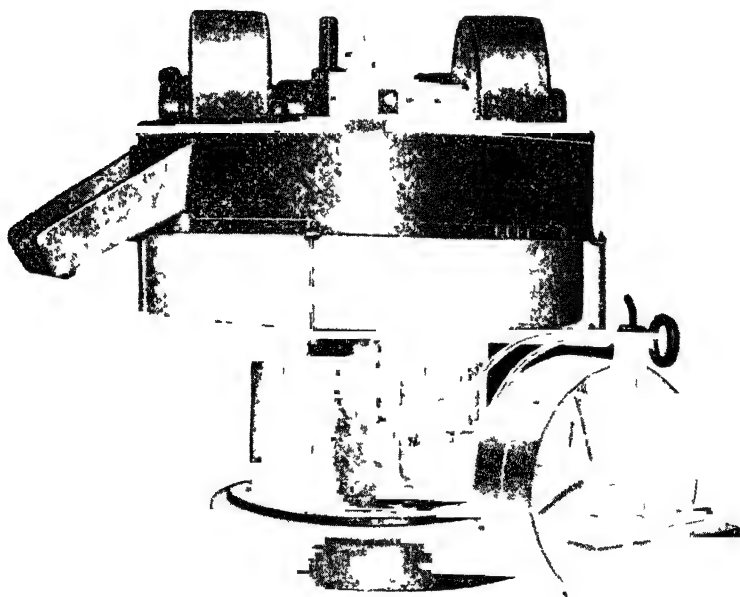
तृतीय अध्याय

पात्रों का निर्माण, सुखाना तथा पकाना

मृद्वस्तुएँ बनाने के लिए प्रयोग किये जानेवाले सामानो में मिट्टी के अतिरिक्त सभी कठोर पत्थर के रूप में होते हैं। इन पदार्थों को मुलायम मिट्टी में मिलाकर एक समाग मिश्रण बनाने से पूर्व इन्हें पीसकर महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। इस समाग मिश्रण को अँग्रेजी में बॉडी (Body) कहते हैं। हिन्दी भाषा में इस शब्द के लिए कोई उचित शब्द न होने के कारण हम इसे मृत्पिण्ड या मिश्रण-पिण्ड कहेंगे। स्फटिक, चकमक पत्थर, सगमरमर आदि कठोर खनिज एक बार में ही पीसकर महीन चूर्ण नहीं किये जाते, वरन् कई बार में पीसकर इन्हें चूर्ण किया जाता है। प्रथम स्तर में पदार्थों को शक्तिशाली मशीन जबडा चूर्णक (Jaw Crusher) द्वारा आधे इंच से एक इंच आकार तक के छोटे टुकड़ों में तोड़ दिया जाता है। इस यन्त्र में दो ऊँची नीची सतहवाली कठोर इस्पात की पट्टिकाएँ रहती हैं। इन पट्टिकाओं को जबडा (Jaws) कहते हैं। ये जबड़े एक दूसरे से कोण बनाते हुए V आकार में रखे जाते हैं जिसका नीचे का अन्तर ऊपर के अन्तर की अपेक्षा बहुत कम होता है। दो जबड़ों के बीच की दूरी घटायी-बढ़ायी जा सकती है, तथा इसी दूरी को घटा-बढ़ाकर पदार्थ को इच्छित आकार के छोटे-बड़े टुकड़ों में तोड़ा जा सकता है। इन दो जबड़ों के बीच खनिजों के बड़े-बड़े टुकड़े गिरा दिये जाते हैं। एक बहुत शक्तिशाली यन्त्र विधि इन जबड़ों को आगे-पीछे गति प्रदान करती है, जिससे खनिजों के टुकड़े टूटकर छोटे टुकड़ों के रूप में दो जबड़ों के बीच के अन्तर से नीचे गिर जाते हैं। एक ऐसा ही यन्त्र, जिसके जबड़ों के बीच में अन्तर ६-१२ इंच तक हो, लगभग दो टन खनिज प्रति घण्टे तोड़ देगा और टूटे हुए छोटे टुकड़ों का आकार लगभग १ इंच होगा।

इस प्रकार टूटे हुए खनिज पैन रोलर यन्त्र (Pan-Roller-Mill) में इतने और महीन पीसे जाते हैं कि चूर्ण २०-३० नम्बरवाली चलनी से छन जाय। जैसा

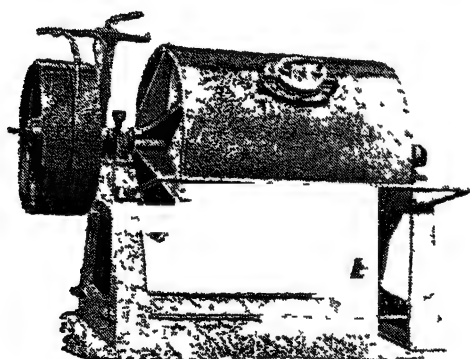
कि मशीन के नाम से पता चलता है, इसमें चपटी तलीवाला एक लोहे का कडाह होता है, जिसमें खनिज भरा रहता है। इस कडाह के ऊपर तथा उसके समानान्तर एक धुरी पर बेलनाकार दो ग्रेनाइट के भारी पत्थर घूमते रहते हैं। इन बेलनों तथा तली पर रखे पत्थरों के बीच पदार्थ पीस जाता है और कडाह की तली में लगी मोटी चलनी द्वारा स्वयं छन जाता है। ब्रुशों का एक जोड़ा पीसे हुए पदार्थों को चलनी पर दबाता है, और बाद में बड़े कणों को दुबारा पीसने के लिए पुनः वापस ला गिराता है। जब कठोर अग्निमिट्टियों या कठोर शैल्स (Shales) को पीसना होता है तो कडाह का आधार और बेलन दोनों कठोर (Chilled) लोहे के बने होते हैं।



चित्र ७. एक पैन रोलर यन्त्र

चूर्ण करने के तृतीय स्तर में खनिज बॉल-मशीन (Ball-mill) में डाला जाता है, जिसमें अन्तिम तथा आवश्यक सूक्ष्मता तक पदार्थ को पीसा जाता है। यदि बॉल-मशीन बहुत बड़ी हो तो जबड़ा चूर्णक से सीधे बॉल-मशीन में खनिज को डाला जा सकता है। इस प्रकार द्वितीय स्तर की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

इस मशीन में इस्पात का एक खोखला ड्राम होता है जिसमें अन्दर साइलेक्स (Silex) या चर्ट (Chert) पत्थर या रबड़ की बनी विशेष ईंटों की एक परत चढ़ी रहती है। इस परत के लगाने का उद्देश्य पीसे जानेवाले खनिज को लोहे के स्पर्श से दूर रखना है। इस ड्राम के भीतर खनिजों के टुकड़े और पीसने के लिए कुछ पत्थर या पोरसिलेन गेंदे डाल दी जाती हैं। जिस छिद्र से यह सामान डाला जाता है बाद में उसे बन्द कर दिया जाता है। ड्राम धीरे-धीरे घुमाया जाता है। इस मशीन में पिसाई दो शक्तियों द्वारा होती है। प्रथम तो ऊपर से नीचे गिरनेवाली बड़ी पोरसिलेन गेंदों या चकमक पत्थरों की चोटों से खनिज टुकड़े टूटकर चूर्ण हो जाते हैं। दूसरे छोटी-छोटी गेंदों या छोटे आकार के चकमक पत्थर खनिज चूर्ण के साथ रगड़ने से खनिज चूर्ण को और भी महीन कर देते हैं। इन मशीनों में खनिज, शुष्क व गीली दोनों अवस्थाओं में किसी भी सूक्ष्मता तक पीसा जा सकता है, पर इसके लिए तदनुसार मशीन की घूमने की गति बदलनी होती है। गीली अवस्था में पत्थरों या गेंदों की फिसलन



चित्र ८. बॉल-मिल

इतनी बढ़ जाती है कि गेंदों द्वारा प्रभावकारी चोटों की सख्या अपेक्षाकृत बहुत कम हो जाती है, और पीसने का कार्य मुख्यतः रगड़ के कारण ही होता है। गीली अवस्था में पीसने के लिए मशीन की गति शुष्क अवस्था की अपेक्षा कम होती है। शुष्क अवस्था में पीसने में गति गीली अवस्था की गति की लगभग १/४ गुनी

होती है। उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि गीली अवस्था में पीसने पर डालने-वाले पानी की मात्रा सावधानी के साथ नियन्त्रित की जानी चाहिए। व्यवहार में प्रारम्भ में, डाले पदार्थ का ३०-३५ प्रति शत पानी डाला जाता है, परन्तु पिसा पदार्थ निकालने से पूर्व १०-१५ प्रति शत पानी और डालना चाहिए, जिससे खनिज चूर्ण घोला बनकर सरलतापूर्वक बाहर निकल सके। बॉल-यन्त्र में खनिज टुकड़े तथा पीसनेवाली गेंदें या चकमक पत्थर डालते समय लगभग एक तिहाई स्थान खाली छोड़ देना चाहिए, जिससे गेंदें व खनिज गति कर सकें। दो तिहाई स्थान में खनिज व

विभिन्न आकार के चकमक पत्थर या पोरसिलेन गेदे बराबर भार में भरनी चाहिए। इन अवस्थाओं में एक बॉल-मशीन, जिसका बाहरी व्यास ४॥ फुट व लम्बाई ४ फुट हो, एक बार में आधा टन खनिज पीसेगी। इसके लिए उसमें आधे टन ही चकमक पत्थर या पोरसिलेन गेदे होगी। उपर्युक्त विशेष प्रकार की मशीन में पीसनेवाली गेदों या पत्थर का आकार $1\frac{1}{2}$ से $2\frac{1}{2}$ इंच के बीच होना चाहिए, तथा मशीन की गति २०-२५ चक्कर प्रति मिनट होनी चाहिए। १४० नम्बर की चलनी की सूक्ष्मता तक पीसने के लिए इस मशीन में ४०-४५ घंटे लगेंगे।

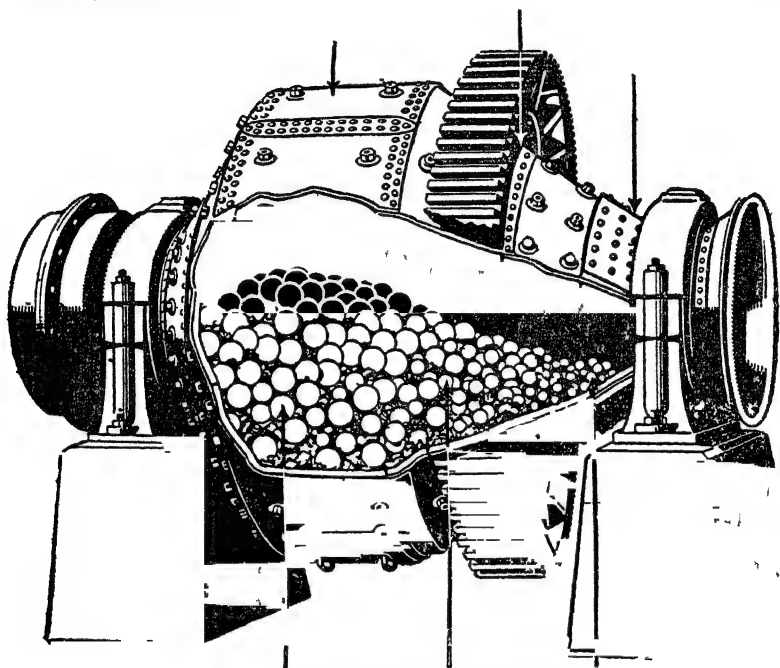
अधिकतम दक्षता पाने के लिए मशीन की गति, प्रयोग की जानेवाली गेदों या पत्थर के आकार व मात्रा के विषय में विचार-धाराएँ व व्यवहार भिन्न-भिन्न हैं। नीचे दिये कुछ अङ्क व्यवहार में फेल्सपार पीसने के लिए अच्छे परिणामवाले सिद्ध हुए हैं। गति के खाने में छोटी सख्याएँ गीली अवस्था में पीसने के लिए हैं तथा बड़ी सख्याएँ शुष्क पीसने के लिए हैं।

ड्रम का आकार व्यास तथा लम्बाई फुट में	डाले गये फेल्सपार का भार पौडों में	चकमक पत्थरों का भार पौडों में	चकमक का आकार			ड्रम की गति चक्र प्रति मिनट
			१ $\frac{1}{2}$ "	२"	३"	
२' × २॥'	१२५	२५०	२००	५०	×	३०-४०
३' × ४'	५६०	१०००	५००	५००	×	२५-३५
४॥' × ५'	१३००	२५००	×	२०००	५००	२०-२५
५' × ६'	२३००	४२००	×	२२००	२०००	१५-२०
६' × ६'	३४००	६०००	×	२०००	४०००	१३-१८

यदि चकमक पत्थर के स्थान पर कठोर पोरसिलेन की गेदे प्रयोग की जायें तो सख्याएँ भिन्न होंगी।

एक विशेष प्रकार की शकु आकार की बॉल-मशीन, जिसे हार्डिज कोनीकल मिल (Hardinge-Conical-mill) कहते हैं, मृद-उद्योग में गीली व शुष्क अवस्था में खनिज पीसने के लिए चलायी गयी है। इसके शकु आकार के कारण खनिज शीघ्रगति से चूर्ण हो जाता है तथा इसी आकार के कारण मशीन में पीसनेवाले पत्थरों तथा पीसनेवाले खनिज चूर्ण का वर्गीकरण भी हो जाता है। इस वर्गीकरण के प्रभाव के कारण खनिज के बड़े टुकड़े बड़े पत्थरों द्वारा पीसे जाते हैं, कारण बड़े पत्थर तथा बड़े

खनिज टुकड़े, पदार्थ डालनेवाले सिरे के पास, जहाँ अधिकतम व्यास होता है, रहते हैं। जैसे-जैसे कण टूटते जाते हैं, वे मशीन की धीमी गति के कारण स्वतः आगे की ओर बढ़ते हैं। अब इन अपेक्षाकृत छोटे कणों पर छोटे पत्थरों की रगड़ का अधिक प्रभाव पड़ता है, कारण छोटे होने से पत्थर व खनिज दोनों की सतह का क्षेत्रफल बढ़ जाता है।

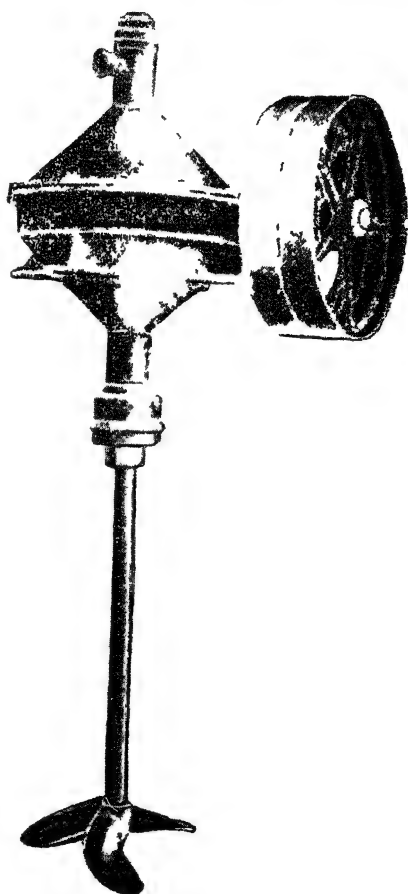


चित्र ९. हार्डिज शंकु आकार चूर्णक यन्त्र

इस स्वतः वर्गीकरण के कारण शंकु-आकार चूर्णक यन्त्र में साधारण बेलनाकार चूर्णक यन्त्र (बॉल यन्त्र) से कम शक्ति की आवश्यकता पड़ती है और साथ ही समय भी कम लगता है। शंकु-आकार यन्त्र की लम्बाई २ फुट से १० फुट तक होती है और इस लम्बाई के अनुसार कुछ पौण्ड से ५० टन प्रति घण्टे तक खनिज चूर्ण हो सकता है। जब विभिन्न खनिज अपनी-अपनी आवश्यक सूक्ष्मतानुसार पीस लिये जाते हैं तो वे अलग-अलग हौजों में घोला अवस्था में रखे जाते हैं। प्रत्येक घोला एक विशेष गाढ़पन का बनाया जाता है जिससे आगे चलकर खनिज मिलाते समय प्रत्येक खनिज का अनुपात केवल उसके घोले के आयतन द्वारा ही मालूम हो सके, जैसा कि आगे चलकर अध्याय

१३ में बताया गया है। व्यवहार से यह पता चल चुका है कि सभी खनिज एक ही गाढ़ेपन पर नहीं रखे जा सकते, कारण या तो वे बहुत गाढ़े हो जाते हैं या शीघ्र जमकर बैठ जाते हैं। उदाहरणार्थ, जैसा कि व्यवहार में पाया गया है, पीसे हुए चकमक या फेल्सपार का सर्वोत्तम गाढ़ापन ३२ औंस प्रति पाइण्ट और चीनी मिट्टी तथा बाल-मिट्टी का क्रमशः २६ औंस व २४ औंस प्रति पाइण्ट है। विभिन्न खनिज एक अलग हौज में मिलाये जाते हैं, जिसे मिश्रण हौज कहते हैं। इस हौज में यन्त्र-चालित पखे लगे रहते हैं जिन्हें चित्र १० में दिखाया गया है।

शुष्क मिश्रण विधि में पैन रोलर मिल से प्राप्त कच्चे खनिज चूर्ण शुष्क अवस्था में तौल लिये जाते हैं और अन्तिम रूप से पीसने के लिए बॉल मशीन में डाल दिये जाते हैं। बॉल मशीन में ही अन्त में मिट्टी डाल देते हैं। इस प्रकार विशेष कर छोटे कारखानों में बॉल मशीन पीसने और मिलाने दोनों का कार्य करती है, परन्तु बड़े-बड़े कारखानों में विभिन्न पीसे खनिजों में मिट्टी मिलाने के लिए अलग से मिश्रण मशीन होती है।



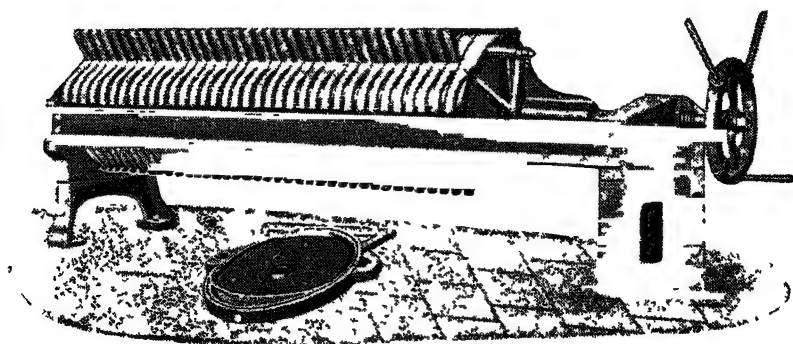
चित्र १०. यन्त्रचालित पखे
(Screw-Blunger)

ठीक प्रकार से मिलाने के पश्चात् घोला विद्युत्-चुम्बक पर से भेजा जाता है। यहाँ लोहे के वे कण जो पिछली क्रियाओं में आकर मिल गये हों दूर हो जाते हैं। मिट्टी तथा खनिजों से आया हुआ कोई लौह यौगिक भी इस चुम्बक द्वारा दूर

हो जाता है। यदि लौह-युक्त कण इस अवस्था में दूर नहीं किये गये तो आगे चलकर सफेद पात्रों पर बादामी या काले चिह्न डाल देंगे। अब धोल पानी कम करने के लिए तैयार है और पानी जल-निष्कासन यन्त्र द्वारा यथासम्भव निकाल दिया जाता है।

जल-निष्कासन यन्त्र मिट्टी-घोले से दबाव द्वारा यथासम्भव जल निकाल कर घोले को पिण्ड बना देते हैं। पुराने ढग के लकड़ी के निष्कासको का स्थान अब आधुनिक लोहे के जल-निष्कासक ले रहे हैं। इन जल-निष्कासको में बहुत-सी ढलवाँ लोहे की थालियाँ होती हैं। ये थालियाँ अन्दर की ओर उभरी हुई होती हैं, जिसमें दो थालियाँ दबाने पर एक बन्द स्थान बना लेती हैं, जिसे प्रकोष्ठ कहते हैं। इस प्रकार के प्रत्येक प्रकोष्ठ के अन्दर दो मजबूत कपड़ों के टुकड़े लटकते रहते हैं। ये कपड़े थालियाँ दबाने पर थालियों के प्रत्येक जोड़े के बीच में एक थैला-सा बन जाते हैं। घोला पम्प की सहायता से थालियों द्वारा बने प्रत्येक प्रकोष्ठ में भेजा जाता है। प्रत्येक कपड़े के केन्द्र में एक छिद्र होता है। यह छिद्र थालियों के छिद्र से बँधा रहता है। अतः घोला आकर सीधा थैलियों में गिरता है। घोले को प्रकोष्ठ में एक विशेष दबाव पर पम्प की सहायता से भेजा जाता है। थैलियों में कपड़ों से पानी निकल जाने पर मिट्टी पिण्ड के रूप में रह जाती है।

जब मिट्टी-घोला प्रत्येक प्रकोष्ठ में भेजा जाता है, तो घोले के ठोस कण कपड़े द्वारा रोक लिये जाते हैं और उसकी सतह पर एक पतली तह के रूप में जम जाते हैं।



चित्र ११ जल-निष्कासन यन्त्र

जैसे-जैसे छनने की क्रिया चलती है इस मिट्टी की तह की मोटाई भी धीरे-धीरे बढ़ती

जाती है। कपडों पर यह मिट्टी-कणों का जमाव प्रकोष्ठ के दोनों ओर होता है। दोनों तहें धीरे-धीरे मोटी होकर एक दूसरे की ओर बढ़ती हुई प्रकोष्ठ के बीच में मिल जाती हैं। अब इस अवस्था में और घोला भोजन के लिए स्थान नहीं रहता, तथा ठोसों की दुहरी मोटाई दबकर एक पिण्ड के रूप में हो जाती है। छनने की गति मौलिक रूप से पम्प द्वारा लगे दबाव पर, परन्तु मुख्यतः छननेवाले पदार्थ के प्रकार पर निर्भर करती है, कारण वास्तविक छानने का माध्यम ठोस की जमी हुई वह तह होती है, जिसमें होकर पानी को जाना होता है। यदि मिश्रण घना न हो, जैसा कि पोरसिलेन पात्रों के मिश्रण पिण्ड में होता है, तो छनने की गति बहुत तेज और बना हुआ पिण्ड अधिक मोटा तथा अधिक कठोर बनाया जा सकता है। यदि मिट्टी मिश्रण में बॉल-मिट्टी या लचीली अग्नि-मिट्टी अधिक रहे तो छन्ना-कपड़े पर जमी तह पानी के लिए कम पारगम्य होगी, अतः छनने की गति धीमी हो जायगी। ऐसी अवस्था में छनने की गति ऊर्ध्वक लवणों की सहायता से बढ़ायी जा सकती है।

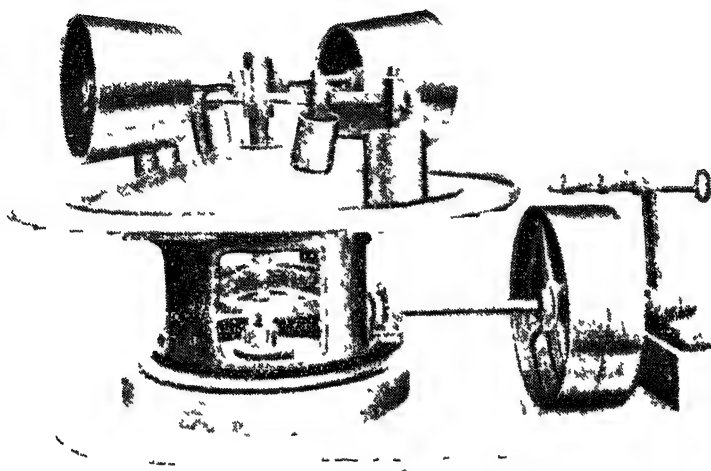
कुछ बार प्रयोग करने के पश्चात् छन्ने-कपड़े को सावधानी से धो लेना चाहिए, जिससे कपड़े के सूक्ष्म छिद्रों को बन्द करनेवाले मिट्टी व खनिज के कण निकल जायें। कभी-कभी कपड़े को कार्बोलिक अम्ल के घोल में डुबोकर सड़ने से बचाना चाहिए। इस कार्य के लिए फिनाइल पानी का घोल बहुत ही सफल सिद्ध हुआ है, कारण इससे कपड़ा साफ भी हो जाता है और सड़ने से भी बच जाता है।

जल-निष्कासित मिट्टी गाढी लेई जैसी होती है, और पात्र बनाने में प्रयोग की जानेवाली विभिन्न विधियों के अनुसार ही उस पर और क्रियाएँ करके उसे उपयुक्त बनाते हैं।

पात्र बनाने की लचीली विधि में यह छन्ने कपड़े से निकला पिण्ड, जिसे मिश्रण-पिण्ड कहते हैं, गूँधने की मशीन (Kneading-Machine) या पग-यन्त्र (Pug-Mill) में भेजा जाता है। इन यन्त्रों का मुख्य कार्य मिट्टी को दबाकर हवा के बुलबुले निकाल देना तथा पानी की मात्रा सर्वत्र समान कर देना होता है। ये हवा के बुलबुले मिश्रण-पिण्ड के अन्दर हुआ करते हैं। गूँधने की क्रिया से मिट्टी की कार्योपयोगिता भी बढ़ जाती है।

मिट्टी गूँधने के यन्त्र में इस्पात के बड़े बेलनों का एक जोड़ा होता है, जो क्षैतिज धुरी पर घूमता है, और तीन जोड़ इस्पात के छोटे बेलन होते हैं, जो ऊर्ध्वधर धुरी पर घूमते हैं। ये सब बेलन एक चबूतरे पर घूमते हैं, जिस पर गूँधने के लिए मिट्टी रखी जाती

है। ऊपरी बड़े बेलन मिट्टी को नीचे की ओर दबाते हैं और छोटे ऊर्ध्वाधर बेलन मिट्टी को ऊपर की ओर दबाते हैं। बारी-बारी से ऊपर नीचे की ओर दबाने से मिट्टी के बीच की हवा निकल जाती है और मिट्टी में पानी की मात्रा सर्वत्र समान हो जाती है। एक बार की क्रिया में लगभग ४५ मिनट लगते हैं। पोरसिलेन पात्रों के हेतु

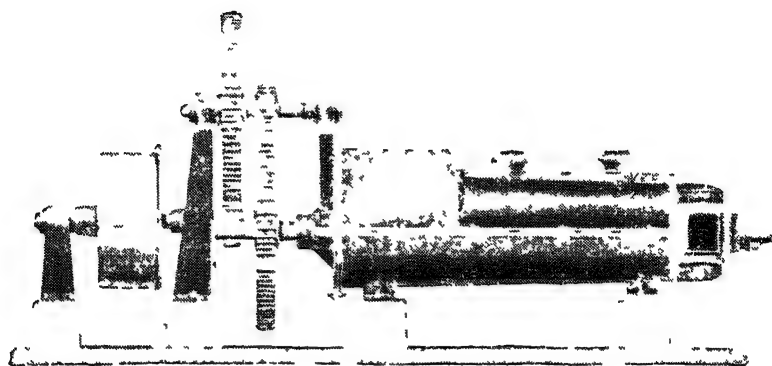


चित्र १२ मिट्टी गूँधने का यन्त्र

मिश्रण-पिण्ड तैयार करने के लिए यह यन्त्र विशेष रूप से उपयोगी है, कारण पोरसिलेन पात्रों के लिए मिश्रण-पिण्ड दूसरे मिश्रण-पिण्डों की अपेक्षा कम लचीला होता है। बॉल-मिट्टी या अग्नि-मिट्टी युक्त अधिक लचीले मिश्रण-पिण्डों के गूँधने के लिए शक्तिशाली पगयन्त्र की आवश्यकता होती है।

पगयन्त्र कई ढले हुए भागों से बना बड़ा सिलिण्डर होता है जिसमें से उसके भाग आवश्यकतानुसार सफाई करते समय अलग-अलग किये जा सकें। सिलिण्डर के केन्द्र से होती हुई एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक धुरी होती है, जिसमें लोहे की पत्तियाँ ऐसे विशेष कोण पर लगी रहती हैं, जिससे पत्तियाँ घुमाने पर मिट्टी को काटने के साथ-साथ वे उसे निरन्तर आगे की ओर को भी दबाती हैं। सिलिण्डर के निकलनेवाले सिरे पर एक छोटा प्रकोष्ठ होता है, जहाँ पहुँचते ही मिट्टी एक ठोस पिण्ड के रूप में दब जाती है और यन्त्र से मिट्टी एक समाग पिण्ड के रूप में निकलती है। यन्त्र के एक सिरे पर

ऊपर से मिट्टी डाली जाती है, और दूसरे सिरे पर मिट्टी कटकर तथा दबकर ठोस पिण्ड के रूप निकलती है। यह निकली हुई मिट्टी लचीली विधि से बननेवाले पात्रों के



चित्र १३ पगयन्त्र

उपयोग के लिए एकदम तैयार होती है। यदि पगयन्त्र की बनावट ठीक न हो तो इससे तैयार मिट्टी के पात्रों में एक गम्भीर दोष आ जाता है, जिसे लेमीनेशन (Lamination) कहते हैं। यह दोष अधिकतर प्रकोष्ठ के अन्दर गतिशील मिट्टी के विभिन्न स्तरों की भिन्न गतियों के कारण होता है। घर्षण के कारण प्रकोष्ठ की धातु के सीधे सम्पर्क में आनेवाली मिट्टी के स्तर की गति बीच की मिट्टी के स्तर की गति की अपेक्षा कम होती है। इस असमान गति के कारण मिट्टी-पिण्ड भिन्न घनत्व का हो जाता है, जिसके कारण यन्त्र से बाहर निकलनेवाली मिट्टी के मिश्रण-पिण्ड में विभिन्न घनत्ववाले कई स्तर हो जाते हैं। मिट्टी के दो स्तरों के बीच वायु रह जाती है, और जब पगयन्त्र से निकली मिट्टी पकायी जाती है, तो केन्द्रिक चक्रों के रूप में चटक जाती है। इसे लेमीनेशन चटकाव (Lamination cracks) कहते हैं। पगयन्त्र के अन्दर वायु निकाल देने से यह दोष कम हो जाता है। पगयन्त्र का प्रकोष्ठ, वायु निष्कासन पम्प (Vacuum pump) से जोड़ दिया जाता है, जिससे दो स्तरों के बीच रहनेवाली वायु निकल जाती है। कीनेथ स्टैटीनियस (Kenneth-stettinius) द्वारा सन् १९३७ ई० में वायु हटाने के लिए एक विधि वर्णन की गयी है। मिश्रण-पिण्ड के भीतर से वायु निकालने की इस विधि में पगयन्त्र के प्रकोष्ठ में जाने से कुछ पूर्व ही मिट्टी के ऊपर कार्बन डाई-आक्साइड गैस (CO_2) भेज

दी जाती है। कार्बन-डाई-आक्साइड वायु से भारी होने के कारण वायु को हटा देती है और स्वयं धीरे-धीरे मिट्टी में मिल जाती है, कारण कार्बन-डाई-आक्साइड पानी में बहुत अधिक घुलनशील है।

इस प्रकार तैयार वायु-रहित मिश्रण-पिण्ड में केवल लेमीनेशन दोष से ही छुटकारा नहीं मिलता, वरन् मिट्टी बहुत मुलायम भी हो जाती है, जिससे उसमें पात्र बनाने के लिए अच्छे गुण आ जाते हैं और सुखाने तथा पकाने के समय पात्र कम टूटते हैं। इस प्रकार के वायु-रहित मिश्रण-पिण्ड से बहुत-सी विषम आकृतिवाले पात्र अधिक सरलता से बन सकते हैं। मिश्रण-पिण्ड से वायु निकालने के लाभों का अनुमान निम्नलिखित सारणी से लगाया जा सकता है। भोजन पात्रों के मिश्रण-पिण्डों के तुलनात्मक गुण।

	बिना वायु निकाला मिश्रण-पिण्ड	वायु निकाला मिश्रण-पिण्ड
शुष्क अवस्था में शक्ति पौड वर्ग इंच	३५२	६००
सूखने पर प्रतिशत सिकुडन	३८७	३६५
१२८०° से० पर सम्पूर्ण सिकुडन	९७२	९६
१२८०° से० पर पानी का अवशोषण	७८६	६६
प्रलेपन में ऐठन	००९	००७
सघात सख्या (Impact Value)	६९७	६०८

गूँघने के बाद मिट्टी, चाकविधि तथा जालीविधि द्वारा पात्र बनाने के उपयुक्त हो जाती है।

चाक-विधि (Throwing)—इस विधि में घूमते हुए कुम्हार के चाक पर मिट्टी के पात्रों को हाथ द्वारा आकृति दी जाती है। इस विधि का प्रयोग केवल गोलकार पात्र बनाने के लिए किया जा सकता है। इसके लिए मिट्टी इतनी काफी कड़ी हो कि पात्रों की आकृति उनके अपने भार से ही नष्ट न होने पाये, साथ ही उतनी मुलायम भी हो कि हाथ के दबाव से ही आकृति दी जा सके। इस विधि में अच्छी तरह से दबाना सर्वाधिक महत्त्व का है, कारण कुम्हार के हाथ के असमान दबाव के कारण उत्पन्न दोष सुखाने या पकाने से पूर्व प्रकट नहीं होते। चाक-विधि से पात्र बनानेवाले को निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए।

उसे बहुत अधिक लचीली मिट्टी का प्रयोग नहीं करना चाहिए, तथा एक ही पात्र के विभिन्न भागों में असमान दबाव नहीं लगाना चाहिए।

उसे अपने हाथ की ऊपर की ओर की गति चाक की चक्रीय गति के अनुसार स्थिर करनी चाहिए, जिससे उँगलियों के दो चक्रीय निशानों के बीच की दूरी यथासम्भव कम रहे।

चाक दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो स्वयं कुम्हार या उसके सहायक द्वारा चलाये जाते हैं, दूसरे वे जो यन्त्र द्वारा चलाये जाते हैं। प्रथम प्रकार के आधुनिक चाक में एक लम्बी लोहे की धुरी होती है, जिसका निचला सिरा एक लकड़ी के तख्ते पर लगी चूल में रखा रहता है। धुरी के मध्य भाग में एक लोहे का चक्र रहता है जो धुरी के किसी एक ओर से झुकने को रोकता है। इस धुरी के ऊपर लोहे या लकड़ी का गोलाकार पाट रहता है। इसी पाट पर मिश्रण-पिण्ड रखकर कुम्हार पात्र बनाता है। चाक को प्रायः उसका सहायक चलाता है और वह दोनों हाथों से पात्र बनाता है।

अधिक उत्पादन के लिए हाथ से चलनेवाले चाको से लाभ नहीं हो सकता। अतः यन्त्र-चालित चाको का प्रयोग होता है। परन्तु पात्र में सूक्ष्मताएँ जितनी हाथ से चलनेवाले चाको से उत्पन्न की जा सकती हैं, उतनी यन्त्रचालित चाको से नहीं। इसका कारण यह है कि जब पात्र बनानेवाले को चाक की गति निरन्तर बदलने की आवश्यकता हो तो उस समय यन्त्रचालित चाक, हाथ से चलनेवाले चाक के बराबर सुविधाजनक नहीं होता, यद्यपि यन्त्रचालित चाको की गति भी, घिरनियों के व्यास बदलकर या बीच में शकु आकार का ड्रम लगाकर कुछ बदली जा सकती है।

सूक्ष्मता लाने के लिए पात्र चाक पर बनाने के पश्चात् सदैव ही खरादे जाते हैं। चाक से बने हुए व खरादे हुए पात्रों के कई लाभ हैं। सूखने पर उनमें आकुचन नहीं आता और देखने में वे अधिक स्पष्ट तथा यथार्थ होते हैं। वे यन्त्र द्वारा बने पात्रों से मजबूत होते हैं। इतना ही नहीं, बड़ी तथा ठोस सामग्रियों, जैसे अधिक तनाव-वाले विद्युत्-रोधक (High tension Insulator) का हाथ से ही बनाया जाना अत्यावश्यक है। यदि एक प्रकार के केवल कुछ ही पात्रों की आवश्यकता हो तो चाक से बनानेवाला उन्हें तुरन्त सस्ते दामों में बना देगा। सजावट के पात्रों में से अधिकांश चाक से बने होते हैं।

खराद-विधि (Turning)—यह मृत्पात्र को खरादयन्त्र पर आकृति देने की एक विधि है। जब आकृति में यथार्थता की आवश्यकता हो तो इस विधि का प्रयोग

किया जाता है। अल्पलचीली मिट्टी से पात्र बनाने में भी इस विधि का प्रयोग किया जाता है, कारण मिट्टी की न्यून ससक्ति के कारण चाक पर पात्र मोटा बनाना पड़ता है, जो खराद मशीन पर आवश्यकतानुसार पतला किया जाता है।

खरादने से पूर्व पात्र का इतना कठोर हो जाना आवश्यक है कि वह खराद यन्त्र का दबाव सहन कर सके। साथ ही इतना मुलायम भी होना आवश्यक है कि उँगलियों व नाखूनों के निशान उस पर पड़ सकें। जब खराद यन्त्र पर पात्र २ से ३ इंच तक कतरन दे उस समय पात्र की अवस्था खरादने योग्य सर्वोत्तम होती है। यह इच्छित अवस्था प्राप्त करने के लिए पात्र अधिक तथा स्थिर आद्रतावाले तहखानों या ठंडे स्थानों में रखे जाते हैं।

मृत्पात्र खरादने के लिए क्षैतिज व ऊर्ध्वाधर दोनों प्रकार के खराद यन्त्र प्रयोग में लाये जाते हैं। इस यन्त्र में भिन्न आकार की इस्पात की छुरियाँ होती हैं जो प्रायः खराद की लकड़ी की मुठिया पर जुड़ी रहती हैं। कुशल खरादनेवाले अपने हाथ से ही छुरियों को स्वतन्त्रता-पूर्वक आवश्यकतानुसार ठीक करना पसन्द करते हैं। खरादने में अन्तिम क्रिया खराद यन्त्र पर ही पात्र को इस्पात या सींग के टुकड़े से चिकना करने की होती है।

खरादने के लिए अयोग्य कारीगर कभी न रखे, कारण यदि पात्र की आकृति और आकार ठीक न हो तो उसका सरलता से पता लगाया जा सकता है, परन्तु पात्रों पर असमान तथा अनियमित रूप से प्रयोग की गयी छुरियों के कारण पड़े गोलाकार चिह्न चिकना करने के पश्चात् आँखों से नहीं देखे जा सकते। यही निशान पकाने के पश्चात् पुनः स्पष्ट हो जाते हैं, चाहे पात्र कितनी ही सावधानी से क्यों न साफ किया गया हो।

भिन्न आकृति के छोटे बेलनों (Rollers) के प्रयोग से उभड़े हुए नकशे बनाकर अच्छी सजावट उत्पन्न की जा सकती है। ये बेलन पात्र पर उसी समय प्रयोग किये जाते हैं, जब पात्र खराद यन्त्र पर चढ़ा होता है। यदि बेलन को पात्र पर प्रयोग करने से पूर्व उस पर तारपीन का तेल लगा लिया जाय तो और भी सरलता से स्पष्ट नकशे बनते हैं।

जाली-विधि (Jolleying)—इस विधि में लोहे के स्थिर यन्त्रों तथा एक घूमनेवाले साँचे के द्वारा मृत्पात्र बनाये जाते हैं। इस विधि का प्रयोग केवल गोलाकार

या अण्डाकार पात्र बनाने में ही हो सकता है। साँचा जिप्सम प्लास्टर का बना होता है और एक प्याले की आकृतिवाले बर्तन में लगा रहता है। इस बर्तन को 'जिग्गर हैड' कहते हैं।

एक जिग्गर में कुम्हार के चाक की भाँति ऊर्ध्वाधर लोहे की मोटी छड़ होती है, जिसमें ऊपर एक लोहे का प्याला लगा रहता है। इस प्याले में जिप्सम प्लास्टर के साँचे को बैठा दिया जाता है। इनकी गति समान रहती है और ये प्रायः बिजली से चलते हैं। इनमें पैर से काम करनेवाला एक ब्रेक होता है, जिसकी सहायता से कारीगर इच्छानुसार यन्त्र को चला या रोक सके। एक विशेष आकार की लोहे की पत्ती से पात्रों को आकृति प्रदान की जाती है। इस पत्ती को प्रोफाइल (Profile) कहते हैं। यह प्रोफाइल, जाली कहलानेवाले हैण्डिल से जुड़ी रहती है।

जाली वह साधन है, जो प्रोफाइल को इस प्रकार पकड़े रहता है कि प्रोफाइल घूमते हुए साँचे के अन्दर या बाहर की ओर प्रयोग की जा सके। जाली यन्त्र जिग्गर के पास ही एक मेज पर लगा रहता है। जाली यन्त्र प्रायः दो प्रकार के होते हैं—

(१) प्रथम प्रकार की वह जाली जिसका हथ्था झुका हुआ होता है और एक चूल में लगा रहता है। हथ्थे में सामने की ओर एक कटान रहता है जिसमें प्रोफाइल लगा दी जाती है।

(२) दूसरी प्रकार की जाली का हथ्था झुका हुआ नहीं होता। यह हथ्था दो या अधिक घिरनियों की सहायता से ऊपर-नीचे गिराया या उठाया जा सकता है। इसी हथ्थे में नीचे प्रोफाइल लगी रहती है।

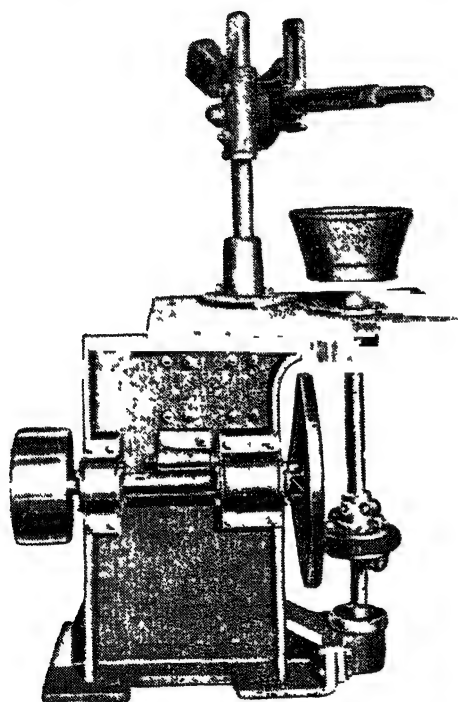
द्वितीय प्रकार के जाली यन्त्र प्रायः गमले, घड़े आदि बड़े और खोखले पात्र बनाने के काम आते हैं और प्रथम प्रकार के जाली यन्त्र प्रत्येक प्रकार के गोलाकार या अण्डाकारपात्र बनाने के काम आते हैं।

प्रोफाइल लोहे या इस्पात की मोटी चद्दर से काटकर बनायी जाती है। इसके एक ओर की वक्रता पात्र की वक्रता के समान होती है तथा वक्रता का किनारा सीधा न होकर ढलवाँ बनाया जाता है। प्रोफाइल को बहुत ही ठीक आकार में रखा जाता है। इसके लिए एक पुस्तक रखी जाती है जिसमें प्रोफाइल की वक्रता की सीमा सुरक्षित रूप से खिंची रहती है। जब उसके सिरे कार्य करने से घिस जाते हैं तो उन्हें रेती की सहायता से फिर ठीक कर पुस्तक के नकशे के समान कर लिया जाता है।

इंग्लैण्ड में प्रयुक्त होनेवाली प्रोफाइल प्रायः ०.९ से १ सेण्टीमीटर मोटी चद्दर से बनायी जाती हैं। परन्तु पश्चिमी यूरोप में पोरसिलेन पात्रों के बनाने में प्रयोग होनेवाली प्रोफाइल, ०.५ सेण्टीमीटर से अधिक मोटी नहीं होती। यह मोटाई का अन्तर विभिन्न स्थानों में विभिन्न मिट्टियों के प्रयोग के कारण है। इंग्लैण्ड के मृत्पात्रों में अधिक लचीली बॉल-मिट्टी की काफी मात्रा रहती है। अतः यदि प्रोफाइल काफी मजबूत न बनायी गयी तो प्रयोग करते समय हिल सकती है और

पात्रों में दबाव का अन्तर भी ला सकती है, जिसके कारण मृत्पात्र सुखाते या पकाते समय चटककर टूट सकता है।

इस विधि में पात्र बनाने के लिए मिट्टी का लोदा साँचे में रखा जाता है। यह साँचा जिग्गर हैड पर शीघ्रता से घूमता रहता है। अब जाली के हथिये की सहायता से प्रोफाइल को नीचे लाते हैं। प्रोफाइल आवश्यकता से अधिक मिट्टी को काटकर फेंक देती है और साँचे में मिट्टी की केवल उचित मोटाई रह जाती है। जिग्गर हैड से साँचा बाहर निकालकर सुखा लिया जाता है। निकाले हुए साँचे के स्थान पर दूसरा साँचा जिग्गर हैड



चित्र १४. मिले हुए जिग्गर व जाली का चित्र
में लगा दिया जाता है और कार्य पूर्ववत् चालू रहता है।

प्याली या तश्तरी जैसे चपटे पात्र बनाने के लिए सर्वप्रथम एक दूसरी मशीन पर एक चौड़ी पटिया (Slab) बना लेते हैं। पटिया को साँचे में रखकर भीगे स्पज

जाती है। साँचे को खाली करने के लिए ऊपर का भाग उठा लेते हैं और नीचे का भाग उठाकर लौट दिया जाता है। नक्काशी की हुई ईंटें, टालियाँ तथा ऐसी दूसरी भारी वस्तुएँ बनाने की क्रिया दो भागों में होती है। प्रथम तार द्वारा ईंटें उचित आकार में काट ली जाती हैं और तब स्क्रू प्रेस में दबाकर उचित आकृति दे दी जाती है। इस स्क्रू प्रेस में नक्काशी के लिए विभिन्न ठप्पे लगे रहते हैं।

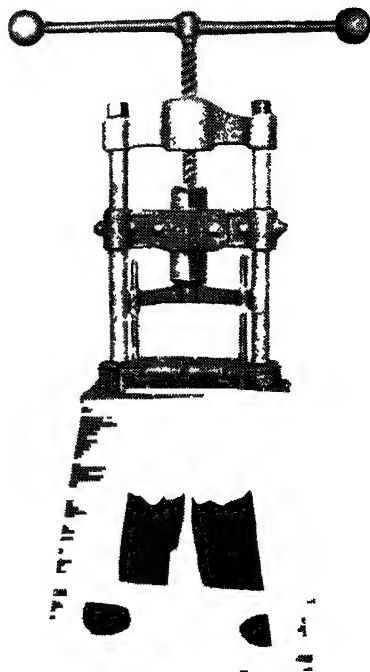
पोरसिलेन के छोटे-छोटे बिजली के सामान बनाने के लिए अर्द्ध लचीले मिश्रण-पिण्ड काम में लाये जाते हैं। अल्प लचीले मिश्रण-पिण्ड सर्वप्रथम सुखाकर चूर्ण किये जाते हैं तथा उनमें उचित मात्रा में पानी और तेल मिलाया जाता है। यदि मिट्टी में चूना हो तो तेल का साबुनीकरण हो सकता है। साबुनीकरण के कारण चूने का लवण पात्र की सतह पर आ जाता है, जो पकाने के पश्चात् श्वेत चकत्ते या छादनी बनकर पात्र की सतह पर जम जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए खनिज तेलों का प्रयोग करना चाहिए, कारण खनिज तेल से चूने के साथ साबुनीकरण नहीं होता। यदि तेल का प्रयोग न किया जाय तो मिट्टी इतनी लचीली नहीं हो पायेगी जिसे हाथ के दबाव द्वारा आकृति दी जा सके और यदि मिट्टी में अधिक पानी होगा तो पिण्ड साँचे से चिपक जायगा। क्षार साबुन का घोल थोड़े से मिट्टी के तेल के साथ इस कार्य में काफी सफल सिद्ध हुआ है।

पात्र के आकार के अनुसार पिलर प्रेस (Pillar Press), स्क्रू प्रेस (Screw Press) या टागिल प्रेस (Toggle Press) का प्रयोग किया जाता है। इन प्रेसों के ठप्पे इस्पात या लोहे के बनाये जाते हैं, क्योंकि इस विधि में अधिक दबाव की आवश्यकता होती है। कुछ ऐसी भी वस्तुएँ होती हैं जिनमें दबाव की एक क्रिया में पेंच की चूड़ियाँ काटनी पड़ती हैं।

शुष्क या चूर्ण दबाव की विधि में दबाव बहुत अधिक होना चाहिए, कारण चूर्ण पदार्थ के कण कम दबाव से सरलता से गति नहीं कर सकते। इस विधि से फर्श या दीवारों की टॉली आदि वस्तुएँ बनायी जाती हैं। दबाव लगाने के समय शुष्क मिट्टी-कणों के बीच की वायु पूरी तरह से नहीं निकल सकती। अतः शुष्क अवस्था में दबाव से बने पात्र पकाने से पूर्व मजबूत नहीं होते। इसलिए उन्हें उठाने आदि के समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। यदि असावधानी से हवा के बुलबुले पात्र के बीच में रह गये तो भट्ठी में पकाने के पश्चात् पात्र या तो विभिन्न तहों में टूट जायगा या विकृत हो

जायगा। आधुनिक विधि में यह कठिनाई ठप्पे के अन्दर की हवा निकालकर दूर की जाती है। पात्र के बाहर ठप्पे में आंशिक शून्य होता है और पात्र ठप्पे द्वारा दबाया जाता है जिससे पात्र के बीच की काफी हवा निकल जाती है। शुष्क अवस्था में दबाव-विधि से बनाये गये पात्रों के लाभ सारांशतः निम्न प्रकार के हैं—

शुष्क अवस्था में दबाव-विधि से बनाये गये पात्रों के किनारे स्पष्ट होते हैं, आकृति ठीक एवं स्पष्ट होती है। इस विधि से बने पात्रों में सकोचन (Shrinkage) बहुत कम होता है। विषम आकृति के पात्र बनाने में सूखने पर चटकने का भय नहीं रहता। इन पात्रों को पकाने से पूर्व सुखाना आवश्यक नहीं होता। अतः ये बनाने के पश्चात् सीधे पकाये जाते हैं। इस प्रकार के पात्रों को पकाने के लिए ऊँचे तापक्रम की आवश्यकता होती है, जब कि समान गुण प्राप्त करने के लिए, समान मिट्टी मिश्रण से लचीली या अर्द्ध लचीली विधि द्वारा बनाये गये पात्रों को कम तापक्रम पर पकाया जाता है।



ढलाई-विधि (Casting)—यह पात्र बनाने की एक नयी विधि है जिसमें मिट्टी-मिश्रण को घोला बनाकर प्लास्टर के साँचे में डालकर आकृति दी जाती है। कुछ समय पश्चात् आवश्यकता से अधिक घोला साँचे को उलटकर निकाल दिया जाता है। ऐसा करने के पश्चात् साँचे की भीतरी सतह पर घोला गाढ़ा होकर उसकी पतली तह जम जाती है, कारण पानी का कुछ अंश साँचा अवशोषित कर लेता है। इस जमी तह को कुछ समय छोड़ देने से वह सूख जाती है और साँचे से एक पात्र के रूप में निकाली जा सकती है। इस पात्र की आकृति एक दम साँचे की आकृति जैसी होगी।

चित्र १५ हस्त-चालित स्कूप्रेस

से एक पात्र के रूप में निकाली जा सकती है। इस पात्र की आकृति एक दम साँचे की आकृति जैसी होगी।

ढलाई-विधि में कम कुशल व्यक्तियों से भी काम चल जाता है और अल्प लचीली मिट्टियों का भी लाभ-सहित उपयोग हो सकता है। यदि ढालने के लिए घोला बनानेवाली मिट्टी अधिक लचीली हो तो यह साँचे की भीतरी सतह पर एक अपारगम्य तह बनायेगी, जिसके कारण साँचे द्वारा पानी के अवशोषण में बाधा पड़ती है। ढले हुए पात्र, दबाव-विधि या चाक-विधि से बने पात्रों की अपेक्षा अधिक हलके तथा कम मजबूत रहते हैं। कारण दबाव व चाक-विधि में पात्र कम सरल होता है। ढले पात्रों में दबाव-विधि या जाली-विधि से बने पात्रों की अपेक्षा पकाने पर आकुचन अधिक होता है। बहुत-सी विषम आकृतिवाले पात्र सरलता से ढाले जा सकते हैं, जब दूसरी विधियों से उन्हें बनाना असम्भव या काफी कठिन होता है। परन्तु ढालने के लिए अधिक सख्या में साँचों की आवश्यकता होती है, जो कुछ काल के प्रयोग से बेकार हो जाते हैं।

मिट्टी-घोले से साँचे को भरे रखने का समय, मिट्टी के लचीलेपन, प्लास्टर की अवशोषण शक्ति, प्लास्टर की शुष्कता और बननेवाले पात्रों की मोटाई पर निर्भर करता है। यह समय (विशेषकर भारी तथा मोटे पात्रों के लिए) कम किया जा सकता है। समय कम करने के लिए साँचे को चारों ओर वायुरुद्ध ढक्कन से घेरकर साँचे के बाहर सब ओर शून्य उत्पन्न किया जाता है या साँचे के भीतर स्थिर वायु दबाव रखा जाता है।

जब सजावट के लिए एक से अधिक प्रकार की रंगीन मिट्टियों का प्रयोग किया जाय तो पहले साँचे पर रंगीन मिट्टियाँ ब्रुश से लगा दी जाती हैं और तब साधारण घोल साँचे में साधारण तरीके से डाला जाता है।

अच्छा ढलाई घोला तैयार करना सरल कार्य नहीं है। वास्तव में घोला बनाने से पूर्व प्रत्येक प्रकार की मिट्टी के विशेष गुण अलग से अध्ययन किये जाने चाहिए। ढलाई घोले का साधारण नियन्त्रण आपेक्षिक घनत्व तथा श्यानता नापो द्वारा होता है। आपेक्षिक घनत्व पानी और मृत्पिण्ड की मात्राओं के अनुपात पर निर्भर करता है। श्यानता का नियन्त्रण क्षारीय लवणों द्वारा होता है। घोले के तापक्रम का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यह पता चल चुका है कि उच्च तापक्रम से घोले की तरलता बढ़ जाती है। विभिन्न लवणों का घोले पर विभिन्न प्रभाव होता है। सोडियम कार्बोनेट कुछ काल तक घोले की तरलता बढ़ाता है। परन्तु मिट्टी-घोले में अधिक सोडियम सिलिकेट होने पर, स्थानीय स्कन्दन के कारण घोला जमकर नीचे बैठ जाता है। श्राम (Schramm) और हाल ने दिखाया है कि टैनिन व गैलिक अम्ल मिट्टी-घोले में रक्षक कलिल का काम करते हैं, कारण मिट्टी को जम कर बैठने नहीं देते।

मिट्टी-घोले की श्यानता कम करने के लिए सोडियम कार्बोनेट की अपेक्षा सोडियम सिलिकेट और कास्टिक सोडा अधिक प्रभावशाली हैं। यदि केवल सोडियम कार्बोनेट का प्रयोग किया जाय तो घोले का तल-तनाव (Surface tension) अधिक हो जाता है तथा साँचे में डालते समय घोला बूंदों के रूप में विभक्त हो जाता है, जैसे कि पारा उँडेलते समय उसकी बूँदें बन जाती हैं। इस दोष को बिन्दु-दोष (Balling) कहते हैं। इसके कारण पात्र के बीच में हवा रह सकती है, अतः पात्र में त्रुटि आ सकती है।

यदि केवल सोडियम सिलिकेट प्रयोग किया जाय तो घोल साँचे में डालते समय तारमय हो जाता है अर्थात् गाढ़ी चाशनी की भाँति तारों में बहता है। इन दोनों दोषों को दूर करने के लिए सोडियम कार्बोनेट और सोडियम सिलिकेट का उचित मिश्रण प्रयोग में लाया जाता है। उचित मिश्रण प्रयोग करने से घोला ठोस धारा के रूप में बहेगा और अपने अन्दर हवा के बुलबुले खींचने की प्रवृत्ति भी नहीं रखेगा। यदि केवल कास्टिक सोडा का ही प्रयोग किया जाय तो घोला कुछ समय रखने पर गाढ़ा हो जायगा। साधारण श्वेत मिट्टी के मिश्रण-पिण्ड से पात्र बनाने के लिए ०.३ प्रतिशत क्षार डालने से अच्छा ढलाई घोला तैयार हो सकता है। यह ०.३ प्रतिशत क्षार की मात्रा सोडियम कार्बोनेट तथा सोडियम सिलिकेट की समान मात्राएँ मिलाकर बनाते हैं। परन्तु स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्रों, जैसे मोटे मृत्पात्रों की ढलाई के लिए, सोडियम सिलिकेट का प्रयोग अधिक होना चाहिए। सोडियम सिलिकेट पात्रों को कठोर व अधिक ठोस बनाता है। जिस मिट्टी-घोले में बॉलमिट्टी या लचीली आग्नेय-मिट्टी का प्रयोग नहीं किया गया हो, उसमें कार्बोनेट की मात्रा कम करके सिलिकेट की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। ऐसा करने से ढलाई के लिए उपयोगी गुण उत्पन्न हो जाते हैं।

मिट्टियों के साथ क्षार मिलाने में कुछ प्रारम्भिक घण्टों का समय बड़ा ही महत्वपूर्ण है, कारण इस समय घोले के अन्दर परिवर्तन होते हैं। यदि मिट्टी इस समय विशेष कर क्षार मिलाने के बाद पूरी तरह से चलायी न गयी तो घोला समाग नहीं होगा और ढालने में परेशानी होगी। यदि ढलाई-घोला अधिक काल तक वातावरण में खुला छोड़ दिया जाय तो हवा में उपस्थित कार्बन डाई-आक्साइड घोले की ऊपरी सतह पर एक तह बना लेती है। यदि इस तह को तोड़कर मिला दिया जाय तो इस घोले से ढले पात्रों की सतह पर भूरे रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं।

पात्रों की सफाई (Finishing)—इस प्रक्रम में पात्र को पकाने के हेतु,

तैयार करने के हेतु हाथ से की जानेवाली बहुत-सी क्रियाएँ हैं। इस प्रक्रम के सदैव दो मुख्य उद्देश्य रहते हैं—

(१) यदि पात्र के विभिन्न भाग एक ही या अधिक विधियों से अलग-अलग बनाये गये हों तो उन भागों को जोड़ना।

(२) आकृति की किसी कमी को ठीक करना और पात्र को साफ करना।

चाय पात्र, चाय के प्याले आदि वस्तुएँ भिन्न भागों में बनायी जाती हैं। ये विभिन्न भाग उसी घोले से जोड़े जाते हैं, जिससे पात्र बनते हैं। जोड़ने की क्रिया जुड़नेवाले दोनों भागों के बहुत सूख जाने से पूर्व ही होनी चाहिए। जोड़ते समय दोनों भागों की गीलेपन की एक ही अवस्था होनी चाहिए। अधिक शुष्क अवस्था में जोड़ने पर जोड़ या तो सुखाने में ही चटक जायगा और यदि सुखाने पर न चटका तो पकाते समय अवश्य चटक जायगा।

दबाव-विधि व ढालने की विधि से बने पात्रों की आकृतियों में दोष मुख्यतः साँचों के जोड़ पर होता है। ये दोष एक छोटे चाकू से छीलकर दूर किये जाते हैं तथा ऐसा करते समय चाकू से बने निशान एक भीगे स्पज से पोछकर दूर किये जाते हैं। यदि गड्ढे या बारीक चटकाव जैसे दोषों को ठीक करना हो तो ये घोले की थोड़ी-सी मात्रा भरकर दूर किये जाते हैं। ये दोष साँचों का प्रयोग करते समय आ जाते हैं। तश्तरी व प्यालों पर उस समय पालिश की जाती है जब वे सूख जाते हैं। तश्तरियों को घूमनेवाले एक चक्र पर रखकर प्रथम ऐमेरी या बालू कागज से और बाद में फलालेन के टुकड़े से रगड़कर साफ किया जाता है। प्याले और दूसरे खोखले पात्रों पर पालिश के लिए गीली अवस्था में केवल स्पज का प्रयोग किया जाता है।

सुखाना—मृत्पात्र सुखाते समय पानी व ठोस कणों का पेचीला स्थानान्तरण अभी तक पूरी तरह से समझा नहीं जा सका है। ध्यान देने पर पता चलता है कि सुखाने के समय उत्पन्न हुए बहुत से दोष दूसरे विभिन्न कारणों से होते हैं। मिट्टी की एक वर्गाकार पट्टियाँ सूखकर आयताकार तथा मिट्टी का वृत्ताकार टुकड़ा सूखकर अण्डाकार हो सकता है। परन्तु ये क्रियाएँ विशेष कर मृत्पात्र के विभिन्न आकार के कणों के कारण हैं, जो मृत्पात्र का मिश्रण-पिण्ड गूँधते समय बन गये थे। यह सर्व-विदित है कि यदि मिट्टियों पर सुखाने से पूर्व या सुखाते समय यान्त्रिक या गुरुत्व-जनित प्रतिबल (Stresses) क्रिया करे तो आकुंचन अधिक होता है। अतः बड़ी पट्टियों में ऊर्ध्वाधर आकुंचन क्षैतिज आकुंचन की अपेक्षा अधिक होता है।

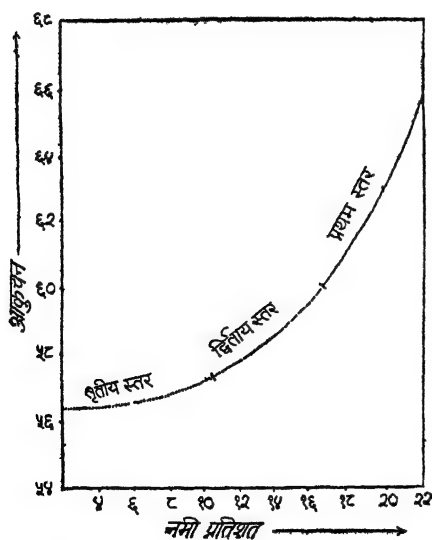
सूखने के समय सर्वप्रथम पात्र की ऊपरी सतह से पानी का कुछ भाग वाष्प बनकर उड़ जाता है। इस उड़ते हुए पानी का स्थान तुरन्त ही केशिका क्रिया द्वारा पात्र के भीतरी भाग से आया पानी ले लेता है। यह क्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि पिण्ड का केन्द्र शुष्क न हो जाय। जब तक पात्र के मिश्रण-पिण्ड में इतना काफी पानी रहता है कि ठोस कण आसानी से स्थानान्तरण कर सकें, उस समय तक कणों के बीच रहनेवाले पानी के निकल जाने से रिक्त हुए स्थान को ठोस कण एक दूसरे के पास आकर भर देते हैं। इस प्रकार इस अवस्था में पात्र में आकुचन मोटे रूप से खोये हुए पानी के बराबर होता है। जब ठोस कणों के बीच इतना काफी पानी नहीं रहता कि ठोस कण गति कर सकें तो और पानी निकलने पर ठोस कणों के बीच पात्र में रन्ध्रता उत्पन्न हो जाती है और यह क्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक कि पूरा पानी वाष्प बनकर न उड़ जाय। इस प्रकार हम सुखाने के प्रक्रम को तीन स्तरों में बाँट सकते हैं।

सूखने के प्रथम स्तर में पानी पात्र की ऊपरी सतह से शीघ्रतापूर्वक वाष्पीकृत होता है तथा इस पानी का स्थान केशिका क्रिया द्वारा पात्र के भीतर से आया पानी ले लेता है। जिन बातों से यह भीतर का पानी बाहर सरलतापूर्वक आता है, उन्हीं बातों से सूखने की क्रिया में शीघ्रता आ जाती है। यदि मिट्टी बहुत लचीली है, तो उसमें उपस्थित कलिल भीतरी केशिकाओं को बन्द कर देते हैं। परिणाम-स्वरूप पानी की भीतर से बाहरी सतह पर आने की गति कम हो जाती है। यह मार्ग-अवरोधता अम्लीय पानी के प्रयोग से दूर की जाती है। लवज्वाय (Lovejoy) ने १९३३ ई० में दिखाया कि मिट्टी के कड़े पिण्ड से बनाये गये पात्र के सम्पूर्ण पानी का लगभग ६० प्रतिशत भाग ऊपरी तल से वाष्पीकृत हो जाता है। इस जल को आकुचन जल कहते हैं, कारण इस स्तर पर मिट्टी का आकुचन लगभग निकले हुए जल के बराबर होता है। इस स्तर के अन्त पर मिश्रण-पिण्ड खराद तथा जोड़ने की क्रियाओं के लिए विशेष उपयुक्त समझा जाता है।

सूखने के द्वितीय स्तर में पानी की भीतर से बाहर आने की गति कम हो जाती है। अतः भीतर से बाहरी तल पर आये पानी की अपेक्षा बाहरी तल से पानी की अधिक मात्रा वाष्पीकृत होती है। इस क्रिया से पात्र में रन्ध्रता उत्पन्न हो जाती है। यदि पात्र अधिक ठोस नहीं है तो पात्र के ऊपरी तल के नीचे से वाष्पीकरण होता है। इस कारण इस स्तर पर जो थोड़ा बहुत आकुचन होता है वह पूरे पात्र में समान रूप में होता है। पात्र के अधिक भारी व ठोस होने पर ऊपरी तल से शीघ्र वाष्पीकरण के

कारण ऊपर की तथा भीतरी तहो में असमान आकुचन आता है। इस असमान आकुचन से पात्र में विकृति उत्पन्न होती है जिसके कारण पात्र सूखते समय चटक जाता है। आद्रता विधि से सुखाने पर विकृति तथा चटकना काफी सीमा तक दूर किया जा सकता है। इस स्तर के अन्त में पात्र का रंग कुछ हलका हो जाता है तथा पकाने के लिए उपयुक्त होता है।

सुखाने के तृतीय या अन्तिम स्तर में मिट्टी के सूक्ष्म कण आपस में एक दम चिपट जाते हैं और गति करने योग्य नहीं रह जाते। इस स्तर में पानी के निकल जाने से और आकुचन नहीं होता, परन्तु रन्ध्रता उत्पन्न हो जाती है। मिट्टी में उपस्थित कलिल पदार्थ के सिकुड़ने से केवल कुछ आकुचन आ जाता है। इस प्रकार इस स्तर में उत्पन्न रन्ध्रता पानी की हानि के बराबर होती है। इस स्तर को पूरा करने के लिए कृत्रिम साधनों से गरम किये गये सुखानेवाले प्रकोष्ठ की आवश्यकता पड़ती है। पर अधिकतर यह अवस्था भट्ठी में पकाने के प्रथम स्तर में पूर्णता को प्राप्त हो जाती है।



चित्र १६. मृत्पात्र के सूखने पर आकुचन

पात्र में पानी की मात्रा और उसके आकुचन का अनुमान १९३४ ई० में दिये गये मैसे (H H Macey) के रेखाचित्र से लग जायगा जो चित्र १६ में दिया गया है।

रेखाचित्र के अध्ययन से पता चलता है कि सूखने के प्रथम स्तर में जल-हानि लगभग ६ प्रतिशत और आयतन हानि भी ६ प्रतिशत है। अतः प्रथम स्तर की जल-हानि को आकुचन जल कहा जाता है। परन्तु द्वितीय स्तर में जल-हानि लगभग ७ प्रतिशत और आयतन हानि केवल लगभग ३

प्रतिशत है। जिसका अर्थ है कि शेष ४ प्रतिशत की जलहानि से पात्र की रन्ध्रता बढ़ती है। तृतीय स्तर में जल-हानि लगभग ९ प्रतिशत और आकुचन १ प्रतिशत से

कम है। इससे पात्र की रन्ध्रता बढ़ती है। प्रथम स्तर में आकुचन सर्वाधिक होता है तथा तृतीय स्तर में रन्ध्रता सर्वाधिक होती है।

चटकने तथा आकृति के बिगड़ने को रोकने के लिए सुखाते समय भीतरी भाग से ऊपरी तल पर पानी आने की गति बढ़ाने तथा ऊपरी तल से वाष्पीकरण के नियन्त्रण पर ध्यान देना चाहिए। बहुत-सी अधिक कलिल पदार्थ युक्त विशेष मिट्टियों में अम्ल या साधारण नमक मिलाने से इस दिशा में लाभ होता है। बहुत-सी मिट्टियों में, जो सुखाते समय बुरी तरह चटक जाती हैं, १ प्रतिशत तक साधारण नमक मिलाने से वे कार्य योग्य हो जाती हैं। अम्ल या साधारण नमक मिलाने से पात्र पकाने का परास बढ़ जाने से पकाने में भी सुधार हो जाता है, क्योंकि मिट्टी कम तापक्रम पर ही काँचीय होना प्रारम्भ कर देगी और उस तापक्रम पर आवश्यकता से अधिक पकेगी भी नहीं, जिस तापक्रम पर अम्ल या नमक-रहित मिट्टी पिघलना प्रारम्भ कर देगी। हुसेन (Hussain) ने सन् १९३० ई० में दिखाया कि १ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिलाने से, विकृत होने से मृत्पात्रों की हानि १३ प्रतिशत से कम होकर ३ प्रतिशत रह जाती है। इसका कारण यह है कि अम्ल और अम्लीय लवण, कलिल पदार्थ का ऊर्ध्वन करके केशिका क्रिया को सुधार देते हैं, जिससे पानी सरलतापूर्वक ऊपरी तल पर आ जाता है। लवज्वाय ने १९३३ ई० में दर्शाया कि साधारण मिट्टी में अम्ल द्वारा ऊर्ध्वन से पानी का बहाव नहीं बढ़ता तथा उसने देखा कि यह विधि केवल उन मिट्टियों के लिए लाभकारी है जिनमें कलिल पदार्थ इतना अधिक रहता है कि रन्ध्र और केशिकाएँ सरलता से बन्द हो सकें।

हवा की गति और तापक्रम का भी सूखने की प्रगति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। 50° से० पर पानी की श्यानता 20° से० वाले पानी की श्यानता की आधी होती है। अतः 50° से० पर सूखने की गति 20° से० की अपेक्षा लगभग दूनी होगी। 100° से० पर गरम हवा की सुखाने की शक्ति 20° से० की अपेक्षा २० गुनी से अधिक होती है। बिगेलो (Bigelow) ने पता लगाया कि यदि शान्त हवा में वाष्पीकरण की गति १०० मान लें तो १ किलोमीटर प्रति घण्टा गतिवाली साधारण हवा में यह वाष्पीकरण गति बढ़कर १०७ हो जायगी तथा २ किलोमीटर प्रति घण्टा गतिवाली हवा के लिए ११४ हो जायगी। यदि हमारे पास प्राप्य ताप की निश्चित मात्रा हो जिसमें या तो हवा का एक आयतन 60° से० से 100° से० तक गरम किया जा सकता हो या चार आयतन 60° से० से 70° से० तक गरम किये जा सकते हो, तो यह हिसाब

लगाया गया है कि अधिक आयतनवाली ठण्डी हवा में कम आयतनवाली गरम हवा की अपेक्षा केवल चौथाई सुखाने की शक्ति होगी।

सुखाने में शीघ्रता, मिश्रण-पिण्ड की रचना तथा वस्तु की आकृति और मोटाई पर निर्भर करती है। चूँकि प्रथम स्तर में सुखने की गति सर्वाधिक होती है, अतः कभी-कभी इस स्तर पर वस्तु को गीले कपड़े से ढँक देना लाभप्रद सिद्ध हुआ है। कभी-कभी पात्रयुक्त साँचे को ही इस प्रकार उलट देते हैं कि अधिक शीघ्रता से सुखना बन्द हो जाय। ऐसा करने से न तो पात्र की आकृति ही खराब होती है और न वह टूटता ही है। तेज गति से सुखाने पर आकुचन कम होता है तथा धीमी गति से सुखाने पर आकुचन अधिक होता है। इस प्रकार एक ही मिश्रण पिण्ड से बनी दो वस्तुओं में से एक में, जो २४ घण्टे में सुखायी गयी है, आकुचन लगभग ६ प्रतिशत देखा गया है और दूसरी में, जो १२० घण्टे में सुखायी गयी है, ७ प्रतिशत आकुचन देखा गया है।

सुखाने पर मिश्रण-पिण्ड का आकुचन पानी की उस मात्रा पर भी निर्भर करता है जो उसे बनाने में प्रयोग की गयी थी। यदि कोई मिश्रण-पिण्ड १० प्रतिशत पानी से मिलाकर बनाया गया हो तो उसका आकुचन लगभग १ प्रतिशत होगा, परन्तु यदि वही मिश्रण-पिण्ड २५ प्रतिशत पानी से बनाया गया हो तो वही आकुचन बढ़कर लगभग ६ प्रतिशत हो जायगा। इस प्रकार एक ढलाई-विधि से तैयार की गयी वस्तु में जॉली-विधि से तैयार की गयी वस्तु की अपेक्षा अधिक आकुचन होगा तथा अधिक रन्ध्रता होगी। इसका कारण ढलाई घोले में पानी की अधिक मात्रा का रहना है। जिन पात्रों का तल क्षेत्र अधिक होगा वे कम तल क्षेत्रवाले पात्रों की अपेक्षा कम समय में सूखेंगे। इस प्रकार एक ठोस ईंट के सुखने में खोखली या छिद्रमय ईंट की अपेक्षा अधिक समय लगेगा।

यदि किसी वस्तु में मोटे तथा पतले दोनों भाग हो तो कोने और किनारे—जैसे पतले भाग मोटे भागों की अपेक्षा शीघ्र सूख जाते हैं तथा मोटे भागों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। यदि यह तनाव पिण्ड की सहनशक्ति से अधिक है तो चटकान या दरारे पड़ जायँगी। अतः एक ही पात्र में बहुत मोटे भाग के पास बहुत पतला भाग नहीं बनाना चाहिए।

सुखाने की उपर्युक्त विधियों में से किसी एक का निर्धारण पात्र की अवस्था के अनुसार किया जाता है। मिट्टी घोंने के कारखानों में धुली मिट्टी कोयले की आग से

गरम की गयी भट्ठी पर सुखायी जाती है। श्वेत मृत्पात्र के कारखानों में बाँयलर की बेकार वाष्प से वस्तुओं को सुखानेवाले प्रकोष्ठ गरम किये जाते हैं। पोरसिलेन कारखानों में, ईट के कारखानों में तथा उन मृद्-उद्योगों में, जहाँ भारी वस्तुएँ बनायी जाती हैं, भट्ठियों का व्यर्थ ताप वस्तुओं के सुखाने में प्रयोग किया जाता है। भट्ठियों से बड़े नलों द्वारा ताप लाकर सुखानेवाले प्रकोष्ठ में समान रूप से चारों ओर से प्रयोग किया जाता है। अविराम गति प्रकोष्ठ भट्ठी से विकीर्णित ताप भट्ठी की छत पर रखे पात्रों को सुखाने में प्रयुक्त किया जाता है। आधुनिक सुखानेवाली सुरग भट्ठियों में आर्द्र तथा गरम हवा का प्रयोग पात्रों को सुखाने के लिए किया जाता है। इस विधि से पात्र शीघ्रता से सूखते हैं और उनके टूटने आदि का भी भय नहीं रहता।

सुखाने की आर्द्र-विधि—जब मिट्टी की गीली वस्तुएँ गरम हवा में सुखायी जाती हैं तो वाष्पीकरण ऊपरी तल से होता है, जिसके परिणाम-स्वरूप ऊपरी तल की पतली तह भीतरी भाग की अपेक्षा शीघ्र सूखने के कारण अधिक आकुंचित होती है। इस असमान आकुचन के कारण पात्र की सतह पर छोटे-छोटे चटकाव प्रकट होते हैं। इस प्रकार के चटकने को चैकिंग (Checking) कहते हैं। चैक पात्र की ऊपरी सतह पर छोटे-छोटे चटकाव होते हैं, जिनसे ऊपरी तल और भीतरी भाग में असमान आकुचन का संकेत मिलता है। चैक से उत्पन्न दोष की उपमा चिकन प्रलेपन के क्रेजिंग दोष से दी जा सकती है। सुखाने पर साधारण चटकाव बाहरी तल से लम्ब रूप में पिण्ड के केन्द्र की ओर जाते हुए होते हैं, परन्तु चैक के कारण सूक्ष्म चटकाव केवल धरातल पर होते हैं और धरातल से अधिक गहरे नहीं जाते। यदि सुखाते समय वाष्पीकरण पात्र के भीतरी भाग से कराया जाय, तो पात्र के तल में चैक दोष नहीं आयेगा। यह प्रभाव एक सुखानेवाले बन्द प्रकोष्ठ में गरम वाष्प भेजकर उत्पन्न किया जाता है। ऐसा करने से सुखानेवाली हवा की आर्द्रता और तापक्रम दोनों बढ़ जाते हैं। प्रकोष्ठ की आर्द्रता बढ़ जाने से पात्र के ऊपरी धरातल से वाष्पीकरण कम होगा, परन्तु पात्र के भीतर के भाग का तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ता जायगा। तापक्रम बढ़ते-बढ़ते एक ऐसा तापक्रम आयेगा, जिस पर भीतर का पानी सरलतापूर्वक ऊपर आ जाता है। इस तापक्रम को 'क्रांतिक तापक्रम' कहते हैं। जब पात्र के भीतर का तापक्रम क्रांतिक तापक्रम पर पहुँच जाय तो वाष्प बन्द करके प्रकोष्ठ की आर्द्रता कम कर दी जाती है और प्रकोष्ठ में गरम हवा भेजकर सुखाने की गति अधिक कर दी जाती है। इस विधि से सुखाने की क्रिया अधिक सुरक्षित और अधिक तीव्र हो गयी है। परन्तु अच्छा परिणाम

प्राप्त करने के लिए प्रत्येक मिट्टी के गुण तथा प्रत्येक मृत्पात्र के आकार व आकृति आदि का विचार करके क्रांतिक तापक्रम का निर्धारण करना चाहिए। इस विधि में पात्र, विशेष कर भारी पात्र, केन्द्र से बाहर की ओर सूखते हैं, जब कि सुखाने की दूसरी साधारण विधियों में पात्र बाहर से केन्द्र की ओर सूखता है। इस कारण इस विधि द्वारा सुखाने से पात्र न तो चटकते हैं और न उनके तल पर चैक दोष ही देखने में आता है।

छादनी (Scumming)—मिट्टी उद्योग के कारीगरों के लिए छादनी एक सर्व-व्यापी सिरदर्द हो गयी है। साधारण छादनी कुछ-कुछ सफेद रंग की एक परत होती है, जो सुखाने पर पात्र के ऊपरी तल पर आ जाती है, और पकाने पर स्पष्ट व स्थिर हो जाती है। पात्र पकाते या प्रयोग करते समय भी छादनी उत्पन्न हो सकती है। यद्यपि प्रायः यह सुखाते समय ही प्रकट होती है।

साधारण छादनी चूने के सल्फेट, जिप्सम या सेलेनाइट से बनती है। साधारण पानी इन खनिजों को ०.२५ प्रतिशत तक घुला सकता है, परन्तु यदि पानी में कार्बन-डाई-आक्साइड घुली हो तो पानी में यह सब खनिज काफी मात्रा में घुल जाते हैं। लगभग सभी ईंटों की मिट्टियों में जिप्सम विलयन या घोल के रूप में रहता है। मिट्टी के कारखानों के ढलाई-विभाग की खुरचन में निश्चित रूप से साँचों में से कुछ प्लास्टर आ जाता है। यह प्लास्टर पानी के साथ मिलाने से जलयोजित होकर घुल जाता है। मिट्टी-घोले में जल-निष्कासन प्रेस के पुराने पानी के प्रयोग से भी यह लवण मिट्टी-पिण्ड में आ जाता है।

जब पात्र धीरे-धीरे सूखता है, तो पात्र में उपस्थित घुलनशील लवण तल पर आ जाता है। अब चूँकि पानी सूख जाता है, अतः लवण तल पर जम जाता है। यह लवण-जमाव अधिक खुले भागों, जैसे प्याले के किनारों या मूर्तियों के नाक कान आदि पर सर्वाधिक हो जाता है। यह लवण-जमाव या छादनी प्रायः सफाई के समय दूर कर दी जाती है। यदि भीतरी भाग से ऊपरी तल पर पानी आने की अपेक्षा तल वाष्पीकरण की गति अधिक हो तो पात्र के तल के नीचे से ही सूखने की क्रिया होती है। ऐसी अवस्था में पात्र पर छादनी नहीं जमा होगी।

यदि भट्ठी की गैसें सुखानेवाले प्रकोष्ठ में सीधे या छिद्र आदि के होने से पहुँच जायँ, तो प्रायः पात्रों पर छादनी आ जाती है, क्योंकि यदि मिट्टी में चूने का कार्बोनेट है तो भट्ठी की गन्धक गैसों से नमी की उपस्थिति में यह सल्फेट में परिवर्तित हो जायगा। यह सल्फेट बाद में सूखी अवस्था में सरलतापूर्वक अलग किया जा सकता है, परन्तु

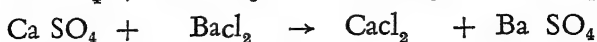
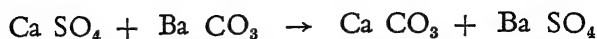
पकाने के पश्चात् पात्र पर स्थायी चकत्ते पड़ जाते हैं। यदि इसके बाद उस पर चिकन प्रलेप किया गया तो जहाँ छादनी थी वहाँ से चिकन प्रलेप छूटकर गिर जायगा।

सूखते समय छादनी न बनी हो, तो भी पकाते समय भी छादनी कभी-कभी बन जाया करती है। पकाने के आरम्भ में जब भट्ठी नमीदार ही होती है, राख में उपस्थित क्षारीय लवण चूने से संयोग कर सकते हैं और प्रायः उन भागों पर छादनी बनाते हैं जो भाग गैसों के अधिक सम्पर्क में थे।

प्रस्फुटन (Efflorescence)—शब्द प्रायः उस सफेद, पीली या हरी परत के लिए प्रयुक्त होता है जो भट्ठी से निकालने के पश्चात् साधारण ईंटों या अग्नि-ईंटों पर देखी जाती है। यह परत प्रायः भट्ठी से निकालने के पश्चात् कुछ मास या कुछ साल तक वातावरण में खुली रखी हुई ईंटों पर ही पायी जाती है। यदि पकाने का तापक्रम मिट्टी में उपस्थित घुलनशील लवणों, यथा सोडा, पोटैश तथा मैगनीशियम के सल्फेट क्लोराइड और सिलिकेट को अघुलनशील सिलिकेटों में परिवर्तित कर देने के लिए पर्याप्त नहीं है, तो घुलनशील लवण नम वातावरण तथा वर्षा के द्वारा घुलकर ऊपर आ जायेंगे। प्रायः दीवारों के जोड़ के निकट पाया जानेवाला श्वेत प्रस्फुटन इन घुलनशील लवणों के कारण हो सकता है जो गारा बनाने के लिए प्रयोग किये गये पानी तथा मिट्टी में उपस्थित थे। ईंटों पर बादामी छादन घुलनशील लौह-लवणों के कारण होता है। ये कम पकायी गयी ईंटों पर वातावरण की क्रिया से बनते हैं।

कम तापक्रम पर पकायी गयी अग्नि-ईंटों पर वेनेडियम लवण पीला तथा हरा प्रस्फुटन उत्पन्न करते हैं। ऐसा प्रस्फुटन जब पीला हो तो वह ईंट पर नमी की क्रिया से वेनेडिक अम्ल के बनने के कारण होता है। कोयला चूर्ण की उपस्थिति में नीला हरा रंग उत्पन्न होता है। यह रंग वेनेडिक अम्ल के अवकरण से वेनेडियम आक्साइड बनने के कारण होता है।

छादनी नियन्त्रण मिश्रण (Anti-Scum-mixtures)—मिट्टी में सोडा, चूना या मैगनीशिया के सल्फेट रहने पर, इस मिट्टी से बनी वस्तुओं पर छादनी का बनना रोकने के लिए कुछ छादनी नियन्त्रण-मिश्रणों का प्रयोग किया जाता है। इस कार्य के लिए बेरियम कार्बोनेट या बेरियम क्लोराइड या दोनों का प्रयोग किया जाता है। सल्फेट तथा बेरियम लवणों में द्विक विच्छेदन होकर अघुलनशील बेरियम सल्फेट तथा सोडा, चूना या मैगनीशियम के कार्बोनेट बनते हैं।



यद्यपि कैल्शियम क्लोराइड स्वयं एक घुलनशील लवण है, परन्तु यह छादनी या प्रस्फुटन नहीं बनाता ।

साधारण व्यवहार में सल्फेट का अधिक भाग बेरियम कार्बोनेट द्वारा दूर किया जाता है, और शेष बेरियम क्लोराइड की थोड़ी-सी मात्रा से, क्योंकि बेरियम क्लोराइड की अधिक मात्रा स्वयं ही छादन बनाती है । इस कार्य में केवल अवक्षेपित बेरियम कार्बोनेट ही सन्तोषजनक परिणाम देता है । प्राकृतिक कार्बोनेट या विदेराइट (Witherite) अच्छी तरह कार्य नहीं करते । जहाँ केवल थोड़ी-सी मात्रा की आवश्यकता हो वहाँ केवल बेरियम क्लोराइड ही लाभ सहित प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि पानी में घुलनशील होने के कारण बेरियम क्लोराइड सरलतापूर्वक क्रिया करता है ।

एक पेटेंट (Patent) के अनुसार छादनी बनानेवाली वस्तुओं, विशेष कर ईंटों के ऊपरी तल पर कार्बनिक पदार्थों का प्रलेप चढ़ा दिया जाता है । ईंटें सूखने पर छादनी इसी प्रलेप के ऊपर बनती है । अब पकाने पर कार्बनिक प्रलेप जल जाता है और परिणामतः छादनी छूटकर नीचे गिर जाती है ।

जब छादनी, मिट्टी में उपस्थित पाइराइट के कारण हो तो गन्धक को सावधानीपूर्वक जलाकर सल्फेट में बदल लेते हैं । फिर इस सल्फेट को अवकारक क्रिया द्वारा नष्ट कर देते हैं । पकाने की क्रिया का प्रथम स्तर समाप्त होने पर पाइराइट के कारण भय लगभग समाप्त हो जाता है । कोयले में कुछ चूने का पानी डालने से कोयले में उपस्थित गन्धक, सल्फर-डाई-आक्साइड (SO_2) नहीं बन पाता, वरन् सल्फेट बनकर राख के साथ निकल जाता है ।

साँचे (Moulds)—सम्भवतः कुम्हार के भण्डार में साँचे ही सब से मूल्यवान् भाग होते हैं । बड़े फूलदान से लेकर साधारणतम प्याली तक के प्रत्येक आकार व आकृति के साँचे बड़ी संख्या में होने चाहिए । बननेवाली वस्तु के अनुसार साँचे एक या अधिक भागों में बनाये जाते हैं । प्याला तथा तश्तरी आदि वस्तुओं के साँचे प्रायः एक ही भाग में बनाये जाते हैं, जब कि चीनी रखने के पात्र तथा सुराही आदि पात्रों को कई भागों में बनाया जाता है ।

मृत्पात्र-निर्माण उद्योग में प्रयोग किये जानेवाले साँचे प्रायः पकायी हुई मिट्टी या जिप्सम प्लास्टर से बनाये जाते हैं। पकायी मिट्टी से बने साँचे जिप्सम प्लास्टर के साँचो की अपेक्षा अधिक स्पष्ट तथा साफ पात्र बनाते हैं, अधिक काल तक अच्छी दशा में रहते हैं। परन्तु इनमें दो दोष हैं। सर्वप्रथम इनका प्रारम्भिक मूल्य काफी होता है। दूसरे इनकी अवशोषण शक्ति कम है। इस कारण प्लास्टर के साँचो की अपेक्षा, पकायी मिट्टी के साँचो की बहुत बड़ी सख्या में आवश्यकता पड़ती है। फिर भी प्यालो के हैण्डल और ऐसी ही दूसरी वस्तुओं के लिए पकायी मिट्टी के साँचे अब भी काफी प्रयोग किये जाते हैं। पत्तियाँ, हार आदि दूसरी सजावट की वस्तुएँ भी पकायी मिट्टी के साँचो से बनती हैं।

मृद्-उद्योग के लिए साँचे बनाने का अब जिप्सम प्लास्टर विश्व-प्रचलित पदार्थ है। यह इसकी अधिक अवशोषण शक्ति तथा कार्य करने की सरलता के कारण है। प्रयोग किया जानेवाला प्लास्टर अच्छा महीन पिसा और प्रयोग से पूर्व शुष्क स्थानों में रखा गया होना चाहिए। प्लास्टर पकाने के बाद १०-१५ दिन शुष्क स्थान में रखकर तब प्रयोग करे। ऐसा करने से साँचे मजबूत होते हैं और उनका कार्यकाल भी बढ़ जाता है।

साँचे, नमूने साँचे से बनाये जाते हैं। यह नमूना-साँचा आकृति में बननेवाली वस्तु से बिल्कुल मिलता-जुलता, परन्तु आकार में कुछ अधिक बड़ा बनाया जाता है। बड़ा इसलिए कि जिससे वस्तु पकाते समय आकुचित होकर ठीक आकार में आ जाय। नमूने गीली मिट्टी या जिप्सम प्लास्टर से बनाये जाते हैं। जब गोलाकार वस्तुओं, जैसे प्याला, जल-पात्र, विद्युत्-रोधक आदि का नमूना-साँचा बनाना हो तो प्लास्टर का बनाना अच्छा रहता है। परन्तु जीवाकृतियों तथा सजावट के नक्शों सहित बनाना हो तो पकी मिट्टी को प्रधानता दी जाती है।

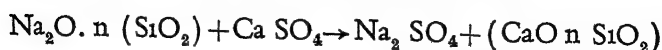
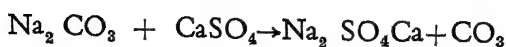
नमूने से प्राप्त प्रथम साँचा ढलाई के काम में नहीं लाया जाता। इस साँचे को प्राथमिक साँचा कहा जाता है। इस प्राथमिक साँचे से ढलाई द्वारा जो प्रथम नमूना निकलता है उसे केसिंग (Casing) कहते हैं और इसी केसिंग से ढलाई करके जो साँचे बनाये जाते हैं वही वस्तुओं के ढालने के लिए काम में लाये जाते हैं। जब केसिंग से कुछ साँचे ढाल लेने के पश्चात् केसिंग खराब हो जाता है, तो प्राथमिक साँचे से दूसरा केसिंग ढाल लेते हैं। प्रयोग करने से पूर्व साँचो को अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए,

और यदि उपयोग करते समय बीच-बीच में साँचे विधिवत् सुखा लिये जायें तो वे अधिक काल तक चलते हैं। कम तापक्रम पर अधिक काल तक सुखाने से साँचे का जीवन बढ़ जाता है।

केसिंग से कार्यापयोगी साँचा बनाने के लिए सर्वप्रथम केसिंग के धरातल से सब धूल आदि साफ की जाय तथा यदि केसिंग अधिक सूखा हो तो कुछ सेकण्ड पानी के तसले में उसे डुबा दिया जाय। अब घुलनशील साबुन के घोल में भीगे स्पज द्वारा इसका ऊपरी भाग अच्छी तरह चिकना कर दे। यदि प्लास्टर केसिंग पर साबुन-घोल का प्रयोग न किया जाय तो साँचे ढालते समय यह केसिंग ताजे प्लास्टर से चिपकेगा। भार के विचार से तीन भाग प्लास्टर को एक भाग पानी के साथ मिलाओ और तब तक बिलोडो जब तक कि प्लास्टर जमना न प्रारम्भ कर दे। इस क्रिया में लगभग ५ मिनट लगते हैं। अब प्लास्टर घोले को केसिंग में चक्राकार गति से डालो। घोले को चलाते रहो जिससे केसिंग और घोल के बीच से हवा के बुलबुले निकल जायें। प्लास्टर को जमने दो। प्रारम्भ में यह गरम हो जायगा। जब फिर ठंडा हो जाय तो साँचे को केसिंग से बाहर निकाल लो। लोहे के चाकू से खुरचकर साँचा साफ कर लिया जाता है या साँचे पर निशान बनाना या सख्या लिखनी हो तो लिख दी जाती है।

पानी के साथ अधिक या कम प्लास्टर का प्रयोग करके साँचे को इच्छानुसार कठोर या मुलायम बनाया जा सकता है। जिस कार्य के लिए साँचे का प्रयोग होगा उसके अनुसार ही साँचे को कठोर या मुलायम बनाया जाता है। मृद्-उद्योग में ढलाई साँचा, जॉली-विधि या दबाव-विधि के साँचे से मुलायम बनाया जाता है।

जब प्लास्टर साँचे अधिक काल तक नम स्थान पर रखे जायें तो उनकी सतह पर रोवे-जैसा एक सफेद पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। इस पदार्थ की परीक्षा करने पर पता चलता है कि इसमें सोडियम सल्फेट की काफी मात्रा रहती है। इस सोडियम सल्फेट का कुछ भाग तो मिट्टी में उपस्थित घुलनशील लवणों से और कुछ भाग पानी में घुलित प्लास्टर पर सोडियम कार्बोनेट तथा सोडियम सिलिकेट की क्रिया से आता है। क्रिया में सोडियम सल्फेट, सिलिकेट या कार्बोनेट और कैल्शियम सल्फेट के द्विकविच्छेदन से बनता है, जैसा कि निम्न समीकरण से स्पष्ट हो जायगा।



सोडियम कार्बोनेट तथा सिलिकेट ढलाई घोल बनाते समय विद्युद्विश्लेष्य के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। घुलनशील फास्फेट जैसे पदार्थों की उपस्थिति से प्लास्टर की पानी में घुलनशीलता बढ़ जाती है। इसी कारण अस्थि पोरसिलेन बनाने के लिए ढलाई साँचे उतने दिन नहीं चलते जितने दिन साधारण पोरसिलेन वस्तुएँ बनाने के ढलाई साँचे चलते हैं। नम स्थान में रखे प्लास्टर साँचों पर सोडियम सल्फेट (ग्लॉवर लवण) के बढ़ते हुए केलासो द्वारा बड़ा दबाव पड़ता है जिससे साँचा सड़ जाता है। इस केलास के दबाव का प्रभाव प्रयोग द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। यदि इस लवण का घोल मिट्टी के बर्तन में डाला जाय तो घोल सरन्ध्र पात्र के पूरे भाग में अन्दर चला जायगा जिससे पूरा पात्र सड़ जायगा और साधारण धक्के से ही पात्र टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। यह तथ्य इस बात की व्याख्या करता है कि नम स्थान में अधिक काल तक रखे साँचे क्यों सड़ जाते हैं और कार्य करते समय टूट जाते हैं।

पकाने के सिद्धान्त—मृद-वस्तुओं में कठोर पोरसिलेन को छोड़कर (जो मृत्पात्रों में सर्वोत्तम हैं) सभी मृद-वस्तुएँ पकाते समय, मिट्टी पर अग्नि की पूरी क्रिया होने से पूर्व ही भट्ठी से निकाल ली जाती हैं। पात्र के पकाने की क्रिया इतनी नहीं की जाती कि पात्र के अन्दर तापजनित रासायनिक क्रिया पूर्ण रूपेण पूरी हो सके, वरन् विभिन्न पात्रों के लिए भिन्न स्तरों पर ही रोक दी जाती है। सरन्ध्र मृत्पात्रों के लिए पकाने की क्रिया उसी समय रोक दी जाती है, जब मिट्टी काफी कठोर हो गयी हो। उत्कृष्ट श्वेत मृत्पात्र, मिट्टी कणों का गलना प्रारम्भ होने तक ही पकाये जाते हैं। कडी मिट्टी वस्तुओं तथा मृदु पोरसिलेन पात्रों के पिण्ड न्यूनाधिक पूरी तरह से काँचीय हो जाते हैं। जिसके कारण मृदु पोरसिलेन में अल्प पारदर्शकता आ जाती है।

शुद्ध चीनी मिट्टी पर ताप का प्रभाव पिछले अध्याय में वर्णन किया जा चुका है। परन्तु जब मिट्टी अशुद्ध हो या उसमें कुछ खनिज मिला दिये जायें तो क्रिया विषम हो जाती है। पकाते समय पात्र के मृत्पिण्ड में होनेवाली क्रियाओं को समझने के लिए पकाने का पूरा काल विभिन्न स्तरों में बाँटा जा सकता है। परन्तु एक स्तर के समाप्त होने से पूर्व ही दूसरा स्तर प्रारम्भ हो जाता है, क्योंकि तापक्रम को ऐसे भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता जो एक ही समय होनेवाली दो विभिन्न क्रियाओं को अलग-अलग कर सके।

(१) धन्न या वाष्पीकरण स्तर (१५०° से० तक)—वास्तव में यह स्तर सुखाने

मे सम्मिलित होना चाहिए। इस काल मे पात्र बनाते समय प्रयोग किये गये पानी का वही भाग, जो सुखाने के प्रकोष्ठ मे नहीं निकल सका था तथा अवशोषित पानी दूर हो जाता है। पकानेवाले (Fireman) का इस स्तर मे कार्य, पात्र को हानि पहुँचाये बिना पानी की अधिकाधिक मात्रा शीघ्र ही दूर कर देना होता है। साथ ही बिना उबले ही पानी को वाष्पीकृत होने के लिए काफी समय देना चाहिए। इससे पात्र का तल खराब नहीं होता। पकाने की क्रिया अति शीघ्रता से करने पर सामान चटककर टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। यदि जलवाष्प जितनी शीघ्रता से बनता है, उतनी ही शीघ्रता से भट्ठी से न निकल जाय तो भट्ठी मे रखे सैगर या पात्रो पर द्रवीभूत हो जायगा। विशेष कर सल्फ्यूरस गैसो के कारण यह द्रवीभूत वाष्प काफी सान्द्र अम्ल के रूप मे हो जाता है। सल्फ्यूरस गैसे कोयले मे उपस्थित गन्धक के ओपदीकरण से बन जाती है। चूँकि भट्ठी से गुजरनेवाली हवा ही मुख्य रूप से इस धूमकाल मे वाष्प तथा दूसरे वाष्पशील पदार्थों को बाहर ले जाती है। अतः भट्ठी मे हवा की काफी मात्रा बहनी चाहिए। इस काल को धूमकाल या वाष्पीकरण काल इसलिए कहते हैं कि इस काल मे तापक्रम ऊँचा न होने के कारण भट्ठी के भीतर धूम तथा जलवाष्प भरा रहता है। धूमकाल का समय पकानेवाली वस्तुओं के प्रकार पर निर्भर करता है। चूर्ण दबाव विधि से बनी टालियो या खपडो (जिन्हे पकाने से पूर्व सुखाया नहीं जाता) का धूमकाल प्रायः ४०-४५ घंटे है जब कि पोरसिलेन पात्रो का धूमकाल प्रायः ५-६ घंटे है।

(२) विच्छेदन-स्तर (200° से 400° से० तक)— 200° से० से अधिक तापक्रम होने पर वाष्पशील कार्बनिक पदार्थ विच्छेदित होना प्रारम्भ कर देते हैं, मिट्टी मे उपस्थित सभी जलयोजित लौह आक्साइड निर्जलित होना प्रारम्भ कर देते हैं तथा सल्फाइड विच्छेदित हो जाते हैं। यदि अधिक मात्रा मे मिट्टी मे जलयोजित लौह आक्साइड या कार्बनिक यौगिक न हो तो इस अवस्था मे भट्ठी की पकाने की गति काफी बढ़ायी जा सकती है। जब भट्ठी मे अन्दर तापक्रम लगभग 400° से० हो या जैसे ही भट्ठी लाल होना प्रारम्भ करे तो पकाने की गति फिर कम कर देनी चाहिए।

(३) निर्जलन-स्तर (450° - 600° से० तक)—इस स्तर मे मिट्टी का रासायनिक रूप से सयोजित जल बहुत शीघ्रता से विच्छेदित होना प्रारम्भ होता है। अतः यदि पकाने की गति धीमी न की गयी तो पात्र को हानि पहुँच सकती है। इस

स्तर पर मिट्टी में गैसों को अवशोषित करने की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ जाती है और मिट्टी अम्लों की ओर अधिक क्रियाशील हो जाती है। श्वेत मृत्पात्रों की भट्ठी में इस स्तर पर निकली जलवाष्प का आयतन भट्ठी के आयतन से ५० गुना अनुमान किया गया है। इस कारण इस वाष्प को काफी हवा द्वारा निकाल देना चाहिए। नहीं तो मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों के ओपदीकरण में बड़ी कमी आ जायगी क्योंकि कार्बन अपने कणों के चारों ओर हवा की उपस्थिति में ही पूरी तरह जल सकता है।

यदि मिट्टी में कार्बन, एन्थ्रासाइट (Anthracite) के रूप में है तो बिना किसी कठिनाई के जल जाता है। बिटूमिनस कार्बन में हाइड्रोकार्बन अधिक रहते हैं और कुछ तेल भी होते हैं। ये तेल तथा हाइड्रोकार्बन स्थानीय दहन उत्पन्न करते हैं और मिट्टी के ओषदीकरण में बाधा डालते हैं। लिग्नाइट कार्बन वाष्प की अधिक मात्रा उत्पन्न करता है, परन्तु बिटूमिनस कार्बन के बराबर कठिनाई नहीं डालता है। यदि इस स्तर पर भट्ठी से अग्नि मिट्टी की वस्तुएँ निकालकर देखी जायें तो उनका रंग काले से भूरे रंग तक पाया जाता है। यह रंग मौलिक मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करता है। अब मिट्टी, पानी के साथ मिलाने पर लचीला होने का गुण खो देती है, परन्तु अभी तक काफी कठोर और मजबूत नहीं हो पाती।

(४) ओषदीकरण-स्तर (350° से 900° से०)—यह काल वास्तव में अल्प तापक्रम पर जलनेवाले कार्बनिक पदार्थ या गन्धक यौगिकों के ओषदीकरण से प्रारम्भ होता है। यह लगभग 350° से० से प्रारम्भ होकर उस समय तक चलता है जब तक कि 900° से० से ऊपर के तापक्रम पर कार्बन का अन्तिम कण तक नहीं जल जाता। यह काल कभी-कभी निर्जलन काल के साथ भी चलता है तथा कभी-कभी अगले स्तर से भी चलता रहता है।

मिट्टी में उपस्थित लौह सल्फाइड (FeS_2) 400° से० पर विच्छेदित होना प्रारम्भ हो जाता है, परन्तु फेरस सल्फाइड (FeS) को ओषदीकरण द्वारा लौह आक्साइड बनाने के लिए और ऊँचे तापक्रम, लगभग 700° से० की आवश्यकता पड़ती है। यदि इन गैसों को शीघ्रतापूर्वक निकालने का अच्छा प्रबन्ध हो तो मृत्पात्रों से उत्पन्न गन्धक गैसें इस ऊँचे तापक्रम पर कोई हानि नहीं पहुँचाती। मिट्टी में

उपस्थित कैल्शियम कार्बोनेट लगभग 460° से० या अधिक पर मुक्त चूना में विच्छेदित हो जाता है। कार्बन और गन्धक में फेरस आक्साइड की अपेक्षा आक्सीजन की ओर अधिक आकर्षण है। अतः फेरस आक्साइड को फेरिक आक्साइड में बदलने से पूर्व यह आवश्यक है कि कार्बन तथा गन्धक पूर्णरूपेण दूर कर दिये जायें। फेरिक आक्साइड के बनने पर ही लौह मिट्टियाँ पकाने पर लाल रंग की हो जाती हैं। यदि ओषदीकरण ठीक प्रकार से न किया गया तो फेरस आक्साइड मिट्टी में उपस्थित सिलीका से संयोग कर जाता है तथा बना हुआ यौगिक न्यून तापक्रम पर ही पिघल जाता है, और यदि तापक्रम काफी अधिक हुआ तो पात्र फूलकर झाँवा की तरह हो जाता है। कार्बन के पूर्णरूपेण ओषदीकरण में असफलता के कारण पात्र के अन्दर काले चकत्ते पड़ जाते हैं, जिन्हें ब्लैक कोर (Black core) कहा जाता है। विशेष कर ईंटों तथा दूसरी मोटी वस्तुओं पर यह दोष अधिक देखने में आता है। ऐसा इस कारण होता है कि ऊपरी धरातल के पास क्रमशः बढ़ते हुए तापक्रम से रन्ध्र बन्द हो जाते हैं तथा इस प्रकार पात्र के केन्द्र में हवा का पहुँचना बन्द हो जाता है, जिससे पात्र के भीतरी भाग में कार्बन अपरिवर्तित रह जाता है और काले चकत्ते या ब्लैक कोर को जन्म देता है।

इस स्तर पर मिट्टी के विच्छेदन से प्रायः मुक्त सिलीका, मुक्त एल्यूमिना तथा चूना, मैग्नीशिया, लोहे और शारों के आक्साइड प्राप्त होते हैं। यदि 900° से० पर भट्ठी से चीनी मिट्टी का नमूना निकाला जाय तो गुलाबी रंग देखने में आता है। यह रंग चीनी मिट्टी से मुक्त लौह आक्साइड के अलग हो जाने से होता है। तापक्रम बढ़ने पर लोहा एल्यूमिना तथा सिलीका से संयोग कर रंगहीन पदार्थ बनाता है, परन्तु यदि मिट्टी में कार्बन उपस्थित हुआ तो लोहा एल्यूमिना से उस समय तक संयोग नहीं कर सकता जब तक कि पूरा कार्बन न समाप्त हो जाय। मुक्त लौह आक्साइड के कारण पके हुए पदार्थों में विशेष रंग आ जाता है। मिट्टी में कैल्शियम आक्साइड की उपस्थिति का रंग पर काफी प्रभाव पड़ता है। चूने की उपस्थिति से लौह आक्साइड का लाल रंग, मासल रंग या पीले रंग में बदल जाता है। यदि लोहा ठीक प्रकार से ओषदीकृत नहीं हुआ तो चूने के साथ मिलकर हरा रंग उत्पन्न करेगा, जैसा कि साधारण काँच में देखने में आता है।

इस काल की समाप्ति पर कार्बनिक पदार्थों के निकल जाने और कार्बोनेट तथा सल्फाइड के विच्छेदन से पात्र सरन्ध्र हो जाता है। कुछ तो स्फटिक के आयतन में

वृद्धि से तथा कुछ मृत्सार की आयतन-वृद्धि से पात्र का बाहरी आयतन भी कुछ बढ़ जाता है। ब्राउन और मोण्टगोमरी (Brown and Montgomery) ने दर्शाया है कि यदि केओलिन को 600° से० तक गरम किया जाय तो, इसके भार में लगभग १३ प्रतिशत कमी आ जाती है और आपेक्षिक घनत्व २.५ हो जाता है। 600° से० पर यह हानि १४ प्रतिशत होती है, परन्तु आपेक्षिक घनत्व २.५ ही रहता है। इस स्तर तक पकायी हुई मृद्-वस्तुओं को बिस्कुट फायर्ड (Biscuit fired) कहा जाता है और पोरसिलेन पात्र प्रायः इस स्तर पर चिकन प्रलेपन के लिए निकाल लिये जाते हैं।

(५) काँचीय-स्तर (900° - 1300° से० तक) — तापक्रम और बढ़ने पर मिट्टी में उपस्थित कुछ पदार्थ आपस में संयोग कर सहज गलनीय पदार्थ बनाते हैं। इन पदार्थों को सुद्राव यौगिक कहते हैं। मिट्टी के कुछ सुद्राव यौगिक निम्नलिखित हैं।

2 CaO SiO ₂	गलनांक	675° से०
CaO. SiO ₂ 3 8 Na ₂ O SiO ₂	„	932° से०
4Fe SiO ₃ CaO SiO ₂	„	1030° से०
FeO SiO ₂	„	1100° से०
Na ₂ O SiO ₂ 2 45 CaO SiO ₂	„	1132° से०

यह सहज गलनीय पदार्थ गलकर पात्र के रन्ध्रों में बहकर उनमें से कुछ रन्ध्रों को काँचीय सीमेंट की भाँति भर देते हैं। यदि पात्र इस स्तर पर भट्ठी से निकाल लिया जाय, तो उसमें अच्छी मजबूती, बजाने पर अच्छा शब्द (Ring) तथा कम रन्ध्रता पायी जाती है। यह प्रारम्भिक काँचीय अवस्था है और अधिकतर मृत्पात्र पकाने के इसी स्तर पर भट्ठी से निकाल लिये जाते हैं। परन्तु विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के लिए इस स्तर पर आने के तापक्रम भिन्न होते हैं। साधारण ईंटे, खपड़े और टालियाँ इस अवस्था में लगभग 900° से० पर ही आ जाती हैं, जब कि अग्नि-ईंटों को इसके लिए लगभग 1300° से० या अधिक तापक्रम की आवश्यकता होती है। श्वेत मृत्पात्र यह अवस्था 1100° से० पर प्राप्त कर पाते हैं। इससे अधिक गरम करने पर काँचीय तरल पदार्थ ठोस कणों को घुला लेता है जिससे पात्र की रन्ध्रता क्रमशः नष्ट होती जाती है, और पात्र में काँचीय अवस्था आ जाती है। कडी मिट्टी की वस्तुएँ तथा मृदु पोरसिलेन की वस्तुएँ पकाने के इसी स्तर पर भट्ठी से

निकाल ली जाती है। पात्र में काँचीयन की मात्रा पकाये हुए पात्र के जल अवशोषण से निश्चित की जाती है। अच्छे कड़ी मिट्टी के बर्तनों को ३ प्रतिशत से अधिक पानी नहीं अवशोषित करना चाहिए। मृदु पोरसिलेन का जल-अवशोषण ०.२५ प्रतिशत से कम होना चाहिए।

जो पदार्थ कई विभिन्न खनिजों से मिलकर बना हो उसका कोई निश्चित द्रवणांक नहीं होता, परन्तु गलना या काँचीय होना तापक्रम के एक परास के भीतर चलता रहता है। तापक्रम के इस परास को काँचीय मण्डल कहते हैं। मृत्तिका-उद्योग में मिश्रण-पिण्डों का काँचीय मण्डल यथासम्भव अधिक होना चाहिए, जिससे एक भट्ठी के विभिन्न भागों में रखे गये पात्र रंग, आकार तथा घनत्व में समान हो सके।

यदि पकाने का तापक्रम अधिक उच्च हो जाय तो पिघले हुए पदार्थों का अनुपात इतना अधिक हो जायगा कि ठोस पदार्थ उसे सहन नहीं कर सकेंगे और पात्र आकृति खो देगा। इस विषय में तरल फेल्सपार से प्राप्त काँच, चूने या मैगनीशिया की अपेक्षा अच्छा द्रावक है, क्योंकि फेल्सपार की श्यानता अधिक है, अतः कुछ अधिक पकाने पर भी पात्र की आकृति नहीं खो पाती।

कठोर पोरसिलेन में केवल फेल्सपार ही द्रावक के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह 1100° से 1200° से के बीच पिघलकर अधिक श्यान काँच में बदल जाता है। यह तरल द्रव अपने में धीरे-धीरे स्फटिक कणों को घुला लेता है। स्फटिक कणों के घुलने की मात्रा, स्फटिक के आकार, तापक्रम तथा समय पर निर्भर करती है। वास्तव में तरल फेल्सपार का व्यवहार एक असम्पृक्त घोल के व्यवहार के समान होता है।

(६) **केलासीय-स्तर** (1300° से ऊपर) — जब तापक्रम 1300° से अधिक हो जाता है, तो एक नया यौगिक मूलाइट ($3Al_2O_3 \cdot 2SiO_2$) बनता है। इस मूलाइट की भी सिलीमेनाइट की भाँति ही केलासीय रचना होती है। इन केलासो की प्रकृति तथा मात्रा से ही वास्तविक पोरसिलेन की कृत्रिम या मृदु पोरसिलेन से भिन्नता का पता चलता है। वास्तविक कठोर पोरसिलेन बनाने के लिए केवल रासायनिक संयोजन का महत्त्व कम है जब तक कि पात्र के भीतर केलासीय रचना उत्पन्न करने के लिए पात्र ठीक प्रकार से पकाया न गया हो। यदि ताप-

जनित रासायनिक क्रियाएँ पूर्ण हो चुकी हो तो पात्र का पतला भाग सूक्ष्मदर्शी (अणुवीक्षण यंत्र) में देखने पर असंख्य छोटे-छोटे सुई आकार के केलासो के जालसूत्र सहित एक समाग काँचीय पदार्थ दीखेगा। इस प्रकार की पोरसिलेन सभी बातों में समाग और उत्कृष्ट कोटि की पोरसिलेन होती है।

पकाने के अन्तिम काल में भट्ठी को कुछ समय तक एक ही स्थिर तापक्रम पर रखा जाता है, जिससे पकायी हुई वस्तु में श्रेष्ठता आ जाती है। स्थिर तापक्रम पर अधिक काल तक गरम करने को ताप-शोषण (Soaking) कहा जाता है। इस ताप-शोषण से भट्ठी में रखी वस्तुओं पर सब तरफ से समान ताप पड़ता है। साथ ही भारी वस्तुओं में भी ताप सरलता से प्रवेश कर जाता है, क्योंकि भारी तथा ठोस वस्तुओं में ताप बहुत धीरे-धीरे ही प्रवेश कर सकता है। कुछ भट्ठियों में विभिन्न भागों का तापक्रम 50° से 100° से० तक बदलता रहता है, और विभिन्न भागों में भट्ठी के उचित तापशोषण द्वारा एक ही तापक्रम लाना परमावश्यक हो जाता है। धीरे-धीरे गरम करना केलासो की उत्पत्ति में भी सहायक होता है तथा केलास बनना कठोर पोरसिलेन में बहुत ही आवश्यक है।

चतुर्थ अध्याय

चिकन-प्रलेप तथा रंजक

चिकन-प्रलेप खनिजों तथा रसद्रव्यों से सावधानतापूर्वक बनाये गये मिश्रण होते हैं, जो मिट्टी की वस्तुओं पर लगाकर उचित तापक्रम पर गरम करने से पिघलकर द्रव बन जाते हैं तथा वस्तु की सतह को समान रूप से ढँक लेते हैं। ठंडा करने पर यह द्रव काँच के रूप में जम जाता है और काँच की भाँति चमकने लगता है। इसी को उद्योग में चिकन-प्रलेप या ग्लेज (glaze) कहते हैं। एक अच्छे चिकन-प्रलेप का सगठन ऐसा होना चाहिए कि पात्र पर मजबूती से चिपक जाय, अम्ल, क्षार आदि की इस पर क्रिया न हो तथा बाहरी धक्को और घर्षण से चटककर छूट न जाय। पकाने के तापक्रम के अनुसार चिकन-प्रलेपों के सगठन काफी भिन्न होते हैं। चिकन-प्रलेप के लिए संक्षेप में केवल प्रलेप शब्द का भी प्रयोग किया जायगा।

कठोर प्रलेप—इस प्रकार के प्रलेप का पोरसिलेन पात्रों तथा कड़ी मिट्टी की वस्तुओं पर प्रयोग किया जाता है। ये प्रलेप 1200° से० से अधिक तापक्रम पर पिघलते हैं। इनमें एल्यूमिना और सिलीका अधिक रहती है। इसके अतिरिक्त क्षार, चूना या मैगनीशिया (मैगनीशियम आक्साइड) भी रहते हैं।

मध्यम प्रलेप—ये प्रलेप उत्कृष्ट श्वेत मृत्पात्रों के लिए प्रयोग किये जाते हैं और 1050° से० तथा 1150° से० के बीच पिघलते हैं। इनमें एल्यूमिना और सिलीका कम रहती है। सिलीका के कुछ भाग के बदले बोरिक आक्साइड रहता है। थोड़ा लैंड आक्साइड द्रवणांक कम करने के लिए रखा जाता है।

मृदु प्रलेप—ये प्रलेप निम्न तापक्रम पर पकनेवाले मृत्पात्रों के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं और लगभग 900° से० पर पिघलते हैं। इन प्रलेपों में प्रायः क्षार, लैंड आक्साइड तथा न्यून मात्रा में एल्यूमिना और सिलीका रहते हैं। यह सब

मिलकर कम तापक्रम पर गलनेवाला काँच बनाते हैं। इस प्रकार के प्रलेप से प्रलेपित मृत्पात्रों को प्रायः मेजोलिका पात्र कहा जाता है।

टिन, ऐण्टीमनी तथा जस्ते आदि के आक्साइड और कैल्शियम फास्फेट जैसे कुछ पदार्थों की उपस्थिति प्रलेप को श्वेत तथा अपारदर्शक बना देती है। यह अपारदर्शक प्रलेप काँच कलई (Enamel) कहलाते हैं और प्रायः रगीन पात्रों के तल को पूरी तरह ढँकने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। कभी-कभी अपारदर्शकता प्रदान करनेवाले पदार्थों की अनुपस्थिति में काँच कलई शब्द का प्रयोग कुछ रगीन मृदु प्रलेपों के लिए भी किया जाता है, जो सजावट कार्यों के लिए या श्वेत मृत्पात्रों के दोष छिपाने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं।

वास्तविक काँच की भाँति प्रलेप भी क्षार, कैल्शियम, बेरियम, स्ट्रॉन्शियम तथा अन्य धातुओं के सिलिकेट या बोरोसिलिकेट से बने अकेलासीय पदार्थ होते हैं। इन सिलिकेटों तथा बोरो-सिलिकेटों के अणु आपस में केलासीय पदार्थों की भाँति निश्चित संख्या में इकट्ठे नहीं हो पाते। यह अतिशीतित द्रव के रूप में रहते हैं और एक वास्तविक रासायनिक यौगिक के निश्चित गुण इनमें नहीं पाये जाते। यदि प्रलेप का सगठन ठीक प्रकार से नियन्त्रित नहीं किया गया, तो इसके कुछ अवयव पदार्थ मुख्य घोल में केलास बना सकते हैं और प्रलेप में अपारदर्शकता उत्पन्न कर देंगे। यह क्रिया अकाँचीयपन (Devitrification) कहलाती है।

प्रलेप या काँच के अवयवों को उसके सगठन में उपस्थित आक्साइडों के रूप में व्यक्त किया जाता है, कारण प्रलेप और काँच की वास्तविक रचना का अभी तक पता नहीं चल सका है। प्रलेप सगठन व्यक्त करने का सर्वमान्य रूप $RO \cdot R_2O_3 \cdot RO_2$ है, जिसे अणुसूत्र कहा जाता है। यहाँ RO , क्षार, क्षारीय मृत्तिकाओं (Alkaline-Earths) तथा सीसा जस्ता आदि द्विसंयोजक धातुओं के आक्साइडों के लिए प्रयुक्त होता है। R_2O_3 , एल्यूमिना और कभी-कभी फेरिक आक्साइड के लिए प्रयुक्त होता है। RO_2 , सिलिका और कभी-कभी बोरिक आक्साइड के लिए प्रयुक्त होता है। RO से व्यक्त किये जानेवाले सब आक्साइडों को इकाई बना लेते हैं और दूसरे आक्साइड तदनुसार ठीक कर लिये जाते हैं। प्रलेप के सगठन को इस ढंग से व्यक्त करने से उनके गुणों की तुलना तथा नियन्त्रण करने में सहायता मिलती है।

प्रलेप सगठन में प्रयोग होनेवाले कच्चे सामान में से प्रत्येक के अपने विशेष गुण होते हैं। प्रलेप में उनकी क्रिया का वर्णन नीचे किया जाता है।

एल्यूमिना (Al_2O_3)—प्रलेप सगठन में एल्यूमिना को चीनी मिट्टी, फेल्सपार, चीनी पत्थर तथा निस्तापित फिटकरी या एल्यूमिनियम आक्साइड के रूप में डालते हैं। इसके कारण प्रलेप का द्रवणांक बढ़ जाता है, अर्कोचीय क्रिया कम हो जाती है तथा प्रलेप पर वातावरण का प्रभाव कम पड़ता है। एल्यूमिना के ०.०२ अणु भी प्रलेप की अर्कोचीय क्रिया कम कर देते हैं, परन्तु प्रलेप में चीनी मिट्टी बहुत अधिक रहने से प्रलेप सूखने पर उसमें दरारें पड़ जाती हैं। बाद में प्रलेप पकाने पर इन्हीं दरारों के कारण पात्र के तल पर ठोस दाने जैसे बन जाते हैं या प्रलेप के तल पर छोटे-छोटे छिद्र बन जाते हैं। किसी भी प्रलेप में एल्यूमिना की मात्रा उसकी सिलीका की मात्रा के दसवें भाग से अधिक नहीं होनी चाहिए, कारण एल्यूमिना की अधिक मात्रा प्रलेप को कम चमकदार बनाती तथा अपारदर्शकता प्रदान करती है।

सिलीका (SiO_2)—यह प्रलेप में शुद्ध रूप में स्फटिक, चमकमक पत्थर और रेत की शकल में डाली जाती है तथा यौगिकों में चीनी मिट्टी, चीनी-पत्थर, फेल्सपार आदि के रूप में डाली जाती है। सिलीका, भास्मिक आक्साइडों से भट्ठी के तापक्रम पर संयोग करके अर्कोचीय पदार्थ बनाती है। सिलीका की अधिक मात्रा प्रलेप का गलनांक बढ़ा देती है तथा पात्र प्रलेप को ठीक तरह से पकड़ता नहीं है। सिलीका का अनुपात बढ़ाने से प्रलेप में क्रेजिंग दोष या पकाने तथा प्रयोग के समय चटकने के दोष में न्यूनता आ जाती है। यदि सिलीका का अनुपात भास्मिक आक्साइडों के तिगुने से अधिक हो तो प्रलेप अर्कोचीय होता प्रारम्भ कर देता है। यदि चूने का अनुपात अधिक हो तो अर्कोचीयपन और भी विशेष रूप से होने लगता है। इस अर्कोचीय क्रिया में सिलिसिक अम्ल या चूना सिलिकेट केलासीय रूप में अलग हो जाते हैं, जिससे प्रलेप धुँधला हो जाता है और तल की चमक कम हो जाती है।

बोरिक आक्साइड (B_2O_3)—बोरिक-आक्साइड, बोरेक्स ($Na_2O \cdot 2 B_2O_3 \cdot 10H_2O$), बोरो-कैल्साइट ($CaO \cdot 2 B_2O_3 \cdot 6H_2O$), बोरेसाइट ($6MgO \cdot MgCl_2 \cdot 8B_2O_3$) या बोरेसिक अम्ल (H_3BO_3) के रूप में प्रलेप में डाला जाता है। यह सिलीका की भाँति भास्मिक आक्साइडों से संयोग कर अर्कोचीय यौगिक बनाता है। यह बोरिक आक्साइड यौगिक क्षारीय आक्साइडों से बने यौगिकों को छोड़कर पानी में अघुलनशील है। बोरिक अम्ल सिलीका काँच से सब अनुपातों में मिश्र्य है, परन्तु बोरिक काँच का गलनांक सिलीका काँच के गलनांक से बहुत कम है। सिलीका के कुछ भाग के बदले बोरिक आक्साइड डालना प्रलेप

का सगठन बदले बिना ही प्रलेप का गलनाक कम करने का अच्छा साधन है। बोरिक आक्साइड प्रलेप को चमक प्रदान करता है, परन्तु नमी, अम्ल, क्षारयुक्त धोनेवाले पानी (यथा साबुन पानी) से अप्रभावित रहने की क्षमता कम हो जाती है। इसके कारण प्रलेप की खुरच शक्ति भी कम हो जाती है। यदि प्रलेप में बोरिक आक्साइड की मात्रा, उसमें सिलीका की मात्रा के पाँचवे भाग से अधिक है, तो आगे पकाने पर प्रलेप दूधिया होने की प्रवृत्ति रखता है। प्रलेप में बोरिक आक्साइड की अधिक मात्रा होने पर प्रलेप अपने नीचे के रजक पदार्थों को भी अपने में घुला लेता है।

क्षारीय आक्साइड ($\text{Na}_2\text{O}, \text{K}_2\text{O}$)—यह प्रायः सोडियम या पोटशियम के कार्बोनेट तथा नाइट्रेट के रूप में प्रलेप में डाले जाते हैं। यह अकेले कम वरन् प्रायः फेल्सपार बोरेक्स, कार्निश पत्थर आदि दूसरे पदार्थों के साथ डाले जाते हैं। इनकी उपस्थिति से प्रलेप न्यून तापक्रम पर ही गल जाता है तथा इनकी अधिक मात्रा होने पर उस पर वातावरण तथा कार्बनिक अम्लों का प्रभाव शीघ्र पड़ता है। अधिक क्षारीय प्रलेपों में क्रेजिंग दोष की अधिक सम्भावना रहती है। अतः साधारण श्वेत मृत्पात्रों में यह ०.४ अणु से अधिक नहीं होना चाहिए।

लैड आक्साइड (PbO)—प्रलेप में लैड आक्साइड, लिथार्ज (PbO), लाल सीसा (Pb_3O_4), श्वेत सीसा या सफेदा ($3\text{PbO} \cdot 2\text{CO}_2 \cdot \text{H}_2\text{O}$) या गैलेना (PbS) के रूप में डाला जाता है। यह सिलीका या बोरिक आक्साइड के साथ अभुलनशील कॉच बनाता है, इस कारण प्रलेप पर प्राकृतिक प्रभाव कम पड़ता है। यह दूसरे अवयवों को शीघ्रतापूर्वक घुला लेता है तथा प्रलेप इतना तरल हो जाता है कि हवा के बुलबुले सरलतापूर्वक ऊपरी तल पर आ जाते हैं, परन्तु इससे पकाने के तापक्रम का परास अधिक हो जाता है। सीसे से प्रलेप साफ तथा चमकदार हो जाता है। साथ ही सीसे की अधिक मात्रा रहने पर क्रेजिंग दोष की सम्भावना रहती है। यदि चूर्ण करने के पश्चात् प्रलेप में थोड़ा श्वेत सीसा मिलाया जाय तो प्रलेप मुलायम हो जाता है तथा पात्र पर लगाने में सुविधा होती है।

चूना (CaO)—चूना मुख्यतः चूना पत्थर, सगमरमर, खडिया के रूप में और डोलोमाइट ($\text{CaCO}_3, \text{MgCO}_3$) के रूप में मिलाया जाता है। कैल्शियम आक्साइड क्षारों के साथ द्विगुण सिलिकेट तथा बोरो सिलिकेट बनाता है। इससे प्रलेप का गलनाक बढ़ जाता है तथा सतह खुरचने में कड़ी हो जाती है; परन्तु यह केलास

बनाकर प्रलेप को दूधिया बनाने में सहायक होता है। अपने विरजन (Bleaching) गुण के कारण प्रलेप को काफी सीमा तक श्वेत बनाता है। यदि कार्बोनेट का प्रयोग किया गया है तो उसे जला लेना चाहिए, जिससे गैसें निकल जायें। अन्यथा बाद में निकलनेवाली कार्बन-डाई-आक्साइड प्रलेप में छोटे-छोटे छिद्र बना सकती है।

मैगनीशिया (MgO)—प्रलेप में मैगनीशियम आक्साइड (MgO), डोलोमाइट, मैगनेसाइट ($MgCO_3$), टाल्क ($3 MgO, 4 SiO_2, H_2O$) मैगनीशिया के रूप में डाला जाता है। यह प्रायः उच्च तापक्रम पर गलनेवाले प्रलेपों में प्रयोग किया जाता है। चूने की भाँति यह भी प्रलेप को श्वेत करता है, परन्तु यदि ०.४ अणु से अधिक हुआ तो प्रलेप कुछ स्थानों पर इकट्ठा होकर चकत्तो या छोटे-छोटे दानों के रूप में हो जाता है। इस दोष को रोलिंग (Rolling) कहते हैं। मैगनीशियम आक्साइड का कुछ रंगों पर भी प्रभाव पड़ता है।

बैरिटा (BaO)—प्रलेप में बेरियम आक्साइड बैराइटोज ($BaSO_4$) पर विदे-राइट ($BaCO_3$) के रूप में मिलाया जाता है। यह प्रायः सीसा रहित प्रलेपों में प्रयोग किया जाता है, कारण प्रलेप का गलनाक कम करने में सीसे के बाद इसी का द्वितीय स्थान है, परन्तु इससे प्रलेप के गलनताप का परास सीसे की अपेक्षा कम रहता है। बेरियम-आक्साइड प्रलेप को, चूना तथा मैगनीशिया की अपेक्षा अधिक चमक प्रदान करता है। इस चमक प्रदान करने के गुण में इसका स्थान सीसे के बाद दूसरा है।

जिंक आक्साइड (ZnO), **टिन आक्साइड (SnO_2)**, **जिरकोनिया (ZrO_2)** और **सोडा तथा पोटाश के एण्टिमोनिट प्रलेपों को अपारदर्शकता प्रदान करने के लिए प्रयुक्त होते हैं।** प्रथम दो का मृद्-उद्योग में प्रयोग विश्वप्रचलित है। थोड़ी मात्रा में होने पर जिंक आक्साइड प्रलेप की चमक बढ़ाता है, परन्तु अधिक मात्रा में डालने पर ठंडा करते समय प्रलेप में $2 ZnO \cdot SiO_2$ के केलास बनाकर प्रलेप को अपारदर्शकता प्रदान करता है। इसी कारण चमकहीन केलासीय प्रलेपों के बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है।

सैगर के अनुसार रंगहीन प्रलेप बनानेवाले धातवीय आक्साइडों या भस्मों की गलनीयता निम्न क्रम में है—

लैड आक्साइड (PbO), बेरियम आक्साइड (BaO), पोटैशियम आक्साइड (K_2O), सोडियम आक्साइड (Na_2O), जिंक आक्साइड (ZnO), कैल्शियम

आक्साइड (CaO), मैगनीशियम आक्साइड (MgO), एल्यूमिनियम आक्साइड (Al_2O_3) ।

उपर्युक्त आक्साइड बायी ओर से दायी ओर चलने पर क्रमशः अधिक तापक्रम पर गलनेवाले हैं। जो पदार्थ आग में स्वयं शीघ्र गल जाते हैं और दूसरे पदार्थों को भी अपने साथ ही गलने में सहायता देते हैं, उन्हें गलन सहायक या द्रावक (Flux) कहते हैं। प्रलेप की गलनीयता केवल प्रयोग किये गये द्रावको के प्रकार पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि द्रावको की सख्या पर भी निर्भर करती है। उपस्थित द्रावको की सख्या अधिक होने से प्रलेप की गलनीयता बढ़ जाती है। पारदर्शक प्रलेप बनाने के लिए कम से कम दो द्रावको का होना आवश्यक है, जिनमें से एक का क्षारीय होना भी परमावश्यक है। सैगर के अनुसार ही रंग प्रदान करनेवाले आक्साइडों की गलनीयता का क्रम इस प्रकार है—

क्यूपरिक आक्साइड (CuO), मैंगनीज-डाई-आक्साइड (MnO_2), कोबाल्ट आक्साइड (CoO), फेरिक आक्साइड (Fe_2O_3), यूरेनियम आक्साइड (U_2O_3), क्रोमियम-आक्साइड (Cr_2O_3) तथा निकिल आक्साइड (Ni_2O) ।

काँचीकरण (Fritting)—जब प्रलेप पदार्थों में क्षारीय कार्बोनेट या नाइट्रेट तथा बोरेक्स आदि घुलनशील लवण हो तो उनके पानी में घुल जाने के कारण मुख्य मिश्रण से अलग हो जाने की सम्भावना रहती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए, इन लवणों को प्रलेप के सगठनानुसार कुछ सिलीका, चूना या लैड आक्साइड के साथ गलाकर अधुलनशील लवणों में परिवर्तित कर देते हैं। इसे गलाकर बनाये हुए काँच जैसे पदार्थ को मृद-उद्योग में फ्रिट (Frit) तथा गलाने की क्रिया को फ्रिटिंग (Fritting) कहते हैं। इस पुस्तक में फ्रिट के लिए काँचित तथा फ्रिटिंग के लिए काँचीकरण शब्दों का प्रयोग किया जायगा। प्रलेप मिश्रण के शेष अधुलनशील अवयव काँचित में मिलाकर पानी के साथ पीस लिये जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त तरल प्रलेप को प्रलेप घोल (Glaze-slip) कहा जाता है।

प्रलेप को काँचित करने के और भी बहुत से लाभ हैं जो निम्न प्रकार हैं—

(१) इससे प्रलेप के विभिन्न अवयव मिलकर एक ही काँचित पदार्थ बनाते हैं जिसके कारण प्रलेप के विभिन्न अवयव अपने-अपने घनत्व के अनुसार अलग-अलग जमकर नहीं बैठने पाते।

(२) काँचीयकरण से कार्बन-डाई-आक्साइड आदि दूसरी गैसें निकल जाती हैं तथा प्रलेप पकाने के अगले स्तर में होनेवाली कुछ क्रियाएँ भी पूरी हो जाती हैं। आधुनिक सुरंग विद्युत् भट्टियों में प्रलेप पकाने के लिए मृत्पात्रों को भट्ठी में कम समय तक रखा जाता है। अतः यह परमावश्यक है कि ताप सम्बन्धी क्रिया का अधिक भाग भट्ठी में आने से पूर्व ही काँचीयकरण द्वारा पूरा कर लिया जाय।

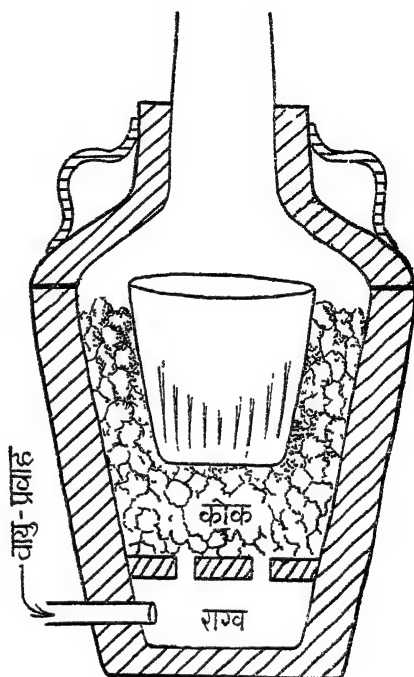
(३) इससे प्रलेप की अम्ल में घुलनशीलता कम हो जाती है और सीसा-जनित विष क्रिया भी कम हो जाती है। श्वेत सीसा या सफेदा और लैड सल्फाइड मानवीय गैस्ट्रिक रस (Gastric-Juice) में सीसा के दूसरे लवणों की अपेक्षा अधिक घुलनशील है। यह सब सीसा यौगिक तनु अम्ल में घुलनशील है। इस कारण हमारे शरीर में ये लवण पहुँच जाने पर सीसा जनित विष उत्पन्न करते हैं। हमारा सस्थान (System) इन सीसा के लवणों को उतनी सरलता से अलग नहीं कर सकता, जितनी सरलता से दूसरे पदार्थों को करता है। सीसा जनित विष से मसूढ़े नीले पड़ जाते हैं और दाँतों को भी हानि पहुँचती है। शरीर के जोड़ों विशेष कर कलाईयों का पक्षाघात भी इसके कारण हो जाता है। तनु अम्लों में सीसे की घुलनशीलता कम करने के लिए सभी सीसे के प्रलेप प्रयोग करने से पूर्व काँचित कर लेने चाहिए।

(४) काँचीयकरण से घुलनशील पदार्थ अघुलनशील हो जाता है।

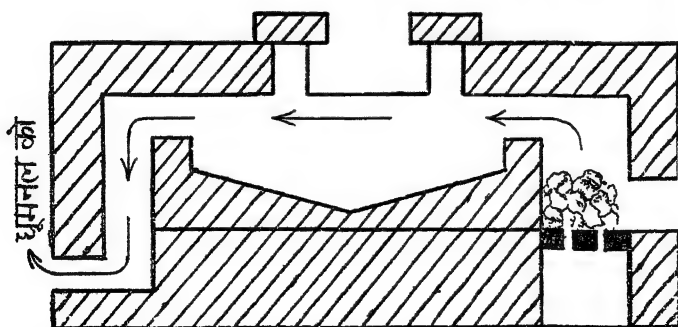
यदि प्रलेप के घुलनशील अवयवों को काँचीयकरण क्रिया द्वारा अघुलनशील न बना लिया जाय तो प्रलेप लगाने पर घुलनशील लवणों के कुछ अंश पात्र के रन्ध्रों में अन्दर चले जायँगे और आगे पकाने पर उस स्थान पर घने चक्ते पड़ जायँगे, जहाँ ये घुलनशील लवण सबसे अधिक जमा हुए हैं। कुछ ऐसे रजकों पर भी घुलनशील लवणों का प्रभाव पड़ता है, जो रजक प्रलेप में मिलाये जाते हैं।

जब पदार्थों की थोड़ी मात्रा को ही काँचित करना हो, तो पदार्थ अग्नि-मिट्टी की घरियाओं में रखकर घरियाएँ विशेष प्रकार की भट्टियों में गरम की जाती हैं। जब पदार्थ पूरी तरह प्रद्रावित होकर गल जाता है, तो ठंडे पानी में लौट दिया जाता है, जिससे काँचीय पिण्ड टूटकर छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त हो जायँ। ऐसा करने से पीसने में सरलता होती है। अधिक मात्रा में पदार्थों को काँचित करने के लिए कोल गैस या तेल गैस द्वारा गरम की गयी कुड-भट्टियों का प्रयोग होता है। भट्ठी को पदार्थ डालने से पूर्व ही गरम कर लेना चाहिए तथा पदार्थों के पूर्णरूपेण प्रद्रावित

होने पर उन्हे समय-समय पर लकड़ी के डंडों की सहायता से विलोडते रहना चाहिए, जिससे पिघला पदार्थ समाग रहे। लकड़ी के लट्ठे या डंडे डालने के लिए भट्ठी के पार्श्व में छेद बने रहते हैं। भट्ठी को समान रूप से गरम किया जाय। प्रलेप-मिश्रण में सीसे के लवण रहने पर भट्ठी के अन्दर का वातावरण धूममय या अव-कारक नहीं होना चाहिए, नहीं तो लैड आक्साइड अवकृत होकर वाष्प बनकर उड़ जायगा। पदार्थों के प्रद्रावित हो जाने के पश्चात् बहुत देर तक गरम नहीं करना चाहिए नहीं तो क्षारों की हानि हो जायगी।



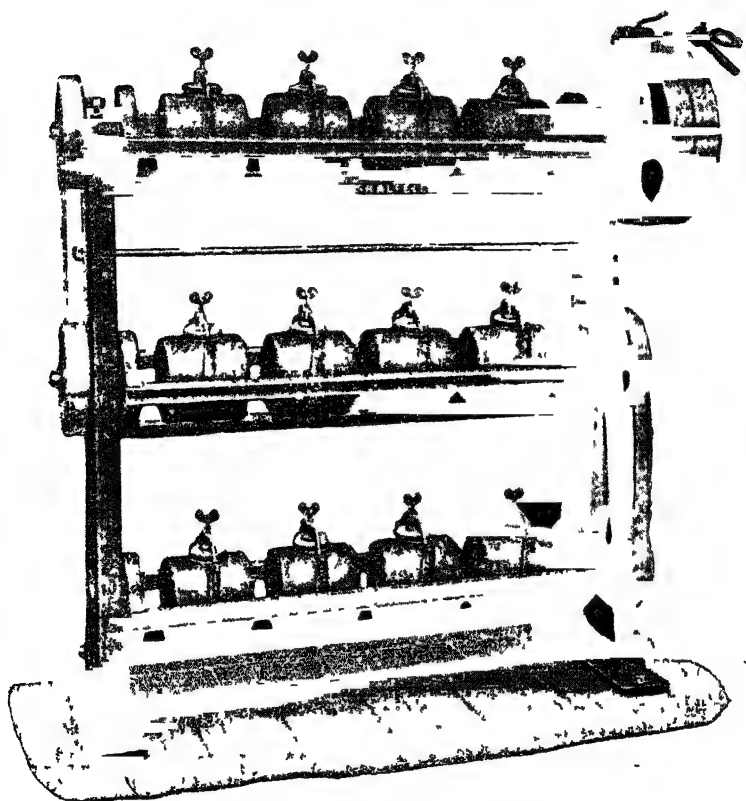
चित्र १७. काँचीकरण के लिए घरिया भट्ठी



चित्र १८. काँचीकरण के लिए कुण्ड भट्ठी

जिन कठोर प्रलेपों में कोई घुलनशील पदार्थ नहीं होता उन्हें काँचित करने की

आवश्यकता नहीं होती, परन्तु सभी कचरे पदार्थ पानी के साथ बहुत महीन पीसे जाते हैं जिससे २०० नम्बर की चलनी पर कुछ भी शेष न रहे। थोड़ी मात्रा में पदार्थों को पीसने के लिए कड़ी मिट्टी के बने छोटे-छोटे बेलनाकार पात्रों का प्रयोग होता है, जिन्हें कुम्भयन्त्र (Pot-mill) कहा जाता है। अधिक मात्रा होने पर प्रलेप बड़ी बॉल-मिल में पीसा जाता है।



चित्र १९. कुम्भयन्त्र में बेलनों की समष्टि

पीसना समाप्त होने पर प्रलेप घोले को विद्युत्-चुम्बक पर भेजा जाता है, जिससे प्रलेप घोले में उपस्थित लोहे के कण दूर किये जा सकें। जब प्रलेप में अधिक श्वेतता लानी आवश्यक हो, तो थोड़ा-सा नीला रंग बहुत ही तनु घोल के रूप में प्रलेप घोले

में मिला दिया जाता है। यदि प्रयोग करने से पूर्व प्रलेप घोल को कम से कम १५ दिन रख छोड़ा जाय तो प्रलेप के गुणों में बहुत सुधार हो जाता है। इसे रखकर छोड़ने के लिए लकड़ी के कुण्ड होते हैं जिनमें धीरे-धीरे चलनेवाला विलोडक भी रहता है। इस विलोडन के कारण प्रलेप जमकर तली में बैठने नहीं पाता। इसे रखने से प्रलेप के कार्योपयोगी गुण काफी सीमा तक सुधर जाते हैं।

पात्रों के प्रकार के अनुसार प्रलेप चढ़ाने की विभिन्न विधियाँ हैं। वर्तमान काल में बहुत-सी विधियाँ प्रचलित हैं, जिनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित हैं।

डुबाव-विधि—यह विधि सबसे अधिक शीघ्रतापूर्ण है और प्रायः पात्रों पर प्रलेप की समान परत चढ़ाने की सबसे अधिक सन्तोषजनक विधि है। इस विधि के लिए मृत्पात्रों को पहले थोड़ा पकाकर कुछ कठोर कर लेना चाहिए। यदि पात्र कच्चे या बिना पके ही हों, तो इतने मजबूत हों, कि प्रलेप घोले में डुबोने पर आकृति न खो दे। प्रलेप परत की मोटाई, पात्र की रन्ध्रता, डुबोने के समय तथा प्रलेप घोले के घनत्व पर निर्भर करेगी। डुबोने की विधि में प्रयोग होनेवाले प्रलेप में कुछ लचीली मिट्टी या दूसरे लचीले पदार्थ अवश्य होने चाहिए, जो सूखने पर पात्र तल पर प्रलेप को चिपकाये रखने में सहायक हो। इसी कारण प्रलेप को काँचित करते समय इसमें पड़नेवाली मिट्टी का कुछ न कुछ भाग अलग रख लिया जाता है, जो पीसने से पूर्व काँचित के साथ मिला दिया जाता है। कभी-कभी इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए थोड़ा गोद या डैक्सट्रिन या बेन्टोनाइट भी मिला देते हैं।

उँडेल-विधि (Pouring)—इस विधि का प्रयोग तब होता है, जब पात्र के केवल एक तल पर ही प्रलेप करना हो। यदि खोखले पात्रों पर केवल भीतर ही प्रलेप करना है, तो पात्र प्रलेप घोले से भर लिया जाता है और आवश्यकता से अधिक घोला उँडेल दिया जाता है। कभी-कभी टालियो को अविराम गति से उँडेल जा रहे प्रलेप घोले के नीचे से शीघ्रता से निकाला जाता है, जिससे उनकी ऊपरी सतह पर प्रलेप की पतली परत जम जाती है।

बौछार-विधि (Spraying)—इस विधि में प्रलेप घोले को बौछार यन्त्र (Sprayer) या एअरोग्राफ (Aerograph) द्वारा बौछार के रूप में पात्र पर लगाते हैं। इस यन्त्र में ४०-४५ पाँण्ड प्रति वर्ग इंच दबाववाली हवा द्वारा बौछार की जाती है।

प्रलेप में थोड़ा गोद मिलाकर मलाई के बराबर गाढ़ा कर लिया जाय तथा प्रयोग से पूर्व अच्छी तरह छान लिया जाय। यह विधि विशेष रूप से बिना पकाये हुए बड़े पात्रों पर प्रलेप लगाने में बड़ी सहायक है, कारण ऐसी अवस्था में डुबाव विधि से प्रलेप करना कठिन या कभी-कभी असम्भव होता है।

चूर्ण छिड़काव-विधि (Dusting)—इसमें प्रलेप का बहुत महीन चूर्ण पात्र की गीली अवस्था में ही पात्र पर छिड़क दिया जाता है, जिससे चूर्ण पात्र पर रुक जाय। यह विधि बहुत ही निम्न कोटि के सस्ते पात्रों को बनाने के अतिरिक्त अब कहीं प्रयोग में नहीं लायी जाती। यह विधि कभी-कभी पकायी हुई वस्तुओं जैसे सजावट के लिए टालियों और हाथ के बने पात्र आदि पर भी प्रयोग की जाती है। इसके लिए सबसे पूर्व पके हुए पात्र पर किसी चिपचिपे पदार्थ की एक परत चढ़ाकर प्रलेप चूर्ण सावधानी से छिड़क देते हैं। यह चिपचिपी परत (जिसे साइज कहते हैं) कार्बनिक गोदो तथा रेजिनो की बनायी जाती है। यह परत पकाने पर पूरी तरह जल जाती है और कुछ भी शेष नहीं बचता जो प्रलेप पर कैसा भी प्रभाव डाले।

तूलिका-विधि (Painting)—इस विधि में प्रलेप तूलिका द्वारा पात्र पर लगाया जाता है। सजावट की वस्तुओं पर इस विधि का विशेष प्रयोग होता है, कारण इसमें एक से अधिक रंगीन प्रलेपों का प्रयोग किया जाता है। प्रायः गोद या जिलेटिन डालकर प्रलेप घोले को कुछ गाढ़ा कर लेते हैं।

वाष्पशील-विधि (Vaporization)—इस विधि में प्रलेप पदार्थ भट्ठी में रखा जाता है, जो गरम होकर भट्ठी में अन्दर ही वाष्पशील हो जाता है और पात्रों पर जम जाता है। नमक प्रलेपन (Salt-glazing) इस प्रकार की मुख्य विधि है जिसका सप्तम अध्याय में विस्तृत वर्णन किया जायगा। नमक प्रलेप के समान विधि द्वारा ही धातवीय रूप में जस्ता की सहायता से पकने पर लाल हो जानेवाली मिट्टियों पर कई प्रकार के हरे रंग उत्पन्न किये जाते हैं। इन वाष्पशील प्रलेप रंगों का सजावट की ईंटों तथा टालियों में विशेष महत्त्व है।

प्रलेप-पकाव (Glost-Firing)—चिकन-प्रलेप लगाने के पश्चात् वस्तुएँ सुखायी और पकायी जाती हैं। इस पकाने को प्रलेप का पकाना या प्रलेप-पकाव (Glost Firing) कहते हैं। कौचित प्रलेप में तापजनित रासायनिक क्रियाओं का अध्ययन ब्लैकी (Blackey) ने सन् १९३८ ई० में किया था। लगभग ७००°

से० पर फेल्सपार तथा स्फटिक के कण सूक्ष्मदर्शी (अणुवीक्षण) यंत्र में स्पष्ट दिखाई देते हैं। फेल्सपार कणों में कुछ चटकी हुई परतें मालूम होती हैं, जब कि स्फटिक कणों में शखाकार दीखते हैं। प्रलेप के दूसरे अवयव इतने सूक्ष्म कणीय होते हैं कि वे अलग से पहचाने नहीं जा सकते।

तापक्रम बढ़ने पर फेल्सपार, पिघले हुए काँचित में शीघ्रता से घुल जाता है। ९००° से० पर तीन चौथाई से अधिक फेल्सपार घुल जाता है और १०२५° से० पर पूरा का पूरा फेल्सपार तरल काँचित में घुल जाता है।

९००° से० तक स्फटिक की, काँचित में घुलने की गति बहुत कम है। उसके बाद घुलनशीलता बढ़ती है और ११००° से० पर पूरा स्फटिक घुल जाता है। ११४५° से० पर तरल काँचित पात्र पर क्रिया करता है और धीरे-धीरे प्रलेप और पात्र के बीच में एक माध्यम परत बनाता है। इस परत के अच्छी प्रकार विकसित होने के लिए ताप का शोषण आवश्यक है।

९००° से० के लगभग प्रलेप में बुलबुले बनते हैं। इस समय प्रलेप पिघलता है और बुलबुलों को पूरी आकृति लेने का अवसर देता है। बुलबुलों का आयतन बढ़ता है और १०२५° से० पर अधिकतम होता है। इसके बाद इनका आयतन अचानक कम होना प्रारम्भ होता है। इस आयतन में अचानक कमी इस बात की सूचक है कि प्रलेप अब इतना तरल हो गया है कि बुलबुले निकल कर बाहर जा सकते हैं।

प्रलेप-दोष—प्रलेपित मृत्पात्र बनाते समय पात्र में कई दोष आ जाते हैं, जिनमें कुछ के कारण का नहीं पता चल सका है, क्योंकि वे बाद में स्वतः दूर हो जाते हैं। शेष दोषों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित हैं—

दरारे पडना और पपड़ी छूटना (Crazing and Peeling)—चूँकि चिकन प्रलेप पात्र के तल पर एक प्रकार के काँच की परत होती है, प्रलेप का सगठन तथा उसके गुण मृत्पात्र बनानेवाले मिश्रण-पिण्ड के सगठन तथा गुणों से भिन्न होते हैं। इसलिए स्वभावतः ताप तथा ठंडक का प्रभाव प्रलेप तथा मिश्रण-पिण्ड पर समान नहीं होगा।

यदि ठंडा करते समय प्रलेप का आकुचन मृत्पात्र के आकुचन से अधिक हो, तो तनाव उत्पन्न हो जाता है और इस तनाव के कारण पूरी प्रलेपित सतह पर बाल

जैसी पतली दरारे पड़ जाती हैं। पात्र तथा प्रलेप के आकुचनो में जितना ही अधिक अन्तर होगा, दरारों की संख्या उतनी ही अधिक होगी। इस दोष को दरार पड़ना या क्रेजिंग कहते हैं।

दूसरी ओर यदि प्रलेप का आकुचन पात्र के आकुचन से कम हो, तो प्रलेप में सपीडन (Compression) उत्पन्न होगा, जिससे प्रलेप, पात्र से विशेष कर किनारों पर से पपड़ी के रूप में छूटकर अलग हो जायगा। सपीडन शक्ति कभी-कभी इतनी अधिक हो जाती है कि पात्र टूटकर छोटे-छोटे टुकड़े हो जाता है। यह दोष क्रेजिंग का उल्टा है तथा उसे पपड़ी छूटना या स्केलिंग या पीलिंग कहते हैं। यह दोष मिश्रण-पिण्ड में घुलनशील लवणों की उपस्थिति से भी हो सकता है। पात्र को सुखाते समय घुलनशील लवण पात्र की सतह पर, विशेष कर किनारों पर, छादनी बनाते हैं, जिसके कारण प्रलेप पात्र को पकड़ता नहीं है। अतः प्रलेप पपड़ी के रूप में छूटकर गिर जाता है।

काँच की भाँति चिकन प्रलेप को भी पकाने के पश्चात् ठंडा करने पर पूरा आकुचन आने में काफी समय लगता है। अतः प्रलेप में कभी-कभी काफी समय तक प्रयोग करने के बाद भी दरारे पड़ जाती हैं या पपड़ी चटक जाती है। चमकहीन प्रलेपो में चमकदार प्रलेपो की अपेक्षा दरार पड़ना या दरार-दोष अधिक पाया जाता है, क्योंकि प्रथम प्रकार के प्रलेप का तापजनित प्रसार दूसरे प्रकार के प्रलेप की अपेक्षा कम होता है। ब्लैकी ने १९३८ ई० में दिखाया कि थोड़े से तनाववाले प्रलेप में दरार दोष की धारणा अधिक होती है, जब कि अधिक सपीडित प्रलेप में, औटोक्लेव (Autoclave) में जलवाष्प से पकाने पर भी दरार दोष के चिह्न तक नहीं प्रकट होते। औटोक्लेव में पकाने पर प्रलेप का प्रतिबल तनाव में परिवर्तित हो जाता है, कारण जलवाष्प से पात्र बढ़ता है तथा अधिक सरन्ध्र पात्र में दरार की धारणा अधिक होती है।

क्रोजिंग की परीक्षा—इंग्लैण्ड में इस कार्य के लिए प्रयोग की जानेवाली साधारण विधि में पात्र को साधारण नमक तथा शोरा के एक सम्मिश्रित घोल में, लगभग १ घण्टे तक, उबालकर गरम पात्र को ठंडे पानी में डाल देते हैं। यदि प्रलेप इस प्रकार पाँच लगातार क्रियाएँ बिना दरार की उत्पत्ति के सहन कर सके तो प्रलेप अच्छा कहा जायगा। कुछ मृत्पात्र तो इस प्रकार गरम करने पर बढ़ते हैं, परन्तु प्रलेप अपेक्षाकृत अप्रभावित रहता है। अतः यह विधि सब देशों में प्रचलित नहीं है।

अमेरिका की सरकारी विधि में मृत्पात्र 175° से० के तापक्रम पर सभान रूप से १५ मिनट तक गरम किया जाता है तथा बाद में शीघ्रतापूर्वक 20° में० वाले पानी में डुबो दिया जाता है। किसी प्रकार के दरार दोष के चिह्न प्रकट होना प्रलेप की असफलता का द्योतक है। गरम करने के लिए जहाँ तक हो विद्युत् भट्ठी का प्रयोग किया जाता है।

निर्दोषकरण उपाय—दरार तथा पपड़ी दोष दूर करने के लिए प्रलेप के प्रसार-गुणक का समझना तथा नियन्त्रण करना परमावश्यक है। प्राचीन समय में प्रसार-गुणक का निर्धारण केवल वास्तविक प्रयोगों द्वारा ही होता था, परन्तु आधुनिक गवेषणाओं से उसके निर्धारण की विधि सरल हो गयी है। प्रथम विकिल तथा शाट (Winkle and Schott) ने और बाद में मेयर तथा हवास (Mayer and Havas) ने १९११ ई० में मृत्पात्र प्रलेपों, काँचों तथा काँचकलइयों के सगठन में प्रयोग होनेवाले भिन्न आक्साइडों का प्रसार-गुणक निकाला। उन्होंने आगे यह भी पता लगाया कि इन आक्साइडों से बने काँच या प्रलेप के अन्तिम गुण योगशील (Additive) होते हैं। योगशील गुण वे गुण हैं, जो केवल उन आक्साइडों तथा उनके आपेक्षिक अनुपात पर निर्भर होते हैं, जिन आक्साइडों से मिलकर प्रलेप बना है। उदाहरणार्थ यदि $a + b + c +$ प्रलेप सगठन के विभिन्न आक्साइडों का प्रतिशत बताये और $x, y, z,$ क्रमशः उन्हीं आक्साइडों के घन प्रसार-गुणकों को बतलाये तो इस प्रलेप का घन प्रसार-गुणक निम्नलिखित समीकरण द्वारा दिया जायगा।

$$k = ax + by + cz +$$

यहाँ k प्रलेप का घन प्रसार-गुणक है।

विकिल और शाट के तापजनित घन प्रसारगुणक निम्नलिखित हैं—

आक्साइड	प्रति डिग्री सेण्टीग्रेड का घन प्रसार गुणक	आक्साइड	प्रति डिग्री सेण्टीग्रेड का घन प्रसार गुणक
	मिलीमीटर में		मिलीमीटर में
सोडियम आक्साइड	100×10^{-6}	एल्युमिनियम आक्साइड	50×10^{-6}
पोटैशियम	65×10^{-6}	बोरिक आक्साइड	0.1×10^{-6}
लैड	50×10^{-6}	सिलिका	0.01×10^{-6}
कैल्शियम	50×10^{-6}	जिंक आक्साइड	1.6×10^{-6}
मैगनीशियम	0.1×10^{-6}	फास्फोरस पेंटॉक्साइड	20×10^{-6}
बेरियम	30×10^{-6}		

इंगलिश और टर्नर नामक वैज्ञानिकों ने भी १९३१ ई० में इसी प्रकार के घन-

प्रसार-गुणको का मान निकाला जो विकिल तथा शाट के मानो से कुछ भिन्न है। वर्तमान समय में इंगलिश तथा टर्नर के गुणको का अधिक प्रयोग किया जाता है।

आक्साइड	घनप्रसार गुणक प्रति डिग्री सेण्टीग्रेड	आक्साइड	घनप्रसार गुणक प्रति डिग्री सेण्टीग्रेड
	मिलीमीटर में		मिलीमीटर में
सोडियम आक्साइड	12.96×10^{-9}	बेरियम आक्साइड	4.2×10^{-9}
पोटैशियम	11.7×10^{-9}	एल्यूमिनियम	0.42×10^{-9}
लैड	3.12×10^{-9}	बोरिक	1.92×10^{-9}
कैल्शियम	4.89×10^{-9}	सिलिका	0.14×10^{-9}
मैगनीशियम	1.34×10^{-9}	जिक आक्साइड	2.1×10^{-9}

इंगलिश तथा टर्नर के घनप्रसार गुणको का व्यावहारिक उपयोग निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

एक पोरसिलेन पात्र के मिश्रण-पिण्ड तथा प्रलेप मिश्रण के प्रतिशत सगठन नीचे दिये हुए हैं। यह पता लगाना है कि यह प्रलेप पात्र के लिए ठीक होगा या नहीं।

मिश्रण-पिण्ड का सगठन

प्रसार-गुणक

सिलिका	६८३	$683 \times 0.12 \times 10^{-9}$	$= 48.64 \times 10^{-9}$
एल्यूमिना	२७०	$270 \times 0.42 \times 10^{-9}$	$= 113.4 \times 10^{-9}$
चूना	०३	$0.3 \times 0.42 \times 10^{-9}$	$= 1.4 \times 10^{-9}$
मैगनीशिया	०५	$0.5 \times 0.14 \times 10^{-9}$	$= 0.05 \times 10^{-9}$
पोटैशियम आक्साइड	३६	$36 \times 0.42 \times 10^{-9}$	$= 30.6 \times 10^{-9}$
योग	<u>९९७</u>	योग	<u>221.79×10^{-9}</u>

प्रलेप मिश्रण-संगठन

प्रसार-गुणक

सिलिका	७३२४	$7324 \times 0.12 \times 10^{-9}$	$= 44.592 \times 10^{-9}$
एल्यूमिना	१५९७	$1597 \times 0.42 \times 10^{-9}$	$= 69.44 \times 10^{-9}$
चूना	३५७	$357 \times 0.42 \times 10^{-9}$	$= 1.64 \times 10^{-9}$
मैगनीशिया	०५१	$0.51 \times 0.14 \times 10^{-9}$	$= 0.051 \times 10^{-9}$
पोटैशियम आक्साइड	४८१	$481 \times 0.42 \times 10^{-9}$	$= 40.48 \times 10^{-9}$
सोडियम	१९१	$191 \times 0.42 \times 10^{-9}$	$= 19.1 \times 10^{-9}$
योग			<u>221.632×10^{-9}</u>

इस प्रलेप में सपीड्यता की धारणा है क्योंकि प्रलेप का घनप्रसार-गुणक पात्र के मिश्रण-पिण्ड के घनप्रसार-गुणक से कम है। अतः यह प्रलेप क्रेजिंग या दरार दोष की परीक्षा में खरा उत्तरेगा।

व्यवहार से पता चला है कि कभी-कभी प्रलेप किमी पात्र के लिए उस समय भी ठीक हो सकता है जब कि घनप्रसार गुणक के सिद्धान्तानुसार उसे ठीक नहीं होना चाहिए। ऐसा प्रलेप के प्रत्यास्थता गुण (Elastic Property) तथा पकाने के समय की अवस्थाओं के प्रभाव के कारण होता है। ताप के इन प्रसार गुणको के ज्ञान से केवल यह पता चलता है कि प्रलेप में तनाव है या सपीड्यता।

दरार तथा पपड़ी दोष निम्नलिखित प्रयोगसिद्ध नियमों का पालन करने से दूर किये जा सकते हैं।

(क) जब प्रलेप मिश्रण संगठन अपरिवर्तित रहे।

१ पात्र के मिश्रण-पिण्ड में स्फटिक की मात्रा बढ़ाकर मिट्टी का अनुपात कम करो। दरार या पपड़ी-दोष दूर करने में अच्छी प्रकार निस्तापित चकमक, बालू या स्फटिक से अधिक प्रभावकारी है। जो मिश्रण-पिण्ड पकाने पर काँचीय नहीं होता उसमें अल्प निस्तापित चकमक देने से भी क्रेजिंग दोष आ जायगा। चकमक या स्फटिक को महीन पीसने से दरार-दोष कम हो जाता है, परन्तु अधिक महीन पीसने से पात्र के टूट जाने की सम्भावना बढ़ जाती है। जो मिश्रण-पिण्ड पकाने पर काँचीय हो जाता है, उस मिश्रण-पिण्ड को थोड़ा कम महीन पीसने से क्रेजिंग दोष दूर हो सकता है।

(२) पात्र के मिश्रण-पिण्ड में चीनी मिट्टी के कुछ भाग के स्थान पर बॉलमिट्टी डालो। ३-४ प्रतिशत चूना बॉलमिट्टी युक्त मिश्रण के पात्रों पर क्रेजिंग-दोष नहीं उत्पन्न करता, परन्तु उन्हीं अवस्थाओं में केवल चीनी मिट्टी होने से चूने की यह मात्रा क्रेजिंग उत्पन्न कर दे सकती है। पकाने पर काँचीय होनेवाले मिश्रण-पिण्ड में चूना किसी सीमा तक क्रेजिंग को समाप्त कर देता है। अस्थि पोरसिलेन मिश्रण-पिण्ड में, जिसमें चूना भी पड़ा हो, साधारण प्रलेपित मृत्पात्रों से बहुत कम क्रेजिंग दोष पाया जाता है।

(३) फेल्सपार या दूसरे द्रावकों को कम कर दो। एल्यूमिना और क्षार दोनों ही दरार दोष उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। यदि पात्र के मिश्रण-पिण्ड और प्रलेप

से मिलकर उनके बीच कोई यौगिक बनने से पूर्व ही पात्र काँचीय हो जाता है, तो प्रलेप पात्र पर दृढ़ता से नहीं चिपकेगा और जरा-सा तनाव ही प्रलेप को पात्र से अलग कर देगा ।

(४) पात्र तथा प्रलेप को साथ-साथ उच्च तापक्रम पर अधिक समय तक पकाओ । ऐसा करने से काँचीय होनेवाले मिश्रण-पिण्ड में क्रेजिंग इतना कम नहीं होता, जितना सरन्ध्र पात्र में कम हो जाता है ।

(५) अग्निमिट्टियो सहित मिश्रण-पिण्ड में पकी हुई मिट्टी के चूर्ण या ग्राग (Grog) का अनुपात बढ़ाने से क्रेजिंग की धारणा कम हो जाती है । ग्राग के लिए आगे के अध्याय में छर्री शब्द का प्रयोग किया जायगा ।

(ख) जब पात्र के मिश्रण-पिण्ड का संगठन अपरिवर्तित रहे ।

(१) प्रलेप में सिलीका की मात्रा बढ़ाओ या प्रलेप मिश्रण की कुछ सिलीका के बदले बोरिक अम्ल डाल दो ।

(२) प्रलेप में थोड़ी-सी चीनी मिट्टी या एल्यूमिना मिलाने से क्रेजिंग-दोष दूर हो सकता है ।

(३) द्रावकों यथा सोडा और पोटैश द्रावकों के बदले चूना, सीसा या बेरियम के आक्साइड मिलाओ, कारण क्षारीय प्रलेपो में, चूना सीसा या बेरियम की अधिक मात्रावाले प्रलेपो की अपेक्षा क्रेजिंग अधिक होता है ।

(४) प्रलेप तथा पात्र तलों के बीच एक माध्यम मडल बनाने के लिए प्रलेपित पात्र को अधिक काल तक पकाओ ।

पपड़ी छूटने के दोष को सुधारने के लिए क्रेजिंग का उलटा करो ।

प्रलेप में दाना-दोष—भट्ठी में प्रलेप पिघलते समय दो भिन्न बल प्रलेप पर कार्य करते मालूम होते हैं । एक बल तो तरल प्रलेप को पात्र के धरातल पर स्थिर करता है । अतः इसे आसजक बल कहा जा सकता है । दूसरा बल, जो तरल प्रलेप के तल-तनाव (Surface Tension) के कारण होता है, प्रलेप को पात्र के स्वतन्त्र किनारे से बहाकर गोल दानों के रूप में इकट्ठा होने में सहायता करता है । यह बल प्रलेप के तलतनाव के कारण होता है तथा इसको ससक्ति बल कहते हैं । जब ससक्ति बल आसजक बल से अधिक होता है, तो प्रलेप इकट्ठा होकर चकत्ते या गोल दाने बनाता है । प्रलेप के इस दोष को प्रलेप का दाना दोष (Rolling) कहा जाता है ।

पात्र का धूलिमय, तेलमय या काँचीय तल प्रलेप के आसजक बल को कम कर देता है, अतः उसके दानादोष बढाने में सहायक होता है। रजको या प्रलेप को अधिक पीसने से तथा प्रलेप में मैगनीशिया की मात्रा अधिक होने से तरल प्रलेप का ससक्ति बल बढ जाता है, जो प्रलेप में दाना-दोष की उत्पत्ति में सहायक होता है। प्रलेप में चीनी मिट्टी अधिक होने से तथा डुबाव-विधि में प्रलेप की मोटी तह होने से सूक्ष्म दरारे पड जाती हैं। यदि प्रलेप इतना मृदु नहीं है कि प्रलेप-तल पर सुखाते समय पडी इन सूक्ष्म दरारों को पकाते समय भर ले तो प्रलेप में दाना-दोष आ जायगा।

केलास-दोष—आशिक रूप से केलासीय हो गये प्रलेप में न्यूनाधिक पूरे प्रलेप तल पर चमकहीन चकत्ते पड जाते हैं। इन चकत्तों की आकृति कभी-कभी तारे जैसी या पख जैसी होती है। इसीलिए इस दोष को पखदोष (Feathering) कहा जाता है। जिन प्रलेपों में चूना अधिक और एल्यूमिना कम होता है, उनमें यह दोष अधिक आता है। ये बने हुए केलास रासायनिक प्रकृति में वोलास्टोनाइट (Wollastonite) Ca SiO_3 की भाँति होते हैं। इन केलासों पर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के तनु घोल की क्रिया सरलतापूर्वक होती है। प्रलेप की परत पतली होने पर प्रलेप पात्र से एल्यूमिना की काफी मात्रा अवशोषित कर लेती है और इस प्रकार केलास बनने की क्रिया काफी कम हो जाती है। प्रलेप की परत मोटी होने से तथा पकाने के समय हठात् ठण्डा होने से इस दोष का आना देखा जाता है।

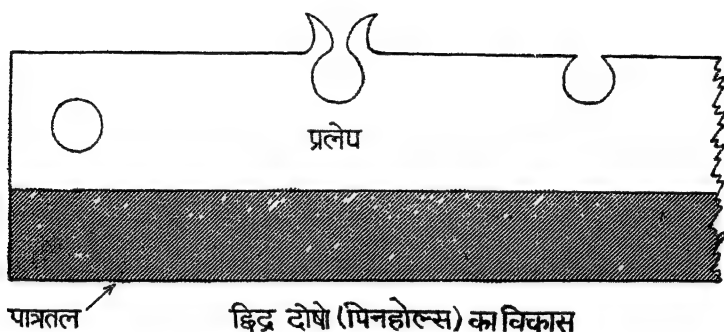
सल्फेटों, विशेष कर चूना के सल्फेट के द्वारा, जो कुछ तो प्रलेप मिश्रण से आते हैं, कुछ ईंधन गैसों से आते हैं, प्रलेप तल पर एक पतली परत बन जाने की सम्भावना रहती है। ये सल्फेट ठंडा करने पर केलास बनकर चमकहीन चकत्ते उत्पन्न करते हैं। इस दोष को 'सल्फरिंग' दोष कहते हैं।

पखदोष प्रलेप के अन्दर केलास बनने से होता है, जब कि सल्फरिंग दोष प्रलेप तल पर केलास बनने से होता है। इन दोनों प्रकार के केलासों की प्रकृतियाँ भी बिल्कुल भिन्न होती हैं।

अधिक अम्लीय प्रलेपों में सल्फेट कम घुलनशील है। अतः जब प्रलेप मृत्पात्र की सिलीका को अपने में घुला लेने पर अधिक अम्लीय हो जाता है, तो घुलित सल्फेट प्रलेप के बाहर आकर ऊपरी तल पर एक पतली परत बनाते हैं। यदि समय-समय पर भट्ठी का वातावरण अवकारक बना दिया जाय तो सल्फेट अवकृत होकर वाष्पशील हो

जाते हैं, परन्तु यदि अवकारक लौ काफी ताप उत्पन्न न कर सकी, तो बना हुआ अम्ल प्रलेप में घुला रहता है और बाद में दूसरे दोष उत्पन्न करते हुए बाहर निकलता है।

छिद्र-दोष—कभी-कभी पके हुए पात्र के प्रलेपित तल पर छोटे-छोटे छिद्र पाये जाते हैं। ये छिद्र 'पिन होल्' कहलाते हैं। इस दोष का मुख्य कारण प्रलेप के भीतर से गैसों का बाहर निकलना है। ये गैसें उस समय निकलती हैं, जब पिघले हुए प्रलेप की तरलता इतनी नहीं रहती कि छिद्र भरे जा सके। कभी-कभी पात्र ढालते समय

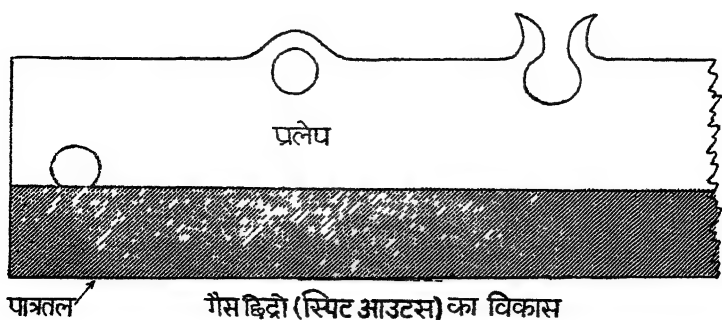


चित्र २० प्रलेप-तल में छिद्रों का बनना

भी पात्र तल पर छोटे-छोटे छिद्र बन जाते हैं। विशेष कर उस समय जब कि साँचा काफी पुराना और धूलिकणों से गन्दा हो। पात्र की सफाई या चिकना करते समय ये छिद्र ढँक जाते हैं, परन्तु पकाने के पश्चात् पुन प्रकट हो जाते हैं। यदि ढलाई घोला बनाते समय अधिक सूखी खुरचन का प्रयोग किया गया हो तो प्रलेप-घोले के बीच में हवा के बुलबुले पात्र ढालते समय इन छिद्रों को जन्म देते हैं।

गैस छिद्र-दोष (Spitouts)—गैस छिद्रदोष के कारण बने हुए छिद्रों की प्रकृति साधारण छिद्र-दोष से बने छिद्रों से कुछ भिन्न है। इस प्रकार के छिद्रों के चारों ओर एक काला निशान होता है। यह गैस कार्बनिक पदार्थों के जलने से बनती है। कार्बनिक पदार्थ प्रलेप में ही घोल के रूप में हो सकता है या पात्र तल द्वारा अवशोषित गैसों से भी आ सकता है। यदि प्रलेप चढ़ाने से पूर्व पात्र नम स्थान में काफी समय तक रखा गया हो, तो सरन्ध्र पात्र गैसों को अवशोषित कर लेते हैं, जो बाद में प्रलेप पकाने

के समय बाहर निकल जाती है। अवशोषण का समय जितना अधिक होगा पात्र से गैसों के निकालने में उतनी ही कठिनाई होगी और जब गैसों वास्तव में निकलती है, तो निकलनेवाले छिद्र के चारों ओर नोकीले किनारे तथा स्थायी काले चिह्न छोड़ जाती है। इसका कारण यह है कि ये गैसों इतनी देर से निकलती हैं, जब पिघले हुए प्रलेप में इतनी तरलता नहीं होती, कि नोकीले किनारोंवाले छिद्रों को भर सके। गैसवाले



चित्र २१ गैस छिद्रों का बनना

छिद्र-दोष प्रायः रंग पकाने के बाद भी देखने में आते हैं। विशेष कर उस समय जब भट्ठी के अन्दर का वातावरण अधिक अवकारक या धूममय हो। रंग पकाने के प्रथम काल में प्रलेप रंग से उत्पन्न हाइड्रोकार्बन गैसों को अवशोषित कर लेता है। जब भट्ठी और अधिक गरम की जाती है तथा प्रलेप पिघल जाता है, तो यही हाइड्रोकार्बन गैसों नोकीले किनारों सहित छोटे-छोटे छिद्र बनाकर बाहर निकल जाती है, तथा इन छिद्रों के चारों ओर काला चिह्न भी बना रह जाता है। यह काला चिह्न हाइड्रोकार्बन के विच्छेदन से प्राप्त कार्बन के कारण होता है।

मृद्-उद्योग-रंजक—मृद्-उद्योग में रंग प्रदान करनेवाले पदार्थ ऐसे होने चाहिए, जो पकाने के उच्च तापक्रम को सहन कर सके। अतः यह स्पष्ट है कि कार्बनिक रंजक इस कार्य के लिए अनुपयोगी हैं। इस कार्य में प्रयोग होनेवाले अधिकतर वर्णक या तो धातवीय आक्साइड या धातवीय आक्साइड के उन पदार्थों के साथ बने यौगिक होते हैं, जो आक्साइड के रंजन गुणों में सुधार उत्पन्न कर देते हैं। उदाहरणार्थ—ताँबे का एक ही आक्साइड भिन्न पदार्थों, जैसे क्षार, बोरेक्स या सीसा के साथ अलग-अलग रंग

उत्पन्न करेगा। निम्नलिखित सारणी में मृद्-उद्योग में प्रयोग होनेवाले मुख्य रंजक आक्साइड तथा विभिन्न प्रलेपों के साथ उनके रंगों का ब्यौरा दिया गया है। पकाने के समय की अवस्थाओं, जैसे अवकारक या ओषदीकारक वातावरण का भी धातवीय आक्साइडों के रंग-परिवर्तन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

आक्साइड	अधिक क्षारीय प्रलेप में रंग	अधिक बोरिक आक्साइडवाले प्रलेप में रंग	अधिक सीसावाले प्रलेप में रंग
कोबाल्ट आक्साइड	नीला	नीला	नीला
क्यूपरिक	नीला	हरा	हरा
फेरिक	नीला हरा	बादामी से पीले तक	पीला
मैंगनीज डाई	नीला बैंगनी	बादामी	पीले से बादामी तक
यूरेनियम	हल्का पीला	कागदी पीला	नारंगी
क्रोमियम	नारंगी पीला	हरा	पीला

जब धातवीय आक्साइड या उनके मिश्रण रजन कार्य के लिए प्रयोग किये जाते हैं, तो प्रयोग से पूर्व उन्हें उच्च तापक्रम पर निस्तापित कर लिया जाता है। इस निस्तापन द्वारा अवयव पूर्णतः समान रूप से मिल जाते हैं। यह पूर्ण रूप से मिलना तथाकथित ठोसों के घोल के द्वारा होता है। दो बार के निस्तापन से अच्छा परिणाम निकलता है। निस्तापित आक्साइड कम क्रियाशील हो जाते हैं और आगे कुछ कम तापक्रम पर प्रयोग करते समय रंग की निश्चित आभा उत्पन्न करते हैं। उच्च तापक्रम पर निस्तापन करने से आक्साइड के केलास बढ़ते हैं, जिससे आगे पकाने पर रंग बदलता नहीं है। वणक के बड़े केलास छोटे केलासों की अपेक्षा अधिक स्थायी होते हैं। इस निस्तापित पदार्थ को रजक का स्टेन (Stain) कहा जाता है।

रंजक तीन विभिन्न प्रकार से प्रयोग किये जा सकते हैं। रंगीन प्रलेप बनाने के लिए रजक, प्रलेप के ही साथ मिलाया जाता है। इस अवस्था में रजक को प्रलेप रजक कहते हैं।

जब पात्र के प्रलेपित तल के नीचे पात्र तल पर रंगीन सजावट होती है, तो सजावट में प्रयोग होनेवाले रजक को अन्तः प्रलेप रजक कहा जाता है। अन्तः प्रलेप रजक के साथ प्रयोग होनेवाले प्रलेप का पारदर्शी होना आवश्यक है। जब प्रलेप तल के ऊपर

सजावट करनी हो तो कम तापक्रम पर पिघलनेवाले विशेष रजको का प्रयोग किया जाता है। इन रजको को प्रलेप तल रजक या एनामेल रजक कहा जाता है।

अन्त प्रलेप रजक दो मुख्य भागो से मिलकर बने होते हैं—(क) वास्तविक रंजक, जो धातवीय आक्साइड या उसका कोई यौगिक होता है, (ख) द्रावक। द्रावक, रंजक को पात्र की सतह पर स्थिर करने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। इस उद्देश्य के लिए साधारणतः प्रयोग में आनेवाला पदार्थ पकाये हुए पात्रों के टूटे भागो को पीसने से प्राप्त होता है। इस कार्य के लिए निम्नलिखित पदार्थों को निस्तापित करके एक अच्छा द्रावक बनाया जा सकता है।

स्फटिक	४५ भाग
फेल्सपार	३० ,,
चीनी मिट्टी	२० ,,
श्वेत सीसा या सफेदा	५ ,,
	<u>१०० ,,</u>

प्रलेप तल रजक या एनामेल रजक भी इसी प्रकार दो भागो से मिलकर बने होते हैं, पर इसमें द्रावक मृदु काँच बनानेवाले पदार्थों को मिलाकर बनाया जाता है, कारण यह द्रावक, रजक को भट्ठी में कम तापक्रम पर गलाने का कार्य करता है। इस द्रावक का कुछ भाग अल्प पिघले हुए प्रलेप में घुस जाता है और इस प्रकार यह द्रावक प्रलेप पर रजक को दृढ़ता से चिपका देता है।

निम्नलिखित द्रावको के विभिन्न रजको के साथ विभिन्न व्यवहार हैं, जो आगे चलकर उचित स्थान पर प्रकट किये जायेंगे।

	द्रावक (A)	द्रावक (B)	द्रावक (C)
लाल सीसा	३	३ ७	२
बोरेक्स	२	×	२
सिलीका	१	१ ३	१

द्रावक के अवयव पदार्थ एक साथ काँचित करने के पश्चात् काँचित महीन पीसकर आगे के प्रयोग के लिए रखा जाता है। द्रावक में बोरेक्स की मात्रा एक निश्चित मात्रा से

अधिक रहने पर द्रावक भण्डारगृह की नमी से बहुत शीघ्र ही क्रिया करता है। सर्वप्रथम बोरेक्स श्वेत छादनी के रूप में बाहर आ जाता है। यह छादनी एनामेल रजक के साथ क्रिया करके उन्हें नष्ट कर देती है।

रंजक बनाना—धातवीय आक्साइड तथा दूसरे अवयवों के मिश्रण को प्रायः छोटी भट्ठी में निस्तापित कर लेना ही सर्वोत्तम होता है, परन्तु छोटे कारखानों में यह मिश्रण तापसह मिट्टी के सन्दूकों में रखकर अन्य मृत्पात्रों के साथ उसी भट्ठी में पकाया जाता है। इस विधि में कुछ कठिनाइयाँ हैं, उदाहरणार्थ—कुछ रजकों यथा क्रोम, हरा, कॉपर, रैड आदि को पकाते समय अवकारक वातावरण की आवश्यकता होती है, जब कि गुलाबी, पीले, लाल आदि रजकों को आक्सीकारक वातावरण की आवश्यकता होती है। एक ही भट्ठी में दो प्रकार की अवस्थाएँ नहीं रखी जाती। पकाने के पश्चात् रजक कठोर पिण्ड में परिवर्तित हो जाता है। पकाने के पश्चात् रजक पिण्ड को छोटे टुकड़ों में तोड़कर चिकन-प्रलेप की भाँति ही बहुत महीन पीस लिया जाता है। रजकों को इतना महीन पीसना चाहिए कि २५० नम्बर की चलनी में छानने पर कुछ भी शेष न बचे। कभी-कभी आवश्यकतानुसार इससे भी महीन पीसा होना चाहिए। पीसने के बाद रजक को स्वच्छ पानी से पूरी तरह धो लेना चाहिए। एक ही रजक अन्त-प्रलेप रजक तथा प्रलेप तल-रजक बनाने में काम आ सकता है। केवल भिन्न द्रावक, भिन्न अनुपात में मिलाने होंगे। परन्तु अन्त-प्रलेप रजक के लिए रजक तथा द्रावक को साथ ही निस्तापित करना अच्छा होता है, कारण इससे रंग की समान आभा प्राप्त हो सकती है।

कोबाल्ट रंजक—मृद-उद्योग की सजावट में नीचे रजकों में कोबाल्ट आक्साइड का अकेले या दूसरे आक्साइडों के साथ अवश्य प्रयोग होता है। विभिन्न अवयवों की उचित मात्रा से, गहरे नीले रंग से लेकर आसमानी नीले रंग तक की सभी आभाएँ उत्पन्न की जा सकती हैं। कोबाल्ट प्रायः आक्साइड के रूप में प्रयोग किया जाता है। कार्बोनेट या फास्फेट के रूप में कोबाल्ट का कम प्रयोग होता है।

कोबाल्ट का नीला रंग दो विभिन्न प्रकार का होता है—(अ) एल्यूमिनेट या चमक-हीन नीला तथा (आ) सिलीकेट या चमकदार नीला। कोबाल्ट एल्यूमिना की अपेक्षा सिलीका की ओर अधिक क्रियाशील है, जिसके कारण सिलीकेट नीला सरलता से बन जाता है। साथ ही उच्च तापक्रम पर कोबाल्ट एल्यूमिनेट अस्थायी होता है।

अतः कोबाल्ट सिलिकेट में परिवर्तित हो जाता है। प्रलेप पकाने की भट्ठी में अधिक काल तक ताप शोषण से चमकहीन नीला नष्ट होकर सिलिकेट या चमकदार नीला बन जाता है।

चमकहीन नीले रंजक निम्नलिखित अवयवों को 1140° — 1160° से० के तापक्रम पर निस्तापित करके धोने तथा पीसने से प्राप्त होते हैं।

एल्यूमिना बनाने के लिए पोटाश तथा अमोनिया फिटकरी के बराबर भाग लेकर उन्हें निस्तापित किया जाता है। निस्तापित पिण्ड को अच्छी तरह धोकर बने हुए पोटाश-सल्फेट को दूर कर दिया जाता है।

कुछ चमकहीन नीले रंजकों के सगठन नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
काला कोबाल्ट आक्साइड	५	५	१०	२०	१०
निस्तापित एल्यूमिना	५	९०	६०	६०	१०
जिक आक्साइड	९०	५	३०	२०	८०

१ री-मान नीला (Rimann-Blue)।

२ आसमानी नीला।

३ हल्का नीला।

४ शाही नीला (Royal Blue)।

५ हरा नीला।

थोडा-सा मैंगनीज डार्क आक्साइड मिलाकर चीनी नीले का किसी सीमा तक अनुकरण किया जा सकता है। मैंगनीज डार्क आक्साइड रहने से चीनी नीले रंग की हल्की आभा उत्पन्न करने में सहायता मिलती है।

चूँकि सीसा-रहित प्रलेपो में सीसा-सहित प्रलेपो की अपेक्षा अधिक एल्यूमिना रहती है, इसलिए चमकहीन नीला रंजक सीसा-रहित प्रलेप में अधिक स्थायी रहता है।

सिलिकेट या चमकदार नीले रंजक बहुत से नामों से जाने जाते हैं, जैसे मैरीन,

अल्ट्रा मैरीन, मैजेरीन, विल्लो, कैण्टन सैबल आदि। ये सब नीले रजक भी अवयवों को निस्तापित करके बनाये जाते हैं। अन्तः प्रलेप नीले रजको का निस्तापन 1200° से० पर किया जाता है, परन्तु नीले एनामेल रजको के लिए निस्तापन कुछ कम तापक्रम पर ही किया जाता है।

नीचे कुछ चमकदार नीले रजको के सूत्र दिये गये हैं।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
काला कोबाल्ट आक्साइड	५०	४५	×	×	१५
बेराइटीज	५	×	×	×	१०
खडिया	४५	×	×	×	×
जिन्क आक्साइड	×	×	२०	४०	७५
बॉल-मिट्टी	×	५५	५०	५०	×
कोबाल्ट फास्फेट	×	×	३०	१०	×
योग	१००	१००	१००	१००	१००

१ मैजेरीन नीला।

२ सभी कार्यों के लिए गहरा नीला।

३ मध्यम नीला।

४. समुद्र जल-नीला।

५ फीरोजी नीला।

मिश्रण-पिण्ड-रंजक—जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, मिश्रण-पिण्ड को दूधिया श्वेत करने के लिए उसमें थोड़ा सा नीला रंग मिला दिया जाता है। इस कार्य के लिए प्रयोग होनेवाले कोबाल्ट आक्साइड की मात्रा इतनी कम होती है कि उसे मिश्रण-पिण्ड में समान रूप से मिलाना बहुत ही कठिन कार्य है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए कुछ अक्रिय पदार्थों, जैसे चकमक तथा फेल्सपार को मिलाकर रजक को तनु कर लिया जाता है। ऐसा करने से उसकी रजक शक्ति भी कम हो जाती है और पात्र पर नीले धब्बे पड़ने की सम्भावना भी समाप्त हो जाती है।

कभी-कभी इसके लिए घुलनशील कोबाल्ट लवणों का प्रयोग किया जाता है। मिट्टी-पिण्ड में अमोनिया की थोड़ी मात्रा मिलाकर कोबाल्ट को घुलनशील लवणों से अवक्षेपित कर लिया जाता है।

अच्छा मिश्रण-पिण्ड-रंजक निम्नलिखित अवयवों को 1180° से 1160° से के बीच तापक्रम पर निस्तापित करके बनाया जा सकता है—

	(१)	(२)
बॉल-मिट्टी	५०	×
कोबाल्ट आक्साइड	३५	२५
चकमक या स्फटिक	×	१२
फेल्सपार	×	८
चीनी मिट्टी	१०	५५
खडिया	५	×
योग	१००	१००

निस्तापित करके रंजक चूर्ण को महीन पीसकर २०० नम्बर की चलनी से छाना जाता है। साधारण कार्यों के लिए इन रंजकों की मात्रा ०.१ से ०.३ प्रतिशत तक काफी है।

बहनेवाले नीले रंजक—कुछ सजावटों में रंजक पकाते समय नीले रंजक को बहाया जाता है। यह कार्य सैगर के अन्दर ही लैंड क्लोराइड या दूसरे ऐसे ही पदार्थ जलाकर क्लोरीन गैस उत्पन्न करके किया जाता है। उत्पन्न क्लोरीन का कुछ भाग तो प्रलेप तथा कुछ भाग कोबाल्ट रंजक अवशोषित कर लेता है। कोबाल्ट रंजक क्लोरीन द्वारा घुलनशील कोबाल्ट क्लोराइड बन जाता है। उच्च तापक्रम पर प्रलेप द्वारा अवशोषित गैस निकल जाती है और कोबाल्ट लवण गैस निकलते समय बने रास्तों में होकर बहता है। बहाव चूर्ण एक पात्र में रखकर सजावट किये जानेवाले पात्र के साथ सैगर में रख दिया जाता है। चूर्ण इस प्रकार रखा जाता है कि बहाव चूर्ण से निकलनेवाली गैस पात्र के चारों ओर समान रूप से रहे। इस कार्य के लिए प्रयोग किये जानेवाले नीले रंजक इस प्रकार बने हों कि क्लोरीन वाष्प सरलता से क्रिया करके उन्हें घुलनशील लवणों में परिवर्तित कर दे।

कुछ बहनेवाले नीले रजको के सूत्र नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)
कोबाल्ट आक्साइड	६५	५५	५०
सिलिका चूर्ण	१०	२५	३०
शोरा	२५	×	२०
लाल सीसा	१०५	४	×
बोरेक्स केलास	१२	६	×
फेल्सपार	×	६	×
खडिया	×	४	×
योग	१००	१००	१००

इन विशेष नीले रजको का निस्तापन इतने अधिक उच्च तापक्रम पर होना आवश्यक नहीं, जितने पर कि साधारण नीले रजको का होता है।

बहाव चूर्ण का एक सगठन नीचे दिया जाता है—

श्वेत सीसा या सफेदा	३८
साधारण नमक	१८
बोरेक्स केलास	१४
खडिया	३०
योग	१००

खडिया और श्वेत सीसा को मिलाओ और नमक के अम्ल के साथ उस समय तक बिलोडो जब तक कि बुदबुदन बन्द न हो जाय। तब इसमें बोरेक्स और साधारण नमक को अच्छी तरह मिलाओ।

नीले रंजक में दोष

दूधियापन—प्रायः देखा जाता है कि नीले रजकवाले प्रलेप में प्रलेप पकाने के पश्चात् छादनी की भाँति दूधियापन आ जाता है। प्रलेप में यह दूधियापन केलास बनने की प्रारम्भिक अवस्था के कारण होता है। कोबाल्ट इस केलासीकरण में सहायता देता है। प्रलेप पकाने की भट्ठी बहुत धीमी गति से ठण्डी होने पर भी दूधियापन आ

जाता है। केलास उस समय सबसे अच्छे बनते हैं जब प्रलेप की अवस्था तरल प्रलेप और श्यान के बीच में आ जाती है।

ये केलास कैल्शियम मोनो सिलिकेट के बनने के कारण होते हैं तथा उस समय बनते हैं, जब प्रलेप में चूना अधिक और लैंड आक्साइड या एल्यूमिना कम होता है। जब नीले कोबाल्ट में दूधियापन दीखे, रजक के अवयवों में से खडिया मिट्टी कम कर दो और एल्यूमिना बढ़ा दो, क्योंकि इससे केलासों के बनने की क्रिया कम हो जाती है। एल्यूमिना की अधिकतम सीमा १२ प्रतिशत तक है। इससे अधिक एल्यूमिना होने पर आभा में कमी आ जाती है और चमक नष्ट हो जाने का भय रहता है।

लौह-दोष—यह दोष द्रावको की कमी या कोबाल्ट की अधिकता से होता है। द्रावक कोबाल्ट से सम्पृक्त हो जाते हैं और ठण्डा करने पर कुछ कोबाल्ट लाल या गुलाबी चकत्तों के रूप में अलग हो जाता है। इस दोष को नीले रजको का लौह दोष कहा जाता है, कारण चकत्तों का रंग लौह आक्साइड की भाँति होता है। जब यह दोष आ जाय तो चकत्तों को तूलिका की सहायता से लाल सीसे (Pb_3O_4) से पोत दो और दुबारा फिर पकाओ। रजक बनाने के सूत्र को ठीक करने के लिए द्रावक बढ़ाओ या कोबाल्ट कम करो। यदि द्रावक कुछ अधिक डाल दिया गया हो तो रजक बह सकता है। पात्र के मिश्रण-पिण्ड, प्रलेप या रजक में मैगनीशिया की उपस्थिति कोबाल्ट के नीले रंग को लाल बैंगनी रंग में परिवर्तित करने की प्रवृत्ति रखती है।

छितराव-दोष—इस दोष में रगीन तल बहुत से टुकड़ों में टूट जाता है। विशेष कर उस समय जब पात्र का तल चिकना करने के लिए किसी तेल का प्रयोग किया गया हो। यदि प्रलेप चढ़ाने से पूर्व सरन्ध्र पात्र नमीदार स्थान में अधिक काल तक रख दिये जायँ तो उनमें जलवाष्प घुस जाता है। यदि सजावट के लिए तेलयुक्त रजक प्रयोग किये गये हों तो तेल की अपारगम्य परत के कारण जलवाष्प सरलता से नहीं निकल पाता तथा उच्च तापक्रम पर जलवाष्प दबाव के कारण रजक को छिटक देता है।

जलवाष्प-दोष—यदि पकाने में प्रयोग होनेवाले कोयलो में गन्धक है, तो गन्धक की गैसें जलवाष्प से मिलकर गन्धकाम्ल बनाती हैं। यह गन्धकाम्ल तापसह पेटियों के लौह यौगिकों पर क्रिया करके उन्हें घुलनशील बना देता है। यह बना हुआ लौह सल्फेट तापसह पेटियों में रखे पात्र पर गिरता है। गन्धकाम्ल प्रलेप तथा रजकों पर भी क्रिया करता है तथा कभी-कभी इस क्रिया से रजक बहने लगते हैं। जब यह दोष हो तो पकाने के प्रारम्भिक काल में कोक का प्रयोग करना चाहिए। कोक के प्रयोग से

जलवाष्प तथा हाइड्रोकार्बन नहीं बनते। तापक्रम बढ़ने पर कोयले का प्रयोग किया जा सकता है, कारण उच्च तापक्रम पर जलवाष्प शीघ्रता से निकल जाता है।

छिद्र-दोष—यह दोष नीले रंग की चौड़ी धारियों पर छोटे-छोटे छिद्रों के रूप में देखा जाता है। यदि सजावट के लिए उच्च तापक्रम पर वाष्पशील होनेवाले तेलों का प्रयोग किया जाय तो यह दोष आ जाता है। तेल के विच्छेदन से प्राप्त कार्बन द्रावक में मिल जाता है। अधिक गरम करने पर द्रावक में हवा घुस जाती है, जिससे कार्बन धीरे-धीरे न जलकर विस्फोट के साथ शीघ्रता से जलकर कार्बन-डाई-आक्साइड में परिवर्तित हो जाता है। यही कार्बन-डाई-आक्साइड बाहर निकलते समय छिद्र बना देती है।

चिह्न-दोष—यदि रजक ठीक प्रकार से निस्तापित नहीं किया गया है तथा प्रलेप में खडिया की मात्रा अधिक है, तो गलित काँचित कैल्शियम कार्बोनेट को ढक लेता है और सरलता से विच्छेदित नहीं होने देता। उच्च तापक्रम पर इसके विच्छेदन से प्राप्त कार्बन-डाई-आक्साइड फफोले बनाकर उन्हें फोडती हुई बाहर निकल जाती है। तापक्रम और बढ़ने पर ये फूटे फफोले भर जाते हैं, परन्तु उनके चारों ओर एक काला चिह्न बन जाता है। इस काले चिह्न के चारों ओर एक प्रभामंडल-सा रहता है। कोबाल्ट तथा मैंगनीज-रजको में यह दोष विशेष रूप से आता है। यह दोष होने पर रजक को उच्च तापक्रम पर निस्तापित करो तथा पीसते समय अधिक चीनी मिट्टी का उपयोग करो जिससे प्रलेप शीघ्रता से काँचीय न हो सके। पीसते समय खडिया न मिलाओ।

ताम्र-रजक—ताँबे का आक्साइड विभिन्न प्रलेपों के साथ विभिन्न रंग उत्पन्न करता है। साधारण प्रलेप में यह हरा रंग उत्पन्न करता है। हरा रंग, आक्साइड को द्रावक के साथ ही ११००° से० पर निस्तापित करके सरलतापूर्वक बनाया जा सकता है। चूँकि ताँबा उच्च तापक्रम पर वाष्पशील होना प्रारम्भ कर देता है, अतः यह रजक अन्तः प्रलेप सजावट के लिए अनुपयोगी है। निम्नलिखित अवयवों को काँचित करके एक अच्छा प्रलेप तल रजक या एनामेल रजक बनाया जा सकता है।

ताँबे का आक्साइड	१०
चकमक चूर्ण	२५
लाल सीसा	६०
बोरेक्स	५
योग	<u>१००</u>

अधिक क्षारीय प्रलेपो में ताँबा आक्साइड सुन्दर फोरीजी नीला रंग उत्पन्न करता है। इस नीले रंग में, हरे रंग में परिवर्तित हो जाने की धारणा अधिक होती है। शुद्ध क्षार सिलिकेट ताँबे के आक्साइड को अपने में घुलाकर गहरा नीला रंग उत्पन्न करते हैं, परन्तु यदि सिलिका के कुछ भाग के स्थान पर बोरिक आक्साइड हो तो हरा रंग विकसित हो जाता है। एल्यूमिना की उपस्थिति से भी नीला रंग हरे रंग में बदल जाता है। यदि क्षार के कुछ भाग के बदले चूना बेरीटा या मैगनीशिया डाल दिया जाय तो भी रंग हरा हो जाता है, परन्तु क्षार सीसा सिलिकेट में ताँबे के आक्साइड का रंग नीला ही रहता है, जब तक कि सीसा क्षार से अधिक नहीं हो जाता। इस अवस्था में पोटाश सीसा सिलिकेट, सोडा सीसा सिलिकेट की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। अतः ताँबे के फोरीजी नीले रंजक क्षार-सीसा-सिलिकेट होते हैं तथा इनमें अवयवों की सीमा का परास बहुत कम होता है। निम्नलिखित सूत्र से अच्छा फोरीजी नीला एनामेल रंग बन सकता है।

रेत या चकमक चूर्ण	४७ १५
लाल सीसा	२३ ५८
सोडियम नाइट्रेट	११ ८०
पोटैशियम नाइट्रेट	१२ ७६
ताँबे का आक्साइड	४ ७१

वातावरण की नमी अधिक क्षार पर क्रियाकर रंग को नष्ट कर सकती है। प्रलेप बनाने के लिए ताँबे का आक्साइड काँचित में पीसने से पूर्व मिलाना चाहिए, काँचित मिश्रण में नहीं। इस प्रकार के प्रलेपो में क्रेजिंग की सम्भावना अधिक रहती है, कारण इन प्रलेपो में क्षारीय अंश अधिक रहता है।

अवकारक वातावरण में ताँबा लाल रंग को उत्पन्न करता है। ताँबे का लाल रंग दो प्रकार का होता है—

(अ) प्रलेप को रंगनेवाला लाल ताम्र रंजक। इसको रूज फ्लाम्बे (Rouge-Flambe) या रक्तशिखा कहते हैं।

(आ) प्रलेप-तल-रंजक। इसे ताम्र की रक्त चमक कहते हैं।

इन दोनों रंजकों का बनाना कठिन है। रक्तशिखा प्रलेप पकाने समय भट्ठी का वातावरण समान रूप से अवकारक रखना परमावश्यक है। यदि भट्ठी के किसी स्थान

का वातावरण अवकारक न हुआ तो उस स्थान के पात्र के प्रलेप में हरा रंग आ जायगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिए प्रलेप सगठन में कोई आक्सीकारक यौगिक, यथा लैंड-आक्साइड, शोरा आदि नहीं रहना चाहिए। प्रलेप तल पर रक्त चमक लाने का विवरण अगले अध्याय में विस्तृत रूप से किया गया है।

लौह-रंजक—लौह आक्साइड लाल पीले से लेकर बादामी तक कई प्रकार के रंग उत्पन्न करते हैं। अवकारक वातावरण में लौह आक्साइड सिलेडान (Celadon) हरा रंग उत्पन्न करता है। यह रंग चीनी लोगो का बहुत ही प्रिय रंग था। मृद्-उद्योग में प्रयोग होनेवाले रजको के बनाने के लिए लौह आक्साइड, फेरस सल्फेट के केलासो को निस्तापित करके बनाते हैं। 500° से 0 के ऊपर केलास पीले लाल रंग के फेरिक आक्साइड के महीन चूर्ण में परिवर्तित हो जाता है। यदि लौह सल्फेट के साथ जिक सल्फेट या एल्यूमिना मिलाकर निस्तापित किया जाय, तो पीला रंग गहरा हो जाता है। यहाँ तक कि अन्त में नारंगी या भूरा हो सकता है। निस्तापन का तापक्रम 600° से 650° से 0 करने पर प्रवाल लाल या रक्त लाल पदार्थ मिलता है। आगे 700° से 750° से 0 तक गरम करने से बैंगनी बादामी या बैंगनी काला पदार्थ मिलेगा। मैंगनीज सल्फेट की उपस्थिति से गहरा काला रंग मिलता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि रजक केलासो के विभिन्न आकार रंग की भिन्न आभाओं को जन्म देते हैं। निस्तापन का तापक्रम जितना ही अधिक होगा, केलासकण उतने ही बड़े होंगे। अतः रंग की आभा भी उतनी ही गहरी होगी।

लाल लौह आक्साइड बनाना—शुद्ध फेरस सल्फेट को महीन चूर्ण करके चूर्ण को मन्दी आँच से गरम करके केलास जल निकाल दो, परन्तु चूर्ण पिघलने न पाये। श्वेत अजल चूर्ण पुनः पीस लिया जाता है। यह पेषण जितना ही महीन होगा, रंग उतना ही शुद्ध होगा। तत्पश्चात् यह महीन चूर्ण पतली तह में भट्ठीयों में रखा जाता है। यह भट्ठी धीरे-धीरे रक्त तप्त कर दी जाती है। 600° से 700° से 0 के बीच इच्छित आभा प्राप्त होते ही भट्ठी धीरे-धीरे ठण्डी होने दी जाती है। ठण्डे पिण्ड को कई बार उबलते पानी से धोया जाता है, जिससे यदि कुछ सल्फेट अविच्छेदित अवस्था में रह गया हो, तो धुलकर दूर हो जाय, कारण यह बचा हुआ सल्फेट आगे चलकर रजक पर सफेद नोना लगा देता है।

लौह के लाल-रजक प्रलेप तल पर एनामेल रजक के रूप में अच्छा कार्य करते हैं

कारण ये रंजक उच्च तापक्रम पर अपना रंग बदल देते हैं। अधिक सीसा युक्त द्रावक अधिक बोरेक्सवाले द्रावक की अपेक्षा लाल रंग उत्पन्न करने में अधिक सहायक हैं। लौह आक्साइड को अपने भार के ३ या ४ गुने द्रावक चूर्ण के साथ खूब महीन पीसना चाहिए। पैनैटीर (Pannetier) नामक वैज्ञानिक ने, जिसने लाल लौह रंजक बनाने में खूब यश कमाया था, निम्नलिखित अवयवों से बने द्रावक के उपयोग की सिफारिश की है। लाल सीसा १२ भाग, चकमक ४ भाग, बोरेक्स ३ भाग। पैनैटीर ने नारंगी से लेकर भूरे रंग तक ११ प्रकार के रंजक बनाये थे जिनके विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं।

रंजक नाम	सिलीका	लैड- आक्सा- इड	बोरेक्स	लौह- आक्सा- इड	मैंगनीज- डाई आ- क्साइड	एल्यूमिना	जिकवा क्साइड
नारंगी लाल	१७ ४८	५१ ५४	१३ ०८	१४ १०	×	नाममात्र	३ ८
नेस्ट्र्यूशियम लाल (Nastrutium)	१६ ६०	५० ३९	१२ ५१	२० ५०	×	"	×
रक्त लाल	१६ ९०	४६ ५१	१३ ३९	१९ ७०	×	० ४०	×
मासल लाल	१६ ६०	४९ १८	१४ २२	२० ००	×	नाममात्र	×
गाढा लाल	१६ ३०	५० ०२	१३ ६८	२० ००	×	"	×
हलका लाल	१६ ४०	४९ ४४	१५ ९६	१८ २०	×	"	×
हलका बैंगनी लाल	१६ ८५	५० ६६	१२ ६६	१८ ८३	×	"	×
बैंगनी लाल	१६ ३९	५० ५२	१२ ०१	२१ ०८	×	"	×
गाढा बैंगनी लाल	१६ ५६	५० ०९	१५ ३६			"	×
घोर बैंगनी लाल	१६ ४०	५० ६०	१२ १४	१८ ७१	२ १५	"	×
लौह भूरा	१५ ५५	४३ ०५	१५ ४८			"	×

नारंगी से लेकर बैंगनी तक, लौह आक्साइड द्वारा प्राप्त सभी रंग तीन प्राथमिक रंगों लाल, पीले या नीले में विच्छेदित किये जा सकते हैं। निस्तापन तापक्रम जितना ही कम होगा, रंग उतना ही अधिक पीला होगा तथा निस्तापन तापक्रम जितना ही अधिक होगा रंग उतना ही अधिक नीला होगा। रंजक उस समय शुद्धतम होगा जब लौह आक्साइड बिल्कुल समान अणुओं से बना हो। यदि सभी अणु रंग के विकास के लिए आवश्यक तापक्रम तक समान रूप से गरम किये जायें तो रंग पूर्णरूपेण शुद्ध होगा।

उच्च तापक्रम पर थीवियर्स अर्थ (Thiwers Earth) के अतिरिक्त प्राकृतिक लौह खनिज पीले या लाल रजको के बनाने के लिए उपयोगी नहीं है, कारण थीवियर्स अर्थ से बना रजक ही उच्च तापक्रम पर रंग नहीं बदलता । इस खनिज को कभी-कभी जापानी लाल कहा जाता है । इसे निस्तापित करके सेमियन नामक विशेष प्रकार के लाल पात्रों के बनाने में इसे प्रयोग किया जाता है । मिश्रण-पिण्ड में इस खनिज की लगभग ५ प्रतिशत मात्रा पकाने पर बहुत ही सुन्दर मासल रंग उत्पन्न करती है ।

इस खनिज का एक विशेष विश्लेषण नीचे दिया जा रहा है, परन्तु इसके विश्लेषण स्थान-भेद से बदलते रहते हैं ।

फैरिक आक्साइड	८ २४
सिलिका	८९ ३१
एल्यूमिना	१ २५
हानि	१ २०

८० भाग थीवियर्स अर्थ और २० भाग लाल सीसा को एक साथ गलाने के पश्चात् काफी महीन पीसकर चित्रकारी के लिए लाल रजक बनाया जा सकता है । कृत्रिम थीवियर्स अर्थ बनाने के लिए एल्यूमिनियम सल्फेट तथा फैरिक सल्फेट के घोलों को इस अनुपात में मिलाया जाता है, कि Al_2O_3 और Fe_2O_3 का अनुपात उक्त अनुपात के बराबर रहे । उसके पश्चात् इस घोल-मिश्रण में सोडियम सिलिकेट घोल तब तक डाला जाता है, जब तक कि अवक्षेप बनता रहे । यह अवक्षेप सावधानी पूर्वक धोकर, सुखाकर उच्च तापक्रम पर निस्तापित कर लिया जाता है ।

द्रव में फेरिक सल्फेट का अनुपात बढ़ाने से, प्राप्त लाल रंग की आभा गहरी होती जाती है तथा एल्यूमिना का अनुपात बढ़ाने से हल्की आभा प्राप्त होती है । यह रजक अन्तःप्रलेप रजक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु इसके लिए प्रलेप को अधिक अम्लीय नहीं होना चाहिए, अन्यथा रजक यौगिक प्रलेप में उपस्थित सिलिका या बोरिक अम्ल की क्रिया से फैरिक बोरो सिलिकेट बनकर प्रलेप को पीला कर देगा ।

मैगनीज रंजक—मैगनीज यौगिकों का प्रयोग करके हल्की तथा गहरी दोनों आभाओं के बादामी रजक बनाये जा सकते हैं । मैगनीज का शुद्ध बादामी रंजक मैगनस आक्साइड तथा एल्यूमिना के मिश्रण से बनता है । यह रंजक मैगनस सल्फेट तथा

पोटाश फिटकिरी के घोलो को मिलाकर तथा इस मिश्रण-घोल मे सोडियम कार्बोनेट का घोल मिलाकर बनाया जा सकता है। सोडियम कार्बोनेट का घोल उस समय तक छोड़ना चाहिए, जब तक कि अवक्षेप बनता रहे। यह अवक्षेप बाद मे धोया, सुखाया तथा निस्तापित किया जाता है। प्रथम दो घोलो के अनुपात पर रंग की आभा निर्भर करती है। रजक मे द्रावको को मिलाकर एनामेल रजको के रूप मे प्रयोग किया जा सकता है।

इस कार्य मे प्रयोग होनेवाली मुख्य मैगनीज अयस्क (ore) पाइरोलूसाइट (Pyrolucite) है। इस अयस्क का सगठन निम्नलिखित सीमाओ के बीच बदलता रहता है।

मैगनीज डार्क आक्साइड	७०-९५ प्रतिशत
सिलिका	०-२ „
एल्यूमिना	०-१ „
फेरिक आक्साइड	०-५ „
चूना	०-१ „
हानि	१-५ „

पाइरोलूसाइट से निम्नलिखित अवयवो द्वारा रजक बनाये जा सकते हैं—

पाइरोलूसाइट	२०	२५
एल्यूमिना	८०	—
फेल्सपार	—	७५
योग	१००	१००

कभी-कभी बैंगनी बादामी रजक बनाने के लिए मैगनीज फास्फेट का प्रयोग किया जाता है।

मैगनीज फास्फेट	७० भाग
टीन आक्साइड	३० भाग

मिश्रण को उच्च तापक्रम पर निस्तापित करो। सर्वोत्तम बादामी रजक विभिन्न आक्साइडो के मिश्रण से प्राप्त होते हैं।

अधिक क्षारीय प्रलेपो या द्रावको मे क्षार परमैंगनेट बनने के कारण, मैगनीज

बैंगनी रंग उत्पन्न करता है। इच्छित आभा के अनुसार मैंगनीज-डाई-आक्साइड की मात्रा ०.५ से २ प्रतिशत तक आवश्यक होती है।

अधिक मैंगनीज-डाई-आक्साइड होने से पकाने के पश्चात् प्रलेप में अपारदर्शक बादामी चकत्ते उत्पन्न करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। मैंगनीज-डाई-आक्साइड के निस्तापन से Mn_2O_4 या Mn_2O_3 बन सकता है, परन्तु जब यह आक्साइड प्रलेप में घुलते हैं, तो वे विच्छेदित होकर MnO के रूप में आ जाते हैं। इसी MnO के कारण मैंगनीज प्रलेप के विभिन्न रंग प्राप्त होते हैं। निकली हुई आक्सीजन प्रलेप में छिद्र दोष या चिह्न दोष की उत्पत्ति का कारण बन सकती है। विशेष कर उस समय, जब रजक उच्च तापक्रम पर निस्तापित किया गया हो, कारण उच्च तापक्रम पर निस्तापित आक्साइड प्रलेप में घुल तो जाता है, पर बहुत धीरे-धीरे। अतः बिना घुला आक्साइड प्रलेप में अपारदर्शक चकत्ते बना देता है। साधारण प्रलेप में MnO की घुलनशीलता बहुत अधिक नहीं है। अतः यदि MnO अधिक मात्रा में डाल दिया जाय, तो यह अल्पपारदर्शक चकत्ते के रूप में बाहर आ जाता है।

यूरेनियम रंजक—यह धातु आक्सीकारक वातावरण में पकाने पर फीके हरे पीले रंग से लेकर, चकमदार गहरे लाल रंग तक, तथा अवकारक वातावरण में पकाने पर फीके हरे बादामी से लेकर गहरे काले रंग तक, रंगों की बहुत-सी श्रेणियाँ उत्पन्न करता है। रजक स्थायी होता है। अतः जिस अवस्था में दूसरे पीले रजक प्रायः विच्छेदित हो जाते हैं, इसका प्रयोग किया जाता है। यह रजक बनाने के लिए जो तथाकथित आक्साइड बाजार में मिलता है, वह वास्तव में पोटाश या सोडा यूरेनेट ($Na_2O \cdot 2UO_3$ or $K_2O \cdot 2UO_3$) होता है। सोडा यूरेनेट का रंग पीला होता है, तथा पोटाश यूरेनेट का रंग नारंगी होता है।

सीसे की अधिक मात्रावाले प्रलेपो में यूरेनियम गहरा नारंगी रंग उत्पन्न करता है। जिन प्रलेपो में क्षार की मात्रा अधिक तथा सीसे की मात्रा कम होती है, उनमें यूरेनियम द्वारा सर्वोत्तम पीला रंग या पके नीबू का रंग उत्पन्न होता है। पके नीबू के रंग में पीले के साथ थोड़ी हरी आभा भी रहती है। साधारण मृत्पात्र के लिए प्रलेप में लगभग ५ प्रतिशत यूरेनियम आक्साइड के प्रयोग से सन्तोपजनक परिणाम निकलता है। यदि १० प्रतिशत से अधिक प्रयोग किया जाय तो प्रलेप ठण्डा करने पर आवश्यकता से अधिक आक्साइड अल्पपारदर्शक छादनी के रूप में अलग हो जाता है।

श्वेत प्रलेपित मृत्पात्रों को अवकारक वातावरण में पकाने पर ८ प्रतिशत आक्साइड से गहरा काला रंग उत्पन्न होता है।

तथाकथित पीले आक्साइड को अपने से ३ या ४ गुने भार के द्रावक (A) या द्रावक (B) के साथ मिलाने से अच्छे एनामेल रजक बनते हैं। द्रावक (A) तथा (B) के संगठन इसी अध्याय में पहले दिये जा चुके हैं। द्रावक (A) के साथ पीले रंग की आभाएँ तथा द्रावक (B) के साथ पके नीबू रंग (lemon-colour) की आभाएँ मिलती हैं।

निम्नलिखित परिणामों द्वारा विभिन्न प्रलेपों से विभिन्न आभाएँ बनने का अनुमान लग जायगा।

प्रलेप का अणु-संगठन	यूरेनियम आक्साइड प्रतिशत	आभा
(१) १० लैड मोनोक्साइड, ०.१५ एल्यूमिना, १७ सिलिका	४५	गहरी नारंगी
(२) ०.७५ लैड मोनोक्साइड } ०.१४ पोटैशियम } ०.१५ एल्यूमिना, आक्साइड } १७ सिलिका ०.११ चूना }	३०	नारंगी पीली
(३) ०.३५ लैड मोनोक्साइड } ०.३५ पोटैशियम } ०.१५ एल्यूमिना आक्साइड } १७ सिलिका ०.३० चूना }	३०	पका नीबू रंग

२० से ४० प्रतिशत लौह आक्साइड मिलाने पर यूरेनियम आक्साइड नारंगी लाल रंग की विभिन्न आभाएँ उत्पन्न करता है।

कोबाल्ट आक्साइड के साथ यूरेनियम आक्साइड का मिश्रण जेड हरे (Jade green) रंग की सभी आभाएँ उत्पन्न करता है।

क्रोमियम रंजक—यह धातु हरे, पीले, नारंगी तथा गुलाबी आदि रंगों की विभिन्न आभाएँ उत्पन्न करता है। इन आभाओं की भिन्नता प्रलेप सगठन तथा पकाने के वातावरण पर निर्भर करती है। क्रोमियम से क्रोम हरा रजक बनाने में शक्तिशाली अवकारक वातावरण आवश्यक है, जब कि पीले, नारंगी तथा गुलाबी रजको को बनाने के लिए शक्तिशाली आक्सीकारक वातावरण सर्वोत्तम होता है।

सभी क्रोम हरे रजको को निस्तापन के बाद धोने की आवश्यकता होती है। अच्छा परिणाम पाने के लिए रजक मिश्रण के साथ निस्तापन के समय थोड़ा-सा लकड़ी का बुरादा रख देते हैं। यह बुरादा अवकारक वातावरण उत्पन्न करने में सहायक होता है। क्रोमियम आक्साइड के साथ खडिया मिलाने पर मरकत हरित (Emerald-green) या विक्टोरिया हरित मिलता है। इंग्लैण्ड तथा जर्मनी में प्रयोग होनेवाले दो मरकत हरित रजको के सगठन नीचे दिये जाते हैं।

	इंग्लैण्ड	जर्मनी
पोटाश डाईक्रोमेट	३८	३६
खडिया	२०	२०
फ्लोर स्फार	२०	१२
चकमक	२२	२०
कैल्शियम फ्लोराइड	X	१२
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>

फ्लोरस्फार (CaF_2), कैल्शियम फ्लोराइड तथा प्लास्टर के पुराने साँचों का चूर्ण रहने से हरे रजक अधिक स्थायी और अधिक चमकदार होते हैं। यदि क्रोम आक्साइड के साथ जिक आक्साइड मिला दिया जाय तो बादामी रजक मिलता है।

इस रजक के लिए वे प्रलेप अधिक उपयोगी हैं, जिनमें सीसा तथा चूना अधिक हो। सीसा-रहित प्रलेप उपयोगी नहीं हैं, कारण क्रोमिक आक्साइड ऐसे प्रलेपों में नहीं घुलता, परिणाम-स्वरूप प्रलेप की चमक कम कर देता है।

अधिक सीसावाले प्रलेपों तथा काँच कलइयों में लैडक्रोमेट पीला रंग उत्पन्न करता है। निम्नलिखित अवयवों को लगभग 600° से० पर निस्तापित करने से अच्छा एनामेल रंजक बनाया जा सकता है।

लालसीसा	७०	८०	४०
लैंड क्रोमेट	१०	×	३०
क्रोमिक आक्साइड	×	५	×
बोरैक्स	१२	१०	२०
स्फटिक	८	५	१०
योग	१००	१००	१००

यदि प्रलेप में सीसा अधिक हो तथा ओषदीकारक वातावरण में पकाया जाय तो प्रलेप में १०-१५ प्रतिशत लैंड क्रोमेट डालने से पीला रंग मिलता है।

प्रवाल लाल रंजक (Coral Reds)—३५ भाग लैंड क्रोमेट, ६५ भाग लाल सीसा को एक साथ कोंचित करने के पश्चात् कोंचित का तीन गुना भार द्रावक (A) मिलाने पर प्रवाल लाल रजक बन सकता है। इन प्रवाल रंगों की विशेषता उनके रंगों की चमक है। इन रजकों को व्यवहार में सम्भव न्यून तापक्रम पर तथा कम-से-कम समय में पकाना चाहिए। अधिक उच्च तापक्रम पर रजक विच्छेदित हो जाता है। प्रवाल लाल रजकों को पकाते समय वातावरण ओषदीकारक हो तथा भट्ठी में हवा आने-जाने का अच्छा प्रबन्ध हो, कारण अवकारक वातावरण अल्पपार-दर्शक हरा रंग उत्पन्न करता है।

क्रोम गुलाबी—१ ५ प्रतिशत क्रोमियम लवण को ३ भाग टिन आक्साइड, १-२ भाग चूना के मिश्रण के साथ शक्तिशाली ओषदीकारक वातावरण में १२००° से० से १३००° से० पर निस्तापित करने से गुलाबी तथा गहरे लाल रजक प्राप्त किये जा सकते हैं। सिलिका की थोड़ी मात्रा से रंग में चमक आ जाती है, परन्तु अधिक मात्रा होने से रंग की चमक कम हो जाती है। चूने के कुछ भाग के बदले कैल्शियम फ्लोराइड (CaF_2) डालने से गुलाबी रजक में सुधार हो जाता है। निस्तापित पिण्ड को अच्छी तरह धोना परमावश्यक है। यदि निस्तापित पिण्ड चमकदार नहीं है तो उसे पीस-कर पुन निस्तापित करना चाहिए।

क्रोमिक आक्साइड के बहुत ही सूक्ष्म कण गहरे लाल रंग के मालूम होते हैं। इस बात के कुछ प्रमाण मिलते हैं कि यह गहरा लाल रंग किसी रासायनिक यौगिक के कारण नहीं है तथा क्रोम टिन रंग भी वैसा ही होता है, जैसा कि सोने के कैसियस पर्पिल (Cassius-purple) का होता है। एल्यूमिना से भी एक क्रोम रजक बनाया

जा सकता है, जो दिन के प्रकाश या परावर्तित प्रकाश में हरा दीखता है और पार-गमित प्रकाश या कृत्रिम प्रकाश में गहरा लाल दिखाई देता है। इस प्रकार यह रजक अलेक्जेण्डेराइट (Alexanderite) खनिज के रंग से मिलता-जुलता है।

टिन आक्साइड, क्रोमिक आक्साइड की बहुत पतली परत को अपने ऊपर स्थिर करने में सहायता करने हुए एक रंग स्थापक की भाँति कार्य करता है, परन्तु टिन-आक्साइड स्वयं अप्रभावित रहता है। यदि क्रोमिक आक्साइड की मात्रा अधिक है तो यह चूने के साथ क्रिया करके हरी आभा उत्पन्न करेगा।

अवकारक वातावरण में टिन-आक्साइड अवकृत होकर टिन धातु बन जाता है जो वाष्पशील हो जाती है। गहरा लाल रंग पाने के लिए ओषदीकारक वातावरण, उच्च तापक्रम तथा काफी समय आवश्यक है।

वास्तविक व्यवहार में देखा जाता है कि विभिन्न कच्चे मालों से प्राप्त एक ही रासायनिक सगठन से गुलाबी रंग की विभिन्न आभाएँ प्राप्त होती हैं। क्रोम गुलाबी तथा क्रोम लाल रजकों के कुछ रासायनिक सगठन इस प्रकार हैं—

रंग	कैल्शियम आक्साइड	लैंड मोनो- क्साइड	पोटैशियम आक्साइड	स्टैनिक आक्साइड	क्रोमियम आक्साइड	सिलीका
रक्त लाल	६३ ११	×	२० ६८	१५१	३ ३१	२६ २२
चमकीला लाल	११२ ००	१२ ९३	×	१५१	४ ४०	२०० ००
गहरा लाल	४९ ७२	६ ९१	×	१५१	२ ३५	६० ००
गुलाबी	४८ ४०	२ ९०	७ ९०	१५१	१० ००	५८ ६०

१३००° से १३५०° से० पर निस्तापित करके बाद में निस्तापित पिण्ड को दो-तीन बार धोना चाहिए।

गुलाबी रजक के कुछ निर्माण सूत्र भी नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)
लैंड क्रोमेट	९ ३५	×	×	×
क्रोमिक आक्साइड	×	४ ४	×	×

पोटाश-डाई-क्रोमेट	×	×	५०	१५
लाल सीसा	६६३	१३१	×	×
स्फटिक	२०२०	२०२०	५०	६४०
खडिया	२०००	२०००	३००	६४०
कैल्शियम क्लोराइड	×	×	×	१५०
सोडा नाइटर	×	×	×	१६०
टिन आक्साइड	१५१०	१५१०	६००	१६००

(१) गुलाबी (२) गहरा गुलाबी (३) लाल (४) रोज-डू-बारी (Rose-du-Bar) या हल्का लाल।

डाईक्रोमेट को पानी में घुला लो तथा दूसरे अवयवों के साथ अच्छी तरह मिलाकर ओषदीकारक वातावरण में १३५०° से० पर निस्तापित करो।

निस्तापित पिण्ड को गरम पानी से अच्छी तरह इतना धोओ कि धोने का पानी साफ निकले। ये रंजक अन्तःप्रलेप रंजक या प्रलेप रंजक के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। एनामेल रंजक के रूप में प्रयोग करने के लिए इसमें ३-४ गुना भार द्रावक (A) मिलाना पड़ेगा।

अधिक चूनावाले प्रलेपों में खडिया का प्रयोग कम मात्रा में करो तथा कम चूना-वाले प्रलेपों में खडिया का अधिक प्रयोग करो। सीसा रहित प्रलेप में रंजक बिच्छेदित होकर रंग में पीलापन आ जाता है। अतः बनाने के सूत्र में लैड क्रोमेट का प्रयोग करो। अधिक क्षारसहित प्रलेप टिन आक्साइड का कुछ भाग घुला लेते हैं और रंग की चमक कम कर देते हैं।

साधारण मेजोलिका प्रलेप में सिलीका अधिक और चूना कम रहने के कारण उसमें उत्कृष्ट गहरा काला रंग नहीं उत्पन्न किया जा सकता, परन्तु निम्नलिखित सूत्र के प्रलेप द्वारा अच्छा परिणाम निकल सकता है—

० ५ लैड मोनोक्साइड	}	० ०८ एल्यूमिना	}	११ सिलीका
० ३ चूना				० ३ बोरेक्स
० २ क्षार				

प्रलेप का कुछ भाग रंजक के साथ कोंचित किया जा सकता है। यह भाग इच्छित रंग के अनुसार ५-१५ प्रतिशत तक हो सकता है।

कभी-कभी प्रलेप पकाने के पश्चात् क्रोम गुलाबी रंग बैंगनी हो जाता है। विशेष कर उस समय जब पकाने का तापक्रम उच्च हो। ऐसी अवस्था में रजक के निर्माण सूत्र में कुछ अधिक टिन आक्साइड डालो। यदि प्रलेप के निर्माण सूत्र में थोड़ा-सा क्रोमियम डाले तो यह क्रोमियम प्रलेप में घुलकर पीला काँच बनाता है जिसमें लाल रंग के कण आलम्बन अवस्था में रहते हैं जिससे बैंगनी रंग पीले रंग में छिप जाता है।

गुलाबी रंजक पर विभिन्न अवयवों का प्रभाव—चूना गुलाबी रजक के विकास तथा स्थायीपन में सहायक है। निर्माण सूत्र में चूने का अनुपात कम रहने से रंग बदलकर बैंगनी तथा बादामी हो सकता है। उच्च तापक्रम पर प्रलेप पकाने से कम चूनावाले गुलाबी रजक प्रायः विच्छेदित हो जाते हैं। यदि चूना की मात्रा २५ प्रतिशत से अधिक है तो आभा हलकी हो जाती है। चमकदार और स्थायी रजक प्रायः ३ भाग टिन-आक्साइड तथा २ भाग चूना से बनाये जाते हैं। चूने के स्थान पर कैल्शियम फ्लोराइड या प्लास्टर के पुराने साँचों का चूर्ण डाल दिया जाय तो रंग गहरा हो जाता है। अस्थिर रख रहने से रजक अस्थायी हो जाता है।

सिलीका—रजको के किसी सूत्र में थोड़ी मात्रा में चमकम डालने से रंग में चमक आ जाती है। गुलाबी रंग की धारणा भी बढ़ जाती है। अधिक मात्रा में चमकम डालने से रंग में कमी आ जाती है, परन्तु यदि प्रलेप मिश्रण में टिन आक्साइड की मात्रा बढ़ा दी जाय, तो रंग की चमक पुनः आ जाती है।

बोरिक-अम्ल—३ प्रतिशत तक बोरिक अम्ल की मात्रा से रंग में बहुत कम अन्तर पड़ता है, परन्तु अधिक मात्रा होने पर रंग बदलकर बादामी या बैंगनी हो सकता है।

एल्यूमिना—एल्यूमिना डालने से रजक का स्थायीपन कम हो जाता है, परन्तु अन्तः-प्रलेप रजक में थोड़ी चीनी मिट्टी मिला देने से रजक को प्रलेप के लिए उपयोगी होने में सहायता मिलती है।

एण्टीमनी रंजक—सिलीका तथा बोरिक आक्साइड की तरह एण्टीमनी भी अम्ल की भाँति व्यवहार करता है, अतः दूसरे धातवीय आक्साइडों से क्रिया कर यौगिक बनाता है। क्षार एण्टीमोनिट श्वेत यौगिक होते हैं, जिनका श्वेत प्रलेपो तथा काँच कलइयों में काफी प्रयोग होता है। सोडियम एण्टीमोनिट व्यापार में ल्यूकोनिन (Leu-Konin) के नाम बेचा जाता है और प्रलेप तथा काँच कलइयों को अपार-

दर्शकता प्रदान करने के लिए प्रयोग किया जाता है। एण्टीमनी से बना रजक केवल लैड एण्टीमोनिट $\{Pb_3(SbO_4)_2\}$ है, जो पीले रंग का होता है और बाजार में नैपिल्स यलो (Naples-yellow) के नाम से बिकता है। इस रजक का रंग अवयवों की मात्रा के अनुपात तथा निस्तापन तापक्रम पर निर्भर होता है। लौह आक्साइड की थोड़ी-सी मात्रा के प्रयोग से रंग की आभा सुधारी जा सकती है। एण्टीमनी आक्साइड से बने पीले रजकों के कुछ सूत्र नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)
लाल सीसा	६०	४५	४०	४५
एण्टीमनी आक्साइड	४०	५०	४०	३०
सोडा ऐश	×	५	१२	×
लौह आक्साइड	×	×	८	२५

१ शुद्ध नैपिल्स पीला, २ हलका पीला, ३ मध्यम पीला, ४ गहरा पीला।

शक्तिशाली ओषदीकारक वातावरण में १५०° से ० पर मिश्रण को निस्तापित करो। इन पीले रजकों में ४ गुना द्रावक मिलाने से अच्छा एनामेल रजक बनता है। प्रलेप रजक या अन्तः प्रलेप रजक के रूप में इनका रंग स्थायी नहीं होता।

कैडमियम रंजक—पीले कैडमियम सल्फाइड का सीसा रहित कॉच-कलइयो तथा प्रलेपो में प्रायः प्रयोग होता है, कारण सीसा की उपस्थिति प्रलेप के रंग को लैड सल्फाइड के बनने से काला कर देती है। यह कैडमियम सल्फाइड, कैडमियम लवण (क्लोराइड या सल्फेट) के घोल में हाइड्रोजन-सल्फाइड गैस बहाकर बनाया जाता है। प्रलेप तथा कॉच कलइयों को रंगने के लिए इस लवण का एक प्रतिशत काफी ठीक है। यह प्रायः पीसने से पूर्व कॉचित चूर्ण में डाला जाता है। यदि इसे कॉचित किया जाय तो गरम कॉचित को पानी में डाल देने से यह श्वेत हो जाता है। प्रलेप या कॉच कलई के पकाने पर पीला रंग पुनः आ जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कैडमियम सल्फेट कॉचित में घुल जाता है, परन्तु प्रलेप के दुबारा पकाने पर सूक्ष्म कणों के रूप में फिर बाहर आ जाता है।

स्वर्ण रंजक—सोने के गुलाबी तथा लाल रजक प्रायः बनाये जाते हैं। ऑरिक क्लोराइड के घोल को स्टैनस तथा स्टैनिक क्लोराइडों के मिश्रित घोल में डालने से

एक अवक्षेप मिलता है, जिसका रंग नीले बैंगनी से लाल बैंगनी, लाल, हरा, पीला तथा बादामी तक हो सकता है। अवक्षेप का रंग विभिन्न घोलो के गाढ़ेपन या सान्द्रता तथा उपस्थित पदार्थों की प्रकृति तथा उनके तापक्रम पर निर्भर करता है।

केवल स्टैनिक क्लोराइड, औरिक क्लोराइड से अवक्षेप नहीं देगा। स्टैनस क्लोराइड बादामी या पीला बादामी अवक्षेप देता है। बैंगनी तथा लाल रंग के लिए दोनों का मिश्रण आवश्यक है। यदि स्टैनिक क्लोराइड अधिक है, तो रंग में सोने की भाँति ही पीले रंग की प्रवृत्ति होती है और यदि बहुत अधिक हो तो रंग में नीला या हरा होने की प्रवृत्ति होती है। ठण्डे में औरिक क्लोराइड की अधिकता से रंग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु यदि घोल कुछ गरम हो तो रंग नीला बैंगनी, हलका बादामी या लाल हो सकता है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि स्टैनस क्लोराइड से, औरिक क्लोराइड अवकृत होकर धातु के बहुत ही सूक्ष्म कणों के रूप में आ जाता है। इन स्वर्ण-कणों के आकार पर ही रंग की प्रकृति निर्भर करती है। स्टैनिक क्लोराइड इन स्वर्ण कणों को अपने पर जमाकर रंग-स्थापक का काम करता है। यदि एल्यूमिना बैरीटा आदि को रंग-स्थापक के रूप में प्रयोग किया जाय तो ये रंग-स्थापक मृद्-उद्योग में प्रयोग होनेवाली दशाओं में प्रलेप में घुल जायँगे। अतः रंग-स्थापक के रूप में इनका प्रयोग नहीं किया जाता।

स्टैनस क्लोराइड के स्थान पर अमोनियम स्टैनस क्लोराइड प्रयोग करने पर क्रिया का नियन्त्रण सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

सोने से लाल बैंगनी रजक निम्न प्रकार बनाया जा सकता है। अलग-अलग एक भाग स्टैनस क्लोराइड और दो भाग स्टैनिक क्लोराइड को घुला लो। इन दोनों घोलों को एक भाग औरिक क्लोराइड के बहुत तनु घोल में मिलाओ। इन तीनों घोलों को मिलाने से एक लाल बैंगनी अवक्षेप बनता है, जो धीरे-धीरे नीचे बैठ जाता है। थोड़ा अल्कोहल डाल देने से अवक्षेप के जमकर नीचे बैठने में सहायता मिलती है। इसी अवक्षेप को कैसियस पर्पिल कहा जाता है। औरिक क्लोराइड में शोरे का अम्ल नहीं होना चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो घोल उदासीन होना चाहिए। प्रयोग किये गये घोलों की तनुता जितनी अधिक होगी रंग उतना ही अच्छा होगा। अवक्षेप को सिल्वर क्लोराइड के साथ पीसा जाता है और 900° — 1000° से० पर निस्तापित

किया जाता है। बहुत अधिक चाँदी डालने से रंग गुलाबी से बैंगनी हो जाता है। यदि रजक कम पकाया जाय तो रंग बादामीपन लिये रहेगा और यदि अधिक पक जाय तो बैंगनीपन लिये रहेगा।

स्वर्ण रजक तापक्रम की ओर सुग्राही होते हैं। अतः कभी-कभी भट्ठियों में ताप-निर्देशक (पाइरोस्कोप) की भाँति भी प्रयोग किये जाते हैं।

आक्सीकारक वातावरण में पकाने पर तथा सीसा और पोटैश सहित प्रलेपो तथा कॉच कलइयों में स्वर्णरजक अच्छी तरह विकसित होते हैं।

रक्त-लाल कौचित या कॉच कलई निम्नलिखित मिश्रण से प्राप्त की जा सकती है—

शुद्ध स्फटिक चूर्ण	३७	३०
लाल सीसा	४८	४०
पोटैश नाइट्रेट	६	५
पोटैश कार्बोनेट	९	५
बोरैक्स चूर्ण	×	१८
टिन आक्साइड	×	२
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>

इस मिश्रण के दस हजारवें भाग में बहुत तनु घोल के रूप में १ से ३ भाग तक शुद्ध औरिक-क्लोराइड मिलाओ। कौचित करने से पूर्व अच्छी तरह मिलाना आवश्यक है। कौचीकरण उच्च तापक्रम पर होना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि ठण्डा करने के पश्चात् कौचित या तो रंगहीन है या हल्के पीले रंग का है, परन्तु दुबारा गरम करने पर लाल रंग पुनः आ जाता है।

प्लैटीनम रंजक—यह मूल्यवान् धातु कभी-कभी भूरे तथा काले रंग उत्पन्न करने के काम आती है। ये रजक सब तापक्रमों पर स्थायी रहते हैं। रजक निम्न प्रकार बनाया जा सकता है—

धीमी आँच से अम्लराज (१ भाग सान्द्र शोरा का अम्ल तथा ३ भाग सान्द्र नमक का अम्ल) में धातु के छोटे कतरन घुलाओ। इस प्रकार बने प्लैटीनम क्लोराइड के घोल का वाष्पीकरण करके बिल्कुल सुखाओ। अब इसमें अमोनियम क्लोराइड की

बराबर मात्रा पानी में घुलाकर डालो। इन सबको फिर पूर्णरूप से वाष्पीकरण द्वारा सुखाओ। बचे हुए पदार्थ को पानी में घुलाओ तथा सरन्ध्र पोरसिलेन पात्र के चूर्ण द्वारा इसे अवशोषित करा लो, सुखा लो। तत्पश्चात् निस्तापित कर लो। प्रयुक्त किये जानेवाले प्लैटीनम की मात्रा पर ही रजक की रजन शक्ति निर्भर करती है। एनामेल रजक के रूप में प्रयोग करने के लिए इस रजक में कोई मृदु द्रावक मिलाओ। प्रलेप रजक तथा अन्तःप्रलेप रजक के रूप में प्रयोग करने के लिए किसी द्रावक के मिलाने की आवश्यकता नहीं होती।

मिश्रित रंजक—विभिन्न आक्साइडों के मिश्रण से नाना प्रकार के रंग उत्पन्न किये जा सकते हैं। निम्नलिखित मिश्रणों को 1160° से० पर निस्तापित करने के बाद अच्छी तरह पीसो तथा धोओ। इन रजकों को ३ से ४ प्रतिशत तक प्रलेप या काँच कलई में मिलाने पर अच्छे रंग प्राप्त होते हैं।

अवयव नाम	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)
फेरिक आक्साइड	३०	२०	१०	४०	—	—	—	१२
क्रोमिक आक्साइड	२०	३०	४०	१०	४०	५०	—	१०
कोबाल्ट	—	—	—	—	१०	—	१०	—
मैंगनीज	—	—	—	—	—	—	१६	—
जिक	२०	३०	४०	४०	—	—	३२	५०
फेल्सपार	—	—	—	—	२५	—	२४	—
जिप्सम	—	—	—	—	१०	—	—	—
केओलिन	३०	२०	१०	१०	१५	५०	१८	२८

(१) गाढा चॉकलेट (२) गाढा चॉकलेट बादामी (३) हरा बादामी (४) गहरा बादामी (५) घासी हरा (६) गहरा हरा (७) नीला बैंगनी (८) पीला लाल।

1400° से 1900° से० पर पूर्वनिस्तापित केओलिन अधिक स्थायी रजक उत्पन्न करती है। जिप्सम के स्थान पर प्लास्टर के पुराने साँचों का चूर्ण डालने से भी रंग में सुधार आता है।

कुछ हल्के रंगों के सूत्र यहाँ दिये जाते हैं।

अवयव नाम	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
टिन आक्साइड	६६	६५	—	५०	—
बोरेक्स	३०	२५	—	—	१०
पोटाश डार्क क्रोमेट	४	—	३५	१०	—
केओलिन	—	६५	३५	१०	८
लैंड-क्रोमेट	—	३०	—	—	२५
कोबाल्ट आक्साइड	—	०५	—	—	—
जिक आक्साइड	—	—	१५	२५	५०
लौह आक्साइड	—	—	१५	५	७
योग	१००	१००	१००	१००	१००

१ बकाइन (Lilac) २ बैंगनी ३ हल्का बादामी ४ नारंगी ५ रक्त लाल।

भूरे तथा काले रंजक बनाने के कुछ सूत्र नीचे दिये जाते हैं। इन मिश्रणों को ११६०° से० पर निस्तापित करने के पश्चात् पीसकर अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

	(१)	(२)	(३)	(४)
फेरिक क्रोमेट	९५	९०	७५	७०
कोबाल्ट आक्साइड	—	५	—	१५
मैगनीज-डार्क-आक्साइड	५	५	२५	१५

१ तथा २ भूरे रंजक हैं एव ३ और ४ एकदम काले रंजक हैं। प्रलेप तथा कॉच कलइयों में इन रंजकों की मात्रा १० प्रतिशत प्रयोग करनी चाहिए।

पंचम अध्याय

धातवीय चमक तथा रंजन विधियाँ

मृत्सामग्रियों, जैसे काँच, श्वेत मृत्पात्रों, पोरसिलेन पात्रों तथा काँच कलईयुक्त पात्रों पर रंगीन दीप्ति या चमक उनकी सुन्दरता बढ़ाने के लिए दी जा सकती है। यह चमक पात्र के चिकने तल को कुछ चुनी हुई धातुओं की बहुत पतली तह से ढँककर उत्पन्न की जा सकती है। ये धातुएँ ताप द्वारा पिघलाकर पात्र के तल पर स्थिर कर दी जाती हैं। इस पतली तह पर पड़नेवाली प्रकाश-किरणें परावर्तित होकर मोती के समान दीप्ति उत्पन्न करती हैं, जो इस चुनी हुई धातु की एक विशेषता है। इस कार्य में प्रयुक्त की जानेवाली धातुएँ दो प्रकार की होती हैं। प्रथम वर्ग में वे धातुएँ हैं, जो कोई रंग नहीं उत्पन्न करती, वरन् केवल दीप्ति-प्रभाव ही उत्पन्न करती हैं। ये धातुएँ बिस्मिथ, सीसा, जस्ता तथा एल्यूमिनियम हैं। द्वितीय वर्ग की धातुएँ विशेष प्रकार की रंगीन चमक तथा आभा उत्पन्न करती हैं। इन धातुओं में यूरेनियम, ताँबा, लोहा, कोबाल्ट, निकिल कैडमियम आदि हैं। अच्छी प्रकार चुनी हुई दो या दो से अधिक धातुओं के मेल से बहुत ही मनोहारी रंग उत्पन्न हो सकते हैं।

प्राचीन अरब तथा इटली निवासी मृत्सामग्रियों पर चमक उत्पन्न करने की इस कला में बहुत ही दक्ष थे। जब मूरों ने स्पेन को जीता था, तो उन्होंने सुनहली चमकवाली टालियों से मस्जिदें बनवायी थी, जो काफी दूर से देखी जा सकती थी। चमक चढ़े हुए प्राचीन पात्र यूरोपीय देशों के अजायबघरों में अब भी देखे जा सकते हैं।

धातवीय चमक उत्पन्न करने की प्राचीन विधियाँ अनिश्चित हैं, कारण उनसे हर बार रंग की एक ही आभा नहीं प्राप्त होती। ताँबे में चाँदी की बहुत थोड़ी-सी मात्रा मिलाकर, ताँबे का सर्वाधिक उपयोग लाल से लेकर कांस्य रंग तक की चमक उत्पन्न करने में होता था। ताँबे की चमक के लिए निम्नलिखित अनुपात से अच्छा परिणाम निकलता है।

कापर कार्बोनेट	१७	१८	२७
सिल्वर कार्बोनेट	१	२	३
बिस्मिथ कार्बोनेट	१२	१०	—
(लाल) गेरू	७०	७०	७०

चाँदी की थोड़ी मात्रा ताँबे को शीघ्र ही पिघला देती है तथा ताँबे के लाल रंग को नीली आभा प्रदान करती है। बिस्मिथ ताँबे का गलनाङ्क अधिक कम करता है, तथा ताँबे के लाल रंग को मोती की सीप जैसी आभा प्रदान करता है। लाल गेरू की उपस्थिति केवल मिश्रण की मात्रा बढ़ाती है तथा प्रलेप को ब्रश द्वारा लगाने में सरलता प्रदान करती है। अवयव महीन पीस लिये जाते हैं और तब पानी और टैंगेन्थ गोद के साथ गारा-जैसा प्रलेप बना लिया जाता है। यह प्रलेप पात्र की चिकनी सतह पर समान रूप से मोटी तह में मृदु ब्रश द्वारा लगा दिया जाता है तथा छाया में धीरे-धीरे सुखाया जाता है। शीघ्रतापूर्वक सुखाने से सूखे प्रलेप पर सूक्ष्म दरारे पड़ सकती हैं। ये दरारे अन्त में चमकीली सतह पर निशान बन जायँगी। अब सूखे हुए पात्र भट्ठी में पकाये जाते हैं। भट्ठी में पात्र काफी शक्तिशाली अवकारक वातावरण में पकाये जाने चाहिए। भट्ठी के अन्दर अवकारक वातावरण उत्पन्न करने के लिए भट्ठी के प्रकोष्ठ में लकड़ी के टुकड़े फेंके जा सकते हैं। पकाने का तापक्रम इतना अधिक न हो कि लाल गेरू गल जाय, अन्यथा यह पात्र के चिकन प्रलेपन पर चिपक जायगा। पकाने के पश्चात् पात्र का तल कठोर ब्रश से साफ किया जाता है तथा पानी के साथ धोया जाता है।

मृत्पात्रों पर चमक उत्पन्न करने की वर्तमान विधियाँ प्राचीन विधियों से बिल्कुल भिन्न हैं। आजकल प्रयोग की जानेवाली धातु सर्वप्रथम रेजीनेट, लिनोलिएट या नैफ्थीनेट जैसे धातवीय साबुनों में परिवर्तित कर ली जाती है। ये धातवीय साबुन पानी में अघुलनशील परन्तु कुछ वाष्पशील घोलको, जैसे तारपीन का तेल, टौलीन (Touline), नाइट्रोबेजीन, रोजमेरी का तेल, स्पाइक लैवेण्डर तेल तथा बेजोल आदि में घुलनशील होते हैं। ये साबुन पात्र के धरातल पर सरलतापूर्वक मुलायम ब्रश द्वारा या ब्रौछार-विधि द्वारा लगाये जा सकते हैं। समान रंग तथा चमक प्राप्त करने के लिए साबुन की परत का समान होना परमावश्यक है। पतली तैलीय परत सरलता से सूख जाती है, परन्तु सुखाने की क्रिया धीमी होनी चाहिए। सूखे हुए पात्र बाद में भट्ठी में पकाये जाते हैं। विभिन्न प्रकार के पात्रों के लिए भट्ठी का तापक्रम ६००° से ९००° से० के बीच रखा जाता है। श्वेत प्रलेपित मृत्पात्रों तथा पोरसिलेन पात्रों के लिए भट्ठी

का तापक्रम ८००° से ९००° से० के बीच होता है, परन्तु कॉच तथा कॉच कलई युक्त बर्तनों के लिए तापक्रम कम रहता है।

पकाते समय धातवीय साबुन के कार्बनिक यौगिक जल जाते हैं और भट्ठी के प्रकोष्ठ में अवकारक वातावरण उत्पन्न करते हैं, जिसके कारण धातवीय यौगिक धातु के रूप में बदल जाते हैं। धातुओं की बहुत पतली परत गलकर पात्रतल पर चिपक जाती है। यह धातु की पतली परत चुनी हुई धातुओं के अनुसार विशेष रंग तथा चमक उत्पन्न करती है।

धातवीय साबुन निम्न विधि से बनाये जा सकते हैं। सर्वप्रथम पानी में घुलनशील रोजिन, अलसी या तीसी के तैल (Linseed oil) या नैपथीनिक अम्ल का कास्टिक सोडा के साथ क्षार साबुन बना लेते हैं। सोडियम कार्बोनेट का प्रयोग जहाँ तक हो, नहीं करना चाहिए, कारण बचा हुआ कार्बोनेट धातवीय लवणों से क्रिया करके उन्हें अधुलनशील धातवीय कार्बोनेट के रूप में अवक्षेपित कर देगा। ये धातवीय कार्बोनेट वाष्पशील धूलकों में घुलनशील नहीं होते। धातवीय साबुन बनाने के लिए अवयव निम्नलिखित अनुपात में लिये जा सकते हैं—

	कास्टिक सोडा	
स्वच्छ रोजिन	१००	१३०
विशुद्ध तीसी का तेल	१००	१४५
नैपथीनिक अम्ल	१००	१२५
(एसिड वैल्यू १७५)		

कास्टिक सोडा को $३८-४०^{\circ}$ Be $^{\circ}$ या लगभग ३५ प्रतिशत गाढ़ेपन का घोल बनाने के लिए पानी में घोलो। रोजिन को पिघलाओ या तेल को गरम करो और तब क्षारीय घोल को धीरे-धीरे बिलोडते हुए मिलाओ। जब पूरा क्षार रोजिन या तेल में पड़ जाय, तो इन सबको उस समय तक गरम रखो, जब तक कि साबुनीकरण पूर्ण न हो जाय। साबुनीकरण के पूर्ण होने का पता निम्नलिखित परीक्षण से लगाया जा सकता है।

रोजिन के साबुन के लिए—साबुन का छोटा-सा टुकड़ा कुछ पानी से भरी परखनली में डालकर खूब अच्छी तरह हिलाओ। यदि रोजिन पूर्ण रूपेण साबुनीकृत हो गया है, तो पूरा साबुन पानी में घुल जायगा और पानी को दूधिया श्वेत कर देगा। असाबुनीकृत भाग नीचे बैठ जायगा।

अलसी के तेल या नैपथीनिक साबुनों के लिए—साबुन के छोटे से टुकड़े को सोख्ता कागज में रखकर दबाओ। यदि साबुन में बिना क्रिया किये हुए तेल या अम्ल का कुछ

अश है, तो वह कागज द्वारा सोख लिया जायगा और कागज पर अल्प पारदर्शक चिह्न हो जायगा ।

प्रयोग से पूर्व साबुन का पानी के साथ २० प्रतिशत घोल बना लो । धातवीय साबुन बनाने के लिए धातु का ऐसा लवण लिया जाता है, जो पानी में घुलनशील हो । अच्छा परिणाम पाने के लिए धातवीय लवणों का पानी में १० प्रतिशत घोल बना लिया जाता है । इस कार्य के लिए तॉबा, मैंगनीज, कोबाल्ट, जस्ता तथा एल्यूमिनियम के सल्फेट, लोहे तथा टिन के क्लोराइड और सीसे, बिस्मिथ तथा यूरेनियम के नाइट्रेट लवण लिये जा सकते हैं । ये दोनों घोल ठंडी अवस्था में ही तब तक मिलाये जाते हैं, जब तक कि अवक्षेपण पूर्ण न हो जाय । अब दही जैसा अवक्षेप गरम पानी से अच्छी तरह धोया जाता है । बाद में धुले हुए अवक्षेप को गरम हवा द्वारा शीघ्रतापूर्वक सुखा लिया जाता है । यदि अँधेरे में सुखाया जाय तो और भी अच्छा हो, कारण जब रोजीनेट तेज प्रकाश तथा हवा में काफी देर तक रख दिया जाय, तो वह ओषदीकृत होकर घोलको में अघुलनशील हो जाता है । रोजीनेट की अपेक्षा लिनोलिएट अधिक स्थायी होते हैं, परन्तु इन बात में नैफ्थीनेट सबसे अधिक स्थायी होते हैं । अतः रखना हो तो इन धातवीय साबुनों को घोलक में घुलाकर डाट लगी हुई बोतलों में भरकर रख देना चाहिए । क्षारीय साबुन को अवक्षेपित करने के लिए कितना धातवीय लवण लगेगा, यह नीचे सारणी में दिया गया है ।

साबुन ५० ग्राम	लवण ग्रामों में	धातवीय साबुन की प्रकृति
सोडियम लिनोलिएट	कापर सल्फेट	२१ २
	मैंगनीज सल्फेट	१३ ०
	कोबाल्ट क्लोराइड	२० ०
	लैंड नाइट्रेट	२४ २
	फेरिक क्लोराइड	१६ ६
सोडियम नैफ्थीनेट	कापर सल्फेट	१८ ५
	जिक सल्फेट	१६ ५
रोजिन साबुन	कापर सल्फेट	२८ ८
	लैंड नाइट्रेट	२० ५
	जिक सल्फेट	२३ २
	मैंगनीज सल्फेट	१३ ५
	कोबाल्ट नाइट्रेट	२७ ५
		हरा, ठोस । पीला बादामी, मुलायम ठोस । काला, शुष्क, ठोस । हलका बादामी, चिपचिपा ठोस । काला, शुष्क ठोस । हरा, कठोर ठोस । श्वेत, काफी चिपचिपा ठोस । हरा, ठोस । मासल रंग का गारे जैसा । श्वेत, चिपचिपा । गुलाबी, मुलायम । हलका बैंगनी ठोस ।

गीली विधि से धातवीय साबुन बनाने के पश्चात् उन्हें गरम पानी से खूब अच्छी तरह धो लेना चाहिए, जिससे साबुन में उपस्थित कोई भी पानी में घुलनशील लवण न रहे। धोये हुए साबुनो को हवा की भट्ठी में $70^{\circ}-80^{\circ}$ से० पर सुखाया जाता है। अधिक तापक्रम से कुछ साबुन पिघल सकते हैं। सुखाने के पश्चात् इन साबुनो में नमी ०-३ प्रतिशत तक रहती है। इन साबुनो को पूर्णरूपेण सुखाने में सदैव विच्छेदन का भय रहता है।

कुछ धातवीय साबुनो के विश्लेषण के परिणाम नीचे दिये जाते हैं।

साबुन	नमी का प्रतिशत	सम्पूर्ण राख का प्रतिशत	धुली राख का प्रतिशत
लैड लिनोलिएट	१९	२८६	२७८
कोबाल्ट लिनोलिएट	२८	१२६	१०५
मैगनीज लिनोलिएट	१३	१३५	१२२
लौह लिनोलिएट	०५	१४१	१२६
टिन रोजीनेट	०९	२९४	२८५
बिस्मिथ रोजीनेट	०१	१३२	१२९
टिन नफ्थीनेट	०५	२०७	२०१
बिस्मिथ नैफ्थीनेट	०२	१६५	१६१

टिन और बिस्मिथ के साबुन बनाने में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। जब स्टैनस क्लोराइड या बिस्मिथ नाइट्रेट पानी में घुलाये जाते हैं, तो आक्सी लवणों में परिवर्तित हो जाते हैं। ये आक्सी लवण पानी में आलम्बन रूप में रहते हैं तथा इन्हे उचित अम्लों को डालकर घुला लेना चाहिए। परन्तु जब ये अम्लीय घोल क्षारीय साबुन के घोल में डाले जाते हैं, तो बना हुआ साबुन इन मुक्त खनिजाम्लों से विच्छेदित हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए साबुनघोल में मुक्त कास्टिक सोडा, मुक्त खनिजाम्लो को उदासीन करने के लिए काफी मात्रा में होना चाहिए। यदि यह सावधानी न बरती गयी तो क्षार साबुन के विच्छेदन से प्राप्त तेल तथा अम्ल द्रव की सतह पर तैरते देखे जायेंगे।

टिन तथा बिस्मिथ साबुन बनाने के लिए अम्ल और कास्टिक सोडा की आवश्यक मात्राएँ आगे दी जाती हैं।

साबुन ५० ग्राम	धातवीय लवण	उत्पादन	साबुन की प्रकृति
{ रोजिन साबुन	स्टैनस क्लोराइड-२४ ग्राम	५० ग्राम	पीला चूर्ण ।
{ कास्टिक सोडा-२५ ग्राम	हाइड्रोक्लोरिक अम्ल-२२ घ से		
{ नैपथीनिक साबुन	स्टैनस क्लोराइड-१७ ५ ग्राम	३० ,,	पिघला चिप-
{ कास्टिक सोडा-३३ ग्राम	हाइड्रोक्लोरिक अम्ल-३० घ से		चिपा गारे जैसा ।
{ नैपथीनिक साबुन	बिस्मिथ सबनाइट्रेट-१२ ग्राम	२८ ,,	पिघला चिप-
{ कास्टिक सोडा-२२ ग्राम	शोरे का अम्ल-२२ घ० से०		चिपा तथा पीले रंग का ।

बिस्मिथ, जस्ता तथा सीमे की चमक शुष्क विधि से भी उत्पन्न की जा सकती है। $8C_{44}H_{64}O_5 + 2B_1(NO_3)_2 \cdot 5H_2O = B_1(C_{44}H_{62}O_5)_3 + 6HNO_3 + 5HO_2$

२५ ग्राम रोजिन लेकर कम तापक्रम पर पिघला लो। अब तरल रोजिन में विलोडते हुए १० ग्राम बिस्मिथ नाइट्रेट का महीन चूर्ण या ७ ग्राम बिस्मिथ सबनाइट्रेट का महीन चूर्ण डालकर तब तक विलोडो, जब तक कि बादामी रंग का पिण्ड न बन जाय। इस बादामी पिण्ड में ७५ घन सेण्टीमीटर स्पाइक लवेण्डर तेल डालकर इतना विलोडो कि बादामी ठोस पदार्थ तेल में घुल जाय। अब आग पर से उतार लो और बर्तन को ढककर २४ घण्टे ऐसा ही रखा रहने दो, जिससे अधुलनशील पदार्थ जमकर नीचे बैठ जायें। स्वच्छ द्रव को ऊपर से निथारकर डाट लगी बोतलो में प्रयोग के लिए रख लो। शेष बिना घुले पदार्थ को नये मिश्रण के साथ फिर प्रयोग किया जा सकता है। यदि स्वच्छ द्रव पात्र पर लगाने के विचार से काफी पतला है, तो ब्रश के साथ प्रयोग करने से पूर्व पोरसिलेन की तश्तरी में थोड़ी सी मात्रा को हवा में खुला छोड़कर गाढा किया जा सकता है। जस्ते व सीसे की चमक इसी विधि से उनके एसीटेटो का प्रयोग करके बनायी जाती है। तीन भाग रोजिन के साथ एक भाग इन धातुओं के एसीटेट का प्रयोग करो। सात भाग धातु रेजीनेट के लिए सात भाग तारपीन के तेल का प्रयोग करो।

टिन की चमक इससे भिन्न विधि से तैयार की जाती है। दस भाग गन्धक बाल्सम को गरम करो। इसमें अविराम विलोडन के साथ ३ ५ भाग स्टैनस क्लोराइड मिलाओ। जब श्यान द्रव में टिन लवण लगभग घुल जाय, तो इसमें २२ भाग विशेष प्रकार से बना लवेण्डर तेल मिलाओ। यह तेल मिश्रण छ भाग लवेण्डर के तेल, तीन भाग क्लोव का तेल तथा एक भाग नाइट्रोबेजीन मिलाकर बनाया जाता है। इन सबको उस समय

धातुओं के साथ मिलाकर किया जाता है। निम्नलिखित धातुओं का मिश्रण भट्ठी में ७१०° से० पर पिघलेगा।

(१) पीली नौबू चमक

यूरेनियम चमक	४
बिस्मिथ चमक	१

(२) नारंगी चमक

लौह चमक	३
बिस्मिथ चमक	१
सीसा चमक	१

(३) सुनहली चमक

यूरेनियम चमक	२
लौह चमक	२
बिस्मिथ चमक	१

(४) भूरी इस्पात चमक

कोबाल्ट चमक	३
सीसा चमक	१
बिस्मिथ चमक	१

(५) कौस्त्य चमक

कोबाल्ट चमक	१
लौह चमक	२
सीसा चमक	२

(६) मोती की सीप जैसी चमक

बिस्मिथ चमक	२
टिन चमक	१
एल्यूमिनियम चमक	२

तरल-स्वर्ण—सोने का एक रजनीय (Resinous) यौगिक बनाकर उसे विशेष द्रवों में घुला लिया जाता है। इस घोल को व्यवहार में तरल स्वर्ण (Liquid gold) कहा जाता है। तरल स्वर्ण जब प्रलेपित मृत्पात्रों, काँच या काँच कलई किये गये बर्तनों पर लगाया जाता है, तो यह बड़ी शीघ्रता से सूख जाता है और भट्ठी में पकाने पर पात्र तल पर सोने की एक चमकदार परत छोड़ देता है। यह तरल स्वर्ण या तो सोने को गन्धक वाल्सम में घुलाकर बनाया जाता है या सोने को किसी रजनीय द्रव में कलिल अवस्था में रखा जाता है। तरल स्वर्ण बनाने की वास्तविक क्रिया का अभी तक पता नहीं चल पाया है। ऐसा समझा जाता है कि सोना, गोल्ड टरपेन सल्फाइड (Gold-terpen-Sulphide) में परिवर्तित हो जाता है, जो गन्ध तेलों (Essential-oils) में सरलतापूर्वक घुल जाता है। चूँकि सोने का द्रवणांक बहुत अधिक है अतः उसमें टिन, बिस्मिथ, यूरेनियम की थोड़ी मात्रा मिलायी जाती है, जिससे सोना कम तापक्रम पर ही गल जाय और भट्ठी में पकाने पर पात्र तल पर चिपक जाय। सोना एक मुलायम धातु है। अतः यदि इसे कठोर न बना

दिया जाय तो सजावट शीघ्र ही घिस जायगी। इस कारण सोने के साथ रहोडियम (Rhodium) या क्रोमियम की थोड़ी-सी मात्रा मिला दी जाती है। ये धातुएँ सोने के घिसने को कम करती हैं। कभी-कभी तरल स्वर्ण में प्रयोग होनेवाले सोने का प्रतिशत कम करने के लिए लौह तथा यूरेनियम का भी प्रयोग किया जाता है। प्रायः तरल स्वर्ण बनाने में १०-१२ प्रतिशत शुद्ध सोने का प्रयोग किया जाता है।

प्रायः तरल स्वर्ण बनाने में औरिक क्लोराइड का प्रयोग करते हैं। औरिक क्लोराइड, शुद्ध सोने को अम्लराज (Aqua-Regia) में घुलाकर बनाया जाता है। यह औरिक क्लोराइड नाइट्रिक अम्ल तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से रहित होना चाहिए। ३५ ग्राम सोने को लगभग २०० cc ताजा बने हुए अम्लराज की आवश्यकता होती है। तीन भाग सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में एक भाग सान्द्र नाइट्रिक अम्ल मिलाकर प्रयोग से पूर्व अम्लराज बनाया जा सकता है।

१२ प्रतिशत सोने का प्रयोग करते हुए १०० ग्राम तरल स्वर्ण बनाने के लिए निम्नलिखित अवयव प्रयुक्त किये जा सकते हैं—

(१) गोल्ड ग्लैस (४५ प्रतिशत सोना)	२६ ७ ग्राम
(२) बिस्मिथ रेजीनेट (६ प्रतिशत बिस्मिथ आक्साइड)	६ ५ ग्राम
(३) क्रोम रेजीनेट (४ प्रतिशत क्रोमियम आक्साइड)	१ २ „
(४) रहोडियम रेजीनेट (३ ५ प्रतिशत रहोडियम)	१ २ „
(५) रोज मेरी तेल	२३ ० „
(६) फेनेल (Fennel) तेल	९ ८ „
(७) एसफाल्ट घोल (५० प्रतिशत नाइट्रोबेन्जीन)	१४ ० „
(८) साधारण रजिन (Rosin) घोल	१७ ६ „
(५० प्रतिशत तारपीन का तेल)	

१००० „

निम्नलिखित सूत्र से एक सस्ता तरल स्वर्ण बनाया जा सकता है। सोने के कुछ भाग के बदले लोहा डाला जाता है। इसमें क्रोमियम और रहोडियम भी नहीं डाला जाता, कारण लोहे से सोने की परत इतनी काफी कठोर हो जाती है कि साधारण घर्षण सहन कर सके।

गोल्ड ग्लैस	४०
बिस्मिथ रेजीनेट	२५
लौह रेजीनेट	२०
एसफाल्ट घोल	१५
(नाइट्रोबेजीन में)	<hr/> १०० <hr/>

उपर्युक्त अवयवों को उनके घोलों में घुला लेना चाहिए। उसके बाद एक यान्त्रिक मिश्रक में एसफाल्ट घोल के साथ मिला लेना चाहिए।

गोल्ड ग्लैस बनाना—बड़े पोरसिलेन के तसले में गन्धक बाल्सम लो। अविराम बिलोडन के साथ इसमें इतना औरिक क्लोराइड डालो कि मिश्रण में सोना ४५ प्रतिशत हो जाय। औरिक क्लोराइड का घोल काफी तनु होना चाहिए। तेज बिलोडन के लिए पदार्थों का गरम करना आवश्यक है। इसके बाद क्रियाएँ पूर्ण होने के लिए २४ घण्टे तक इसे ऐसा ही छोड़ दो।

ऊपर के स्वच्छ द्रव को निथारकर बैठे हुए काले पिण्ड से अलग कर लो तथा काले पिण्ड को ५ या ६ बार गरम पानी से इतना धोओ कि धोनेवाले पानी में हाइड्रो-क्लोरिक अम्ल न आये। धोनेवाले पानी को भी इकट्ठा कर लो, कारण उसमें भी कुछ सोने का घोल है। काले पदार्थ को खरल में रगड़कर तथा कभी-कभी गरम करके उसकी सब नमी को दूर कर दो। अब यह दूसरे अवयवों के साथ मिलाने के लिए तैयार है।

तरल स्वर्ण के सभी अवयव उपर्युक्त गोल्ड ग्लैस में मिलाओ और कुछ घण्टों तक अच्छी तरह हिलाओ। जहाँ तक हो सके यान्त्रिक हलिलत्र, का प्रयोग करो, कारण इससे विलोडन अच्छा होता है। इसके पश्चात् घोल को अच्छी प्रकार बन्द करके बोतलों में रखो। रेजीनेट घोल इसी अध्याय में बतायी गयी विधि से बनाना चाहिए। एसफाल्ट घोल तूलिका द्वारा द्रव को पात्र पर लगाने में सहायक होता है।

तरल स्वर्ण को दूसरे घातवीय रेजीनेटों के साथ मिलाने से विभिन्न रंगीन चमके उत्पन्न की जा सकती हैं।

१ नीली चमक

तरल स्वर्ण	१ भाग
टिन रेजीनेट	४ भाग
विस्मिथ रेजीनेट	१० भाग

२ हरी चमक

नीली चमक	३ भाग
यूरेनियम रेजीनेट	२ भाग

३ गुलाबी चमक

तरल स्वर्ण	१ भाग
टिन रेजीनेट	१ भाग
विस्मिथ रेजीनेट	४ भाग

बुद्धिमान चित्रकार विभिन्न अवयवों का अनुपात बदलकर विभिन्न प्रकार की आभाएँ उत्पन्न कर सकता है।

रंजन-विधियाँ:—मृत्पात्रों को सजाने के लिए रंगीन प्रलेप का प्रयोग करने तथा प्रलेपित तल पर धातवीय चमके उत्पन्न करने के अतिरिक्त और भी बहुत-सी विधियाँ काम में लायी जाती हैं। मुख्य विधियाँ निम्नलिखित वर्गों में बाँटी जा सकती हैं।

- १ चित्राकन विधि।
- २ बौछार विधि।
- ३ छापा विधि।
- ४ जलचित्र विधि।
- ५ छिडकाव विधि।
- ६ सरन्ध्र प्रलेपन विधि।

मृत्पात्रों पर रंग चढ़ाने के लिए तूलिका सरलतम साधन है। तूलिका द्वारा सरलतापूर्वक रंग चढ़ाने के लिए रजक चूर्ण के साथ कुछ तेल तथा गोद जैसे पदार्थ मिला लेने चाहिए, जिससे द्रव सूख जाने पर रजक पात्र पर चिपका रहे। इस उद्देश्य के लिए, विशेष कर पके हुए सरन्ध्र पात्रों पर चित्राकन के लिए जो तेल साधारणतः प्रयोग किया जाता है, उसे चिपचिपा तेल (Fat-oil) कहते हैं।

यह चिपचिपा तेल निम्नलिखित अवयवों को एक साथ भाप ऊष्मक में गरम करके बनाया जा सकता है।

तारपीन का तेल ७ भाग

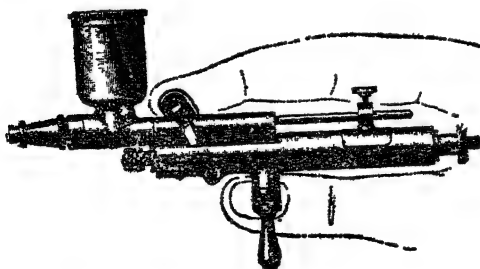
रजन (Rosin) २ भाग

दूसरी विधि में तारपीन के तेल में १-२ प्रतिशत पकाया हुआ गाढ़ा (Thickly Boiled) अलसी का तेल अच्छी तरह मिलाने से भी चिपचिपा तेल बनाया जा सकता है।

इस माध्यम के साथ अच्छी तरह मिलाये गये रजक चूर्ण पात्र द्वारा अवशोषित हुए बिना, पात्र पर सरलतापूर्वक लगाये जा सकते हैं। तारपीन का तेल शीघ्रता से वाष्पशील हो जाता है तथा रजन या अलसी का तेल पात्र पर रजक चूर्ण को स्थिर करने के लिए बच जाता है। इसमें कार्बनिक पदार्थों के कार्बनीकरण द्वारा सजावट के नष्ट होने का डर भी नहीं रहता।

प्रलेपित पात्र के तल पर चित्राकन के लिए चिपचिपे तेल के स्थान पर थोड़ी-सी ग्लिसरीन या गोद के पानी का प्रयोग किया जा सकता है।

बौछार-विधि—अन्त प्रलेप रजक तथा प्रलेप तल-रजक दोनों के ही लिए बौछार-विधि का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए सुई बौछार यन्त्र काम में लाया जाता है। इस यन्त्र में २०-३० पौंड प्रतिवर्ग इंच दबाववाली हवा के प्रयोग से बौछार होती है।



चित्र २२ रजन के लिए सुई बौछार-यन्त्र

अन्त प्रलेप रजन के लिए रजक को तारपीन के तेल तथा थोड़े से चिपचिपे तेल के साथ अच्छी तरह मिलाकर एक पतले द्रव के रूप में कर लेना चाहिए।

प्रलेप तल रजन के लिए एनामेल रजक चूर्ण को इतने पानी के साथ मिला लिया जाता है कि लकड़ी का टुकड़ा उसमें सीधा खड़ा रह सके। पानी के साथ थोड़ा गोद भी डाल लेने से पानी सूख जाने पर भी रजक चिपका रहता है।

छापना—श्वेत मृत्पात्र प्रायः चिकन-प्रलेपन से पूर्व रंगीन नक्शे छापकर सजाये जाते हैं। इस उद्देश्य के लिए नीले और हरे रजको का अधिक उपयोग होता है, कारण ये रजक प्रलेप पकाने के उच्च तापक्रम पर नष्ट नहीं होते। निम्नलिखित अवयव-अनुपात अच्छे छाप-रजक बनाने में प्रयुक्त किये जा सकते हैं—

छापने का नीला रजक

कोबाल्ट आक्साइड	६०
चकमक	२०
फेल्सपार	१०
चीनी मिट्टी	१०
	<u>१००</u>

छापने का हरा रजक

क्रोम आक्साइड	३२
कोबाल्ट	८
एल्यूमिना	२५
फेल्सपार	१५
चकमक	१८
श्वेत सीसा	<u>२</u>
	<u>१००</u>

उपर्युक्त मिश्रणों को 1100° से० पर निस्तापित करो। अच्छी तरह पीसो, जिससे २५० नम्बरवाली चलनी से सब छन जाय। प्रयोग से पूर्व रजक को अच्छी तरह धो लो।

छापने की क्रिया सरलतापूर्वक होने के लिए रजक को किसी छाप-तेल के साथ मिलाकर जितना सम्भव हो गाढ़ा बना लिया जाय। छाप-तेल निम्न प्रकार से बनाया जाता है—

विशुद्ध अलसी का तेल	$\frac{1}{2}$ पाइंट
मैस्टिक गोद	$\frac{1}{2}$ औंस
अम्बर गोद	$\frac{1}{2}$ औंस
श्वेत सीसा	$\frac{1}{2}$ औंस

उपर्युक्त अवयवों को धीरे-धीरे इतना उबालो कि शीरा (Molasses) के बराबर गाढ़े हो जायँ। इसे डिब्बों में बन्द करके कुछ दिन रखो। तेल जितने दिन रखा जायगा उतना ही उत्तम होगा।

छाप-तेल बनाने की एक प्राचीन विधि—

एक क्वार्ट तीसी के तेल तथा आधे पाइंट रैप तेल के मिश्रण को उबालो। जब मिश्रण उबल रहा हो, तभी १ औंस रजन तथा १ औंस श्वेत सीसा और लकड़ी का अलकतरा डालो। इसे लौ-रहित स्पष्ट आँच पर उबालना चाहिए, जिससे आग न पकड़ ले और तब तक उबालना चाहिए कि मिश्रण इतना चिपचिपा हो जाय कि जब इस मिश्रण को ठंडी प्याली में डालकर उँगलियों की सहायता से उसकी चिपचिपाहट का अनुमान करे, तो इस मिश्रण पर से उँगली उठाने पर ५ या ६ इंच या इससे अधिक लम्बा तार निकल आये।

अब तेल को ठण्डा होने दो और जैसे ही बुलबुले निकलना बन्द हो जायँ, इसे आधे पाइंट अलकतरा के तेल के साथ बिलोडो। तीसी का तेल जितना पुराना होगा उतना ही कम समय लगेगा और अच्छा उबल जायगा। रखने पर इस प्रकार के बने तेल के गुण भी सुधर जाते हैं। एक अच्छे छाप-तेल से ऐसी ठोस छपाई प्राप्त होनी चाहिए, जो पात्र पर रक सके और धुल न जाय।

रैप तेल अलसी या तीसी के तेल को कम कठोर बनाता है। मैस्टिक, आरीगन बाल्सम, कैनाडा बाल्सम या रजन तेल, तेल-मिश्रण को गाढ़ा करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं, परन्तु यदि ये पदार्थ अधिक मात्रा में मिला दिये गये तो रज के धुल जाने की सम्भावना रहती है।

लकड़ी के अलकतरा या ऐसफाल्टम का कार्य, रजको को पात्र पर अच्छी तरह चिपकाने में सहायक होना है और इस प्रकार धोने पर धुल जाने के डर को समाप्त कर देना है। बहुत थोड़ी-सी मात्रा में श्वेत सीसा, लैंड एसीटेट, मैगनीज बोरेट या मैगनीज आक्साइड तेल को चिपकनेवाला बना देते हैं, परन्तु यदि सावधानी का प्रयोग न किया गया तो तेल के ऊपर इन सब यौगिकों की एक परत बन जाती है।

छाप-तेल में अच्छी तरह मिले हुए रजक को सर्वप्रथम गरम तश्तरी पर डालकर पतला कर लिया जाता है। उसके पश्चात् उसे चाकू या स्पैचुला की सहायता से नक्काशी खुदी हुई प्लेट पर फैला दिया जाता है। यह प्लेट ताँबे की बनी हुई होती है। रजक नक्काशियों की खुदाइयों में भर जाता है। अधिक रजक उसी चाकू से खुरचकर हटा दिया जाता है। अब प्लेट का तल एक मोटी गद्दी से साफ कर दिया जाता है। इस प्रकार अब केवल खुदाई में भरा हुआ रजक ही रह जाता

है। इसके पश्चात् एक बहुत ही पतले कागज पर घुलनशील साबुन की एक पतली परत तूलिका की सहायता से लगा दी जाती है तथा कागज को प्लेट पर इस प्रकार रख दिया जाता है कि कागज का साबुन-धोलवाला भाग प्लेट को छूता रहे। इस साबुन के घोल को साइज (Size) कहते हैं। इसके पश्चात् पूरी प्लेट फैंट की मोटी गद्दी लगे हुए बेलनो से दबायी जाती है। अब प्लेट फिर गरम की जाती है और पतला कागज बाहर निकाल लिया जाता है। कागज पर खुदाइयों के निशान आ जाते हैं।

इस प्रकार प्राप्त, छपा हुआ पतला कागज सरन्ध्र पात्र पर रखकर फैंट गद्दी द्वारा थोड़ा-सा दबाकर उसकी सिलवटे निकाल दी जाती है। बाद में कठोर तूलिका द्वारा रगड़ दिया जाता है। इसके पश्चात् उसे ऐसा ही कुछ समय तक छोड़ देते हैं, जिससे सरन्ध्र पात्र रजक को अवशोषित कर सके। अब पात्र पानी की नाँद में डुबो दिये जाते हैं। थोड़ी देर पानी में रहने से पतला कागज पात्र से छूट जाता है। कागज को स्पज की सहायता से धीरे-धीरे हटा दिया जाता है।

सुखाने के पश्चात् पात्र पर प्रलेप चढ़ाया जाता है।

छापने के लिए 'साइज' एक पौण्ड घुलनशील साबुन तथा एक औंस सोडा को एक गैलन पानी में उबालकर बनाया जा सकता है।

बड़े-बड़े कारखानों में छपाई का काम बेलन-यन्त्र द्वारा किया जाता है। इस विधि में केवल दो-तीन रंगों के नक्शे ही एक साथ प्रयोग किये जा सकते हैं।

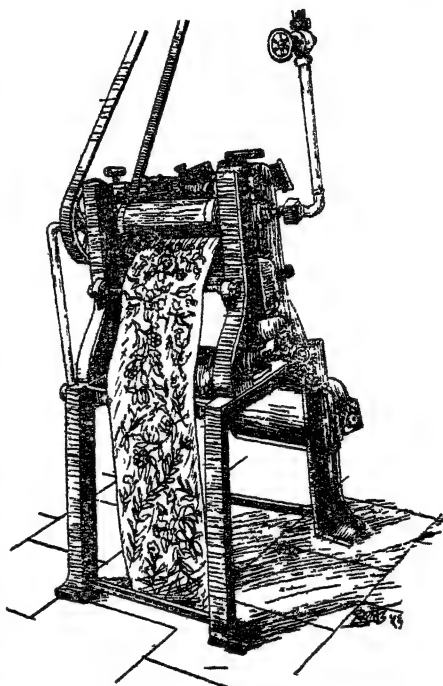
छपाई की विधि से सरन्ध्र तथा प्रलेपित दोनों ही प्रकार के मृत्पात्र सजाये जा सकते हैं।

उचित प्रलेप-घोले में डुबोने से पूर्व सरन्ध्र छपे हुए पात्रों पर सर्वप्रथम स्पज की सहायता से बहुत ही तनु प्रलेप घोल की एक परत चढ़ा दी जाती है। इस प्रलेप घोले को गन्धकाम्ल द्वारा अम्लीय कर लिया जाता है। इस प्रारम्भिक क्रिया से छापने में प्रयोग की गयी तेल की तह नष्ट हो जाती है और पात्र के बिना छपे हुए तल की अवशोषण शक्ति कम हो जाती है जिसके कारण प्रलेप तैलीय सतह से हट नहीं जाता और पात्र की पूरी सतह समान रूप से प्रलेपित हो जाती है।

प्रलेपित पात्रों पर छपाई के लिए छाप-तेल के साथ एनामेल रजक का ही प्रयोग करना चाहिए।

छापा-विधि में केवल दो-तीन रंग के नक्शे ही बनाये जा सकते हैं और इन नक्शों में भी केवल रेखाचित्र ही आ पाता है, परन्तु जल-चित्र-विधि द्वारा कितने ही रंगों के नक्शे बनाये जा सकते हैं। यह विधि केवल प्रलेपित मृत्पात्रों के लिए ही उपयोगी है।

जल-चित्र-विधि—सजावट
की इस विधि में विभिन्न रंगों के नक्शों से छपे हुए विशेष प्रकार के कागज प्रलेपित मृत्पात्रों पर नक्शे उतारने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। इन कागजों को जल-चित्र कागज कहा जाता है और इन्हें बनाने के लिए पत्थरों पर नक्शे खोदे जाते हैं। प्रत्येक रंग के लिए अलग-अलग पत्थर लिया जाता है। छापने के लिए रंगों को विशेष प्रकार की वार्निश में मिला लिया जाता है। कागज छापने से पूर्व उस पर घुलनशील पदार्थों की एक बहुत पतली परत चढ़ा दी जाती है। यह परत कागज को रंग से अलग रखती है तथा उसके कारण पात्र पर



चित्र २३. छापा-विधि का छाप-यन्त्र

नक्शे उतारने के बाद कागज सरलतापूर्वक हटाया जा सकता है। इस परत के बनाने के लिए प्रयोग किये जानेवाले पदार्थों में सरलतापूर्वक घुलनेवाले गोद, ग्लू, डैट्रिक्सन, स्टार्च प्रलेप तथा ट्रैगेकेन्थ गोद हैं। ये पदार्थ पानी में भिगोने पर शीघ्रता से फूल जाते हैं।

जलचित्र कागज विशेष कम्पनियों द्वारा बनाये जाते हैं तथा इन जलचित्र कागजों को किसी विश्वसनीय कम्पनी से ही खरीदना अच्छा होता है। जलचित्र कागज से प्रलेपित मृत्पात्र पर नक्शे निम्न प्रकार से उतारे जाते हैं।

जलचित्र कागज से आवश्यक चित्र या नक्शे काट लो और उन्हें कुछ क्षणों तक पानी में डुबो दो। पानी कागज में घुसकर गोद जैसी परत को फुला देगा, परन्तु वार्निश लगी होने के कारण छपा हुआ भाग पानी से अप्रभावित रहता है।

अब प्रलेपित मृत्पात्र के छापे जानेवाले भागों पर एक विशेष प्रकार की चिपचिपी वार्निश लगायी जाती है और तल काफी चिपचिपा होने तक सूखने दिया जाता है। इसके पश्चात् जलचित्र कागज के टुकड़े पात्र के चिपचिपे तल पर इस प्रकार चिपका दिये जाते हैं कि चित्रकारी नीचे की ओर रहे। अब कागज को समान रूप से दबाकर हवा के बुलबुले निकाल दिये जाते हैं। तब पात्र को स्वच्छ पानी की नाँद में डाला जाता है, जिससे कागज अपने आप छूटकर अलग हो जाता है, परन्तु कागज पर छपा चित्र, पात्र तल-पर ही चिपका रह जाता है, कारण बीच की परत घुलकर निकल जाती है। पात्र को नाँद से निकालकर सुखाओ। अब पात्र पकाने के लिए तैयार है। यदि छापते समय असावधानी से कोई कमी या दोष सजावट में आ गया हो, तो उसे तूलिका की सहायता से ठीक कर दिया जाता है।

इस विशेष प्रकार की चिपचिपी वार्निश को प्रायः साइज कहते हैं। इसे बनाने के लिए निम्नलिखित अवयवों को एक साथ तब तक उबालो जब तक कि द्रव गाढ़ा और चिपचिपा न हो जाय।

तारपीन का तेल	२ गैलन
रैप तेल	$\frac{1}{8}$ "
स्वच्छ रजक (रोजिन)	५ पौंड
कनाडा बाल्सम	$\frac{1}{2}$ औंस

यूरोपीय देशों में कुछ कम्पनियों द्वारा बनाये गये जलचित्र कागजों के तल पर यह विशेष वार्निश पहले से ही लगी रहती है। अतः पात्रतल पर इसके लगाने की आवश्यकता नहीं होती।

छिड़काव-विधि—इस विधि में सर्वप्रथम प्रलेपित मृत्पात्र पर तूलिका की सहायता से एक विशेष प्रकार के बने हुए तेल द्वारा पात्र-तल पर आवश्यक सजावट के चित्र बना दिये जाते हैं और उसे इतना सूख जाने दिया जाता है कि तेल चिपचिपा हो जाय। तब रजक के महीन चूर्ण को रुई की सहायता से चिपचिपे तल पर पोंत दिया जाता है। अधिक रजक चूर्ण, जो नक्शों के बाहर लग जाता है, शुष्क

तुलिका द्वारा पोछ दिया जाता है। इस विधि की सफलता तेल तथा रजक को समान रूप से लगाने पर निर्भर करती है। इस कार्य के लिए प्रयुक्त होनेवाले विशेष तेल को आधार तेल कहते हैं। यह तेल बनाने के लिए निम्नलिखित अवयवों को मन्दी आँच पर तब तक पकाओ, जब तक कि द्रव गाढा न हो जाय।

अलसी का तेल	१ भाग
मैस्टिक गोद	१ "
लाल सीसा	$\frac{1}{2}$ "
रंजन (रोजिन)	$\frac{1}{2}$ "

प्रयोग करने से पूर्व तेल को तारपीन के तेल के साथ मिलाकर पतला कर लो।

सरन्ध्र प्रलेप (Engobes)—सरन्ध्र प्रलेप आवश्यकतानुसार श्वेत या रंगीन विशेष प्रकार के बने धोले होते हैं, जिनकी परत पात्रों पर चढायी जाती है। सरन्ध्र प्रलेपन का मुख्य उद्देश्य रंगीन पात्रों के तल को श्वेत परत से ढकना होता है, जैसा कि अग्नि-मिट्टी से बने स्वास्थ्य सम्बन्धी पात्रों में प्रयोग किया जाता है। विशेष अवस्थाओं में कभी-कभी रंगीन सरन्ध्र प्रलेप श्वेत प्रलेपित मृत्पात्रों तथा टालियो को सजाने में भी प्रयुक्त किये जाते हैं।

सरन्ध्र प्रलेपन के लिए यह आवश्यक है कि पात्र तथा सरन्ध्र प्रलेप का सभी तापक्रमों पर समान व्यवहार हो, अन्यथा पकाने के पश्चात् सरन्ध्र प्रलेप या तो चटक जायगा या पात्र तल से छूट जायगा। यदि प्रलेप का सगठन ठीक है, तो प्रलेप पात्र पर दृढता से स्थिर हो जायगा और बड़े से बड़े तापक्रम-परिवर्तनों में भी स्थिर रहेगा। यदि तापक्रम-परिवर्तन से सरन्ध्र प्रलेप में चटक आ जाय या वह पात्र-तल से छूट जाय, तो स्पष्ट है कि सरन्ध्र प्रलेप का प्रसार-गुणक, पात्र के प्रसार-गुणक से भिन्न है। ऐसी अवस्था में सरन्ध्र प्रलेप का सगठन बदलकर ऐसा कर लिया जाता है कि इसका प्रसार-गुणक पात्र के प्रसार-गुणक के बराबर हो जाय।

श्वेत सरन्ध्र प्रलेप के मुख्य अवयव चीनी मिट्टी, फ्लेस्पार तथा स्फटिक हैं। सरन्ध्र प्रलेप की श्वेतता वृद्धि के लिए कभी-कभी खडिया भी मिलते हैं। सरन्ध्र प्रलेप में सिलीका की मात्रा को घटा-बढाकर कुछ प्रयोगों के पश्चात् उसको पात्र के योग्य बनाया जा सकता है।

साधारण मिट्टियो या अग्नि-मिट्टियो से बने रगीन मृत्पात्रो पर श्वेत सरन्ध्र प्रलेप प्रयोग करने से पात्र श्वेत दीखता है। इन सरन्ध्र प्रलेपो का सगठन ऐसा रखा जाता है कि वे प्रयोग किये जानेवाले पात्रो के पकाने के तापक्रम पर ही गले और गलकर उस पर चिपक जायें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के द्रावको का प्रयोग किया जाता है। पकी मिट्टी के पात्रो तथा अग्नि मिट्टी के पात्रो पर प्रयोग किये जानेवाले कुछ विभिन्न तापक्रमो पर गलनेवाले सरन्ध्र प्रलेपो का सगठन नीचे दिया जाता है।

	(१)	(२)	(३)
चीनी मिट्टी	८०	३५	८०
श्वेत सीसा या सफेदा	१८	×	×
स्फटिक	२	२५	×
फेल्सपार	×	१२	१०
खडिया	×	२	×
काँच चूर्ण	×	२६	१०
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>

(१) यह प्रलेप लगभग ९००° से० पर गलता है।

(२) यह प्रलेप लगभग ९५०° से० पर गलता है।

(३) यह प्रलेप लगभग ९८०° से० पर गलता है।

रगीन सरन्ध्र प्रलेप बनाने के लिए सर्वोत्तम सगठन पात्र के मिश्रण पिण्ड का सगठन ही है। यदि मिश्रण पिण्ड का रंग अधिक गहरा है, तो पकाने पर श्वेत हो जानेवाली मिट्टी, पात्र के मिश्रण-पिण्ड में मिला देने से रंग की आभा हलकी हो जाती है। विभिन्न रंग उत्पन्न करने के लिए सरन्ध्र प्रलेप मिश्रण के साथ धातवीय आक्साइड या धातवीय रजको का प्रयोग किया जाता है।

सरन्ध्र प्रलेप मिश्रण को पानी के साथ मिलाकर घोला बना लिया जाता है। पतले पात्रो पर सरन्ध्र प्रलेप चढ़ाने से पूर्व उन्हें कुछ पका लिया जाता है और तब वे सरन्ध्र प्रलेप घोले में डुबोये जाते हैं। सरन्ध्र प्रलेप को पात्र पर लगाने में कौशल की आवश्यकता है, जिससे पात्र के सभी भागो में प्रलेप समान रूप से रहे। स्वास्थ्य-सम्बन्धी भारी पात्रो पर सरन्ध्र प्रलेप चढ़ाने की सर्वोत्तम विधि यह है कि बिना

पकाये पात्रो पर ही बौछार विधि से सरन्ध्र प्रलेप चढाया जाय। विभिन्न रगो के सरन्ध्र प्रलेप चढाने के लिए प्रलेप-घोल को खड की छोटी-सी थैली मे रखा जाता है। इस थैली मे एक तुण्ड (Nozzle) रहता है। थैली दबाने पर तुण्ड से सरन्ध्र प्रलेप निकल आता है।

जैसे ही सरन्ध्र प्रलेप सूख जाता है, यह भट्ठी मे पकाया जाता है। उसके पश्चात् चिकन-प्रलेपित करके फिर दुबारा पकाया जाता है।

षष्ठ अध्याय

पोरसिलेन

इतिहास से पूर्वकाल तक के मनुष्यों को कुम्भकार-कला का ज्ञान था और सम्भवतः मनुष्य द्वारा प्रयुक्त कलाओं में यह सबसे प्राचीन कला है। मृत्कला में पोरसिलेन, मनुष्य की सफलता-प्राप्ति की चरम सीमा है। राजाओं के रक्षण तथा सरक्षण में चीनी कुम्हारों ने हजारों वर्ष पूर्व कष्टसाध्य प्रयोग करके इस कला का विकास किया था।

ऊपर से देखने में पोरसिलेन पात्र सुन्दर, रन्ध्रहीन, श्वेत या नीले, सफेद तथा बहुत सुन्दर रचना के होते हैं। पतले भाग अल्प पारदर्शक होते हैं। पोरसिलेन साधारण मृत्सामग्रियों से अपनी अपारगम्यता तथा कड़े मिट्टी-पात्रों से अपनी अल्प पारदर्शकता के कारण भिन्न है। तोड़ने पर पोरसिलेन की रचना काँच की भाँति परतमय है, जबकि साधारण या अर्द्ध काँचीय मृत्सामग्रियों की रचना असमान तथा खुरदरी होती है। बजाने पर पोरसिलेन के प्याले से उच्च तारत्ववाला (High pitched) संगीत स्वर निकलता है। यह मधुर स्वर साधारण पोरसिलेन सगठन में पोटाश फेल्सपार के प्रयोग के कारण होता है। यदि पोटाश फेल्सपार के स्थान पर सोडा फेल्सपार डाला जाय तो पात्र बजाने पर संगीत स्वर कम तारत्ववाला होगा तथा उतना मधुर नहीं होगा। साधारण पोरसिलेन की रन्ध्रता सदैव एक प्रतिशत से कम रहती है।

मेलर के अनुसार पोरसिलेन पात्रों में अल्प पारदर्शकता, चीनी मिट्टी के सरन्ध्र कणों में द्रावकों के घुस जाने से उसी प्रकार आ जाती है, जिस प्रकार एक सोखता कागज को तेल में डुबोने पर वह अल्प पारदर्शक हो जाता है। बॉल-मिट्टी के कणों के रन्ध्र फेल्सपार युक्त द्रावकों के गलने से पूर्व बन्द हो जाते हैं। परिणामतः यदि पोरसिलेन पात्र में ५ प्रतिशत से अधिक बॉल-मिट्टी हुई, तो उसकी अल्प पारदर्शकता काफी नष्ट हो जाती है।

पोरसिलेन के काँचीय पिण्ड का वर्तनाङ्क मूलाइट केलासो के वर्तनाङ्क के बराबर होता है। मूलाइट केलासो का औसत वर्तनाङ्क $1\ 648$ है और हलके चकमक तथा स्फटिक के औसत वर्तनाङ्क क्रमशः $1\ 65$ और $1\ 583$ है। अतः स्पष्ट है कि पारदर्शकता की वृद्धि के लिए काँचीय पोरसिलेन में मुक्त स्फटिक के कण नहीं होने चाहिए, अन्यथा उनके द्वारा प्रकाश विसरण होगा और पात्र में दूधियापन या अपारदर्शकता आ जायगी। पोरसिलेन पात्रों पर चिकन प्रलेपन हो जाने के पश्चात् उनकी पारदर्शकता में वृद्धि हो जाती है।

पोरसिलेन मुख्य तीन भागों में बाँटी जाती है—(क) कठोर या फेल्सपार-युक्त पोरसिलेन, (ख) मृदु या काँचीय पोरसिलेन और (ग) अस्थि पोरसिलेन या बोन चाइना।

कठोर पोरसिलेन सर्वप्रथम चीन में बनायी गयी थी और बाद में यूरोपीय देशों में लायी गयी। इसमें फेल्सपार के रूप में २-५ प्रतिशत तक पोटैशियम आक्साइड रहता है। इस पर प्रायः चिकन-प्रलेप चढ़ा रहता है, जो पात्र के मिश्रण पिण्ड के साथ ही 1300° से 1600° से० के बीच काँचीय हो जाता है।

मृदु पोरसिलेन, कठोर पोरसिलेनो से एकदम भिन्न होती है और मुख्यतः काँचित से बनी होती है। इस प्रकार की पोरसिलेन काफी न्यून तापक्रम पर पकायी जाती है और उन पर प्रायः मृदु चिकन प्रलेप रहता है। चीनी पोरसिलेन की नकल करने के प्रयत्न में काँचीय पोरसिलेन सर्वप्रथम इटली में बनी थी। यह वास्तविक पोरसिलेन की अपेक्षा काँच से अधिक समानता रखती है।

अस्थि पोरसिलेन का निर्माण इंग्लैण्ड में बहुत होता है, जहाँ पर चीन की कठोर पोरसिलेन जैसे पदार्थ के बनाने के प्रयत्न में इसका आविष्कार हुआ था। इसे पकाने के लिए फेल्सपार युक्त कठोर पोरसिलेन की अपेक्षा बहुत कम तापक्रम की आवश्यकता होती है तथा इसकी सजावट भी सरलतापूर्वक हो जाती है। अस्थि पोरसिलेन के मिश्रणपिण्ड तथा चिकन प्रलेप एक साथ काँचीय नहीं होते, बल्कि पात्र को प्रलेप चढ़ाने से पूर्व उच्च तापक्रम पर पकाया जाता है। बाद में प्रलेप चढ़ाकर कम तापक्रम पर पका लिया जाता है। इस प्रकार की पोरसिलेन की विशेषता मिश्रण-पिण्ड में निस्तापित अस्थियो या अस्थि-भस्म या अस्थि-राख की अधिक मात्रा का होना है।

तापजनित रासायनिक क्रियाएँ

कठोर पोरसिलेन पात्र मुख्यत फेल्सपार, स्फटिक तथा केओलिन से बनाये जाते हैं। इंग्लैण्ड में प्रायः फेल्सपार तथा स्फटिक के बदले कार्निश पत्थर या चकमक डालते हैं। अपेक्षाकृत उच्च तापक्रम पर पकाये जानेवाले पात्रों में कार्निश पत्थर से फेल्सपार अधिक उपयोगी है। फेल्सपार युक्त पोरसिलेन के पात्र अधिक पारदर्शक, अधिक काँचीय होते हैं तथा पात्र में फफोले-जैसे दोष की सम्भावना कम रहती है। दूसरी ओर न्यून तापक्रम पर पकायी जानेवाली पोरसिलेन वस्तुएँ बनाने में कार्निश पत्थर का प्रयोग किया जा सकता है। ये वस्तुएँ विशेष रूप से मजबूत होती हैं और ऐसे मिश्रण बड़े पात्रों के बनाने में विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। कम तापक्रम पर पकायी जानेवाली घरेलू उपयोग की वस्तुओं के बनाने के लिए फेल्सपार का उपयोग उचित नहीं है, कारण फेल्सपार युक्त पात्रों में काँच-जैसी रचना प्राप्त करने की धारणा रहती है, जिसके कारण टकराने पर पात्र सरलता से टूट जाते हैं।

गरम करने पर और्थोक्लेज धीरे-धीरे गलता है और अन्त में श्यान द्रव में परिवर्तित हो जाता है। यह श्यान द्रव दूसरे पदार्थों को जोड़कर रखता है और धीरे-धीरे उन्हें अपने में घुला लेता है। यह पता लगाया जा चुका है कि 1400° से 1600° से० के बीच गला हुआ फेल्सपार अपने भार का लगभग ७० प्रतिशत स्फटिक या १० प्रतिशत मिट्टी अपने में घुलाकर भी स्वच्छ काँच बनाता है। यदि अधिक मिट्टी उपस्थित हो, तो गलित द्रव से सुई आकार के मूलाइट केलास बन जाते हैं।

पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड में स्फटिक की अपेक्षा चकमकी निश्चित रूप से अधिक लाभदायक है। चकमकी एक बार के निस्तापन से ही श्वेत, कम घनत्व (आ० घ० २.२४) वाले रूप में बदल जाता है। इस रूप में चकमकी सरलता से महीन चूर्ण हो जाता है। स्फटिक में कई बार के निरन्तर निस्तापन से अपेक्षाकृत बहुत ही कम परिवर्तन होता है और तब भी यह पीसने में काफी कठोर होता है।

सिलीका के ये सभी रूपान्तर उत्क्रमणीय (Reversible) हैं। अतः पकी हुई पोरसिलेन को धीरे-धीरे ठण्डा करने पर, वह सिलीका, जो गलित फेल्सपार में नहीं घुली है, पुनः स्फटिक केलास बनायेगी। सिलीका का कम घनत्ववाला रूप अधिक घनत्ववाले रूप की अपेक्षा फेल्सपार युक्त काँच में अधिक शीघ्रता से घुलता है। अतः इसमें निस्तापित स्फटिक की अपेक्षा चकमकी अधिक शीघ्रता से घुल जायगा। पके हुए पोरसिलेन पात्रों में मुक्त स्फटिक कणों की उपस्थिति होने पर पात्र के द्वारा

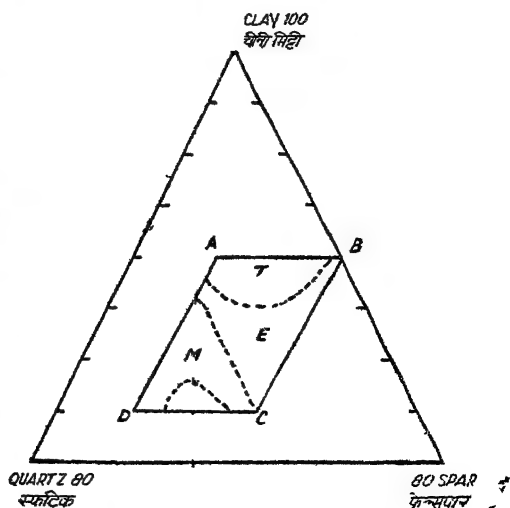
गरम करने पर चटककर टूट जाने की सम्भावना रहती है, कारण गरम करने पर स्फटिक कणों का रूप बदलने से स्फटिक का आयतन बढ़ जाता है ।

पोरसिलेन की कुछ वस्तुओं, जैसे चिनगारी प्लग (Sparkplug) प्रयोग-शाला तथा भोजन पकाने की वस्तुएँ, तापीय युग्म (Thermocouple) रक्षक नल, विद्युत्-रोधक आदि में मुक्त स्फटिक की उपस्थिति विशेष रूप से आपत्तिजनक है, कारण इन वस्तुओं को प्रायः गरम होना पड़ता है ।

इस विषय में विशेष लाभदायक पदार्थ गलित स्फटिक से प्राप्त चूर्ण होता है, कारण यह पोरसिलेन काँच में अधिक शीघ्रता से घुल जाता है । इस प्रकार गलित स्फटिक से प्राप्त चूर्ण रहने से पोरसिलेन पकाने का तापक्रम चकमकीयुक्त पोरसिलेन से भी कम हो जाता है ।

मिट्टी, फेल्सपार तथा स्फटिक मिश्रण को उचित तापक्रम पर पकाकर पोरसिलेन बनाने के प्रयोगों में देखा गया है कि फेल्सपार युक्त व्यापारिक पोरसिलेन का संगठन समानान्तर चतुर्भुज A B C D के बीच में होता है, जैसा कि चित्र २४ में दिखाया गया है ।

पोरसिलेन पकाने में सबसे बड़ी समस्या यह है कि काँचीय भाग में मूलाइट के स्पष्ट केलास जितने अधिक सम्भव हो उतने विकसित होने चाहिए । क्लार्न (Klein) के अनुसार 1380° से० पर केओलिन मूलाइट केलासों में बदल जाती है, परन्तु स्फटिक कणों पर तरल फेल्सपार की क्रिया बहुत कम



चित्र २४. व्यापारिक पोरसिलेन का संगठन

होती है । 1460° से० पर तरल फेल्सपार की स्फटिक पर क्रिया काफी तीव्र हो जाती है और केओलिन १० प्रतिशत तक घुल जाती है । मिट्टी की मात्रा अधिक होने पर

सुई आकार के मूलाइट केलास अच्छी तरह विकसित होते हैं। 1320° से० और 1400° से० के बीच स्फटिक का अधिक भाग घुल जाता है और मिट्टी का अधिकतम भाग मूलाइट केलासो में बदल जाता है। अतः ऐसा पता चलता है कि पोरसिलेन के साधारण मिश्रणपिण्ड से सर्वोत्तम पात्र 1460° से० पर पकाकर ही बनाये जा सकते हैं, परन्तु साधारण पोरसिलेन के पकाने के लिए 1400° से० का तापक्रम काफी है। अधिक मिट्टी तथा कम फेल्सपारवाले पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड के पात्रों को पकाने के लिए उच्च तापक्रम की आवश्यकता होती है, जब कि अधिक फेल्सपार तथा कम मिट्टीवाले पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड से बने पात्र कम तापक्रम पर ही पकाये जा सकते हैं।

अच्छी तरह पकाये गये कठोर पोरसिलेन पात्र में ३० प्रतिशत या अधिक मूलाइट सहित, सिलीका-युक्त पोटाश एल्यूमिना काँच होना चाहिए। यह मूलाइट सुविकसित सुई आकार के केलासो के रूप में और अकेलासीय मूलाइट के रूप में होता है। पोरसिलेन वस्तुओं में, विशेष कर उन वस्तुओं में, जिन्हें बार-बार गरम होना पड़ता है, स्फटिक के कुछ कण बच जायें तो कोई बात नहीं, पर अधिक मात्रा में रहना आपत्तिजनक है। चिनगारी प्लग में ४० प्रतिशत मूलाइट होता है और मुक्त स्फटिक बिल्कुल नहीं होना चाहिए। विशेष प्रकार की रासायनिक पोरसिलेन में लगभग ४० प्रतिशत मूलाइट रहना चाहिए तथा उच्च तनाव विद्युत्-रोधक में लगभग ३५ प्रतिशत मूलाइट होना चाहिए।

फेल्सपार युक्त पोरसिलेन के कुछ विशेष सगठन नीचे दिये हैं।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
सिलीका	७० ५	७८ ८	६६ ६	५९ ४	५८ ०	६८ २७
एल्यूमिना	२० ७	१७ ८	२८ ०	३२ ६	३४ ५	२६ ६३
लौह आक्साइड	० ८	० ६	० ७	० ८	×	० ८९
चूना	० ५	० २	० ३	० ३	४ ५	० ६९
मैगनीशिया	० १	×	० ६	×	×	० ८६
पोटाश आक्साइड	६ ०	२ २	३ ४	५ ५	३ ०	२ ३१
योग	९८ ६	९९ ६	९९ ६	९८ ६	१०० ०	९९ ६५

(१) चीनी पोरसिलेन (२) जापानी पोरसिलेन (३) बर्लिन की कठोर

पोरसिलेन (४) माइसेन की कठोर पोरसिलेन (५) सेवरेस की कठोर पोरसिलेन (६) बर्लिन की रासायनिक पोरसिलेन ।

दूसरे प्रकार की पोरसिलेन जिसे प्रायः मृदु पोरसिलेन कहा जाता है, काँच और मृत्सामग्री के बीच का पदार्थ है। इसके काँचीय पदार्थ में छितरे हुए बहुत से अधुलनशील पदार्थ होते हैं, जो प्रकाश का विसरण (Diffusion) करने के कारण पात्र को दूधियापन या श्वेतता प्रदान करते हैं। यूरोपीय देशों में श्रेष्ठ चीनी पोरसिलेन का रहस्य खोजने के लिए विभिन्न देशों के कुम्हारों ने अपने सगठन से काँच के साथ विभिन्न खनिज प्रयोग किये थे। इन विभिन्न खनिजों के कारण विभिन्न प्रकार की मृदु पोरसिलेन बनी थी। विभिन्न देशों में विभिन्न समयों पर आविष्कृत मृदु पोरसिलेनों को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(१) काँचीय पोरसिलेन—इस प्रकार की पोरसिलेन १६वीं शताब्दी में अधिक चूना सहित काँचित के साथ मिट्टी की थोड़ी सी मात्रा मिलाकर बनायी गयी थी। मिश्रण-पिण्ड में लचीलापन बहुत ही कम था और पात्र ढालने में कठिनाई होती थी। जब पात्र पकाने में चूने के द्रावक प्रभाव का पता लग गया तो उपर्युक्त मिश्रण-पिण्ड में चूने का प्रतिशत काफी घटाकर उसके स्थान पर एल्यूमिना या चीनी मिट्टी डालने से सेवरेस की विकसित मृदु पोरसिलेन उत्पन्न हुई। इस विकसित पोरसिलेन के पकाने का तापक्रम पूर्ववर्णित पोरसिलेनों की अपेक्षा अधिक है, परन्तु इससे बने पात्र प्रत्येक बात में और पोरसिलेनों से बने पात्रों से श्रेष्ठ होते हैं।

काँचीय मृदु पोरसिलेन के क्रमशः विकास के कुछ विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)
सिलीका	७२.५	७२.०	७६.१६	७८.३६
एल्यूमिना और लौह	२.७	५.०	४.३०	२.४५
चूना	१३.६	१५.०	९.८२	१२.७३
मैगनीशिया	०.३	×	×	×
क्षार	१०.९	८.०	३.७६	६.४६
योग	१००.०	१००.०	१००.०	१००.०

१ साधारण चढ़र काँच का सगठन ।

- २ फ्रास की प्रारम्भिक पोरसिलेन ।
 ३. सन् १७६० ई० की लागटान पोरसिलेन ।
 ४ सेवरेस मृदु पोरसिलेन ।

(२) स्टीटाइट या साबुनपत्थर पोरसिलेन—इंग्लैण्ड के कुछ भागों में, विशेष कर ब्रिस्टल (Bristol), स्वान्जी (Swansea), कौगले (Coughley) तथा वोरसेस्टर (Worcester) आदि में, पूरी चीनी मिट्टी या उसके किसी अंश के स्थान पर साबुन-पत्थर डालते थे । साबुन-पत्थर की विभिन्न मात्राओं सहित कुछ विशेष साबुनपत्थर पोरसिलेनों के विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं । साधारण पात्रों में आजकल साबुनपत्थर नहीं प्रयोग किया जाता तथा कुछ भिन्न प्रकार की पोरसिलेनों के निर्माण में कुछ विशेष गुण उत्पन्न करने के लिए ही इसका प्रयोग सीमित हो गया है ।

	(क)	(ख)	(ग)
सिलीका	६७ ६२	७४ २२	८१ ५६
एल्यूमिना	४ ६१	८ ५०	८ ९०
फास्फोरिक अम्ल	२ ००	० २०	० ३३
चूना	२ ६४	२ ७८	० ७०
मैगनीशिया	१३ २८	७ ६२	४ २६
क्षार	२ ७६	३ ५५	३ ८८
लैड आक्साइड	८ ०१	३ ७३	×
योग	१०० ९२	१०० ६०	९९ ६३

(क) सन् १७५० की ब्रिस्टल पोरसिलेन जिसमें ४० प्रतिशत साबुनपत्थर है । लैड आक्साइड की उपस्थिति इस बात को सूचित करती है कि उस समय सीसा काँच द्रावक के रूप में प्रयोग किया जाता था ।

(ख) १७८० ई० की कौगले की पोरसिलेन जिसमें लगभग २२ प्रतिशत साबुनपत्थर है ।

(ग) १९१७ ई० की स्वाजी चाइना, इसमें लगभग १३ प्रतिशत साबुनपत्थर है ।

इन सब प्राचीन पोरसिलेनों में साबुनपत्थर का प्रयोग चीनी मिट्टी के स्थान पर श्वेत लचीले पदार्थ को डालने के लिए किया जाता था, कारण चीनी मिट्टी उस समय कम मिलती थी ।

(३) अस्थि पोरसिलेन या बोन चाइना—मृदु पोरसिलेनो में आधुनिक औद्योगिक महत्त्व की केवल एक अस्थि पोरसिलेन ही है। इस प्रकार की पोरसिलेन केवल इंग्लैण्ड में बनती थी। चाइना शब्द का प्रयोग सभी अल्पपारदर्शक मृदु पोरसिलेनो के लिए किया जाता था। इसी अस्थि पोरसिलेन को बोन चाइना कहा जाता है। अस्थि पोरसिलेन पात्र बनाने में कई सुविधाएँ हैं, जैसे मिश्रणपिण्ड का अधिक लचीलापन, पकाने का न्यून तापक्रम, सजावट के लिए अधिक प्रकार के रंगों का प्रयोग। आजकल औसत अस्थि पोरसिलेन में प्रायः २८ से ३० प्रतिशत तक ठीक प्रकार से निस्तापित अस्थिराख रहती है, परन्तु प्राचीन समय में इस अस्थिराख की मात्रा अधिक रहती थी। अस्थि पोरसिलेन के कुछ पुराने सगठन नीचे दिये जाते हैं—

	(अ)	(आ)	(इ)
सिलीका	४३ ५८	४१ ९४	४७ ८०
एल्यूमिना	८ ३६	१५ ९७	२६ ४९
चूना	२४ ४७	२४ २८	१३ २५
मैगनीशिया	० ६०	० २०	×
फास्फोरिक अम्ल	१८ ९५	१४ ९६	९ ८५
क्षार	२ ०५	१ ९६	३ २७
लैंड आक्साइड	१ ७५	० ३६	×
योग	९९ ७६	९९ ६७	१०० ६६

- (अ) लगभग १७६० ई० में वो शहर में बनी पोरसिलेन। इसमें लगभग ४८ प्रतिशत अस्थि राख होती थी।
- (आ) डरबी की लगभग सन् १७९० ई० की अस्थि-पोरसिलेन। इसमें लगभग ३८ प्रतिशत अस्थिराख होती थी।
- (इ) स्वाजी की लगभग १८२० ई० की अस्थि-पोरसिलेन। इसमें लगभग २५ प्रतिशत अस्थिराख रहती थी।

(४) पेरियन पोरसिलेन या चिकन-प्रलेपहीन पोरसिलेन—यह चिकन-प्रलेप-रहित एक विशेष प्रकार की मृदु पोरसिलेन है, जो छोटी-छोटी मूर्तियाँ तथा आकृतियाँ बनाने के काम आती है। मिश्रणपिण्ड प्रायः मिट्टी और फेल्सपार से बनाया जाता है

तथा इसकी वस्तु में पकाने के पश्चात् हलकी चमक आ जाती है, जो इटली देश के सुप्रसिद्ध पैरोस (Paros) पत्थर की मृदु चमक के समान होती है। अतः कभी-कभी ऐसे पात्रों को पेरियन पात्र भी कहा जाता है। मैलाकाइट (Malachite), लेजुराइट (Lazurite) आदि कुछ खनिजों की नकल करने के लिए कभी-कभी इस प्रकार के पोरसिलेन मिश्रण-पिण्डों को रंगीन भी कर दिया जाता है। इन मिश्रण-पिण्डों में स्फटिक की अनुपस्थिति का सैगर ने इसी कारण समर्थन किया है कि स्फटिक रहने पर पात्रों के तल पर अनावश्यक चमक आ जाती है।

(५) कृत्रिम दन्त पोरसिलेन—मानवीय कृत्रिम दाँत बहुत प्रकार के मिश्रण-पिण्डों से बनाये जाते हैं। इनमें कुछ का गलनाक काफी उच्च होता है तथा कुछ का गलनाक न्यून होता है। इस प्रकार की पोरसिलेनो के विशेष गुण अधिक दबाव शक्ति का होना तथा भुरभुरेपन का पूर्ण अभाव है। दाँतों को सरलता से घिसना भी नहीं चाहिए। यह पोरसिलेन चिकन-प्रलेपित नहीं की जाती, परन्तु इसका सगठन ऐसा रखा जाता है कि पकाने पर पूरा दाँत काँचीय हो जाय तथा बाहरी तल भी चिकना और चमकदार दीखने लगे। कृत्रिम दन्त पोरसिलेन के कुछ सगठन नीचे दिये जाते हैं—

चीनी मिट्टी	४	८	३०
बॉल-मिट्टी	×	२	८
फेल्सपार	८१	×	×
निस्तापित स्फटिक	१५	×	×
कार्निश पत्थर	×	८२	३१
खडिया	×	५	१९
अस्थिराख	×	३	१२
	<hr/>	<hr/>	<hr/>
योग	१००	१००	१००
	<hr/>	<hr/>	<hr/>

बहुत से रजक आक्साइडों, विशेष कर रूटाइल (TiO_2) का प्रयोग दाँतों के प्राकृतिक रंगों को उत्पन्न करने के लिए होता है। मिश्रण-चूर्ण पानी या थोड़े पैराफिन तेल के साथ मिलाया जाता है और दाँत दबाव विधि द्वारा बना लिये जाते हैं। इसके पश्चात् बने हुए दाँत काँसे के साँचों सहित रक्त-उष्णता पर पकाये जाते हैं, जिसके पश्चात् वे साफ किये जाते हैं तथा उनके दोष दूर कर दिये जाते हैं। साफ किये हुए

दाँत सिलीका से बनी खुली तश्तरियो मे रखकर विद्युत्-भट्ठियो मे पुन गरम किये जाते हैं। दूसरी बार गरम करने की क्रिया शीघ्रता से होती है, जिससे काँचीय होते समय दाँतो की आकृति नष्ट न हो जाय। गरम करने का तापक्रम मिश्रण के सगठनानुसार नियन्त्रित किया जाता है। दूसरी बार गरम करने के पश्चात् दाँतो को दूसरी भट्ठी मे मृदु (Annealed) किया जाता है। अच्छी प्रकार से बने हुए दाँत को पूर्णरूपेण काँचीय हो जाना चाहिए तथा मुक्त सिलीका कण या हवा के बुलबुले दाँत के अन्दर न रहे।

पोरसिलेन मिश्रण-पिण्डो का बनाना—केओलिन को छोडकर सभी कच्चे माल चकमक पत्थरो से भरे सिलिण्डरो मे महीन पीस लिये जाते हैं। पीसने मे लगभग ४० घटे का समय लगता है। इसके बाद पिसे हुए पदार्थ साधारण चलनियो से छनते हुए मिश्रणकुण्डो मे गिराये जाते हैं। इन मिश्रणकुण्डो मे शक्तिशाली मिश्रक लगे रहते हैं। यह मिश्रणकुण्ड प्राय फर्श तल के नीचे रहते हैं। इन पीसे हुए दूसरे खनिजो मे यहाँ केओलिन की आवश्यक मात्रा डाली जाती है और सभी पदार्थ कुछ घटो तक अच्छी तरह मिलाये जाते हैं। इसके पश्चात् मिट्टी-घोला एक विद्युत्-चुम्बक से होता हुआ दूसरे कुण्ड मे भेजा जाता है। यहाँ से इसे पानी दूर करने के लिए जल-निष्कासन यन्त्रो मे भेज देते हैं।

जल-निष्कासन यन्त्र से निकली हुई मिट्टी मुलायम लोदा के रूप मे होती है। कुछ कारखानो मे इस मिट्टी को गूँधने के यन्त्र मे भेजने से पूर्व अँधेरे स्थान मे रखकर मिश्रण पर अम्ल क्रिया होने दी जाती है। ऐसा करने से मिश्रणपिण्ड का लचीलापन बढ़ता है। चित्र १२ मे मिट्टी गूँधने का एक यन्त्र दिखाया गया है। गूँधने की क्रिया मे लगभग ४५ मिनट लगते हैं। गूँधने के पश्चात् मिश्रणपिण्ड काफी लचीला तथा कार्योपयोगी हो जाता है।

इस पुस्तक के आकार का ध्यान रखते हुए सभी पोरसिलेन वस्तुओ के निर्माण का वर्णन करना असम्भव होगा, परन्तु एक वस्तु, जैसे विद्युत्-रोधक के निर्माण का वर्णन यहाँ किया जाता है।

गूँधने के पश्चात् मिश्रणपिण्ड एक दूसरे यन्त्र मे जाता है। इस यन्त्र से निकलने पर मिश्रणपिण्ड दवे हुए ठोस रूप मे बाहर निकलता है, जिसे तार द्वारा आवश्यकतानुसार उचित आकार के टुकडो मे काट लिया जाता है। यदि यह

यन्त्र ठीक प्रकार से न बना हुआ हो या ठीक प्रकार से नियन्त्रित न किया गया हो, तो इस समय इसमें लेमीनेशन या परत दोष आ सकता है, जो आगे चलकर पकाने के पश्चात् ही प्रकट होगा।

इसके पश्चात् मिश्रणपिण्ड का प्रत्येक कटा हुआ टुकड़ा साँचे में रखकर ऊपर से कपड़ा रख देते हैं और लकड़ी के प्लजर वाले हस्तचालित दबाव यन्त्र से पिण्ड को दबाया जाता है। अब जाली यन्त्र से विद्युत्-रोधक की आकृति दी जाती है। इस अवस्था में जितना कम पानी प्रयोग किया जायगा, सुखाते समय उतनी ही सुविधा रहेगी। पात्र बनाने में अधिक पानी का प्रयोग सुखाते समय ऐसे पात्रों पर पड़ी चटको का मुख्य कारण होता है।

अब पात्र साँचे में ही सुखाये जाते और लगभग एक घण्टा बाद साँचे से निकाल कर लकड़ी के तख्तों पर रखकर उस समय तक सुखाये जाते हैं, जब तक कि पात्र काफी कठोर न हो जायें।

अब रोधक के अन्दर का चक्र मिश्रण-घोले की सहायता से हाथ द्वारा जोड़ दिया जाता है। इसके बाद खराद यन्त्र पर उचित आकृति दे दी जाती है और तब स्पज द्वारा साफ कर दिया जाता है। जर्मनी में दो कारीगर एक बालक या स्त्री की सहायता से ६ इंच ऊँचे लगभग ३,००० विद्युत्-रोधक प्रति सप्ताह बना लेते हैं। भारतवर्ष तथा इंग्लैण्ड में अन्दर का चक्र बाहरी भाग के साथ ही जॉली यन्त्र से ही बना लिया जाता है।

जब रोधक सूखकर कुछ कड़ा हो जाता है, तो जिग्गर यन्त्र पर उसमें चूड़ियाँ काटी जाती हैं। चूड़ी काटनेवाले बोरर पर तेल लगाकर धीरे-धीरे छिद्र में दबाया जाता है। तत्पश्चात् जिग्गर को रोककर उलटी दिशा में घुमाते हैं और बोरर को धीरे-धीरे बाहर निकाल लिया जाता है। बड़े पात्रों पर चूड़ियाँ हस्तचालित यन्त्र द्वारा काटी जाती हैं।

बड़े आकार के विद्युत् रोधक जिनमें कई कठोरे रहते हैं, अलग-अलग कई भागों में बनाये जाते हैं, जिन्हें बाद में मुलायम अवस्था में ही मिश्रण-घोला द्वारा जोड़ दिया जाता है।

विशेष कर बिजली की छोटी वस्तुओं को बनाने के लिए अर्द्ध लचीला मिश्रण-पिण्ड बनाया जाता है। इसे बनाने के लिए जल-निष्कासन यन्त्र से प्राप्त मिश्रण-पिण्ड के लोदों को गरम कमरों में सुखाकर एक चूर्णक यन्त्र में चूर्ण कर लिया जाता

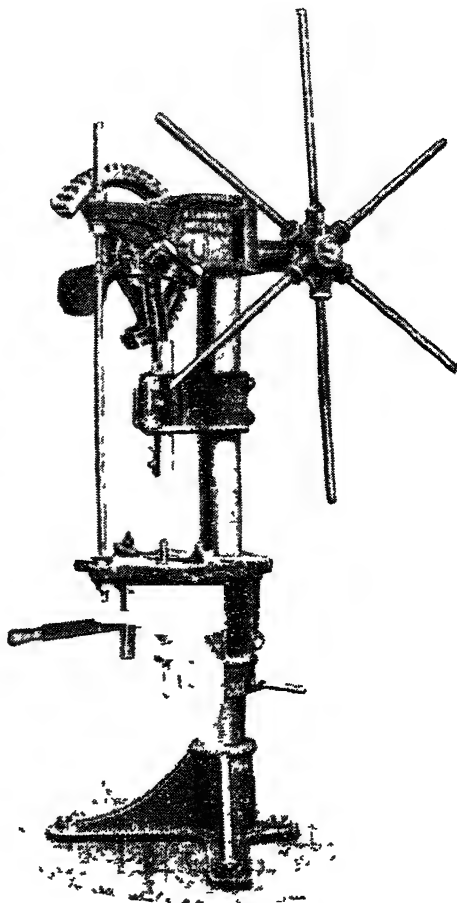
है। सुखाते समय टूट गये पात्रों का भी चूर्ण यन्त्र में डालकर उपयोग किया जा सकता है। चूर्ण को तेल तथा पानी की इतनी मात्रा के साथ एक मिश्रण-यन्त्र में मिलाया जाता है कि हाथ में लेकर दबाने से चूर्ण एक पिण्ड तो बन जाय, पर हाथ न भिगोये।

लगभग ३०० पौण्ड शुष्क चूर्ण को $4\frac{1}{2}$ लिटर तेल के साथ मिलाया जाता है।

इसमें प्रयुक्त होनेवाला तेल,
पतला तेल (मिट्टी का तेल)
०.४ भाग तथा गाढा तेल
(तीसी का तेल या रेडी का
तेल) $\frac{1}{2}$ से १ भाग तक
मिलाकर बनाया जाता है।

प्रयोग किये जानेवाले पानी की मात्रा शुष्क चूर्ण की प्रकृति पर निर्भर करती है। तेल पानी के साथ बना हुआ पिण्ड अपकेन्द्र चूर्णक (Centrifugal Disintegrator) में भेजा जाता है, जिससे यदि तेल पानी के साथ मिलते समय कोई भाग अच्छी तरह न मिलकर पिण्ड बन गया हो, तो वह पिण्ड टूटकर साथ में ही छन जाय। अब मिश्रण उपयोग के लिए तैयार है।

अब पिण्ड को आवश्यक आकार के ठप्पे लगे हुए स्तम्भ प्रेस द्वारा आकृति दी जाती है।



चित्र २५. पोरसिलेन के लिए स्तम्भ-प्रेस

जल-निष्कासक से प्राप्त मिश्रणपिण्ड से ढलाई घोल एक अलग मिश्रणकुण्ड

मे बनाया जाता है। मिश्रणकुण्ड मे मिश्रण-पिण्ड के अलावा उचित अनुपात मे पानी तथा विद्युद्विश्लेष्य डालकर सब को इतना मिलाया जाता है कि तरल घोला समाग हो जाय और घनत्व ३५ औंस प्रति पाइण्ट हो जाय। ढलाई कार्य को भेजने से पूर्व घोला एक दूसरे कुण्ड मे भेजा जाता है, जिसमे बिलोडक लगा रहता है। बिलोडने से घोला-अवयव जमकर बैठने नहीं पाते।

गोल वस्तुओ को ढालने के लिए साँचे एक घूमती हुई मेज पर लगे रहते हैं। यह मेज साँचे मे घोला डालते समय कुछ धीमी गति से घुमायी जाती है। यदि अधिक सूखे साँचे प्रयोग किये गये, तो ऐसे साँचो से ढले प्रथम या द्वितीय पात्र साँचे मे ही चटक जाते हैं, परन्तु इसके बाद साँचा नम हो जाता है और पात्र ठीक निकलते हैं। जब साँचे अधिक नम हो, तो ढले पात्र उनमे से सरलतापूर्वक नहीं निकल पाते, और साँचे पुन सुखाने को भेजे जाते हैं। यदि साँचे मे कुछ टेढ़-मेढ़े भाग हो तथा साँचे से पात्र निकालने मे कुछ कठिनाई मालूम होती हो, तो महीन कपडे की थैली द्वारा लाइकोपोडियम (*Lycopodium*) चूर्ण, घोल डालने से पूर्व साँचे मे छिडक देने से पात्र सरलता से निकल सकते हैं।

ढले पात्रो मे छिद्र करने के लिए प्राय पीतल की खोखली नलिकाएँ काम मे लायी जाती हैं। ढली वस्तुओ को साँचे से निकालकर प्लास्टर के बने तख्ते पर रखकर लकडी के ताखो मे सुखाया जाता है। जिन कारीगरों ने पात्रो को बनाया था वही उन्हें साफ तथा चिकना भी करते हैं।

कम घने पिण्डो, जैसे पोरसिलेन के सुखाने मे कोई परेशानी नहीं पडती। वे प्राय ढलाई-घरो मे ही सुखाये जाते हैं। ठण्डे देशो मे यह ढलाई-घर कृत्रिम ढग से गरम रखे जाते हैं, परन्तु गरम देशो मे इसकी उतनी आवश्यकता नहीं है। मध्य जर्मनी मे इन ढलाई-घरो का तापक्रम जाडो मे २०° से २५° से० तक तथा गरमियो मे २५° से ३०° से० तक रखा जाता है। ऋतु के अनुसार खोखले बर्तन को सुखाने मे ४-७ घण्टे तक लगते हैं, जब कि उच्च तनाव विद्युत्-रोधक जैसी बडी और ठोस वस्तुओ को सूखने मे १०-१५ घण्टे तक लगते हैं। सूखने की अन्तिम अवस्था का निर्धारण ठण्ड के अनुभव से किया जाता है। इसके लिए पात्र को शरीर के तापसुग्राही भागो—जैसे गाल-से छुआते हैं। पूर्णरूपेण सूखे पात्र मे काफी सीमा तक श्वेतता आ जाती है तथा छूने से बिलकुल ठण्डा नहीं लगता।

पोरसिलेन मिश्रण-पिण्ड का संगठन—प्राचीन पोरसिलेन मिश्रण-पिण्ड चार विभिन्न वर्गों में बाँटे जा सकते हैं—

(१) वे मिश्रण-पिण्ड जिनमें मिट्टी अधिक तथा स्फटिक और फेल्सपार कम हो। साथ ही जिनमें द्रावको के कार्य को पूरा करने के लिए काफी मात्रा में कैल्शियम कार्बोनेट डाला जाता है। नीचे इस प्रकार की सेवरेस पोरसिलेन के एक मिश्रण-पिण्ड का संगठन दिया जाता है।

	सेवरेस मिश्रण-पिण्ड
मृत्सार	६६ ३७
स्फटिक	१२ ०५
फेल्सपार	१५ ११
कैल्शियम कार्बोनेट	६ ४७

(२) दूसरे प्रकार के मिश्रण-पिण्डों में फेल्सपार अधिक रहता है तथा जिनमें कैल्शियम कार्बोनेट की थोड़ी-सी मात्रा से द्रावको का प्रभाव बढ जाता है। नीचे इस प्रकार की पोरसिलेनों के कुछ संगठन दिये जाते हैं।

	लीमोजेज (फ्रांस) का मिश्रण-पिण्ड	कार्ल्सबाद (चेकोस्लोवाकिया) का मिश्रण-पिण्ड
मृत्सार	४१ ०	५१ ९७
स्फटिक	१९ ५	२४ ५०
फेल्सपार	३८ ०	२१ ९३
कैल्शियम कार्बोनेट	१ ५	१ ६०
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>

(३) तीसरे प्रकार की पोरसिलेन में मृत्सार कम, परन्तु फेल्सपार कुछ अधिक रहता है। जापान तथा कोपेनहेगन में प्रयोग किये गये इस प्रकार के पोरसिलेन मिश्रण-पिण्डों के कुछ संगठन नीचे दिये जाते हैं।

	जापानी मिश्रण-पिण्ड	कोपेनहेगन मिश्रण-पिण्ड
मृत्सार	३१	४७
स्फटिक	४१	२०
फेल्सपार	२८	३३

(४) चौथी प्रकार की प्राचीन पोरसिलेने वे हैं, जिनमें मिट्टी अधिक तथा स्फटिक और फेल्सपार की मात्रा साधारण हो। इस प्रकार के पोरसिलेन मिश्रण-पिण्डों के कुछ सगठन नीचे दिये जा रहे हैं।

	बॉलन का मिश्रण-पिण्ड	बेलजियम का मिश्रण-पिण्ड
मृत्सार	५३	५७ ९
स्फटिक	२०	२६ ०
फेल्सपार	२७	१६ १

आजकल विशेष उपयोगों के अनुसार कठोर पोरसिलेने बनायी जाती है। ये इस प्रकार हैं—

(अ) भोजन-पात्रों के लिए।

(आ) विद्युत्-रोधकों के लिए।

(इ) प्रयोगशाला के कार्यों के लिए।

(ई) उत्पादमापी, चिनगारी प्लग के निर्माण में प्रयोग होनेवाले नलों के लिए।

कठोर पोरसिलेन के भोजनपात्रों को 'होटल चाइना' के नाम से भी पुकारा जाता है। इस प्रकार के पात्रों की विशेषताएँ हैं—पतले भागों में अल्प पारदर्शकता, रन्ध्रहीनता तथा मृदु पोरसिलेन की अपेक्षा असाधारण मजबूती। यह पात्र प्रयोग करते समय चटकते या टूटते कम हैं। इन पात्रों में ये विशेषताएँ पात्र सगठन तथा पकाने के नियन्त्रण से आती हैं। होटल चाइना के मिश्रण-पिण्डों का सगठन प्रायः इन सीमाओं के बीच रहता है—

चीनी मिट्टी	२५—४८
बॉल-मिट्टी	०—१०
चकमकी या स्फटिक	२०—३५
फेल्सपार	२०—४०
खडिया	०—२
डोलोमाइट	०—२
मैगनीशिया	०—२

बॉल-मिट्टी लचीलापन बढ़ाने के लिए प्रयोग की जाती है। जहाँ बॉल-मिट्टी न मिलती हो, वहाँ कम लौहवाली लचीली अग्नि-मिट्टी का प्रयोग बॉल-मिट्टी के स्थान पर किया जा सकता है।

खडिया, डोलोमाइट और मैगनीशिया तापक्रम के थोड़े से परास में ही, बहुत ही शक्तिशाली द्रावक है। अतः पोरसिलेन सगठन में इनकी मात्रा कम रहनी चाहिए। इन द्रावकों के अधिक रहने पर पकाते समय पात्र में विकृति आ जाती है, जिससे पात्र में ऐठने या आकृति बदल देने की धारणा रहती है। पात्र पकाने में पूर्णता प्राप्त करने का तापक्रम सगठन पर निर्भर करता है, परन्तु प्रायः 1300° से 1400° से० के बीच रहता है। पूरी शक्ति प्राप्त करने के लिए पात्र को पूर्णरूपेण काँचीय किया जाता है। पकाने का समय ४२ से ६५ घण्टे तक है। काँचीय हुए पात्रों को धीरे-धीरे ठण्डा करना चाहिए, अन्यथा ठण्डा करते समय पात्रों के चटक जाने की सम्भावना रहेगी।

इन पात्रों पर सरन्ध्र अवस्था में चिकन-प्रलेपन से पूर्व ही सजावट की जाती है। सजावट चिकन प्रलेप के नीचे रहती है, जिससे वह स्थायी रहे। एक या अधिक रंगों में सजावट के लिए प्रायः छपाई विधि का प्रयोग होता है।

भोजन-पात्रों पर प्रायः पारदर्शक चिकन-प्रलेप लगाया जाता है, जिससे पात्र का तल व सजावट अच्छी तरह दीखते रहे। प्रायः प्रलेपों का सगठन ऐसा रखा जाता है कि वे लगभग 1200° से० पर गले। प्रलेप पकाने का समय भी कम ही रहता है (३०-४५ घण्टे)।

भोजन-पात्रों के लिए पोरसिलेन मिश्रण-पिण्डों के कुछ सगठन सूत्र नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
चीनी मिट्टी	४८०	४८३	४३५	४०५	४०५
फेल्सपार	३७५	४८५	४००	३६५	२३५
स्फटिक	१३५	१७	१३०	२३०	३५५
मैगनेसाइट	०५	×	×	×	०३
जिक आक्साइड	०५	×	×	×	०२
प्रलेप हीन टूटे वर्तनों का चूर्ण	×	१५	३५	×	×
योग	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००

उपर्युक्त मिश्रण-पिण्ड 1300° — 1410° से० के बीच पूर्णरूपेण पकते हैं।

उपर्युक्त मिश्रणो में प्रयोग किये गये फेल्सपार का सगठन इस प्रकार है—

सिलीका	७३ ४३
एल्यूमिना	१५ ३९
फेरिक आक्साइड	० ०२
क्षार	१० ६०
चूना	० १४
हानि	० २०

मिश्रण ५ का प्रयोग गुडियो के सिर आदि बनाने में किया जाता है।

उपर्युक्त मिश्रण-पिण्डो के लिए उपयोगी प्रलेप निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

निस्तापित स्फटिक	३७
चूना स्पार	१२
फेल्सपार	६
केओलिन	६
प्रलेपित पात्र चूर्ण	३९
योग	१००

विद्युत्-रोधक—आधुनिक विद्युत्-रोधक बहुत से कार्यों के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। उच्च वोल्टता तथा न्यून आवृत्तिवाली विद्युत्-धारा के लिए उपयोगी विद्युत्-रोधक न्यून वोल्टता तथा उच्च आवृत्तिवाली विद्युत्-धारा के लिए उपयोगी नहीं होंगे। फेल्सपार युक्त पोरसिलेन, उच्च वोल्टता तथा न्यून आवृत्तिवाली विद्युत्-धाराओं के लिए बहुत उपयोगी है, परन्तु रेडियो संचरण आदि में प्रयोग होनेवाली उच्च आवृत्ति विद्युत्-धाराओं से नष्ट हो जाती है।

विद्युत्-रोधको के आधुनिक नामकरण उन केलासो पर आधारित होते हैं जो मिश्रण-पिण्ड में पकाते समय बनते हैं तथा जिनका विशेष प्रभाव होता है। इन खनिज केलासो के विद्युत् सम्बन्धी गुण अलग-अलग होते हैं और इन्हीं के आधार पर इनका उपयोग होता है।

फेल्सपारयुक्त कठोर पोरसिलेन के विद्युत्-रोधक को आज कल मूलाइट मिश्रण-पिण्ड कहा जाता है, कारण इस प्रकार के रोधको में मूलाइट केलास अधिक रहते हैं।

विद्युत् सम्बन्धी गुणों के अलावा कठोर पोरसिलेन रोधक काफी सुदृढ तथा पूर्णरूपेण रन्ध्रहीन होते हैं और इनके प्रलेपित तल के काफी चिकना होने के कारण सफाई करने में सरलता रहती है। वातावरण की हानिकारक अवस्थाओं से भी प्रलेप अप्रभावित रहता है। एक अच्छे पोरसिलेन विद्युत्-रोधक तथा ढलवाँ लोहे के यान्त्रिक गुण निम्न प्रकार हैं—

	तनन क्षमता पौंड/वर्ग इंच	सपीडन क्षमता पौंड/वर्ग इंच
कठोर पोरसिलेन	७,०००	८०,०००
ढलवाँ लोहा	२०,०००	१००,०००

विभिन्न पोरसिलेनों के भौतिक नियताङ्क इस प्रकार हैं—

१ आपेक्षिक घनत्व—

शाही बर्लिन पोरसिलेन	२ २९
माइसेन ,,	२ ४९
सेवरेस ,,	२ २४

२ लम्बप्रसार गुणक ० ०००००३ से ० ०००००४ तक

३ ताप चालकता ० ००२

४ विद्युत्-चालकता—

	—१२
१६०° से० पर	० ५८ × १०
	—१३
६००° से० पर	० ६२ × १०
	—१२
१०००° से० पर	१ ०० × १०

५ पार विद्युत् नियताङ्क (Dielectric constant)—

कठोर पोरसिलेन	५ ७३
कडे मिट्टी-पात्र	५ १७
स्टीटाइट	५ ४०

गैरोल्ड (E. Gerold) ने पता लगाया कि कठोर पोरसिलेन के यान्त्रिक गुणों पर प्रयोग किये गये चिकन-प्रलेप का भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। प्रलेप

प्रयोग से पोरसिलेन पदार्थों की प्रत्यास्थता (Elasticity) बढ़ती है, साथ ही सघात-क्षमता एवं तनन-क्षमता में भी सुधार होता है। उच्च तनाव पोरसिलेन विद्युत-रोधक पर प्रयोग किये जानेवाले प्रलेप को स्फटिक से अधिक कठोर होना चाहिए। म्हो के पैमाने पर प्रलेप की कठोरता ७ से ऊपर होनी चाहिए। इस प्रकार की पोरसिलेन वातावरण में बहुत ही कम प्रभावित होती है।

श्रेष्ठ विद्युत्-रोधक की रन्ध्रता इतनी कम हो कि टूटे हुए तल पर कुछ घण्टों तक रोशनाई पड़ी रहने के बाद तल धोने पर रोशनाई का चिह्न न लगा रहे। सस्ते विद्युत्-रोधक इस परीक्षा में खरे नहीं उतरेगे। वाटकिन के अनुसार भार के विचार से ०.०१६ प्रतिशत रन्ध्रतावाली पोरसिलेनो का प्रतिरोध १४ घण्टे तक पानी में डूबी रहने पर भी कम नहीं होता, परन्तु जिस पोरसिलेन की रन्ध्रता ०.०५ प्रतिशत है उसका प्रतिरोध इस प्रकार जलशोषण से बहुत कम हो जाता है।

विद्युत् पोरसिलेन पर सगठन के प्रभाव का सारांश चित्र २४ में दिखाया गया है। T ताप परिवर्तन के लिए अधिकतम प्रतिरोध क्षेत्र, E अधिकतम पार विद्युत् क्षमता क्षेत्र तथा M अधिकतम भौतिक प्रतिरोध क्षेत्र सूचित करता है। विद्युत् पोरसिलेन में फेल्सपार की मात्रा २५ से ३५ प्रतिशत तक होनी चाहिए तथा मिट्टी सदैव ४० प्रतिशत से अधिक हो।

ताप-परिवर्तन—एक अच्छे विद्युत्-रोधक में ताप के आकस्मिक परिवर्तनों को सहन करने की क्षमता होनी चाहिए। ये ताप-परिवर्तन उच्च तनाववाली विद्युत् के द्वारा उत्पन्न ताप के कारण, ऋतु-परिवर्तन के कारण या वर्षा और पाले के कारण हो सकते हैं। प्रसार-गुणक एक ही होने पर भी बड़े कणवाला खुरदरा पिण्ड, चिकने तथा सूक्ष्म कणवाले पिण्ड की अपेक्षा ताप-परिवर्तनों की ओर अधिक सुग्राही होगा। पिण्ड में स्फटिक की अधिक मात्रा होने से ताप-परिवर्तनों की ओर रोधक क्षमता कम हो जाती है। यदि स्फटिक के बदले चीनी मिट्टी, सिलीमेनाइट या जिरकोनिया डाले तो ताप-परिवर्तन-रोधक क्षमता उतनी कम नहीं होती।

विद्युत्-चालकता—साधारण तापक्रम पर पोरसिलेन की विद्युत्-चालकता बहुत ही कम है, परन्तु उच्च तापक्रम पर बड़ी शीघ्रता से बढ़ती है। इस गुण के आधार पर टी. वैल्यू (Te-Value) नामक एक विशेष परीक्षा का प्रयोग किया जाता है। टी वैल्यू वह तापक्रम है, जिस पर विद्युत् प्रतिरोध १० लाख ओहम प्रति घन सेण्टी-

मीटर हो जाय। अच्छे विद्युत्-रोधक प्रयोग से खराब हो सकते हैं तथा रन्ध्रहीन रोधक में कुछ समय पश्चात् रन्ध्रता आ सकती है। इसका कारण यह है कि प्रत्यावर्ती (Alternating) विद्युत्-धारा के कारण पोरसिलेन केलासो में एक प्रकार का कम्पन-सा उत्पन्न हो जाता है और कम्पन के कारण दो केलासो के बीच में दरार पड़ जाती है।

बाटकिन (E Watkin) ने पता लगाया है कि चकमक के स्थान पर चीनी मिट्टी का अनुपात बढ़ा देने से आपेक्षिक प्रतिरोध बढ़ जाता है, परन्तु चीनी मिट्टी के स्थान पर बॉल-मिट्टी डालने से पोरसिलेन के विद्युत्-गुणों पर घातक प्रभाव पड़ता है। फेल्सपार के स्थान पर स्टीटाइट डालने से आपेक्षिक प्रतिरोध बढ़ जाता है।

आर० ट्वैल (R Twell) और लिन (C C Lin) के अनुसार पोरसिलेन का प्रतिरोध बढ़ाने के लिए सिलीमेनाइट एल्यूमिना तथा जिरकोनिया द्वारा स्फटिक की मात्रा घटायी जा सकती है। फेल्सपार के बदले स्टीटाइट डालने से विद्युत्-प्रतिरोध तो काफी बढ़ जाता है, परन्तु पार विद्युत्-शक्ति पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

विद्युत्-रोधक की कार्योपयोगिता उसके आकार पर बहुत कुछ निर्भर करती है। इसका आकार ऐसा हो कि तल पर विद्युत् बहने का रास्ता यथासम्भव लम्बा रहे। विद्युत् संचरण में इकहरे कटोरेवाले रोधक बहुत कम प्रयोग किये जाते हैं। बहुसंख्यक कटोरेवाले रोधक अधिक ठीक समझे जाते हैं, कारण यदि एक कटोरे में दोष भी आ गया तो पूरा विद्युत्-रोधक बेकार नहीं हो जाता।

पारविद्युत्-क्षमता—एक अच्छे रोधक में शक्तिशाली विद्युत् चिनगारी रोकने की क्षमता होनी चाहिए। रौजेनथाल (E Rosenthal) के अनुसार २५ मिली-मीटर मोटे और 1860° से० पर पकाये गये कठोर पोरसिलेन के टुकड़े में ४०,००० वोल्ट तक की विद्युत्-धारा रोकने की क्षमता होती है। इसी वैज्ञानिक के अनुसार मिश्रणपिण्ड के सगठन का पार-विद्युत्-क्षमता पर प्रभाव इस प्रकार है—यदि केओलिन की मात्रा (५५ प्रतिशत) स्थिर रखी जाय, तो स्फटिक के स्थान पर फेल्सपार बढ़ाने से पारविद्युत्-क्षमता तब तक बढ़ती जाती है, जब तक कि फेल्सपार और स्फटिक का अनुपात २५ से २० तक न हो जाय। परन्तु फेल्सपार की मात्रा और बढ़ाने पर पार विद्युत्-क्षमता घट जाती है।

अधिक पारविद्युत्-क्षमता प्राप्त करने के लिए रोधक ठीक प्रकार से काँचीय किया जाना चाहिए। न्यून तापक्रम पर पकायी जानेवाली वस्तु में स्फटिक के स्थान पर

फेल्सपार की अधिक मात्रा से पारविद्युत्-क्षमता बढ़ती है। पर उच्च तापक्रम पर पकायी जानेवाली वस्तुओं में इसका प्रभाव उल्टा होगा। इस कार्य के लिए सोडा फेल्सपार की अपेक्षा पोटाश फेल्सपार अधिक श्रेष्ठ है। चूना से अच्छा परिणाम नहीं निकलता, परन्तु सोडा या पोटाश भस्म के साथ बेरीलियम आक्साइड अपेक्षाकृत अच्छा परिणाम देता है। रैडक्लिफ (B. S Radclif) ने पता लगाया कि यदि ६-८ प्रतिशत तक चूनेवाली पोरसिलेन और पोटाश पोरसिलेन एक ही तापक्रम पर पकायी जायें और उनमें एक ही रन्ध्रता हो, तो चूनेवाली पोरसिलेन में पोटाश-वाली पोरसिलेन की अपेक्षा केवल आधी पारविद्युत्-क्षमता होगी। अतः विद्युत्-रोधक में चूने का अनुपात यथासम्भव कम रखना चाहिए।

यान्त्रिक शक्ति—विद्युत्-रोधकों में तनाव, आकुचन तथा प्रतिबल को सहन करने की क्षमता अधिकाधिक होनी चाहिए। रौजेन्थाल के अनुसार यदि स्फटिक के बदले फेल्सपार बढ़ाया जाय, तो वस्तु की आकुचन-शक्ति तब तक बढ़ती जाती है, जब तक कि दोनों बराबर अनुपात में नहीं हो जाते, परन्तु फेल्सपार की मात्रा इससे आगे बढ़ाने पर आकुचन-शक्ति कम हो जाती है। मिट्टी की मात्रा ५५ प्रतिशत रखी जाती है, कारण ६५ प्रतिशत मिट्टी होने पर वस्तु की यान्त्रिक शक्ति काफी कम हो जाती है, तथा पारविद्युत्-क्षमता में काफी कमी आ जाती है। चीनी मिट्टी के बदले बॉल-मिट्टी डालने से भी यान्त्रिक शक्ति कम हो जाती है। ब्लेनिजर (Bleninger) के अनुसार चकमकी के बदले जिरकोनियों का अनुपात बढ़ाने से वस्तु की शक्ति बढ़ जाती है। जब फेल्सपार के कुछ अंश के बदले स्टीटाइट डाला जाय तो वस्तु के काँचीय अंश का अनुपात कम हो जाता है, परन्तु यान्त्रिक शक्ति बढ़ जाती है।

ए० एस० वाट (A S Watt) के विचार में सर्वोत्तम विद्युत् पोरसिलेन मिश्रण-पिण्ड का सगठन निम्नलिखित दो सगठनों के बीच होना चाहिए—

० ५ पोटाशियम आक्साइड	}	० ८ एल्यूमिना, ४ २ सिलिका।
० ५ कैल्शियम ,,		
और		
० ८ पोटाशियम आक्साइड	}	१ ० एल्यूमिना, ६ २ सिलिका।
० २ कैल्शियम ,,		

विद्युत्-रोधक मिश्रण-पिण्डों तथा उनके प्रलेपों के व्यावहारिक सगठन आगे दिये जाते हैं।

मिश्रण-पिण्डो का सगठन—

	(१)	(२)	(३)	(४)
केओलिन	४५	४८	५३	५३
फेल्सपार	३०	३५	१६	१०
स्फटिक	२५	१७	२१	२०
स्टीटाइट	X	X	१०	१७

मिश्रण १ टेलीग्राफ विद्युत्-रोधको के लिए उपयुक्त है और १३५०° से १३८०° से० तक पूरी तरह पकता है।

मिश्रण-पिण्ड २, ३ तथा ४ उच्चतनाव विद्युत् पोरसिलेन के लिए उपयोगी है और १३८०° से १४१०° से० तक पूरी तरह पक जाते हैं।

प्रलेप सगठन—

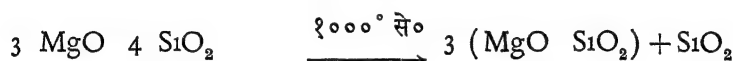
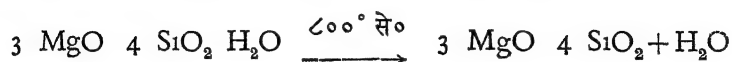
	(१)	(२)	(३)
फेल्सपार	४२	४०	३४
स्फटिक	४१	४२	४५.५
डोलोमाइट	१०	९	७.५
केओलिन	७	९	१३

प्रलेप १ टेलीग्राफ विद्युत्-रोधक के लिए उपयोगी है। शेष २ और ३ उच्च तनाव रोधको के लिए उपयोगी हैं। खर्च कम करने के लिए २०-३० प्रतिशत प्रलेपित-पात्र चूर्ण प्रायः इन प्रलेपों के साथ प्रयोग किया जाता है। उच्च तनाव विद्युत्-रोधक प्रायः गहरे हरे या गहरे बादामी रंग के बनाये जाते हैं, जिससे न्यून तनाव विद्युत्-रोधको से पहचाने जा सकें।

स्टीटाइट (Steatite) पोरसिलेन—उच्च आवृत्तिवाली प्रत्यावर्ती विद्युत्-धारा बहने से फेल्सपारीय कठोर पोरसिलेन के बने हुए विद्युत्-रोधक गरम हो जाते हैं। इस गरम होने के कारण उनकी पारविद्युत्-शक्ति नष्ट हो जाती है, अतः उच्च आवृत्ति धारा बहने से वे टूट जाते हैं। रोधक का गरम होना कुछ तो धारा की वोल्टता तथा आवृत्ति पर निर्भर करता है तथा कुछ रोधक के सगठन पर निर्भर करता है। इसे विद्युत्-रोधक का तापजनन गुणक (Power-factor) कहते हैं। जिन रोधको में क्षार द्रावक के रूप में होते हैं, उनका तापजनन गुणक अधिक होता है। अतः क्षारीय

फ्रेसपार से बनी पोरसिलेने उच्च आवृत्ति तथा उच्च वोल्टतावाली धाराओं के लिए उपयोगी नहीं है।

स्टीटाइट एक खनिज है, जिसे टाल्क तथा सोपस्टोन या साबुनपत्थर भी कहा जाता है। इसका सगठन $3 \text{ MgO} \cdot 4 \text{ SiO}_2 \cdot \text{H}_2\text{O}$ है। भट्ठी में गरम करने पर यह क्रमशः निम्न प्रकार से दो स्तरों में विच्छेदित हो जाता है।



यौगिक $\text{MgO} \cdot \text{SiO}_2$ को क्लीनो एसटेटाइट (Clino-Enstatite) कहते हैं। इस अवस्था में पदार्थ काफी कठोर परन्तु सरन्ध्र होता है। $1500^\circ \text{ से } 0$ से अधिक गरम करने पर यह एकाएक पिघल जाता है, कारण गलनाक का परास बहुत ही कम है। घने और रन्ध्रहीन पदार्थ बनाने के लिए इसमें बेरियम और मैगनीशियम कार्बोनेट जैसे यौगिक मिलाकर गरम करते हैं। ये यौगिक मुक्त सिलीका से संयोग कर कॉचीय सिलीकेट बनाते हैं। ये कॉचीय सिलीकेट पिघलकर क्लीनो एसटेटाइट के रन्ध्रों को भर देते हैं तथा एक रन्ध्रहीन कठोर पदार्थ बन जाता है। स्टीटाइट में विशेष लचीलापन न रहने के कारण, पात्र-निर्माण में इसे कार्योपयोगी बनाने के लिए इसमें थोड़ी-सी लचीली केओलिन मिला देते हैं। परन्तु केओलिन की अधिक मात्रा हानिकारक होती है।

इन क्लीनो एसटेटाइट वस्तुओं का उच्च आवृत्ति धारा पर तापजनन गुणक बहुत कम होता है। इस कारण रेडियो, राडार तथा टेलीविजन आदि यन्त्रों में, जहाँ उच्च आवृत्ति धारा का प्रयोग होता है, इसके रोधक विशेष रूप से उपयोगी हैं। इन वस्तुओं का केवल तापजनन गुणक ही बहुत कम नहीं होता, वरन् इनमें कार्योपयोगी पारविद्युत्-शक्ति तथा यान्त्रिक शक्ति भी होती है।

यदि टाल्क के साथ अधिक मैगनीशिया या मैगनीशियम कार्बोनेट डाला जाय तो निस्तापन के पश्चात् बने हुए केलास का सूत्र $2 \text{ MgO} \cdot \text{SiO}_2$ है, जिसे फोस्टेराइट (Fosterite) कहते हैं। इन फोस्टेराइट पात्रों की पारविद्युत् शक्ति अधिक होती है, तापजनन गुणक बहुत कम होता है, परन्तु क्लीनो एसटेटाइट की अपेक्षा लम्ब-प्रसार गुणक अधिक होता है, जैसा कि नीचे दिये मानों से स्पष्ट हो जायगा।

लम्ब प्रसार गुणक

१ क्लीनो एसटेराइट

9×10^{-6}

२ फोस्टेराइट

9×10^{-6}

इसी गुण के कारण फोस्टेराइट बहुत से कार्यों में अनुपयोगी सिद्ध हुआ है।

कार्डीराइट विद्युत्-रोधक (Cordierite-Insulators)—ये टाल्क और केओलिन के मिश्रण से बनाये जाते हैं। अच्छी केओलिन और टाल्क क्रमशः 1700° से 1500° से० से नीचे नहीं पिघलते, परन्तु ७० प्रतिशत टाल्क और ३० प्रतिशत केओलिन का मिश्रण 1200° से० पर ही पिघल जाता है और एक नवीन यौगिक बन जाता है। इस नवीन यौगिक का सूत्र $2MgO \cdot 2Al_2O_3 \cdot 5SiO_2$ है तथा इसे कार्डीराइट कहते हैं।

कार्डीराइट वस्तुओं का लम्ब-प्रसार-गुणक बहुत ही कम होता है, जो कि पोरसिलेन के प्रसार गुणक का पाँचवाँ भाग तथा टाल्क के प्रसार गुणक का सातवाँ भाग है, परन्तु शुद्ध कार्डीराइट की वस्तुओं में परेशानी यह है कि इनके पकाने के तापक्रम का परास अधिक न होने से जिस तापक्रम पर गलना प्रारम्भ होती है, उसी समय शीघ्रता से पिघल जाती है। इस कारण वस्तुओं के निर्माण में बड़ी कठिनाई होती है।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए शुद्ध कार्डीराइट में कुछ दूसरे पदार्थ, जैसे जिरकोनिया (ZrO_2) या जिरकोन बालू ($Zr SiO_4$) आदि को मिलाकर, इस पकाव तापक्रम का परास बढ़ा लिया जाता है। हाल में ही श्री एस० के० चटर्जी तथा डाक्टर एच० एन० दास गुप्त ने बताया है कि लौह आक्साइड युक्त मिट्टियाँ भी कार्डीराइट वस्तुओं के पकाव तापक्रम का परास बढ़ाने में सहायक हैं। इन बाहरी पदार्थों के मिलाने से बनी हुई वस्तुओं का लम्ब-प्रसार-गुणक बढ़ जाता है। अतः व्यावहारिक कार्डीराइट विद्युत्-रोधक का तापजनित प्रसार शुद्ध कार्डीराइट के तापजनित प्रसार से बहुत अधिक होता है। साधारण औद्योगिक अवस्थाओं में ऐसे गुणोवाला कार्डीराइट बनाना सरल नहीं है। कार्डीराइट मिश्रण-पिण्ड में ऐसी बहुत-सी वस्तुएँ बनायी जाती हैं, जिन्हें आकस्मिक ताप-परिवर्तन सहन करने पड़ते हैं, जैसे विद्युत्-तापक (Electric-heater) की प्लेट, तापीय युग्म (Thermo couple) के रक्षक नल आदि। कार्डीराइट पात्र की पारविद्युत्-शक्ति पोरसिलेन के समान ही है। अतः यह उच्च आवृत्ति धाराओं के लिए उपयोगी नहीं है। उन स्थानों पर

रूटाइल विद्युत्-रोधक (Rutile-Insulators)—ये मिश्रण-पिण्ड मुख्यतः रूटाइल खनिज (TiO_2) से बनाये जाते हैं। रूटाइल के साथ कुछ लचीली केओलिन या बेण्टोनाइट इसलिए मिली रहती है कि ढालते समय सरलता रहे। अधिक केओलिन या बेण्टोनाइट नहीं डालना चाहिए, कारण इससे अनुपयोगी भौतिक गुण आ जाते हैं। रूटाइल मिश्रण-पिण्डों में लचीलेपन के अभाव के कारण केवल साधारण आकृतियों की वस्तुएँ ही ढाली जा सकती हैं।

रूटाइल मिश्रण-पिण्डों की पारविद्युत्-शक्ति बहुत अधिक है, परन्तु तापक्रम के बढ़ने से यह घटती जाती है। आजकल रूटाइल के इस गुण का उपयोग करते हुए विशेष प्रकार के विद्युत्-यन्त्र बनाये जाते हैं।

उच्चवायुति धारा के लिए रूटाइल वस्तुओं का तापजनन गुणक काफी सन्तोषजनक है, परन्तु न्यून आवृत्ति धारा के लिए यह काफी बढ़ जाता है। इस कठिनाई को अधिकतर रूटाइल जिरकोनिया मिश्रण का प्रयोग करके दूर किया जाता है।

विद्युत्-रोधक का ठीक प्रकार से कार्य करना केवल उसके अवयवों के उचित चुनाव पर ही नहीं, बल्कि आकृति और प्रकार पर भी निर्भर करता है। मृद्-उद्योग तथा विद्युत्-विशेषज्ञों के सहयोग से बहुत प्रकार के विद्युत्-रोधकों का विकास हुआ है, जो घरेलू तथा बाहरी कार्यों के लिए उपयोगी हैं। उच्च वोल्टतावाली धारा के संचरण के लिए ९ कटोरेवाले विद्युत्-रोधक काम में लाये जाते हैं, जबकि घर में बिजली के तार लगाने के लिए छोटे-छोटे क्लिट प्रयुक्त किये जाते हैं। विद्युत्-रोधक के बनाने-वाले पदार्थों तथा रोधक की आकृति व प्रकार के बुद्धिमत्तापूर्ण चुनाव से उनकी दक्षता बढ़ेगी तथा उन्हें अधिक काल तक कार्योपयोगी रखने में व्यय कम लगेगा।

भारतवर्ष में बहुत-सी नदी-घाटी योजनाओं के विकसित होने के कारण, उन्हें सफल बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के रोधकों की बहुत बड़ी संख्या में आवश्यकता होगी। इस कार्य के लिए सभी आवश्यक पदार्थ हमारे अपने देश में विद्यमान हैं, परन्तु वर्तमान मृत्सामग्रियों के कारखाने रोधकों की बढ़ती माँग को पूरा न कर सकेंगे। अतः उनकी उत्पादन-क्षमता बढ़ायी जाय और नये कारखाने खोले जायें। बहुत देर होने के पहले ही हमारी सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

रासायनिक पोरसिलेन—इस प्रकार की कठोर पोरसिलेन रासायनिक प्रयोग-शालाओं में विभिन्न उपयोगों के लिए बनायी जाती है। इस प्रकार की पोरसिलेन

की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—(अ) पूर्णरूपेण काँचीय होना (आ) उच्च तापक्रम रोधकता (इ) आकस्मिक ताप-परिवर्तनों से अप्रभावित रहना (ई) प्रलेप का अम्ल क्षार आदि यौगिकों से अप्रभावित रहना (उ) बाहरी धक्कों के कारण सरलता से न टूटना (ऊ) बार-बार के गरम करने व ठण्डा करने पर भी भार का स्थिर रहना ।

सर्वोत्तम रासायनिक पोरसिलेन, अधिक केओलिनवाले उस मिश्रण-पिण्ड से प्राप्त हो सकती है जो द्रावकों की नहीं, वरन् केवल ताप की सहायता से काँचीय किया गया हो। सुई आकार के मूलाइट केलासो में एक दूसरे से जुड़े रहने के कारण मजबूती आ जाती है। काँचीय पिण्ड में मुक्त स्फटिक केलास नहीं रहने चाहिए। इस प्रकार की आदर्श पोरसिलेन प्राप्त करने के लिए पात्रों को 1200° से० तक गरम करना आवश्यक है, परन्तु व्यापार में इतने उच्च तापक्रम पर गरम करने में व्यय अधिक पड़ता है। अतः पकाने का तापक्रम कम करने के लिए कुछ द्रावकों का प्रयोग किया जाता है। चूँकि स्फटिक केलास 1400° से० से नीचे तरल फेल्सपार में नहीं घुलते हैं, अतः रासायनिक पोरसिलेन पात्र सदैव ही 1400° से० से ऊपर पकाये जाते हैं। मिश्रण-पिण्ड में प्रायः स्फटिक या चकमक के बदले निस्तापित केओलिन, सिलीमेनाइट या काइनाइट डाला जाता है।

श्रेष्ठ प्रकार की रासायनिक पोरसिलेन को सूक्ष्मदर्शी में देखने पर एक काँचित पिण्ड के अन्दर मूलाइट केलास एक दूसरे में घुसे हुए मालूम होते हैं, परन्तु स्फटिक केलास या तो बिल्कुल नहीं होते या होते भी हैं, तो बहुत कम।

रासायनिक पोरसिलेन के कुछ विशेष सगुण नीचे दिये जाते हैं—

प्राकृतिक केओलिन	५०	५०	५१	५५
निस्तापित केओलिन	२०	८५	×	×
चकमक या स्फटिक	१८५	×	×	१४
फेल्सपार	११५	११५	२५	३०
खडिया	×	×	१५	१
सिलीमेनाइट	×	३०	२२५	×

यद्यपि मूलाइट केलासों का तापप्रसार गुणक अधिक है, परन्तु मूलाइट मिश्रण-पिण्डों का तापप्रसार गुणक इतना अधिक नहीं है, कारण उसमें सिलीका काँच रहता है जिसका तापप्रसार-गुणक बहुत कम है। इसकी जाली जैसी रचना से पात्र कठोर

व मजबूत हो जाता है। दूसरे सिलीकेटो की अपेक्षा मूलाइट में अम्ल तथा क्षारों के सक्षारक प्रभाव की प्रतिरोधक शक्ति भी सर्वाधिक है। रासायनिक पोरसिलेन के दो मिश्रण-पिण्डों के संगठन इस प्रकार हैं, इन मिश्रण-पिण्डों से वाष्पीकरण प्याली, छोटी घरियाएँ आदि बनती हैं—

	बर्लिन का मिश्रण-पिण्ड	फ्रांस का मिश्रण-पिण्ड
सिलीका	६७.५	६१.६१
एल्यूमिना	२६.६	३०.०१
फैरिक आक्साइड	०.८	१.५६
टिटैनियम आक्साइड	०.४	×
चूना	०.४	३.५६
मैगनीशिया	०.५	×
पोटैशियम आक्साइड	३.३	३.२६
सोडियम आक्साइड	०.७	×

रासायनिक पोरसिलेन की निरपेक्ष (Absolute) तापचालकता, काँच की ताप-चालकता से अधिक है, परन्तु इसका प्रसार-गुणक साधारण काँच, कडी मिट्टी पात्र या दूसरे ऐसे पदार्थों से कम है। अतः यह पोरसिलेन तापक्रम के आकस्मिक परिवर्तनों को सहन कर सकती है। बर्लिन पोरसिलेन का द्रवणांक लगभग 1640° से० है। प्रलेप ऐसा हो कि क्षार धूलों से अप्रभावित रहे तथा इतना कठोर हो कि यदि पात्र ब्लास्ट बर्नर (Blast-Burner) द्वारा गरम किया जाय तो त्रिभुज या पात्र में रखा पदार्थ प्रलेप से न चिपके। पात्र पतला, काँचीय तथा अल्प पारदर्शक होता है।

स्फटिक के स्थान पर सिलीमेनाइट या टाल्क डालने से पकाने के पश्चात् बचनेवाले मुक्त स्फटिक कणों की संख्या कम हो जायगी और इस प्रकार बार-बार गरम व ठण्डा करने से पात्र के चटक जाने की सम्भावना कम हो जायगी। क्षारों की तापचालकता, चूना तथा मैगनीशिया की अपेक्षा कम है, परन्तु तापजनित प्रसार अधिक है। अतः रासायनिक पोरसिलेन में क्षारों की मात्रा यथासम्भव कम ही रहे।

दुर्गल पोरसिलेन—दुर्गल पोरसिलेन के पात्रों का उपयोग कई उद्देश्यों के लिए होता है। कुछ महत्वपूर्ण उपयोग इस प्रकार हैं—(१) प्रयोगशालाओं में दहन नली की भाँति (२) पाइरोमीटर या उत्तापमापक के लिए रक्षक नल के रूप में

(३) चिनगारी प्लग बनाने के लिए (४) विभिन्न प्रकार के विद्युत् तापको आदि के आधार रूप में।

इन सभी वस्तुओं के भिन्न गुण होने चाहिए। कुछ मुख्य गुण इस प्रकार हैं—
(१) पात्रों का गलन ताप उस तापक्रम से बहुत अधिक होना चाहिए, जिस तापक्रम पर पात्र का प्रयोग किया जायगा। (२) पात्रों में यान्त्रिक शक्ति काफी होनी चाहिए, जिससे उच्च तापक्रम पर यह अपना भार और कोई बाहरी धक्का या चोट सहन कर सके। (३) उच्च तापक्रम पर पात्र गैसों के लिए अपारगम्य हो। (४) आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनों की ओर प्रतिरोधक शक्ति अधिक हो। (५) गरम करने व ठण्डा करने से आयतन में परिवर्तन न हो और (६) उच्च पारविद्युत्-शक्ति हो।

किसी भी एक सगठन से ये सब गुण उत्पन्न नहीं हो सकते। अतः विभिन्न प्रकार के पात्रों के लिए सगठन में हेर-फेर किया जाता है। रक्षक नलों के सगठन भी बदले जाते हैं, कारण उन्हें विभिन्न तापक्रमों पर प्रयोग के लिए बनाया जाता है। रक्षक नलों के दो विशेष सगठन नीचे दिये जाते हैं।

केओलिन	३८	३२
बॉल-मिट्टी	१२	१८
फेल्सपार	१८	१२
स्फटिक	३२	३८

आवश्यक गुण उत्पन्न करने के लिए प्रयोग की जानेवाली मिट्टियों का चुनाव सावधानी से करना चाहिए। जिन मिट्टियों की प्राकृतिक अवस्था में तनन-क्षमता अधिक हो उन्हें प्राथमिकता दी जाती है।

रक्षक नल या तो विशेष प्रकार के द्रवचालित प्रेसों के द्वारा बनाये जाते हैं, या मिट्टी-धोले से ढालकर बनाये जाते हैं। ५ मिलीमीटर भीतरी व्यासवाले ढाले हुए नल, दबाव-विधि से बने नलों की अपेक्षा उत्तम होते हैं। वे अधिक सीधे तथा अधिक समाग होते हैं, कारण ढाले गये नलों को साँचे में तब तक रहने दिया जाता है, जब तक कि वे पकड़ने आदि के लिए खूब मजबूत न हो जायें।

पकाते समय भट्ठी में रखने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिए, विशेषकर उस समय जब नल लम्बे तथा भारी हो। पकाते समय नलों को खड़ा लटका दिया जाता है। लटके हुए नलों का भार रोकने के लिए मिट्टी की तनन-क्षमता काफी होनी चाहिए।

यदि नलो को चिकन-प्रलेपित करना हो, तो प्रारम्भिक पकाव प्राय ९००° से १०००° से० के बीच किया जाता है, परन्तु प्रलेप-पकाव के समय यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि पूर्णता-प्राप्ति के लिए उच्चतम तापक्रम पर तापशोषण के लिए काफी समय दिया जाय, जिससे ताप नल की मोटी दीवारों में घुस सके और नल के सभी भाग समान रूप से पक जायें। यदि यह ध्यानपूर्वक न किया गया तो नल पकाते समय ऐठ सकते हैं और प्रयोग करते समय चटक सकते हैं। प्रलेप-पकाव का तापक्रम १४००° से १८००° से० के बीच रहता है। इस तापक्रम का निश्चय इस आधार पर किया जाता है कि तैयार पात्र किस तापक्रम पर प्रयोग किया जायगा।

चिनगारी प्लग—आन्तरिक दहन इजनों तथा मोटरों के लिए चिनगारी प्लग एक विशेष प्रकार की कठोर पोरसिलेन से बनाये जाते हैं। इस पोरसिलेन की मुख्य विशेषताएँ हैं—गरम व ठण्डा करने पर आयतन की स्थिरता तथा अधिक पार-विद्युत्-शक्ति। जिन पोरसिलेनों में मुक्त स्फटिक की मात्रा अधिक हो उनमें आयतन परिवर्तन नहीं रोका जा सकता। अतः अच्छे चिनगारी प्लगों में स्फटिक के बदले निस्तापित सिलीमेनाइट या निस्तापित चीनी मिट्टी डाली जाती है। सिलीमेनाइट या केईनाइट (Kyanite) का प्रयोग करके बनायी गयी पोरसिलेन में आकस्मिक ताप परिवर्तनों को सहने की शक्ति अधिक होती है, आयतन नहीं बढ़ता और यह बाहरी धक्को को भी अधिक सह सकती है। जब फेल्सपार के बदले चूना मैगनीशिया या बेरियम आक्साइड डाला जाय तो पात्र की पारविद्युत्-शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है। चिनगारी प्लग के लिए मिश्रण-पिण्ड की विशेषता है कि अवयव बहुत ही महीन पीसे जाते हैं। अन्तिम मिश्रण-पिण्ड बहुत समाग होता है। लचीला मिश्रण-पिण्ड काफी सावधानी से गूँधा जाना चाहिए, जिससे कोई हवा का बुलबुला न रह जाय और पूरा पिण्ड समाग हो जाय।

मृदु पोरसिलेन—खिलौनों और सजावट की वस्तुओं को बनाने के लिए मुख्य रूप से सैगर पोरसिलेन और सेवरेम पोरसिलेन का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों प्रकार की पोरसिलेनों में फेल्सपार डाला जाता है।

सैगर पोरसिलेन के मिश्रण-पिण्ड का सूत्र इस प्रकार है— $RO \cdot 2 \cdot 74 Al_2O_3 \cdot 23 \cdot 52 SiO_2$ यहाँ RO क्षारीय आक्साइडो, पोटैशियम आक्साइड तथा सोडियम आक्साइडो के लिए प्रयोग किया गया है। इस प्रकार का मिश्रण-पिण्ड निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

राजमहल केओलिन	३४५
मिहीजाम फेल्सपार	३००
निस्तापित स्फटिक	३५५

वोग्ट (Vogt) के अनुसार फ्रांस की पोरसिलेन का सूत्र इस प्रकार है—

$$\left. \begin{array}{l} ०.३३ \text{ पोटेसियम आक्साइड} \\ ०.४८ \text{ सोडियम} \quad ,, \\ ०.१९ \text{ कैल्शियम} \quad ,, \end{array} \right\} २.७२ \text{ एल्यूमिना, } १४.० \text{ सिलीका।}$$

पात्र का प्रारम्भिक पकाव १२८०° से० पर किया जाता है, जिससे प्रलेप के नीचे पात्रतल पर विभिन्न रंगों की सजावट की जा सके। प्रलेप पकाव भी न्यून तापक्रम पर ही होता है, जिससे अल्प ताप-सहनशील विभिन्न रंग भी नष्ट नहीं होते। विभिन्न रंगों से की गयी सजावट इस प्रकार की पोरसिलेन की विशेषता है।

सेवरेस मृदु पोरसिलेन पर प्रयोग किया जानेवाला प्रलेप १३००° से १३२०° से० के बीच पकता है और उसका अणु सगठन निम्नलिखित होता है।

$$\left. \begin{array}{l} ०.८५ \text{ चूना} \\ ०.०९ \text{ सोडियम आक्साइड} \\ ०.०६ \text{ पोटेसियम} \quad ,, \end{array} \right\} ०.५ \text{ एल्यूमिना, } ४.२ \text{ सिलीका।}$$

सैगर ने जापानी प्रलेप की नकल की थी और उसे सैगर मृदु पोरसिलेन पर प्रयोग किया था। इसका सगठन नीचे दिया जाता है—

$$\left. \begin{array}{l} ०.३ \text{ पोटेसियम आक्साइड} \\ ०.७ \text{ कैल्शियम} \quad ,, \end{array} \right\} ०.५ \text{ एल्यूमिना, } ४ \text{ सिलीका।}$$

यह प्रलेप १२८०° तथा १३००° से० के बीच पकता है।

१३००° से० पर पकनेवाली एक उत्तम फेल्सपारीय मृदु पोरसिलेन तथा उसके लिए प्रलेप निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है।

पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड सगठन—

पथरघट्टा मिट्टी	४५
अजमेर फेल्सपार	३५
स्फटिक	१७.५
सगमरमर	२.५
योग	<u>१००.०</u>

प्रलेप सगठन

फेल्सपार	४५
स्फटिक	२४
सगमरमर	१८
केओलिन	१३
योग	<u>१००</u>

कॉचित का प्रयोग करके भी महु पोरसिलेन बनायी जा सकती है। पोरसिलेन तथा उसके लिए प्रलेप निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

कॉचित मिश्रण सगठन		पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड सगठन	
बोरैक्स	४८	उपर्युक्त कॉचित	२०
स्फटिक	२४	केओलिन	४०
खडिया	२०	स्फटिक	२५
फेल्सपार	२०	फेल्सपार	१३
केओलिन	८	खडिया	२

इस पोरसिलेन मिश्रणपिण्ड का प्रारम्भिक पकाव ८००° से ९००° से० के बीच होता है। इस पर प्रयोग किये जानेवाले प्रलेप-मिश्रण को निम्नलिखित अवयवों से बना सकते हैं—

प्रलेप मिश्रण सूत्र

फेल्सपार	३७
स्फटिक	२५
बेरियम कार्बोनेट	१५
खडिया	१०
केओलिन	८
जिक आक्साइड	५
योग	<u>१००</u>

यह प्रलेप १२००° से० पर पकाया जाता है।

आजकल एक नया खनिज प्रचेपित मृत्पात्रों के मिश्रण-पिण्ड तथा प्रलेप बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसे नेफेलीन सेनाइट (Nepheline Syenite)

कहते हैं। सी० जे० कोईनिट्ज (C J Koenitz) ने सन् १९३९ ई० में बताया कि थोड़ी-सी मात्रा में पोटैश फेल्सपार के स्थान पर नेफेलीन सेनाइट डालने से कौंचीय होने के तापक्रम का परास बढ़ जाता है, जिससे पात्र में ऐठने की धारणा कम हो जाती है। नेफेलीन सेनाइटवाले पात्रों के शब्द का तारत्व साधारण पात्रों से अधिक होता है। नेफेलीन को महीन पीसने से पकाने का तापक्रम कम हो जाता है तथा पकाने के तापक्रम का परास बढ़ जाता है। पात्रों का ऐठना कम हो जाता तथा पदार्थ अधिक मजबूत हो जाता है। परन्तु नेफेरीन सेनाइट खनिज का संगठन बहुत अधिक बदलता रहता है, जिससे व्यवहार करते समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है।

चटकदार प्रलेप (Crackled-glaze)—जैसा कि चतुर्थ अध्याय में वर्णन किया जा चुका है कि पात्रों को ठण्डा करते समय पात्र तथा प्रलेप के असमान आकुचन के कारण प्रलेपतल पर सूक्ष्म दरारे पड़ जाती हैं। इन दरारों के पड़ने को चटक-दोष कहा गया है। जब इस दोष को नियन्त्रित करके दरारे निश्चित आकृति की बनायी जा सके, जो देखने में मछली के सेहरे (Scales) जैसी लगती हैं, तो इन दरारों का उपयोग सजावट के लिए किया जा सकता है। इन दरारों पर काजल या दूसरे रजक रंग दिये जायँ, तो दरारों में घुसकर सजावट का काम करते हैं। आवश्यकतानुसार रंग स्थिर करने के लिए पात्र को दुबारा पकाया जा सकता है। दरारों का नियन्त्रण केवल प्रलेप या पात्र मिश्रण-पिण्ड का संगठन बदलकर किया जा सकता है। व्यवहार में पात्र मिश्रण-पिण्ड का संगठन न बदलकर केवल प्रलेप का संगठन ही बदलना सुविधाजनक होता है। प्रलेप संगठन प्रायः क्षार या सिलीका का अनुपात बढ़ाकर और एल्यूमिना का अनुपात घटाकर ठीक किया जाता है। नीचे दो प्रलेप संगठन दिये जा रहे हैं। इनमें से एक साधारण प्रलेप है, दूसरा उसी प्रलेप का संगठन परिवर्तित करके उसे चटकदार प्रलेप बनाया गया है—

	साधारण प्रलेप	चटकदार प्रलेप
सिलीका	६६ १	७९ ५३
एल्यूमिना	१४ ५	११ ८७
क्षार	३ ५	५ ६५
चूना	१५ ९	२ ९५

उपर्युक्त चटकदार प्रलेप इन अवयवों से बनाया गया था—

पेगमेटाइट	५१ भाग
बालू	३८ "
चीनी मिट्टी	६ "
खडिया	५ "

इस चटकदार प्रलेप के लिए उचित मिश्रण-पिण्ड का संगठन यह होगा—
सिलिका ६६ भाग, एल्यूमिना २७ भाग तथा क्षार ७ भाग। यह प्रलेप १३५०° से ० पर पकता है।

प्रलेपित करने की विधि साधारण है। प्रलेप की मोटाई न बहुत अधिक हो, न बहुत कम। प्रलेप की मोटाई पर दरारों की आकृति निर्भर करती है। प्रलेप की उचित मोटाई केवल अनुभव द्वारा निश्चित की जा सकती है। दरारों का आकार बढ़ाने के लिए चटकदार प्रलेप में साधारण प्रलेप मिलाओ। साधारण प्रलेप की मात्रा जितनी ही अधिक होगी दरारें उतनी ही बड़ी होगी। इस प्रकार की सजावट के लिए पात्र की मोटाई साधारण पात्रों की मोटाई से कुछ अधिक रहनी चाहिए, जिससे प्रलेप तथा पात्र के असमान आकुचन से उत्पन्न तनाव को पात्र सह सके। चीनी कलाकार इस प्रकार की पोरसिलेन वस्तुएँ बनाने में सिद्धहस्त थे।

अस्थि-पोरसिलेन या बोन चाइना—अस्थि पोरसिलेन बनाने के लिए इंग्लैण्ड के कुम्हार चीनी मिट्टी, बॉल-मिट्टी, कार्निश पत्थर तथा अस्थि-राख का प्रयोग करते हैं। अस्थि पोरसिलेन के कुछ सूत्र नीचे दिये जाते हैं—

चीनी मिट्टी	४०	३०	२३	३५
बॉल-मिट्टी	८	६	१०	×
कार्निश पत्थर	२४	३४	३२	२५
अस्थि-राख	२८	३०	३५	४०

लगभग ०.०५ प्रतिशत अच्छा नीला रजक मिलाओ। प्रारम्भिक पकाव ११००° से १२००° से ० के बीच किया जाता है। पकाते समय सावधानी से भट्ठी को नियन्त्रित रखना चाहिए, कारण थोड़ा-सा भी अधिक पकने पर अस्थि-राख विच्छेदित होकर

गैसें उत्पन्न करती हैं, जिनसे पात्र की आकृति नष्ट हो जाती है, या पात्र-तल पर फफोला-दोष आ जाता है।

इंग्लैण्ड के वर्तमान कुम्हारों में से अधिकतर कार्निश पत्थर के स्थान पर फेल्सपार का प्रयोग करते हैं, कारण कार्निश पत्थर का सगठन बदलता रहता है।

उत्कृष्ट कोटि की अस्थि-पोरसिलेन के पुराने निर्माण सूत्र में एक प्रकार का कौंचित भी मिश्रण-पिण्ड में रहता है। इस कौंचित तथा मिश्रण-पिण्ड के सगठन नीचे दिये जाते हैं—

कौंचित मिश्रण के अवयव—

फेल्सपार	६०
बोरैक्स	२५
शोरा	५
अमोनियम क्लोराइड	१०
योग	<u>१००</u>

मिश्रण-पिण्ड के अवयव

उपर्युक्त कौंचित	४५	३५
चीनी मिट्टी	४०	३५
अस्थिराख	१५	३०

प्रारम्भिक पकाव ११४०° से० और १२००° से० के बीच होता है।

यद्यपि प्राचीन काल में अस्थि-पोरसिलेन के लिए साधारण प्रलेप का ही प्रयोग किया जाता था, पर आजकल कौंचित प्रलेप का प्रयोग किया जाता है। एक ही प्रलेप विभिन्न मिश्रण-पिण्डों के लिए उपयोगी नहीं होता। जो प्रलेप एक मिश्रण-पिण्ड के लिए बहुत ही उपयोगी हो, वह दूसरे के लिए अनुपयोगी हो सकता है, चटक-दोष या पपड़ी-दोष को जन्म दे सकता है।

अस्थि-पोरसिलेन के प्रलेपों के कुछ विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं। किसी विशेष पात्र के लिए उपयोगी बनाने के लिए सगठन थोड़ा-बहुत बदला जा सकता है।

कॉचित मिश्रण अवयव
(१)

बोरैक्स	४०
खडिया	१०
चकमक	२०
फेल्सपार	३०
योग	<u>१००</u>

कॉचित मिश्रण अवयव
(२)

बोरैक्स	३०
खडिया	२०
चकमक	१५
चीनी मिट्टी	१०
कार्निश पत्थर	२५
योग	<u>१००</u>

प्रलेप मिश्रण अवयव
(१)

कॉचित (१)	५०
सफेदा	१५
चीनी मिट्टी	१०
फेल्सपार	१५
चकमक	१०
योग	<u>१००</u>

प्रलेप मिश्रण अवयव
(२)

कॉचित (२)	६५
कार्निश पत्थर	१५
चकमक	१०
सफेदा	१०
योग	<u>१००</u>

कुछ पुराने सूत्रो मे कॉचित मिश्रण मे साधारण कॉच का भी प्रयोग किया गया था। साधारण कॉचवाले कॉचित मिश्रण तथा उन कॉचितो से बने प्रलेप-मिश्रण के अवयव नीचे दिये जाते हैं।

कॉचित मिश्रण
(३)

कॉच	६९
लिथार्ज	१८
शोरा	८
आर्सेनिक आक्साइड	४
नीलारजक	१
योग	<u>१००</u>

प्रलेप मिश्रण
(३)

कॉचित (३)	६
चकमक	१४
सफेदा	५४
कार्निश पत्थर	२६
योग	<u>१००</u>

कॉचित-मिश्रण

(४)

बोरेक्म	१३
चक्रमक	८७
योग	१००

प्रलेप-मिश्रण

(४)

कॉचित (४)	३०
सफेदा	३९
कार्निश पत्थर	३०
नीला रजक	१
योग	<u>१००</u>

प्रलेप का पकाव १०००° से० और ११००° से० के बीच होता है तथा पात्र के प्रारम्भिक पकाव का तापक्रम प्रलेप पकाव के तापक्रम से बहुत अधिक होता है। प्रलेप पकाव के न्यून तापक्रम के कारण पात्र पर अन्त प्रलेप रजको से सुन्दर रंगीन सजावटे की जा सकती है, जो कठोर पोरसिलेन के पात्रो पर सम्भव नहीं है।

पेरियन पोरसिलेन (Parian-Porcelain)—इस प्रकार की पोरसिलेन विशेष कर मूर्तियों तथा खिलौनों के बनाने में काम आती है। इसका दूसरा नाम बिस्कुट पोरसिलेन भी है। पेरियन पोरसिलेन के मिश्रण-पिण्डों के कुछ सगठन नीचे दिये जा रहे हैं।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
केओलिन	३७	३५	३६	५०	५०
फेल्सपार	६३	४५	६०	४७ ५	३६
पेगमेटाइड	×	२०	×	×	×
सीमा कॉच	×	×	४	२	×
स्फटिक	×	×	×	×	१०
जिक आक्साइड	×	×	×	० ५	१
सगमरमर	×	×	×	×	३
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>

मिश्रण-पिण्ड १, २ तथा ३ ढलाई विधि से बने खिलौनों के लिए प्रयोग किये जाते हैं, कारण ये पिण्ड कुछ अल्प लचीले हैं। इनके पकाने का तापक्रम ११४०° से० से ११६०° से० तक है। मिश्रण-पिण्ड ४ तथा ५ काफी लचीले हैं, अतः इनसे

। त्र किसी भी विधि से बनाये जा सकते हैं। पकने के पश्चात् वस्तुएँ काफी श्वेत हो जाती हैं। इनके पकाने का तापक्रम ओषदीकारक वातावरण में 125° से 126° तक है। यदि पात्र (विशेषकर अन्तिम अवस्था में) अवकारक वातावरण में काया जाय तो छोटे-छोटे बुलबुले या फफोले-जैसे पड सकते हैं।

पोरसिलेन पकाना—कुम्हार का सबसे कठिन कार्य पात्रों को पकानेवाले बक्सों में ठीक प्रकार से रखना होता है। इन बक्सों को 'सैगर' कहा जाता है। ठीक तरह से न रखे जाने पर प्रलेप पिघलकर सैगर की दीवारों या दूसरे पात्रों से चिपक जायगा। यदि पात्र को सीधा सैगर पर रख दिया जाय तो पात्र तथा सैगर के असमान आकुचन के कारण पात्र ऐठ जायगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिए प्रत्येक पात्र दुर्गल भट्टियों से बने विशेष प्रकार के आधार पर रखा जाता है। गोलाकार वस्तुओं को रखने का आधार पात्र के मिश्रण-पिण्ड से ही बनाया जाता है। इससे पकाने पर पात्र तथा आधार का आकुचन समान होने से पात्र के गोल किनारों की आकृति नष्ट नहीं होने पाती। आधार तथा पात्र के स्पर्श करनेवाले भागों पर तेल महीन रेत मिलाकर पोत दिया जाता है, जिससे पात्र आधार पर चिपक न जाय। जिन पात्रों में चपटा ही रखना हो, उन्हें विशेष प्रकार की पूर्व पकायी हुई पट्टियाँ पर रखा जाता है। नल तथा लम्बे बेलनाकार पात्र प्रायः सैगर के अन्दर शक्तिशाली दुर्गल ढाँडों से लटकते हुए रखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त किसी विशेष प्रकार की वस्तु के लिए उपयोगी अनेकानेक विधियाँ होती हैं।

चूँकि भट्ठी में सब स्थानों का तापक्रम समान नहीं होता, इस कारण तापक्रम का विचार रखते हुए विभिन्न प्रकार के पात्रों को रखने के स्थान का निर्णय करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। भट्ठी के चूल्हे के मुँह के पास ही प्रथम चक्र में कोई ऐसा पात्र न रखा जाय जो अधिक पकाने पर खराब हो जाय, कारण यह भट्ठी का सर्वाधिक गरम भाग है। निम्नगति भट्टियों में सैगरों के रखने का ढंग भी विशेष महत्व का है। ठीक प्रकार से न रखने से गरम गैसें एक भाग में दूसरे भाग की अपेक्षा अधिक सरलता से जाकर उस भाग के पात्रों को दूसरे भाग के पात्रों की अपेक्षा अधिक का देगी। सैगर रखते समय यह ध्यान में रखा जाय कि पूरी भट्ठी में दो चक्रों के बीच खाली स्थान समान रूप से छूटे, तथा यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि निम्नगति भट्टियों में सैगरों के बीच का स्थान ही वास्तव में गैसों के बहने का त्स्ता होता है।

भट्ठी के फर्श पर रखे सैगरो के बीच में खाली स्थान छोड़ने में कुछ सावधानी रखनी चाहिए, कारण इस पर गरम गैसों का विभाजन निर्भर करता है। सर्वोत्तम ढंग यह है कि फर्श पर तीन टोंगोवाले विशेष प्रकार के सैगर रखे जायें, जो अपने ऊपर रखे गये सभी सैगरो का भार सहन कर सकें। सैगरो के इस प्रकार रखने से आनेवाली गरम गैसों का मार्ग सैगरो के बीच या फर्श पर कहीं भी अवरोध नहीं होता। यूरोप में कठोर पोरसिलेन पकाने के लिए दो प्रकोष्ठवाली निम्नगति भट्ठी का सर्वाधिक प्रयोग होता है। इसका वर्णन अध्याय ११ में किया गया है।

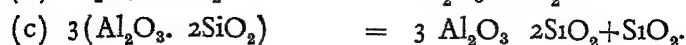
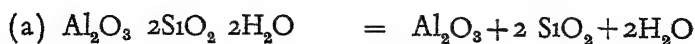
इस प्रकार की भट्ठी के ताप-व्यय का व्यौरा निम्नांकित विधि से समझा जा सकता है—

प्रलेप पकाव	१६	प्रतिशत
प्रारम्भिक पकाव	४	„
राख में हानि	१०	„
चिमनी द्वारा हानि	३०-३५	„
दीवारों से विकिरण द्वारा हानि	३०-३५	„

पोरसिलेन पकाने की क्रिया को सुविधापूर्वक तीन स्तरों में बाँटा जा सकता है—

पूर्व पकाव (Fore Fire)—यह स्तर 600° से 0 तक जाता है तथा इसमें ५-६ घण्टे तक लगते हैं, क्योंकि पोरसिलेन काफी सरल तथा कम घनी होती है, जिसके कारण नमी का पानी सरलता से निकल जाता है।

मध्य पकाव—यह स्तर 600° से 0 से लगभग 1100° से 0 तक या प्रलेप पिघलने के पूर्व तक रहता है। इस स्तर में १० से १२ घण्टे का समय लगता है। इस अवस्था में पकने की गति धीमी होती है, कारण इस स्तर में केओलिन का केलास जल दूर होता है, जिसको अधिक समय न देने से पात्र के फटने का डर रहता है। इस स्तर के प्रारम्भ में मिश्रण-पिण्ड की मिट्टी, मुक्त आक्साइडों में विच्छेदित होना प्रारम्भ हो जाती है तथा बाद में यही आक्साइड संयोग कर सिलीमेनाइट तथा मूलाइट केलास बनाने लगते हैं।



उच्च पकाव—यह स्तर द्वितीय स्तर के अन्त में प्रारम्भ होता है, जब कि पात्र के प्रकार के अनुसार पकाने की गति बढ़ायी जा सकती है। इस समय फेल्सपार पिघलकर मुक्त स्फटिक-कणों को घुलाकर एक श्यान कौचित्र द्रव बनाना प्रारम्भ कर देता है, जो बढ़ते तापक्रम के साथ अधिकाधिक तरल होता जाता है, तथा ठण्डा करने पर इस कौचित्र पदार्थ में मूलाइट केलास बनते जाते हैं। भट्ठी में 1400° से० तक पोरसिलेन पकाने में पूरा समय ३० घण्टे से अधिक नहीं लगता। जब भट्ठी उच्चतम तापक्रम पर आ जाय, तो तापक्रम को स्थिर रखकर २-३ घण्टे तक का समय ताप-शोषण के लिए देना चाहिए, जिससे मोटे तथा भारी पात्रों के भीतर भी ताप पहुँच सके और प्रलेप पात्र को मजबूती से पकड़ सके।

पकाने के बाद भट्ठी को बहुत धीरे-धीरे ठण्डा करना चाहिए तथा पकाने की क्रिया समाप्त हो जाने के बाद भी कम से कम १० घण्टे तक भट्ठी के द्वार न खोले जायें। ६० घनमीटर की भट्ठी से पात्र निकालने में ३ आदमियों को लगभग ५ घण्टे लगेंगे, परन्तु इन्हीं पात्रों को भट्ठी में रखने में लगभग दूना समय लगेगा।

लगभग द्वितीय स्तर के अन्त तक भट्ठी का वातावरण आक्सीकारक रखना चाहिए, जिससे पात्र में उपस्थित कार्बन या कार्बनिक पदार्थ जल जायें, परन्तु द्वितीय स्तर के अन्तिम भाग में वातावरण को बारी-बारी से आक्सीकारक व अवकारक रखना सुरक्षित होता है। इसके पश्चात् भट्ठी का वातावरण अवकारक रखना चाहिए, अन्यथा फ़ैरिक लौह के कारण पात्र में पीला रंग आ जायगा। अवकारक वातावरण में फ़ैरिक लौह, फेरस लौह में बदल जाता है। परिणाम-स्वरूप पीला रंग कुछ हलके नीले रंग में बदल जाता है। इस हलके नीले रंग की उपस्थिति पोरसिलेन में अच्छी समझी जाती है। यदि पकाने पर पात्र-तल के ऊपर हाइड्रोकार्बन जमा होने का भय न हो, तो अवकारक वातावरण रखना कठिन नहीं होता। प्रलेप-तल पर हाइड्रोकार्बन जमा होकर प्रलेप में मिल जायेंगे और पात्र को काला कर देंगे। यदि प्रलेप-तल पर हाइड्रोकार्बनो का जमना मालूम पड़े, तो भट्ठी के अन्दर गरम हवा भेजकर हाइड्रोकार्बन को जला देना चाहिए।

यह आवश्यक है कि भट्ठी के अन्दर गैसों का दबाव भट्ठी के बाहर के हवा-दबाव से कुछ अधिक ही होना चाहिए, जिससे भट्ठी की दीवारों की सूक्ष्म दरारों से बाहर की हवा अन्दर न चली आये। ये सूक्ष्म दरारें भट्ठी गरम होने पर कुछ अधिक खुल

जाती है। भट्ठी को ठंडा करने के प्रारम्भिक काल में प्रलेप जमने तक वातावरण अवकारक होना चाहिए। इसके पश्चात् वातावरण उदासीन हो सकता है, अर्थात् न आक्सीकारक, न अवकारक। 200° से 0° के नीचे वातावरण आक्सीकारक हो सकता है।

पकाने के पश्चात् पात्र भाण्डार-गृह में रखे जाते हैं और दोषपूर्ण पात्र छोटकर निकाल दिये जाते हैं। पात्रों में लगी हुई रेत रगड़कर पोछ दी जाती है। प्रलेप पर चिपके हुए सैगर आदि के कण एमेरी शान द्वारा रगड़कर साफ कर दिये जाते हैं और बाद में लकड़ी की शान द्वारा चिकने कर दिये जाते हैं। जिन पात्रों की टांगें बराबर न हों वे तथा सभी चपटे पात्र बालू पत्थर की शान पर रगड़े जाते हैं।

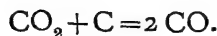
दोष—पात्र-निर्माण के समय पात्र में मुख्य रूप से निम्न दोष आ जाते हैं—

(१) प्रलेप तल पर असख्य छिद्र।

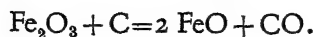
यदि मध्य स्तर में पकाने के पश्चात् भट्ठी का धुआँ ठीक प्रकार से न निकाला गया और उच्च स्तर का पकाव शीघ्रता से प्रारम्भ हो गया, तो प्रलेप द्वारा अवशोषित कार्बन और धुआँ शीघ्रता से नहीं निकल पाता और बाद में जब निकलता है, तो प्रलेप में उतनी तरलता नहीं रहती कि गैस के निकलने से बने छिद्र तरल प्रलेप द्वारा भरे जा सकें। जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, यह दोष उस समय भी आ सकता है, जब प्रलेप घोले में पात्र को डुबोने से पूर्व, सुखाते समय पात्र पर जम गयी धूल साफ न कर दी गयी हो।

(२) पकाने के पश्चात् पात्रतल पर फफोले का प्रकट होना।

यह दोष तब आता है, जब पकाते समय पात्र द्वारा कार्बन-डाई-आक्साइड आदि गैसें अवशोषित कर ली जाती हैं तथा बाद में बढ़ते हुए तापक्रम और अवकारक वातावरण में ये गैसें विस्फोट के साथ निकलने पर पात्रतल पर चेचक या जलने जैसे छोटे फफोले छोड़ जाती हैं।



कभी-कभी पिण्ड में उपस्थित अपद्रव्यों से भी यह दोष आ सकता है, परन्तु वे छेद के भीतर काले चिह्न भी छोड़ जाते हैं।



(३) प्रलेप तल पर काले धब्बे ।

यह देखा गया है कि पुराने साँचो के टुकड़ों से प्रलेप-तल पर काले चिह्न पड़ जाते हैं, परन्तु ताजे प्लास्टर साँचो के टुकड़े पिघलकर हरा काँच बनाते हैं। यह हो सकता है कि ये काले धब्बे उन क्षार तथा दूसरे घुलनशील पदार्थों से बनते हो, जो मिट्टी में उपस्थित हो या साँचे द्वारा अवशोषित कर लिये गये हो। परन्तु लेखक स्वयं अपने प्रयोगों में ताजे प्लास्टर में उचित मात्रा में घुलनशील पदार्थ मिलाकर वही दोष उत्पन्न न कर सका। ऐसा करने में लेखक ने देखा कि गहरे भूरे रंग की विभिन्न आभाएँ उत्पन्न होती हैं, परन्तु काला रंग नहीं प्राप्त हुआ, जो साधारण पात्रों के बनाने पर देखा जाता है।

(४) पात्रों में विकृति ।

पात्रों में विकृति, पकाने से पूर्व असमतल लकड़ी के तख्तों पर रखकर पात्रों को सुखाने से, सैगर में दोषपूर्ण ढग से रखने से, सैगर में दोषपूर्ण आधारों के प्रयोग से या पकाते समय सैगर की तली झुक जाने से होती है।

(५) जोड़ों पर चटकना ।

यह दोष पात्र के विभिन्न भागों के असमान आकुचन से होता है, विशेषकर जब विभिन्न भाग अनेक विधियों द्वारा बनाये गये हो। यदि इन भागों को जोड़ना सम्भव हो तो प्रलेप-घोला द्वारा जोड़े जाने चाहिए, मिट्टी-घोला द्वारा नहीं।

(६) बालू या लौह के धब्बे ।

ये दोष ऊपरवाले सैगर के तल-भाग से पात्रों पर गिरे धूल आदिके कणों के कारण होते हैं। एक दूसरे के ऊपर रखने से पूर्व सैगर की तली के निचले भाग को ब्रश द्वारा अच्छी तरह पोछकर तथा निचले तल को चिकन प्रलेपित करके यह दोष दूर किया जा सकता है। तली चिकन-प्रलेपित करने से रेतकण सैगर पर इकट्ठे नहीं होंगे। दोष आ जाने पर सर्वप्रथम एमेरी शान पर ये धब्बे साफ कर लिये जाते हैं। बाद में इस पर प्रलेप और डेक्सट्रिन या प्रलेप और टैनिन का मिश्रण लगाकर दुबारा पकाते हैं। टैनिन तथा प्रलेप मिश्रण बड़े धब्बों को भरने के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। प्रलेप लगाते समय छूट गये स्थानों को भी इसी मिश्रण से बाद में प्रलेपित किया जा सकता है।

(७) पात्र का चटकना ।

पात्र पकाने की क्रिया अत्यधिक तेज होने तथा पकाने के पश्चात् भट्ठी को शीघ्रता से ठण्डा करने पर पात्र चटक जाता है। यदि पात्र पकाते समय चटका है तो चटक के किनारे पिघले हुए प्रलेप से गोल हो जाते हैं, परन्तु यदि भट्ठी ठण्डी करते समय चटका है, तो किनारे तेज नोकीले ही रहते हैं। सम्भव होने पर ये चटकाव पूर्व पकाये तथा महीन चूर्ण किये हुए प्रलेप तथा रेत के मिश्रण से भर दिये जाते हैं। इसके पश्चात् पात्र को फिर पका लिया जाता है।

(८) परत-दोष या लेमीनेशन दोष।

पकाये हुए पात्रों पर यह दोष आने पर प्रायः इसे तापजनित चटक समझने की भूल की जाती है। विद्युत्-रोधको में सगठन ठीक होने पर भी ऐसी चटक आ जाने से उनकी यान्त्रिक शक्ति कम हो जाती है। परत-दोष के कारण उत्पन्न चटक प्रायः वृत्ताकार होती है। कभी-कभी यह विद्युत्-रोधक के छिद्रों में खिंची हुई कमानी के रूप में प्रकट होती है। निर्माणकर्त्ताओं को इस दोष के कारण का पता लगाना बहुत ही कठिन है। जिस प्रकार कुटिल मार्गवाली नदियों का उद्गम-स्थान तो हम देख सकते हैं, परन्तु आगे अकस्मात् वे दृष्टि से ओझल हो जाती हैं और अन्त में समुद्र में गिरती हुई ही दीखती हैं, उसी प्रकार यह दोष एक स्थान पर प्रकट होता है, दूसरे पर अन्तर्हित हो जाता है तथा फिर कहीं प्रकट हो जाता है। इसकी उत्पत्ति मिट्टी को पग-मिल में दबाने पर होती है, जिसका वर्णन तृतीय अध्याय में किया जा चुका है। खराद या प्रलेपन के समय इसका पता नहीं चल पाता, भट्ठी में यह विकसित होता है और पके हुए पात्र छोटते समय पुनः प्रकट हो जाता है। इस दोष की चटक को तापजनित चटक से इन बातों द्वारा पहचाना जा सकता है—(१) यदि चटक का किनारा गोल है, तो इससे प्रारम्भ में पकाने की गति तेज होने का अनुमान किया जाता है। (२) यदि भट्ठी ठण्डी करते समय चटक उत्पन्न है तो प्रायः चटक के किनारे गोल नहीं होते और यदि पात्र तोड़कर देखा जाय तो चटक तल बहुत चिकना होगा। (३) यदि पकाना प्रारम्भ होने से पूर्व ही चटक थी, तो पात्र तोड़कर देखने पर चटक तल काफी खुरदरा होगा। अतः पात्र तोड़ने पर चटक तल के खुरदरा होने या चटक के किनारे गोल होने से परत-दोष की चटक और तापजनित चटक को पहचाना जा सकता है।

सप्तम अध्याय

कड़े मिट्टी-पात्र

कड़े मिट्टी-पात्र वह काँचीय मृत्पात्र है, जो अपारदर्शक तथा अधिकांश द्रव्यो, विशेष कर पानी के लिए अपारगम्य होते हैं। ये प्रायः अग्निमिट्टियों से बनाये जाते हैं, परन्तु कुछ आधुनिक नमूने चीनी मिट्टी से भी बनाये जाते हैं, जिन पर फेल्स-पारीय कठोर प्रलेप चढ़ा रहता है। साधारणतः अग्नि-मिट्टी से बने पात्रों पर नमक-प्रलेप चढ़ा रहता है।

उत्कृष्ट कोटि के कड़े मिट्टी-पात्रों और पोरसिलेन पात्रों के बीच विभाजन-रेखा खींचना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव-सा है। श्रेष्ठ कड़े मिट्टी पात्र के पतले भाग में थोड़ी पारभासकता ('Translucency') होती है, जब कि कठोर पोरसिलेन के मोटे टुकड़े की पारभासकता पूर्णरूपेण नष्ट हो जाती है। दूसरी ओर कड़े मिट्टी-पात्रों को प्रलेपित मृत्पात्रों से अलग करने के लिए अपारगम्यता भी कोई सन्तोषजनक आधार नहीं माना जा सकता, कारण कुछ वस्तुएँ, यथा घरो से पानी निकालने के नल, कड़े मिट्टी-पात्रों की कोटि में आते हैं, परन्तु प्रलेपित होने से पूर्ण अपारगम्य नहीं होते।

मृत्कला के विचार से उन सभी मृत्पात्रों को, जो काँचीय अपारदर्शक और लगभग रन्ध्रहीन हैं या अपारगम्य हैं, कड़े मिट्टी-पात्र कहना उचित होगा। इस वर्ग के पात्रों में अधिकतम रन्ध्रता तीन प्रतिशत तक होनी चाहिए।

कड़े मिट्टी-पात्र मुख्य दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं। यह विभाजन पात्रों को बनाने के लिए प्रयोग किये जानेवाले पदार्थों की प्रकृति पर आधारित है।

१. उत्कृष्ट कड़े मिट्टी-पात्र—इस वर्ग में स्वास्थ्य सम्बन्धी पात्र, घरेलू उपयोग के पात्र तथा रासायनिक उद्योग के लिए अम्लरोधक पात्र आते हैं। इन पात्रों को बनाने के लिए प्रयोग की जानेवाली मिट्टियाँ प्रयोग से पूर्व प्रायः विशुद्ध कर ली जाती हैं।

२. साधारण कड़े मिट्टी-पात्र—इस वर्ग में मोरी नल, विभिन्न उपयोगों के लिए रन्ध्रहीन टालियाँ आदि आते हैं तथा ये वस्तुएँ बिना धुली प्राकृतिक मिट्टियों से बनायी जाती हैं।

स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्र—आजकल स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्र पोरसिलेन मिश्रण-पिण्ड से बहुत कुछ मिलते-जुलते मिश्रण-पिण्डों से बनाये जाते हैं। परन्तु प्राचीन काल में अधिकांशतः निम्न कोटि की अग्निमिट्टियों या मार्ल मिट्टी से बनाये जाते थे। इन पात्रों पर, पात्र का रंग छिपाने के लिए एक श्वेत परत चढ़ा दी जाती थी। आजकल भी कुछ निर्माणकर्ता स्थानीय मार्ल के प्रयोग से कड़े मिट्टी-पात्र बनाकर उन पर अपारदर्शक श्वेत प्रलेप चढ़ा देते हैं।

यद्यपि विभिन्न स्थानों के स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्र बनाने के लिए प्रयोग किये गये मिश्रण-पिण्डों में काफी भिन्नता रहती है, परन्तु सभी निर्माणकर्ता ऐसा मिश्रण-पिण्ड प्रयोग करते हैं, जो 1200° से० से कम तापक्रम पर काँची होकर ठोस पिण्ड में परिवर्तित हो जाय तथा जिस पर सीसा रहित कठोर प्रलेप चढ़ाया जा सके, जो पात्रों के प्रयोग करते समय चटक न जाय। इस प्रकार के मिश्रण-पिण्डों का संगठन निम्नलिखित सीमाओं के बीच रहता है।

मिट्टियाँ	४०—५५
स्फटिक	४२—५५
फ़ेल्सपार	३—१५

पात्र पकाने का तापक्रम 1100° से० से 1250° से० तक होता है।

इंग्लैण्ड तथा दूसरे यूरोपीय देशों के कड़े मिट्टी-पात्र मिश्रण-पिण्डों के कुछ संगठन इस प्रकार हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
लचीली मिट्टी	४३	३०	१८	३६	२५	३०
केओलिन	२४	२२	४३	३०	३१	४०
निस्तापित स्फटिक	२३	३६	२४	३०	३९	१६
कार्निश पत्थर	१०	१२	१५	×	×	×
फ़ेल्सपार	×	×	×	४	५	१४
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>

१, २ तथा ३ मिश्रण-पिण्ड इंग्लैण्ड के हैं और ४, ५ तथा ६ मूलरूप से जर्मनी में निकाले गये थे। मिश्रण-पिण्ड ५ का प्रयोग सैगर ने काफी समय तक कड़े मिट्टी-पात्र बनाने में किया था।

१२३०° से० से १२८०° से० के बीच पकनेवाला एक स्वच्छ पारदर्शक तथा चमकदार प्रलेप निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

पोटाश	० ३	}	० ४ एल्यूमिना, ३ ५ सिलीका।
चूना	० ४		
बेरीटा	० ३		

सिलीका बढ़ाकर ४ अणु तक की जा सकती है, परन्तु इससे अधिक नहीं, अन्यथा भट्ठी के कम तापक्रमवाले भाग में रखे पात्रों के प्रलेप में केलासीकरण की धारणा आ जायगी। दूसरी ओर यदि एल्यूमिना ०.०२ अणु से भी कम किया गया, तो १२३०° से० पर प्रलेप दूधिया होना प्रारम्भ कर देगा। पोटाश को ०.३ अणु से कम नहीं प्रयोग करना चाहिए। अधिक, सिलीकावाले प्रलेपों में मैगनीशिया भास्मिक द्रावक की भाँति कार्य करता है, परन्तु बेरीटा से अच्छा परिणाम निकलता है। अन्तःप्रलेप रजको के साथ यह प्रलेप बड़ा अच्छा परिणाम देता है और निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

फेल्सपार	.	१६६
बालू		९०
विदेराइट	..	५९
सगमरमर	..	४०
केओलिन	.	२५

विषम आकृतिवाली वस्तुएँ बनाने के लिए विशेष लचीले पिण्ड निम्नलिखित मिश्रणों से बनाये जा सकते हैं—

लचीली मिट्टी	५८	४५	३३
केओलिन	×	७	१७
स्फटिक	२५	२६	२५
फेल्सपार	१७	२२	२५
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>

११६०° से० पर पकनेवाले इन मिश्रण-पिण्डों के लिए कार्योपयोगी एक फेल्सपारीय प्रलेप का अणु-सूत्र निम्नलिखित है—

० ३ पोटाशियम आक्साइड	}	० ४ एल्यूमिना, ३ ८५ सिलिका।
० ५ कैल्शियम		
० १ मैगनीशियम		
० १ बेरियम		

उपर्युक्त प्रलेप निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

फेल्सपार	.	१६७ ०
बालू	..	१११ ०
सगमरमर	..	५० ०
केओलिन	.	२५ ८
विदेराइट	..	१९ ७
मैग्नेसाइट	..	८ ४

मिश्रण-पिण्ड तथा पात्र-निर्माण पोरसिलेन की भाँति ही है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। परन्तु ये पात्र मोटे होने के कारण बहुत धीरे-धीरे सुखाये जाते हैं, जिससे सुखाते समय इनमें दरारे न पड़ जायँ। पात्र कभी-कभी बिना प्रारम्भिक पकाव के ही प्रलेपित कर दिये जाते हैं, परन्तु साधारणतः प्रारम्भिक पकाव के पश्चात् प्रलेप चढ़ाया जाता है। प्रलेप चढ़ाने के पश्चात् पात्र दुबारा पका लिया जाता है। स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्रों के प्रलेप में जिक आक्साइड, टिटैनियम आक्साइड या टिन आक्साइड डालकर अपारदर्शक तथा साधारण रजक डालकर रंगीन बनाया जा सकता है।

भारतीय कच्चे मालों का प्रयोग करते हुए बनाये गये कुछ कड़े-मिट्टी-पात्रों के मिश्रण-पिण्डों के सगठन नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
राजमहल केओलिन	×	×	×	३०	३०
मगमा अग्नि-मिट्टी	६०	×	×	×	२५
नलहाटी अग्नि-मिट्टी	×	६०	५५	२०	×
मिहीजाम फेल्सपार	२०	२८	२५	३०	२५
मिहीजाम स्फटिक	१८	१०	१८ ५	२०	२०
सगमरमर चूर्ण	२	२	१ ५	×	×

११६०° से० पर पकाने के पश्चात् इन सब मिश्रण-पिण्डों में रन्ध्रता ३ प्रतिशत से कम होती है। मिश्रण-पिण्ड १, २ तथा ३ मलाई रंग के हैं। अतः श्वेत अपार-दर्शक प्रलेप से प्रलेपित करने चाहिए। मिश्रण ४ और ५ काफी श्वेत हो जाते हैं।

११६०° से० पर पकनेवाले उपर्युक्त मिश्रण-पिण्डों के लिए उपयोगी प्रलेप निम्नलिखित पदार्थों से बनाया जा सकता है—

फेल्सपार	४५
स्फटिक	२५
केओलिन	१०
सगमरमर	१०
जिक आक्साइड	१०

प्रयोगशाला आदि में व्यवहार किये जानेवाले हाथ धोने के पात्र जैसी भारी वस्तुएँ प्रायः गलनशील मिट्टियों तथा छर्चियों से बनायी जाती हैं। इन पात्रों को बनाने के लिए ५० से ६० भाग अच्छी गलनशील मिट्टी में ५० से ४० भाग छर्ची मिलाकर उचित विद्युद्विश्लेष्यो की सहायता से ढलाई-घोला तैयार कर लेते हैं। मिट्टी और छर्ची का अनुपात ऐसा हो कि मिश्रण का सम्पूर्ण आकुचन ४ प्रतिशत से अधिक न हो। अधिक आकुचन से पात्र, विशेष कर मोड़ तथा कोनों पर, चटक जायेंगे। आकुचन को नियन्त्रित करने के विचार से छर्ची का वर्गीकरण ठीक प्रकार से करना चाहिए। छोटे तथा बड़े टुकड़ोवाली छर्ची का मिश्रण, समान मात्रा की केवल बड़े टुकड़ोवाली छर्ची की अपेक्षा कम आकुचन उत्पन्न करेगा। महीन छर्ची से तल अच्छा बनता है। घोले का घनत्व लगभग ३६ औंस प्रति पाइण्ड हो। इसके पश्चात् वस्तुएँ प्लास्टर के मोटे साँचों में ढाली जाती हैं। ढले हुए पात्र बड़ी धीमी गति से सुखाये जाते हैं। सुखाने के लिए धरातल के नीचे बने हुए कमरों का प्रयोग किया जाता है, कारण इसमें शीघ्र और असमान सुखाव का भय नहीं रहता। यदि सुखाते समय सूक्ष्म दरारे पड़ गयी हो, तो वे पकाने से पूर्व नहीं दीखतीं, परन्तु पकाने के पश्चात् स्पष्ट हो जाती हैं। अतः भारी पात्रों को सुखाते समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। कभी-कभी पात्र साँचों द्वारा दबाव-विधि से भी बनाये जाते हैं, जिसके कारण पात्रों में सुखाते समय पड़नेवाली दरारे कम हो जाती हैं, क्योंकि दबाव विधि से बने पात्रों का शुष्क आकुचन कम होता है। परन्तु पात्र, ढलाई-विधि से ही अच्छे बनते हैं।

चूँकि ये छरीयुक्त पात्र प्रायः रंगीन होते हैं, अतः सदैव ही पात्र-तल ढकने के लिए एक श्वेत सरन्ध्र प्रलेप का प्रयोग किया जाता है। सरन्ध्र प्रलेप बौछार-विधि से चढ़ाना सर्वोत्तम होता है। पात्र और सरन्ध्र प्रलेप दोनों के अच्छी तरह सूख जाने पर प्रारम्भिक पकाव प्रायः 1100° से 1160° से० के बीच किया जाता है।

छरीयुक्त पिण्डों के लिए निम्नलिखित पदार्थों से सरन्ध्र प्रलेप बनाया जा सकता है—

राजमहल केओलिन	४५
अजमेर फेल्सपार	३०
स्फटिक	२३
सगमरमर	०
योग	<u>१००</u>

इस सरन्ध्र प्रलेप के लिए उपयोगी तथा 1020° से० पर पकनेवाले चिकन-प्रलेप तथा उसमें प्रयोग होनेवाले कौचित का संगठन नीचे दिया जा रहा है—

कौचित मिश्रण		प्रलेप मिश्रण	
लाल सीसा	२०	कौचित	८०
बोरेक्स	२२	केओलिन	८
फेल्सपार	१७	स्फटिक	६
स्फटिक	३०	टिन आक्साइड	६
सगमरमर	११	योग	<u>१००</u>
योग	<u>१००</u>		

कुछ आधुनिक स्वास्थ्य-सम्बन्धी पात्र हलके रंगवाले अपारदर्शक चिकन-प्रलेपो से ढँके रहते हैं। कुछ रंगीन अपारदर्शक चिकन-प्रलेपो के संगठन नीचे दिये जाते हैं।

(१) 1160° — 1200° से० पर पकनेवाले नीलाभ गुलाबी एनामेल प्रलेप का संगठन इस प्रकार है—

० ४ लैंड आक्साइड	}	० ३ एल्यूमिना ३ ० सिलिका ।
० २ पोटैशियम ,,		
० २ कैल्शियम ,,		
० २ जिंक ,,		

प्रलेप पीसने से पूर्व ३ प्रतिशत टिन आक्साइड, ३ प्रतिशत जिंकोनियम आक्साइड और ५ प्रतिशत हलका नीलाभ गुलाबी रजक मिलाओ ।

हलका नीलाभ गुलाबी रजक निम्नलिखित पदार्थों को 1300° से० पर निस्तापित करके बनाया जा सकता है ।

टिन आक्साइड	८६
बोरेक्स	८६
पोटाश-डाईक्रोमेट	५४

(२) 1200° से० पर पकनेवाले एक हलके पीले बादामी प्रलेप का सगठन इस प्रकार है—

पोटाश फेल्सपार	३०
लचीली मिट्टी	६
स्फटिक	२५
खडिया	.. ६
सफेदा	.. २८
जिंक आक्साइड	५
योग	<u>१००</u>

इस प्रलेप मे ६ प्रतिशत टिन आक्साइड और १ ४ प्रतिशत सोडियम यूरेनेट मिलाओ ।

प्राय पीसने से पूर्व १ या २ प्रतिशत बोक्स या बोरेरिक अम्ल मिलाया जाता है, जो रंग को गाढ़ा करता है और प्रलेप की चमक बढ़ा देता है । यह एनामेल प्रलेप लगाने की सर्वोत्तम विधि, बौछार-विधि है । इस कार्य के लिए ४५ पौंड प्रतिवर्ग इंच दबाववाली हवा के साथ फैले मुँहवाला बौछार-यन्त्र प्रयोग किया जाता है । प्रलेप-घोलो का घनत्व ३० औंस प्रति पाइण्ट होना चाहिए ।

रासायनिक कड़े मिट्टी-पात्र—इस प्रकार के पात्र तथा घरेलू उपयोग के कड़ी मिट्टी के बर्तन अधिक सिलीकामय गलनशील मिट्टियों से बने होते हैं। ये मिट्टियाँ प्रायः प्रयोग से पूर्व विशुद्ध कर ली जाती हैं। यदि प्राकृतिक मिट्टी समाग तथा ककड आदि से रहित हो, तो मिट्टी का शोधन आवश्यक नहीं। मिट्टी या मिट्टियों के मिश्रण की विशेषता यह होनी चाहिए कि गीली अवस्था में अधिक लचीली हो, पकाने के पश्चात् खराद यन्त्र पर सफाई करने या चूड़ियाँ काटने आदि में कोई कठिनाई न हो। लचीली अवस्था में मिट्टी में यह क्षमता होनी चाहिए कि वह रासायनिक प्रयोगशाला के उपयोग की विषम से विषम आकृतिवाली वस्तुएँ बना सके और पकाने के पश्चात् पात्र ऐसा हो कि उसके जोड़, डाट, चूड़ियाँ आदि को घिसकर आवश्यक यथार्थताएँ लायी जा सकें। पकाने के पश्चात् ये पात्र सक्षारक रसद्रव्यों के सक्षारक प्रभाव को सह सकें। पात्रों की ताप चालकता अधिक तथा तापजनित प्रसार कम हो, जिससे आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनों को सहन कर सकें।

आधुनिक कड़े मिट्टी-पात्रों के कुछ उपयोग नीचे दिये जाते हैं—

- (१) पेट्टी से चलनेवाले उच्च गतिवाले अपकेन्द्र पम्प।
- (२) सक्षारक गैसों तथा धुएँ को बाहर निकालनेवाले पखे।
- (३) अम्ल उठाने के लिए प्लजर नल।
- (४) रसद्रव्यों के लिए मिश्रक।
- (५) अम्ल तथा सक्षारक रसद्रव्यों को रखने के लिए ड्रम, हौज, पात्र आदि।

सक्षारक रसद्रव्यों को रखनेवाले पात्र उन पात्रों से अधिक ठोस होते हैं जिन्हें निरन्तर तापक्रम परिवर्तन सहना पड़ता है।

लचीली मिट्टी के साथ अलचीले पदार्थ, जैसे बालू, एल्यूमिना, छरीं आदि मिलाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पकाने के पश्चात् विकसित कणों का आकार ऐसा बने कि पात्र अधिक कठोर हो और उसकी आघात सहनशीलता भी बढ़े।

गौण मिट्टियों में Na_2O , CaO , MgO , TiO_2 तथा Fe_2O_3 अपद्रव्य के रूप में रहते हैं। इन आक्साइडों के कारण पदार्थ के कॉचीयकरण तापक्रम पर प्रभाव पड़ता है तथा कॉचित पदार्थ की श्यानता भी इन पर निर्भर करती है। जब मिट्टी लगभग 1000° से 0° तक गरम की जाती है, तो एल्यूमिना तथा सिलीका संयोग कर मूलाइट बनाना प्रारम्भ करते हैं। मैक वे (Mc.Vay) और

टमसन (Thomson) ने धीरे-धीरे मिट्टी को 950° से० तक गरम करके मूलाइट केलासो के नमूने बनाये थे। तापक्रम बढ़ाने से मूलाइट की मात्रा बढ़ी थी, अर्थात् मूलाइट केलासो का अच्छी प्रकार केलासीकरण हुआ और अधिक तापक्रम बढ़ाने पर द्रावक पिघलकर एक काँचीय तरल पदार्थ में बदल जाते हैं। ये तरल पदार्थ केलासीय तथा अकेलासीय मूलाइट को जोड़ने का काम करते हैं। यदि मिट्टी में सिलीका अधिक हो तो द्रावको से बना यह काँचीय पदार्थ ठण्डा होने पर भुरभुरा हो जाता है, जिसके कारण उत्पन्न पदार्थ की तापक्रम-परिवर्तन-सहनक्षमता कम हो जाती है। पदार्थ गरम करने के लिए प्रयोग किये जानेवाले कड़े मिट्टी-पात्रों की तापचालकता अधिक होनी चाहिए। इस कार्य के लिए पोटैशियम आक्साइड की अपेक्षा चूना और सोडियम आक्साइड अधिक लाभकारी है। अतः अशुद्ध मिट्टियों से बने कड़े मिट्टी-पात्रों की तापचालकता, शुद्ध मिट्टियों से बने पोरसिलेन-पात्रों की तापचालकता से अधिक होती है।

अम्लरोधक रासायनिक पात्रों के बनाने के लिए विशेष रूप से उपयोगी वे गलनशील मिट्टियाँ हैं, जो 1150° से 1300° से० तक गरम करने पर अपारगम्य पिण्ड बनाये तथा और आगे उच्च तापक्रम तक गरम करने से आकृति न खोये। यदि मिट्टी ताप सहनशील नहीं है, तो भट्ठी में धीरे-धीरे गरम करने पर बड़े पात्रों में आकृति खोने की धारणा रहती है। ६ प्रतिशत प्राकृतिक द्रावक पदार्थवाली मिट्टियाँ अच्छा परिणाम देती हैं, परन्तु इससे अधिक द्रावक होने पर पकाव तापक्रम का परास घट जाता है।

कार्योपयोगी मिट्टियाँ सभी स्थानों पर नहीं मिलती। अतः बहुत से स्थानों पर आसपास मिलनेवाली मिट्टी, जैसे निम्न कोटि की अग्नि-मिट्टी का ही प्रयोग किया जाता है। या तो इस मिट्टी से बने पात्रों को काफी काँचीय होने तक गरम करते हैं या गलनशील मिट्टियों के साथ मिलाकर मिश्रण के पकाने का तापक्रम नियन्त्रित किया जाता है। साधारण व्यापारिक अवस्थाओं में फेल्सपार खडिया या ऐसे ही दूसरे पदार्थ डालना बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं होता, कारण इन पदार्थों के कणों का मिट्टी में समान रूप से मिलाना कठिन होता है। इसके लिए अच्छा यह होगा कि अधिक गलनशील मिट्टी का प्रयोग किया जाय, जो समान रूप से मिलायी जा सके। यथासम्भव सर्वोत्तम परिणाम पाने के लिए एक या दोनों मिट्टियों को पानी की अधिकता के साथ धोकर चलनी द्वारा बड़े कण निकाल दिये जायँ। उसके बाद पानी

की अधिक मात्रा जल निष्कासन यन्त्र से निकाल दी जाय। ऐसा भी किया जाता है कि अधिक गलनशील मिट्टी को इस प्रकार धोकर व छानकर उसमें पिसी हुई अग्नि-मिट्टी मिला दी जाती है।

इंग्लैण्ड में पायी जानेवाली उत्तम अम्लरोधक मिट्टी अधिक सिलीकामय है। उसका सगठन इस प्रकार है—

सिलीका	..	८०
एल्यूमिना	..	१४
फैरिक आक्साइड	.	४
चूना	.	१
हानि		१

इस मिट्टी की मुख्य विशेषता द्रावको का कम होना है। परन्तु यहाँ मिट्टी पकाने की अवस्थाओं में लौह-आक्साइड द्रावक की भाँति कार्य करता है। यह मिट्टी अधिक लचीली नहीं है और मुख्य रूप से साधारण आकृति की छोटी वस्तुओं के बनाने में काम आती है, बड़े पात्रों, जैसे कि अम्ल जार, सघनन कुडली आदि के लिए उपयुक्त नहीं है, कारण बड़े पात्रों के लिए अधिक लचीली मिट्टी की आवश्यकता होती है।

कड़े मिट्टी-पात्र बनाने में सर्वाधिक प्रयोग की जानेवाली एक जर्मन मिट्टी (क) का विश्लेषण नीचे दिया जा रहा है। साथ ही इसी कार्य के लिए दो भारतीय मिट्टियों (ख) तथा (ग) के विश्लेषण भी दिये जाते हैं—

	(क)	(ख)	(ग)
सिलीका	७० १२	५८ ०२	५६ ९५
एल्यूमिना	२१ ४३	२७ ९५	२८ ५१
फैरिक आक्साइड	० ७७	×	×
मैगनीशियम	० ३९	० ५६	० २९
कैल्शियम	×	१ ६५	१ ३७
क्षार	२ ६२	२ ४२	१ ४३
हानि	४ ९२	६ ८५	८ २५
योग	<u>१०० २५</u>	<u>९७ ४५</u>	<u>९६ ८०</u>

भारतीय मिट्टियों में मिट्टी (ख) बिहार के मगमा नामक स्थान पर मिलती है। दूसरी मिट्टी (ग) बंगाल के रानीगंज में मिलती है। ये मिट्टियाँ अत्यधिक लचीली हैं अतः इनमें प्रारम्भिक शोधन की आवश्यकता नहीं पड़ती।

उपर्युक्त बातों के आधार पर मिट्टियों को चुनने के बाद मिश्रण-पिण्ड साधारण रीतियों से बनाया जाता है। सर्वोत्तम पात्र बनाने के लिए यह अच्छा होगा कि जल-निष्कासन यन्त्र से मिट्टियों को कुछ गीली अवस्था में ही लेकर ठण्डे स्थान पर एक मास या अधिक काल तक रखकर उन पर अम्ल क्रिया होने दी जाय। इसके पश्चात् मिट्टी को पग-यन्त्र में भेजा जाता है। दूसरी एक और विधि है, जो सस्ती तो है, परन्तु कम सन्तोषजनक है। इस विधि में सूखी कठोर मिट्टी को चूर्णक-यन्त्र में चूर्ण कर लिया जाता है। इस चूर्ण को छानकर बड़े कण दूर कर दिये जाते हैं। इसके पश्चात् महीन चूर्ण खुली मिश्रक नोंदों में पानी के साथ मिलाया जाता है। अन्त में मिश्रण-पिण्ड पगयन्त्र में दबाया जाता है। जब कई खनिज सगठन में प्रयोग किये गये हों, तो इन विधियों में तदनुसार बहुत से परिवर्तन करने पड़ते हैं।

अम्लरोधक पात्रों के अधिकांश कारखानों में पात्र चाकविधि या ढलाईविधि से बनाये जाते हैं। यदि आकृति की यथार्थता पर अधिक ध्यान देना आवश्यक न समझा जाय, तथा एक आकृति के एक समय में कुछ ही पात्र बनाने हों, तो चाक-विधि सर्वोत्तम और सबसे सस्ती होती है। कुछ अधिक विषम आकृतिवाले भाग अलग से बनाकर बाद में जोड़ दिये जाते हैं। यदि आकृति की यथार्थता पर बहुत ध्यान दिया जाय तो चाक द्वारा बने पात्र अर्द्ध शुष्क अवस्था में खराद यन्त्र पर खराद लिये जाते हैं, या कारीगर द्वारा साफ कर लिये जाते हैं।

अम्लरोधक पात्र प्रायः साँचों पर हाथ से दबाकर बनाये जाते हैं। इनके विभिन्न भाग प्लास्टर साँचों पर प्रायः अलग-अलग बनाये जाते हैं। दो भागवाले साँचों का प्रयोग किया जाता है। साँचे का प्रत्येक अर्द्ध लचीले मिश्रण-पिण्ड की पट्टियाँ से भर दिया जाता है। बाद में इसे हाथ से या बड़ी गद्दी से दबाते हैं, जिससे मिश्रण-पिण्ड साँचे के आकार का हो जाय। अब साँचे के दोनों भाग मिला दिये जाते हैं और मिट्टी के दोनों टुकड़े मिट्टी-घोला द्वारा जोड़ दिये जाते हैं। इसके पश्चात् साँचे को कुछ समय ऐसा ही रखा छोड़ दिया जाता है जिसके बाद दूसरा कारीगर पात्र निकाल कर उसे साफ करता है। यह कारीगर आवश्यकता से अधिक मिट्टी को हटा देता है और किसी दूसरे आ गये दोष को भी यथासम्भव दूर कर देता है।

यदि पात्र की गर्दन या किसी दूसरे भाग में चूड़ियाँ काटने की आवश्यकता हो जिससे कि इसमें ढक्कन, नल आदि कसा जा सके, तो ये चूड़ियाँ बहुत-सी विधियों में से किसी एक विधि का प्रयोग करते हुए बनायी जाती हैं। साधारण विधि है कि जब पात्र साँचे में ही हो तभी पात्र के उस भाग में एक पेच घुसा कर चूड़ियाँ काट ली जायँ। इस पेच पर चूड़ियाँ इच्छित आकार की होती हैं। यह क्रिया बिलकुल उसी प्रकार की है, जिस प्रकार बोटल पर चूड़ीदार डाट लगायी जाती है। कभी-कभी प्रारम्भ में चूड़ियाँ एक साधारण पेच द्वारा काट ली जाती हैं और बाद में एक यथार्थ पेच की सहायता से सुधार दी जाती है।

नल, सघनन कुण्डलियाँ तथा ऐसी ही दूसरी वस्तुएँ एक यन्त्र द्वारा नल के भीतर से मिश्रण-पिण्ड को दबाकर बनायी जाती हैं। यह विधि वैसी ही है, जैसी कि स्वास्थ्य-सम्बन्धी नल तथा तार से काटी गयी ईंटों के बनाने की है। जब नल को टेढा करना आवश्यक होता है, जैसा कि सघनन कुण्डली बनाने में, तो यन्त्र से नल एक बेलन के ऊपर लेते हैं और सावधानी से उसे बेलन पर ही मोड़ते जाते हैं। कुछ सूख जाने पर नल बेलन पर से उतारकर मिट्टी के बने आधारों पर रखकर और अधिक सुखाया जाता है। कभी-कभी सघनन कुण्डली को अलग-अलग भागों में बनाकर बाद में सब भाग जोड़ दिये जाते हैं। परन्तु इसमें परिश्रम अधिक लगता है और मिश्रण-पिण्ड में अधिक तनाव सहनशीलता आवश्यक हो जाती है।

यन्त्रों द्वारा दबाव-विधि बहुत छोटी वस्तुओं, जैसे डाट आदि, के बनाने के लिए प्रयुक्त की जाती है। इस कार्य के लिए स्कू प्रेसों का प्रयोग किया जाता है तथा मिश्रण-पिण्ड में महीन छर्री आदि मिलाकर कम लचीला बना लिया जाता है।

इस प्रकार के पात्रों में ढलाई-विधि का प्रयोग बहुत ही कम किया जाता था, परन्तु आधुनिक काल में पानी की अल्प मात्रा का प्रयोग करते हुए बनाये गये मिट्टी-घोले से बड़े पात्रों को आशिक शून्य की उपस्थिति में ढालना कुछ ही वर्ष हुए प्रारम्भ किया गया है और यह पता चला है कि ढले हुए बड़े पात्र हाथ के बने पात्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हैं। ढलाई-विधि सस्ती तथा सादी होने के कारण निर्माण व्यय भी कम लगता है।

कभी-कभी पात्र पर महीन मिट्टी का सरन्ध्र प्रलेप चढा देते हैं। इसके लिए प्रयोग की जानेवाली मिट्टी मिश्रण-पिण्ड की मिट्टी से महीन पिसी होती है। प्रायः

इस प्रलेप को उचित रजको से रंग भी देते हैं। परन्तु यदि मिश्रण-पिण्ड का संगठन ठीक प्रकार से बनाया गया है तो इसकी आवश्यकता नहीं होती।

पात्र साधारण रूप से सुखाये जाते हैं। केवल इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सूखने की गति विशेषकर बाहर निकले हुए भागों पर अधिक तेज न हो।

कड़े मिट्टी-पात्र प्रलेपित हो भी सकते हैं, नहीं भी। प्रलेपहीन पात्रों को अधिक घना होना चाहिए, जिनसे उसमें सर्वाधिक रसद्रव्य रोधकता विकसित हो जाय। उचित मिश्रण-पिण्ड से बने पात्र पर नमक-प्रलेपन सर्वोत्तम प्रलेपन-विधि है। दूसरे प्रलेप कम सक्षारण-रोधक होते हैं। अतः अच्छे रासायनिक पात्रों पर दूसरे प्रलेप शायद ही कभी प्रयोग किये जाते हैं। डुबाव-विधि के लिए एक सस्ता प्रलेप ब्लास्ट भट्ठी के धातुमल में चूना तथा बालू मिलाकर बनाया जा सकता है। परन्तु इसमें लैंड आक्साइड या बोरैक्स का प्रयोग नहीं करना चाहिए, कारण इन आक्साइडों की उपस्थिति में पात्र पर अम्ल का सक्षारक प्रभाव सरलता से होता है। प्रलेपहीन पात्र आवश्यक आकार में सरलता से काटे या खरादे जा सकते हैं।

पात्र नमक द्वारा अधोगति भट्ठियों में प्रलेपित किये जाते हैं। भट्ठी में पात्र इस ढंग से रखा जाता है कि भट्ठी चूल्हे से निकली नमक-वाष्प, प्रलेपित होनेवाले पात्र के प्रत्येक भाग पर पहुँच सके।

नाली, नल—पानी निकालने के नल या तो गलनशील मिट्टियों, बालू तथा छरीं के मिश्रण से बनते हैं या निम्नकोटि की अग्नि-मिट्टियों से। इन वस्तुओं के निर्माण में प्रयोग होनेवाली मिट्टी धोयी नहीं जाती, वरन् खान से निकली मिट्टी सीधी ही प्रयोग की जाती है। परन्तु कभी-कभी मिट्टी के गुण सुधारने के लिए कुछ काल तक बाहर खुली छोड़कर मिट्टी पर प्राकृतिक क्रिया होने दी जाती है।

मिश्रण-पिण्ड बनाने के लिए मिट्टी और छरीं उचित अनुपात (जैसे दो तिहाई गलनशील मिट्टी और एक तिहाई छरीं) में मिलाकर एक साथ पीसे जाते हैं। रेत अलग पीसी जाती है। उसके बाद एक मिश्रण-कुण्ड में रेत तथा मिट्टी-छरीं-मिश्रण पानी के साथ मिलाया जाता है। यह अच्छा होगा कि इस गीले पदार्थ को कुछ दिनों ठण्डे स्थान पर रखकर अम्ल क्रिया होने दी जाय। उसके बाद पगयन्त्र में दबाकर दबाव-विधि से पात्र बना ले। मोरी-नल विशेष प्रकार के नल-प्रेसों द्वारा बनाये जाते हैं। वस्तुएँ अपने भार द्वारा ही अपना आकार न खो दे, अतः दबाव-क्रिया

ऊर्ध्वाधर होती है। २ इंच से १८ इंच व्यास तक के नल पेट्टी से चलनेवाले साधारण प्रेसों द्वारा बनाये जाते हैं। परन्तु बड़े नलों के लिए सीधे जलवाष्प दबाववाले यन्त्र प्रयोग में लाये जाते हैं। नल-कोने तथा नल-जोड़ आदि साँचों द्वारा बनाये जाते हैं।

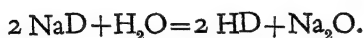
जब नल काफी कड़े हो जाते हैं, तो उन्हें साफ किया जाता है और दोषपूर्ण भाग को हाथ से ठीक किया जाता है। यह सफाई तथा दोष दूर करने के समय नल एक पहिये पर घूमता रहता है। नलों को बन्द करने के डट्टो पर भी उसी समय चक्र काट लिये जाते हैं, जिससे सीमेण्ट या मसाला उन्हें अच्छी तरह जोड़ सके। इसके पश्चात् नल सुखाने के लिए सुखानेवाले कमरों में रखे जाते हैं। ये कमरे भट्ठी की छत के ऊपर बनाये जाते हैं जिससे भट्ठी के व्यर्थ जानेवाले ताप का उपयोग हो सके। इन नलों को सुखाने में ३—५ दिन तक लगते हैं।

मोरी-नलों को भट्ठी में रखते समय उनका चौड़ा भाग नीचे की ओर खड़ा करके रखा जाता है। इन नलों को भट्ठी के फर्श पर न रखकर बिना पके गोलाकार मिट्टी के आधारों पर रखा जाता है। ये आधार नल के मिश्रण-पिण्ड से ही बनाये जाते हैं, अन्यथा पकाते समय आधार तथा नल के असमान आकुचन से नल टेढ़ा हो जायगा। इन नलों को भट्ठी के भीतर वृत्ताकार रखा जाता है। भट्ठी के जिस स्थान पर गरम गैसें घुसती हैं, उसके पास छोटे नलों को वृत्ताकार रखा जाता है। एक के ऊपर दूसरा करके तीन-चार नल एक-दूसरे के ऊपर रखे जाते हैं। दूसरे चक्र में मध्यम आकार के नल वृत्ताकार रखे जाते हैं। उसके पश्चात् बड़े नलों का चक्र आता है। इस प्रकार रखने का कारण यह है कि बड़े नल बदलते हुए उच्च तापक्रम में नहीं पकाये जाने चाहिए और प्रथम तथा द्वितीय चक्र में तापक्रम अधिक रहता है तथा बदलता भी रहता है। नलों को ऐसे रखना चाहिए कि एक नल स्तम्भ के नलों के चौड़े भाग दूसरे नल स्तम्भ के नलों के चौड़े भाग से सटे रहे। इससे नलों के स्तम्भ गिरने नहीं पाते। बड़े नलों के बीच में छोटे नल रखे जाते हैं। परन्तु इसके लिए बड़ा नल छोटे नल से काफी बड़ा होना चाहिए, जिससे उसके बीच में गैसें जाने के लिए खाली स्थान पर्याप्त रहे। अन्यथा छोटे नल के बाहरी और बड़े नल के भीतरी तल पर प्रलेप अच्छा नहीं होगा।

विभिन्न प्रकार की विषम आकृति के नल सबसे ऊपर रखे जाते हैं। ये विषम आकृति के नल साधारण तौर पर रखे जा सकते हैं, परन्तु आवश्यकता होने पर उन्हें उसी मिश्रण-पिण्ड से बने छोटे-छोटे आधारों द्वारा रोका जा सकता है।

मोरी-नल साधारणतः गोलाकार अधोगति भट्टियों में पकाये जाते हैं।

नमक-प्रलेपन—पात्र-तल पर नमक-प्रलेप केवल सोडा-सिलीका, एल्यूमिना-काँच की एक परत होती है। नमक का प्रयोग इसके सस्ते होने और काफी अधिकता से मिलने के कारण किया जाता है। नमक अपेक्षाकृत न्यून तापक्रम (८२०°से०) पर ही गलकर वाष्प बन जाता है तथा गलने और वाष्प बनने में इसका रासायनिक संगठन नहीं बदलता। नमक के विच्छेदन के लिए जलवाष्प की उपस्थिति आवश्यक है। क्रिया इस प्रकार होती है—



मिश्रण-पिण्ड में सिलीका एल्यूमिना के अनुपात की अधिकतम तथा न्यूनतम सीमाओं पर नमक-प्रलेप के गुण आधारित होते हैं। बैरिजर (Barringer) के सीमा-निर्धारण के अनुसार न्यूनतम सीमा के लिए ४६ भाग सिलीका के लिए एक भाग एल्यूमिना और अधिकतम सीमा के लिए १२५ भाग सिलीका के लिए एक भाग एल्यूमिना होता है। मिट्टी में अधिक एल्यूमिना रहने पर मिट्टी, पकाने के साधारण तापक्रम पर सोडियम आक्साइड से सरलतापूर्वक क्रिया नहीं करती तथा सिलीका अत्यधिक रहने पर चढा हुआ नमक-प्रलेप अम्ल तथा पानी द्वारा सरलता से नष्ट हो जाता है।

नमक-प्रलेपन के लिए सर्वोत्तम तापक्रम का अभी तक पता नहीं चल सका है, परन्तु व्यवहार से विदित होता है कि ११४०°से० से १२५०°से० का तापक्रम काफी सन्तोषजनक है। नमक-प्रलेपन का समय ३ से ४ घण्टे तक होता है तथा समय के अनुपात में ही नमक की मात्रा लगती है।

नमक-वाष्प केवल प्रलेपित होनेवाली वस्तुओं पर ही क्रिया नहीं करता, वरन् भट्ठी की दीवारों पर भी क्रिया करके उन्हें शीघ्रता से नष्ट कर देता है। भट्ठी की दीवारों पर नमक वाष्प की क्रिया रोकने के लिए भट्ठी बनाने में ऐसी ईंटों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें एल्यूमिना अत्यधिक हो तथा मुक्त सिलीका बिल्कुल न हो या बहुत थोड़ी हो। दूसरी विधि में प्रत्येक बार पात्र पकाने से पूर्व भट्ठी का भीतरी भाग अधिक एल्यूमिनावाली चीनी मिट्टी से पोत दिया जाता है।

नमक प्रलेपित नलों को पकाने की क्रिया पाँच विभिन्न कालों में बाँटी जा सकती है। यद्यपि प्रत्येक काल में थोड़े-बहुत दूसरे काल भी चलते रहते हैं।

(१) जलवाष्प-काल या धूमकाल—यह काल सर्वाधिक कठिनाई उपस्थित करता है तथा बड़े आकार के मोटे मोरी नलो को बनाने में इस काल का काफी महत्त्व है। यह पकाने की क्रिया प्रारम्भ होने से उस समय तक चलता है, जब तक कि सारा नमी-जल न निकल जाय। इस काल में लगभग 150° से० का तापक्रम रहता है तथा इसमें २४ घंटे से ९६ घंटे तक का समय लगता है। इस काल में नमी-जल को धीरे-धीरे अधिक समय में निकाला जाता है, अन्यथा नल में बहुत-से दोष आ जायेंगे।

अधोगति भट्ठियों में तली पर रखे गये नलो पर अधिक आद्रता या नमी रहती है। परिणाम-स्वरूप तली पर रखे हुए नलो में फफोला दोष अधिक पाया जाता है। यदि इस काल में भट्ठी के अन्दर आनेवाली गरम गैसों के आने की गति बढ़ा दी जाय, तो नलो के चौड़े मुँह के जोड़ चटक जाते हैं। प्रारम्भ में पकाने की गति अति शीघ्र होने से भट्ठी के ऊपरी भाग में रखे नलो में दोष आ जाते हैं। पकाने की प्रारम्भिक गति अति धीमी तथा उसके बाद पकाने की गति तेज होने से भट्ठी की तली में रखे नलो में दोष आ जाते हैं।

(२) तापन-काल—यह काल जलवाष्प-काल से प्रारम्भ होकर आक्सीकरण-काल तक चलता है। इस काल का तापक्रम 150° से० से 450° से० तक माना जाता है। यदि कारीगर विशेष ध्यानपूर्वक कार्य करे, तो इस काल में तापक्रम शीघ्रता से बढ़ाया जा सकता है, कारण इस काल में केवल तापक्रम बढ़ता है, कोई रासायनिक क्रिया नहीं होती। इस काल में प्रायः २० से ३० घंटे तक का समय लगता है।

(३) आक्सीकरण-काल—अधिक कार्बनवाली मिट्टियों से बने पात्रों को सफलतापूर्वक पकाने के लिए यह काल काफी महत्त्वपूर्ण है। अपूर्ण आक्सीकरण नलो के लिए बहुत ही हानिकर है, कारण इससे नल का भीतरी भाग स्पज-जैसा सरन्ध्र हो जाता है, आकृति बिगड़ जाती है और नल की आवाज भी कम हो जाती है। यह देखने के लिए कि कितना आक्सीकरण हो चुका है, भट्ठी के अन्दर से निश्चित समयान्तर से परीक्षण के लिए नलो के परीक्षण-खण्ड निकाले जाते हैं तथा उनमें कार्बन की मात्रा निर्धारित की जाती है। जब निकाले परीक्षण-टुकड़े में कार्बन बिलकुल न रहे, तो आक्सीकरण पूर्ण हुआ समझना चाहिए। ये परीक्षण-

खण्ड भट्ठी द्वार के पास ही रखे जाते हैं जिससे कुछ ईंटे हटाकर सरलता से निकाले जा सकें। भट्ठी का तापक्रम 450° से० हो जाने पर ये परीक्षण-खण्ड बराबर समयान्तर से निकाले जाते हैं। इस काल में लगभग ८० से ९० घण्टे तक का समय लगता है, तब जाकर भट्ठी का औसत तापक्रम लगभग 400° से० होता है।

(४) काँचीयकरण-काल—यह काल आक्सीकरण काल के पश्चात् एकदम प्रारम्भ हो जाता है और यदि काँचीयकरण प्रारम्भ होने से पूर्व आक्सीकरण पूरा नहीं हुआ, तो आगे चलकर उसके पूरे होने की सम्भावना बहुत ही कम है, कारण जब पात्र पर मिट्टी की पतली परत काँचीय हो गयी, तो अन्दर हवा जा ही नहीं सकती। अन्दर कार्बन जलाने के लिए कार्बन तक हवा का पहुँचना आवश्यक है। तापक्रम बढ़ने पर मृत्पात्र के अन्दर कार्बन जल जाता है। कार्बन जलने के लिए या कार्बन मोनोक्साइड बनाने के लिए आक्सीजन आवश्यक है। कार्बन यह आवश्यक आक्सीजन आसपास के आक्सीजन-युक्त कणों से लेता है। यदि कार्बन से बनी गैसें बाहर न निकल पायीं, तो पात्र को फुला देती है और इस प्रकार नल के अन्दर का भाग स्पज-जैसा हो जाता है तथा आकृति नष्ट हो जाती है।

काँचीयकरण-काल में दो महत्वपूर्ण बातें ध्यान देने योग्य होती हैं। ये हैं उचित समय में आवश्यक तापक्रम प्राप्त करना तथा सम्पूर्ण भट्ठी में ताप का समान विभाजन करना। काँचीयकरण-काल लगभग 400° से० से प्रारम्भ होकर लगभग 416° से० तक जाता है और साधारणतः इसमें लगभग ३६ घण्टे का समय लगता है। यह समय, भट्ठी में प्रयोग किये गये कोयलो के प्रकार, गरम गैसों के आने की गति, अग्नि बक्सों के आकार तथा सख्या और मिट्टी के प्रकार के अनुसार काफी बदलता रहता है।

तापक्रम अतिशीघ्र बढ़ाने से भट्ठी के अन्दर रखे सब पात्रों का काँचीयकरण समान रूप से नहीं हो पाता। पकाने की तेज गति से अवकारक वातावरण उत्पन्न हो सकता है, ताप भट्ठी के ऊपरी भाग में ही रहता है, ऊपर तथा बाहरी चक्र में रखे गये नल बहुत अधिक पक जाते हैं तथा बड़े नलों के भीतर रखे गये छोटे नल ठीक से नहीं पक पाते। इस अवस्था में प्रलेप करने पर भट्ठी के ऊपरी भाग में रखे गये नलों पर प्रलेप बहुत अच्छा होता है, परन्तु तली के नल तथा बड़े नलों के भीतर रखे छोटे नल लगभग प्रलेपहीन ही रहते हैं। गरम गैसों के आने की गति नियन्त्रित करके

और भट्ठी चूल्हे की आग को बढ़ाकर भट्ठी के भीतर ताप शोषण किया जाता है, जिससे ताप समान रूप से विभाजित हो सके। जब ऊपरी नलो का तापक्रम व काँचीकरण इतना हो कि वे प्रलेपित किये जा सकें, तभी ताप-शोषण प्रारम्भ कर देना चाहिए। ताप-शोषण के समय यह ध्यान रहे कि भट्ठी का तापक्रम गिरने न पाये, कारण एक बार गिरे हुए तापक्रम को फिर उसी तापक्रम पर लाना बहुत कठिन होता है। जब ताप-शोषण चल रहा हो चूल्हे पर होकर आनेवाली ठण्डी हवा को नियन्त्रित करके तापक्रम स्थिर रखना चाहिए। इस प्रकार भट्ठी की तली तक भी समान ताप पहुँच जाता है और मोटे नलो के भीतरी भाग भी अच्छी तरह पक जाते हैं।

(५) नमक-क्षेपण-काल—जब परीक्षण-खण्डों द्वारा नलो में उचित कठोरता मालूम पड़े और काँचीकरण प्रारम्भ हो जाय, तो भट्ठी को नमक-प्रलेप के लिए निम्नलिखित विधि से तैयार करना चाहिए। भट्ठी के चूल्हों की राख ठीक प्रकार से साफ की जाय। इस राख की सफाई के लिए दो पास के चूल्हे एक साथ साफ न करके एक-एक चूल्हा छोड़कर साफ किया जाय, कारण सभी चूल्हे एक साथ साफ करने से भट्ठी का तापक्रम गिर जायगा। सफाई के बाद प्रत्येक चूल्हे में नया कोयला डालकर उसे तब तक जलने दिया जाय, जब तक कि धुआँ आदि समाप्त होकर नयी लौ न आ जाय तथा वाष्पशील पदार्थ न निकल जायँ। इसके लिए साधारणतः लम्बी लौवाले कोयले, जिन्हें बिटूमिनस कोल कहते हैं, के लिए १५ से २० मिनट लगते हैं तथा छोटी लौवाले कोयले या इजिन कोयले के लिए कुछ कम समय लगता है।

इस समय अग्नि सर्वाधिक तीव्र होती है। तब नमक भट्ठी के चूल्हे पर थोड़ा-थोड़ा करके डाला जाता है। नमक चूल्हे में एक ही स्थान पर नहीं डाल दिया जाता वरन् पूरे चूल्हे पर छिड़ककर डाला जाता है। एक बार में नमक की अधिक मात्रा डालने से आग की तीव्रता कम हो जाती है और बिना जला नमक बच जाता है। एक बार नमक डालकर उसे लगभग १० मिनट का समय दिया जाता है, जिससे संपूर्ण नमक वाष्प बन जाय। इसके बाद नमक की दूसरी मात्रा डाली जाती है। तत्पश्चात् थोड़ा कोयला डालते हैं तथा चूल्हे से आनेवाली हवा को बन्द कर देते हैं। तीसरी बार नमक डालने पर जब नमक वाष्प बन जाता है तो दुबारा फिर थोड़ा कोयला डालकर भट्ठी की आँच बढ़ा दी जाती है। डाले गये नमक को वाष्पशील होने का समय देते हुए तीन बार और नमक छोड़ा जाता है। प्रत्येक तीन बार नमक डालने के पश्चात् परीक्षण-खण्डों को निकालकर प्रलेपन-क्रिया के विकास का पता

लगा लेना चाहिए। प्रत्येक तीन बार नमक डालने के पश्चात् चूल्हे को हिला दिया जाय, अर्थात् थोड़ा साफ कर दिया जाय। जैसे-जैसे नमक-प्रलेपन होता जाता है, पात्र कठोर होता जाता है, कारण नमक में द्रावक प्रभाव होता है। अधिकांशतः ६ बार नमक डालने से अच्छा प्रलेप विकसित हो जाता है, परन्तु कुछ मिट्टियों को प्रलेपित करना काफी कठिन होता है और प्रलेपन के उचित विकास के लिए ६ बार से भी अधिक नमक डालना होता है।

नमक-प्रलेपन-क्रिया ऊष्मा-शोषक है। अतः प्रत्येक बार नमक डालने के पश्चात् थोड़ा ईंधन भी डालना चाहिए जिससे भट्ठी का तापक्रम न गिरने पाये। चूल्हे के ऊपर ठण्डी हवा कभी न भेजी जाय। यदि भट्ठी की शोकाशक्ति काफी कम हो तथा वातावरण अवकारक हो तब ठण्डी हवा के भेजे बिना काम ही न चलेगा। चूल्हे के ऊपर ठण्डी हवा जाने से तापक्रम कम होता जाता है। अतः नमक के वाष्पशील होने की दक्षता कम होती जाती है। सर्वोत्तम परिणाम के लिए हवा चूल्हे के नीचे से भेजी जाय, ऊपर से नहीं। कारण नीचे से जाने पर हवा ऊपर पहुँचने तक गरम हो लेती है तथा कोयले के अच्छे प्रकार जलने में सहायक भी होती है।

इस क्रिया में चूल्हे की सफाई तथा ईंधन को चलाते रहना आवश्यक है। इस क्रिया में नमक का कुछ भाग पिघलकर कोयले की राख से संयोग करके मृदु काँचीय धातुमल बनाता है। यह धातुमल चूल्हे की जाली या तली से बहकर नीचे गिरता है। गिरते समय ठण्डी हवा के स्पर्श से ठण्डा होकर चूल्हे की जाली पर ही जमकर उसके छिद्रों को बन्द कर देता है और इस प्रकार हवा के आने में बाधा डालता है। अतः चूल्हे की जाली या तली को समय-समय पर हिलाते रहना काफी महत्वपूर्ण है, कारण इससे यह कठोर धातुमल जाली पर न जमकर नीचे गिर जाता है।

नमक-प्रलेपन के लिए आवश्यक नमक तथा कोयले की मात्रा पात्र की मिट्टी के प्रकार तथा भट्ठी की आकृति पर निर्भर करती है। बहुत साधारण रूप में एक टन नलों के लिए २० पौंड नमक तथा २५० पौंड कोयले से अधिक नहीं लगना चाहिए। यदि पूरी जाँच के बाद पता चले कि किसी विशेष अवस्था में कोयले व नमक की मात्रा इससे अधिक लगती है और किसी भी दशा में कम नहीं की जा सकती तो दूसरी बात है। नमक क्षेपण-काल ५ घण्टे से २५ घण्टे तक हो सकता है। परन्तु अधिकांश अवस्थाओं में ६ घण्टे का समय लगता है।

गैसे निकल नहीं सकती। तापक्रम अधिक बढ़ने पर इनका आयतन तथा दबाव काफी बढ़ जाता है और पात्रतल पर फफोले पड़ जाते हैं।

३ तल फुंसियाँ—इस दोष में पात्रतल पर ठोस फुंसियाँ पड़ जाती हैं। यह दोष पात्रतल पर या पात्रतल के पास लौह यौगिकों के अवकरण के कारण होता है। ये अवकृत लौह यौगिक पिघलकर सिलीका से संयोग कर लेते हैं। इन पिघले हुए लौह यौगिक कणों की आकृति गोल होती है। अतः वे पात्रतल से बाहर निकले हुए रहते हैं। जिन पात्रों पर फुंसियाँ पड़ती हैं उन्हें पकाते समय बारी-बारी से अवकारक तथा आक्सीकारक वातावरण में यहाँ तक पकाना चाहिए कि फुंसियाँ विकसित होकर अवशोषित हो जायँ।

४. पात्र-तल चटकना—जलवाष्प काल में अति शीघ्रता से गरम करने पर पात्र चटक जाता है। यह चटक पात्रतल पर या नलों के चौड़े भागों के जोड़ पर सूक्ष्म दरारों के रूप में प्रकट होती है। ये दरारे न तो पकाते समय भरी जाती हैं और न प्रलेप से ही ढक पाती हैं।

५ प्रलेप-तल चटकना—भट्ठी ठण्डी करने की गति अत्यधिक होने से प्रलेप-तल पर सूक्ष्म दरारे पड़ जाती हैं। विशेष कर उस समय जब पात्र-मिश्रण-पिण्ड का सगठन प्रलेप के लिए उपयोगी न हो। यदि प्रलेप चटकने की सम्भावना हो तो उन पात्रों को बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे ठण्डा करना चाहिए, जिससे पात्र का मृदुकरण (Annealing) अधिकतम हो। सर्वोत्तम ढंग ऐसी अवस्था में पात्र-मिश्रण-पिण्ड का सगठन बदलना होता है। जिन पात्रों की मिट्टियों में एल्यूमिना अधिक हो उन पात्रों पर प्रलेप चटकने की धारणा अधिक रहती है। ऐसी मिट्टियों में मुक्त बालू मिलाने से यह दोष दूर हो जाता है।

६. धूमशोषित प्रलेप—इस दोष में पात्रतल देखने में गनमेटल जैसा चमकहीन होता है। इस दोष का कारण प्रलेप द्वारा कार्बन को अधिक मात्रा में अवशोषित कर लेना है। गन्धक गैसे भी प्रलेप को चमकहीन बना देती हैं।

कभी-कभी भट्ठी से निकालकर बाहर खुले में रखने के पश्चात् पात्रतल पर एक श्वेत छादनी आ जाती है। यह भट्ठी के अन्दर नमकवाष्प अधिक होने के कारण होती है। यह नमकवाष्प पात्रतल पर जम जाता है। वैसे तो पहली वर्षा द्वारा यह छादनी धुलकर दूर हो जाती है, परन्तु इसका बनना रोकने के लिए नमक प्रलेपन पूर्ण होने के

पश्चात् मन्दी आँच से पात्रो को थोडा और पकाना चाहिए, साथ ही भट्ठी के अन्दर गरम हवा भेजकर नमक वाष्प निकाल देना चाहिए ।

नलो की मुख्य परीक्षा उनकी दबाव-रोधक शक्ति को नापने से होती है । दबाव-रोधक शक्ति-बल पम्प की सहायता से नापते हैं । परीक्षण नल पानी से पूरी तरह भर दिया जाना चाहिए । परीक्षा एक नल पर या कई जुड़े हुए नलो पर की जा सकती है ।

काँचीय टालियाँ—काँचीय टालियाँ प्रायः गलनशील मिट्टियों से बनायी जाती हैं, परन्तु कभी अधिक दुर्गल मिट्टी में सहज गलनशील मिट्टी को मिलाकर भी बनायी जाती हैं । टालियाँ प्रायः एक रंग की होती हैं, परन्तु कभी-कभी उनके तल को विभिन्न रंगों से चित्रित किया जाता है । इन्हें चित्रित टालियाँ (Encaustic tiles) कहते हैं । विशेष रूप से जब फर्श के लिए श्वेत टालियाँ बनानी हों तो उन्हें चीनी मिट्टी, फेल्सपार और चकमकी के मिश्रण से बनाया जाता है ।

कुछ काँचीय श्वेत टालियों के मिश्रण-पिण्ड नीचे दिये जाते हैं —

श्वेत केओलिन	२५	२८	२२
मगमा अग्निमिट्टी	५	७	८
अजमेर फेल्सपार	५०	४५	५५
स्फटिक चूर्ण	२०	२०	×
चकमक चूर्ण	×	×	१५
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>

ये श्वेत मिश्रण-पिण्ड सरलतापूर्वक कोबाल्ट मैंगनीज या क्रोमियम के आक्साइडों के रजको द्वारा नीले, बादामी या हरे रंगे जा सकते हैं ।

इन टालियों की मुख्य विशेषताएँ हैं—(१) अधिकाधिक घर्षण-रोधक शक्ति, (२) उच्च दबाव तथा आघात शक्ति, (३) पूर्णरूपेण काँचीय रचना जिससे धूलिकण न चिपक सकें और द्रवों के दाग न पड़ें ।

मिश्रण-पिण्ड बनाने के लिए विभिन्न मिट्टियों को उचित अनुपात में मिलाकर पैन-रोलर यन्त्र में पीसा जाता है । पिसे हुए मिश्रण-चूर्ण को एक मिश्रण-कुण्ड में डाला जाता है । इसी में पानी तथा उचित रजक डालकर तीनों को खूब मिलाया जाता है ।

पानी, रजक तथा मिट्टियों को मिलाने से प्राप्त पिण्ड क्षैतिज पगयन्त्र में दबाया जाता है। पगयन्त्र से मिट्टी के लोदे बच्चों द्वारा ले जाये जाकर विशेष प्रकार की बनी सुखाने वाली भट्ठियों में सुखाये जाते हैं। ये भट्ठियाँ कोयले से या दूसरी भट्ठियों के व्यर्थ ताप मात्रा का एक रूप से गरम की जाती हैं।

ये सूखे हुए पिण्ड चूर्णक यन्त्र में इतने महीन पीस लिये जाते हैं कि २५ नम्बर की चलनी से निकल जायँ। शुष्क दबाव-विधि से टाली बनाने के लिए अधिक महीन चूर्ण उपयोगी नहीं होता। पिसे चूर्ण में प्रायः ५-६ प्रतिशत तक नमी रहती है। आवश्यकता होने पर मिट्टी को चूर्ण करने से पूर्व पानी मिलाया जा सकता है, कारण चूर्ण हो जान पर पानी को समान रूप से मिलाना सम्भव नहीं है। चूर्ण रंगों के आधार पर अलग-अलग कमरों में रखे जाते हैं और आवश्यकता पड़ने पर दबावधरो को ले जाये जाते हैं।

टालियाँ बनाने के लिए मिश्रण-चूर्ण को दबाकर इच्छित आकृति प्रदान की जाती है। चूँकि मिश्रण-चूर्ण घना नहीं होता तथा न्यूनाधिक मात्रा में हवा उसके अन्दर रहती है, अतः पूरा दबाव एक बार में ही नहीं लगाया जाता। चूर्ण के बीच की हवा टालियों को पूर्णरूपेण ठोस नहीं होने देती और स्लेट की भाँति परतदार बना देती है। इस प्रकार की टाली ठोस न होने के कारण बिल्कुल व्यर्थ हो जाती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए प्रारम्भ में थोड़ा दबाव लगाने के पश्चात् थोड़े समय तक टाली को ऐसा ही छोड़ देते हैं। इस बीच में हवा का निकलना स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है। दूसरी बार अधिक दबाव लगाने से टाली ठोस बन जाती है और उसमें आवश्यक शक्ति आ जाती है। हवा का ठीक प्रकार से निकलना बहुत ही महत्वपूर्ण है और यह मुख्य रूप से चूर्ण के प्रकार पर निर्भर करता है। साथ ही प्रेस तथा ठप्पो की बनावट और क्रियाविधि का भी हवा के निकलने में कुछ प्रभाव पड़ता है। अधिक महीन पिसे चूर्ण के बीच अधिक हवा होगी, अतः ठप्पो में अधिक ऊँचाई तक भरना होगा और प्रायः इससे परतदार टालियाँ बन जायँगी। साथ ही चूर्ण को महीन पीसने में व्यय भी अधिक होगा। महीन चूर्ण के प्रयोग से कारखाने में मिट्टीकण अधिक उड़ेगे, जो कारीगरों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। कुछ कम महीन चूर्ण में ये सब असुविधाएँ नहीं रहती।

चूर्ण मिश्रण-पिण्डों से टालियाँ, हस्त-चालित स्पिण्डल प्रेस, घर्पण-चालित स्पिण्डल प्रेस या द्रव-चालित प्रेस द्वारा बनायी जाती है। हस्त-चालित स्पिण्डल प्रेस केवल विशेष

आकृति की टालियो, जैसे कोने की टालियो आदि के बनाने में काम आता है, कारण इन प्रेसों से उत्पादन कम होता है और इन्हें चलाना कठिन है। इसी से साधारण टालियो के बनाने में इनका प्रयोग नहीं किया जाता। द्रव-चालित प्रेस केवल बड़े कारखानों में ही उपयोगी होते हैं। लगभग सभी छोटे कारखानों में केवल घर्षण-चालित स्पिन्दल प्रेस का ही प्रयोग किया जाता है, कारण यह साधारण है। इससे उत्पादन भी अधिक होता है और इसे खरीदने में भी अधिक पूँजी नहीं लगानी पड़ती।

चित्रित टालियाँ (Encaustic or Inlaid tiles)—इस प्रकार की टालियाँ बनाने के लिए विभिन्न रंगीन चूर्णों को दबाव-विधि द्वारा मुख्य टाली के तल पर इस प्रकार लगाया जाता है कि टाली-तल पर विभिन्न इच्छित रंगीन नक्शे बन जायँ। मुख्य टाली के पिण्ड से रंगीन चूर्ण अधिक गलनशील रखा जाता है, जिससे वह पिघलकर टाली को मजबूती से पकड़ ले। विभिन्न रंगीन चूर्ण विशेष बुद्धिमत्तापूर्ण विधियों से लगाये जाते हैं।

टालियाँ प्रायः बिना सुखाये ही पकाने के लिए भेज दी जाती हैं, परन्तु इन्हें पकाने में जलवाष्प-काल का समय बढ़ा देते हैं। इन्हें पकाने के लिए प्रायः गोलाकार अधोगति भट्टियों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु अधिक उत्पादन के लिए प्रायः अविराम भट्टियों का प्रयोग होता है। प्रयोग की जानेवाली मिट्टी के प्रकार तथा पकाने के तापक्रम के अनुसार पकाने में कुल २२० से २३० घण्टे तक का समय लगता है। फर्श के लिए काँचीय टालियाँ १२८०° से १३००° से० के बीच पकायी जाती हैं। कतिपय सहज गलनशील मिट्टियों का प्रयोग करने पर पकाने का तापक्रम कुछ कम भी हो जाता है।

अच्छी काँचीय टालियों की रन्ध्रता ३ प्रतिशत से कम होती है तथा घर्षण-शक्ति प्राकृतिक कठोर पत्थर के बराबर होती है।

अष्टम अध्याय

प्रलेपित मृत्पात्र

प्रलेपित मृत्पात्रों में वे सभी मृत्पात्र आ जाते हैं, जो अर्द्धकाँचीय तथा सरन्ध्र हो और जिनके तल उचित चिकन-प्रलेप से प्रलेपित हो। अंग्रेजी में इन पात्रों को केवल अर्देनवेअर (Earthen-ware) कहा जाता है। अर्देनवेअर शब्द का, कभी-कभी कुछ लोग प्रलेपहीन मृत्पात्रों के लिए, प्रयोग कर बैठते हैं, जो अशुद्ध है। साधारण मिट्टियों से बने प्रलेपहीन मृत्पात्रों को पके मिट्टी-वर्तन या टेरा-कोटा (Terra-cotta) कहते हैं। आधुनिक काल में प्रलेपित मृत्पात्र, जलने पर श्वेत रहनेवाली चीनी मिट्टी और बॉल-मिट्टियों से तथा जलने पर लाल या मासल हो जानेवाली साधारण मिट्टियों से बनाये जाते हैं। इन प्रयोग की जानेवाली मिट्टियों के आधार पर दोनों प्रकार के प्रलेपित मृत्पात्रों में से प्रथम को उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्र या श्वेत मृत्पात्र और द्वितीय प्रकार के मृत्पात्रों को साधारण प्रलेपित मृत्पात्र या प्रलेपित टेरा-कोटा कहते हैं। इन दोनों प्रकार के पात्रों पर प्रयोग किये जानेवाले प्रलेपों में भी काफी अन्तर होता है। इंग्लैण्ड में अधिकता से बननेवाले आधुनिक उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्रों पर प्रायः सीसायुक्त क्षारीय प्रलेप चढ़ा रहता है। यह प्रलेप प्रयोग से पूर्व काँचित कर लिया जाता है। ये पात्र नित्यप्रति के घरेलू उपयोग के लिए बहुत ही उपयोगी हैं, कारण किसी प्रकार के भोजन का उन पर कोई हानिकर प्रभाव नहीं होता। साधारण प्रलेपित मृत्पात्रों पर अकाचित सीसायुक्त प्रलेप चढ़ा रहता है, जिस पर तनु अम्लो तथा क्षारों की क्रिया हो जाती है। अतः इस प्रकार के पात्रों का उपयोग प्रायः घरेलू सजावट की वस्तुओं के रूप में किया जाता है।

मिश्रण-पिण्ड तथा प्रलेप समान होने पर भी इंग्लैण्ड में बनी श्वेत मृद्वस्तुएँ दूसरे देशों की अपेक्षा श्रेष्ठ होती हैं। ये मूल्य में सस्ती तथा घरेलू कार्यों के लिए पर्याप्त उपयोगी होती हैं। इन वस्तुओं के मिश्रण-पिण्ड बनाने के लिए चीनी मिट्टी, बॉल-

मिट्टी, चकमकी और कार्निश पत्थर प्रयोग किये जाते हैं। चीनी मिट्टी श्वेतता प्रदान करती है तथा बॉल-मिट्टी आवश्यक लचीलापन प्रदान करके कच्चे पात्रों को शीघ्र बनाने में काफी सीमा तक सहायक होकर उनके निर्माण-व्यय को घटाती है। निस्तापित चकमकी से पात्र को श्वेतता और कठोरता दोनों ही प्राप्त होती हैं एवं कार्निश पत्थर द्रावक का कार्य करता है।

उपर्युक्त कच्चे मालों को महीन पीसकर विभिन्न मिश्रण-कुण्डों में उनका घोला अलग-अलग बना लिया जाता है। इन विभिन्न घोलों को आगे चलकर ठीक प्रकार से मिलाने के लिए यह आवश्यक है कि सभी घोले एक तरलतावाले रखे जायें, यद्यपि उनके घनत्व भिन्न होंगे। इसके लिए इंग्लैण्ड में साधारणतः निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाता है।

बॉल-मिट्टी का घोला ऐसा बनाया जाता है कि एक पाइण्ट का भार २४ औंस हो। एक पाइण्ट मिट्टी घोला का भार २६ औंस, चकमकी, या स्फटिक-घोले का भार ३२ औंस तथा कार्निश पत्थर या फेल्सपार घोले का भार ३१-३२ औंस हो।

पिसे हुए पदार्थों का मिश्रण गीली अवस्था में किया जाता है। प्रत्येक प्रकार के घोले का निश्चित आयतन एक ऊर्ध्व मिश्रण-कुण्ड में डाला जाता है। इस कुण्ड में ऊर्ध्वधर घुरी होती है, जिस पर मिश्रक पखे लगे रहते हैं। दूसरे देशों की अपेक्षा इंग्लैण्ड में पदार्थों को अधिकतर गीली अवस्था में ही मिलाया जाता है। इस विधि का लाभ यह है कि पात्र-मिश्रण-पिण्ड के सगठन का हिसाब लगाते समय खनिज पदार्थों की नमी बाधा नहीं डालती। इस विधि में असुविधा यह है कि प्रत्येक घोले के लिए एक अलग भण्डार कुण्ड बनाना पड़ता है तथा घोला चलाते रहना पड़ता है जिससे ठोस कण जमकर बैठ न जायें।

मिश्रित घोले को चलनियों से छानते हुए चुम्बक पर ले जाया जाता है जिससे पिछली क्रियाओं में आ गयी या स्वयं मिट्टी पदार्थों में उपस्थित लौह-अशुद्धि दूर हो जाय। ये चलनियाँ आवश्यकतानुसार ८० से १२० नम्बर तक की होती हैं। बाद में घोला जलनिष्कासन यन्त्रों में भेज दिया जाता है। मिश्रित घोले में बॉल-मिट्टी होने पर शक्तिशाली जल-निष्कासक की आवश्यकता पड़ती है। पोरसिलेन मिश्रण-घोले के लिए इतने शक्तिशाली जल-निष्कासक की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उसमें बॉल-मिट्टी नहीं रहती। यदि किसी मिट्टी-घोले को जल-निष्कासन यन्त्र के प्रयोग बिना

सीधे मन्दी आँच पर सुखाया जाय तो पिण्ड अधिक लचीला तथा कार्योपयोगी बनता है। जल-निष्कासको से प्राप्त मिश्रण-पिण्ड पगयन्त्र में भेजा जाता है, जिसके बाद पात्र बनाने के लिए मिश्रण-पिण्ड तैयार है। आधुनिक वायु-निष्कासक पगयन्त्रों के प्रयोग से आगे चलकर पात्र में आनेवाले बहुत-से दोष दूर हो जाते हैं और वस्तुएँ अच्छी बनती हैं।

मिश्रण-पिण्ड-संगठन—इंग्लैण्ड के अतिरिक्त दूसरे देशों में प्रायः चकमक और कार्निश पत्थर के बदले स्फटिक, फेल्सपार पेगमेटाइट और खडिया का प्रयोग किया जाता है। विदेशी प्रलेपित मृत्पात्रों के कुछ विशेष मिश्रण-पिण्डों के संगठन नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
चीनी मिट्टी	१०	३५	२५	५०	२४	२५
बॉल-मिट्टी	४५	२०	२५	×	४०	३०
चकमक	३५	३२	३४	३०	२५	३०
कार्निश पत्थर	१०	१३	१६	×	×	×
फेल्सपार	×	×	×	१८	१०	×
पेगमेटाइट	×	×	×	×	×	१०
खडिया	×	×	×	२	१	५

मिश्रण-पिण्ड १ इंग्लैण्ड का मलाई रंग का मिश्रण-पिण्ड है। मिश्रण-पिण्ड २ इंग्लैण्ड का श्वेत मिश्रण-पिण्ड और ३ इंग्लैण्ड के ग्रेनाइट नामक पात्रों के लिए मिश्रण-पिण्ड है। प्रायः ०.०२ से ०.०५ प्रतिशत तक कोबाल्ट लवण इन मिश्रण-पिण्डों की श्वेतता-वृद्धि के लिए प्रयोग किये जाते हैं। कोबाल्ट लवण की इतनी थोड़ी मात्रा को डालने की सर्वोत्तम विधि यह है कि इसे कोबाल्ट के घुलनशील लवणों के रूप में डाला जाय। बाद में थोड़ी अमोनिया की सहायता से अवक्षेपित करा लिया जाय। मिश्रण-पिण्ड ४, ५ तथा ६ दूसरे यूरोपीय देशों के प्रलेपित मृत्पात्रों के मिश्रण-पिण्ड हैं, जो प्रायः स्टाइनगुत, फिआन्स और मैजोलिका आदि पात्रों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पात्रों में बॉल-मिट्टी के स्थान पर कम लौहवाली अग्निमिट्टी डाली जाती है। चकमकी के स्थान पर निस्तापित स्फटिक का प्रयोग किया जाता है। थोड़ी मात्रा में चूना या खडिया विरजक की भाँति कार्य करके पकी हुई वस्तु को अधिक श्वेत बनाते हैं। परन्तु अर्द्ध-काँचीय पात्र में चूना ५ प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए, अन्यथा पात्र पकाने के तापक्रम का परास घट जाता है और पात्र में विकृति भी आ सकती है। उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्रों का प्रारम्भिक पकाव प्रायः ११६०° से १२००° से ० के बीच होता है। उसके

पश्चात् उनपर प्रलेप लगाकर प्रलेप-पकाव कम तापक्रम पर किया जाता है। परन्तु आधुनिक प्रवृत्ति के अनुसार पात्र का प्रारम्भिक पकाव कम तापक्रम ९००° से १०००° से० पर किया जाता है। उसके बाद पात्र तथा प्रलेप दोनों को साथ-साथ उच्च तापक्रम पर पकाते हैं। इससे चटक दोष का भय कम हो जाता है।

भारतीय पदार्थों से बने कुछ उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्रों के मिश्रण-पिण्डों के सगठन नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)
कटनी अग्निमिट्टी	×	४०	×	×
मगमा अग्निमिट्टी	३०	×	×	×
राजमहल केओलिन	२०	१५	४८	४५
निस्तापित स्फटिक	३२	३०	३४	३६
मिहीजाम फेल्सपार	१३	१५	१६	१५
सगमरमर चूर्ण	५	×	२	४

इसमें प्रयोग की जानेवाली अग्निमिट्टी प्रयोग से पूर्व अच्छे प्रकार धो लेनी चाहिए और चुम्बक द्वारा लौहकण दूर कर देने चाहिए। इन अग्निमिट्टियों की उपस्थिति से मिश्रण-पिण्ड का लचीलापन बढ़ता है। परन्तु पात्र में हलका मलाई रंग उत्पन्न होता है। यह रंग नीले रजक की उचित मात्रा से छिपाया जा सकता है। उपर्युक्त मिश्रण-पिण्ड लगभग ११६०° से० पर पकते हैं।

पकाने की अन्तिम अवस्था में अर्द्ध काँचीय वस्तुएँ कठोर रहती हैं। अतः किन्हीं विशेष आधारों की आवश्यकता नहीं होती, जब कि काँचीय पदार्थ, पकाने के अन्तिम तापक्रम पर कुछ पिघल-में जाते हैं। अतः इन्हें रोकने के लिए आधारों का होना आवश्यक है।

पात्र के पतले टुकड़े का सूक्ष्मदर्शी में परीक्षण करने पर देखा जाता है कि काँचीय पात्र में स्फटिक पूर्णतः या अशत घुल गये हैं, जब कि अर्द्ध काँचीय पात्रों में स्फटिककण अप्रभावित रहते हैं और अपने मौलिक कोणों सहित आकृति में रहते हैं। काँचित भाग और मूलाइट कणों का उत्पादन अर्द्ध काँचीय पात्रों की अपेक्षा काँचीय पात्रों में अधिक होता है। यह अन्तर दोनों पात्रों के भिन्न सगठन के कारण नहीं, वरन् पकाने के भिन्न तापक्रम के कारण होता है।

टाली मिश्रण-पिण्ड—दीवारों की टालियाँ बनाने के मिश्रण-पिण्ड में विभिन्न मिश्रणों का प्रयोग होता है। चटक-दोष से छुटकारा पाने के लिए चकमकी की अधिक

मात्रा तथा कार्निश पत्थर की न्यून मात्रा का प्रयोग किया जाता है। इंग्लैण्ड और अमेरिका में प्रयुक्त होने वाले विशेष मिश्रण-पिण्डों के संगठन नीचे दिये जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि टालियाँ बनाने में फेल्सपार के स्थान पर कार्निश पत्थर का प्रयोग करने से टालियों का ऐठना कम हो जाता है तथा पकाव तापक्रम का परास भी बढ़ जाता है।

बॉल-मिट्टी	३३ ६	२२ ००
चीनी मिट्टी	१८ २	३० २५
चकमक	३८ १	३५ ७५
कार्निश पत्थर	१० १	१२ ००

दबाव-विधि से टालियाँ बनाने के लिए, मिश्रण-चूर्ण बनाने के लिए, जल-निष्कासको से प्राप्त मिट्टी को कृत्रिम सुखाने वाले प्रकोष्ठों में सुखाया जाता है। इस सुखाने में पात्र पकाने की भट्ठी के व्यर्थ ताप का उपयोग किया जाता है। सूखी हुई मिट्टी को महीन चूर्ण करके चलनी से छान लिया जाता है। छानने के लिए प्रायः आवश्यकतानुसार २० से ४० नम्बर तक की चलनियों का प्रयोग किया जाता है। यह छाना हुआ चूर्ण दबाव-विधि से टालियाँ बनाने के लिए तैयार है। इस चूर्ण में पानी ६ से ९ प्रतिशत तक रहता है।

कभी-कभी उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्र रंगीन भी होते हैं और विभिन्न नामों, जैसे जेसपर, बासाल्ट, सीमियन आदि, से बचे जाते हैं। इन पात्रों के मिश्रण-पिण्डों के कुछ संगठन नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)
लचीली मिट्टी	६७	७८	५०	५०
निस्तापित स्फटिक	१०	१५	×	३०
अस्थिराख	२०	×	×	×
बेराइटीज	×	५	×	×
फेल्सपार	×	×	१०	१०
कोबाल्ट लवण	३	२	×	×
हेमेटाइट	×	×	३०	×
मैगनीज-डार्ड-आक्साइड	×	×	१०	×
थीवियर्स अर्थ	×	×	×	१०
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>

१—आसमानी नीला जेसपर मिश्रण-पिण्ड ।

२—नीला जेसपर मिश्रण-पिण्ड ।

३—काला बासाल्ट मिश्रण-पिण्ड ।

४—सीमियन लाल मिश्रण-पिण्ड ।

इन मिश्रण-पिण्डों को 1140° से 1160° से० पर निस्तापित करो । रंगों का पूरा प्रभाव दिखाने के लिए प्रायः ये पात्र प्रलेपित नहीं किये जाते वरन् उभरे हुए नक्शों से सजाये जाते हैं ।

पात्रों का निर्माण साधारण रूप से किया जाता है, जिसका वर्णन पिछले अध्यायों में किया जा चुका है । सभी गोल वस्तुओं को बनाने के लिए प्रायः चाक-विधि या जाली-विधि का प्रयोग किया जाता है । विषम आकृतिवाली वस्तुओं के बनाने में ढलाई-विधि का प्रयोग विश्व-प्रचलित है ।

सुखाना—पात्र, बनाने के पश्चात् साँचो सहित सुखानेवाले प्रकोष्ठों में ले जाये जाते हैं । ये स्थान पात्र बनानेवाले कारीगरों के पीछे पास ही बने होते हैं, जिससे अधिक दूर न जाना पड़े । ये स्थान वाष्प-कुडलियों द्वारा गरम किये जाते हैं और तापक्रम प्रायः 30° से 40° से० तक रखा जाता है । बड़े कारखानों में सुखाने के प्रकोष्ठ अलग से बनाये जाते हैं, कारण शीघ्रता से सुखाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक गरम वातावरण होना चाहिए और यदि यह वातावरण ढलाईघर में ही उत्पन्न किया जाय तो ढलाई-घर गरम और वाष्पमय हो जायगा, जो कारीगरों के स्वास्थ्य के लिए हानिकर है ।

कुम्हार का यह साधारण अनुभव है कि कभी-कभी सुखाने पर पात्र काफी चटके हुए निकलते हैं । सुखाते समय पड़ी इन चटकों के बहुत-से कारण, सारांश रूप में इस प्रकार हैं —

(१) मिश्रण-पिण्ड का सगठन तथा उसमें पानी की असमानता । यदि मिश्रण-पिण्ड में लचीली मिट्टी कम रहे तो यह पिण्ड कणों को जोड़कर रखने की शक्ति खो देता है और मिट्टी के आकुचन के कारण उत्पन्न विकृति नहीं सहन कर पाता । लचीले पिण्ड में अत्यधिक पानी डालने से भी पात्र को सुखाते समय उसके चटक जाने की सम्भावना रहती है । यदि उचित पगयन्त्र-क्रिया द्वारा मिट्टी न बनायी गयी हो, तो भी मिट्टी, विभिन्न भागों पर असमान आकुचन के कारण चटक जायगी ।

(२) दोषपूर्ण पात्र-निर्माण। प्रोफाइल प्रयोग करने से पूर्व साँचे के भीतर मिट्टीपिण्ड को हाथ से दबाकर थोड़ा उठा देना चाहिए। मिट्टी हाथ से दबाते समय उँगलियों द्वारा ऊँची-नीची नालियाँ-जैसी न बन जायँ। सर्वोत्तम परिणाम उस समय निकलता है, जब पिण्ड से प्रोफाइल हटाने पर पिण्ड का पूरा भाग चमकता हुआ रहे और साँचे में पिण्ड पर मुक्त पानी या गाढ़ा घोल न रहे। यदि पात्र बनाने के अन्त तक पिण्ड अत्यधिक सूख जाय, तो पात्र तल खुरदरा और कम ठोस होगा, अतः सुखाते समय चटक जायगा। इस दोष पर जिगगर की गति का भी काफी प्रभाव पड़ता है। ऐसा अनुमान है कि साधारण प्यालो तथा मोटी वस्तुओं को बनाने के लिए जिगगर की गति ३०० से ३२५ चक्र प्रति मिनट तक काफी है। इससे कम गति होने पर प्रोफाइल मिट्टी को साफ काटने के बजाय रगड़ती रहेगी। यदि प्रोफाइल पर्याप्त मजबूत नहीं है, तो चिपचिपी मिट्टी पर यह हिलती रहेगी और असमान दबाव उत्पन्न करेगी। परिणाम-स्वरूप पात्र सुखाने पर चटक जायगा। साँचो की रन्ध्रता की समानता पर भी ढले पात्र की प्रकृति निर्भर करती है।

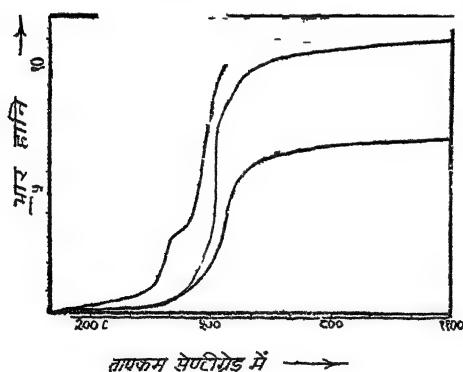
(३) दोषपूर्ण सुखाव। सुखाने की गति बहुत मन्द होने के कारण उत्पन्न दोषों का वर्णन तृतीय अध्याय में किया जा चुका है।

सूखने के पश्चात् पात्र रेगमाल द्वारा साफ किये जाते हैं। पकाने के लिए रखते समय दो प्याले आमने-सामने मुँह करके जोड़ दिये जाते हैं ताकि वे पकाते समय अपनी आकृति न खो दें। उन्हें जोड़ते समय उनके हैण्डिल एक ही ओर रखे जाते हैं। इस कार्य के लिए चिपकना गोद, डैक्सट्रिन, पानी तथा थोड़े से साधारण गोद को या जिलेटिन को गरम करके सरलतापूर्वक बनाया जा सकता है।

रासायनिक संगठन—साधारण मृत्पात्रों के मिश्रण-पिण्ड विभिन्न पदार्थों से प्राप्त बहुत-से यौगिकों के मिश्रण होते हैं। इनमें से कुछ, जैसे चूना, मैगनीशिया, लौह आक्साइड उच्च तापक्रम पर स्थायी रहते हैं। दूसरे, जैसे स्फटिक और चकमक उसी रासायनिक संगठनवाले दूसरे केलासो में बदल जाते हैं, परन्तु केओलिन और फेल्सपार जैसे कुछ यौगिक उच्च तापक्रम पर विच्छेदित हो जाते हैं। साधारण मिट्टी की वस्तुएँ पकाते समय केवल आशिक गलन अवस्थाओं तक ही गरम की जाती हैं। प्रलेपित मृत्पात्र बनाने में ताप का प्रभाव केवल पात्र को आकुचित करके काफी कठोर कर देना है। पकाने की क्रिया उस तापक्रम तक नहीं ले जाते कि पात्र पूर्णरूपेण काँचीय हो सके।

गलन-तापक्रम के आसपास पात्र की विकृति रोकने के लिए मिश्रण-पिण्ड सगठन में डाले गये द्रावको का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जाना चाहिए। दूसरे द्रावको की अपेक्षा पोटाश फेल्सपार मन्द तथा सुरक्षित द्रावक है, कारण तरल फेल्सपार की श्यानता अधिक होती है। उच्च तापक्रम पर जब पात्र कुछ नरम होता है, अधिक श्यान द्रावक रहने से पात्र में अपने ही भार के कारण विकृति नहीं होने पाती। सोडा सिलिकेट की अपेक्षा पोटाश सिलिकेट अधिक श्यान होता है। मैगनीशिया की अपेक्षा फेरस आक्साइड अधिक तरल और अधिक गलनशील द्रावक बनाता है। इस दृष्टि से चूना बहुत ही हानिकारक द्रावक है, कारण यह बहुत कम श्यान द्रव बनाता है जिसके कारण पात्र जरा-सा भी अधिक पकने से विकृत हो जाता है। द्रावक का अन्तिम प्रभाव मिश्रण-पिण्ड के अन्दर बने सुद्राव मिश्रण के बनने पर ही आधारित होता है। इन सुद्राव मिश्रणों का बनना मिश्रण-पिण्ड में उपस्थित विभिन्न भास्मिक आक्साइडों की उपस्थिति तथा सिलिका की मात्रा पर निर्भर करता है।

प्रलेपित मृत्पात्र पर प्रलेपन-क्रिया की सफलता या असफलता मुख्य रूप से पात्र-मिश्रण-पिण्ड में उपस्थित सिलिका की मात्रा पर निर्भर करती है। व्यावहारिक अनुभव के अनुसार 1120° से 1140° से० तक पकनेवाले पात्रों में सिलिका की सम्पूर्ण मात्रा ७० से ७५ प्रतिशत तक होनी चाहिए। ऐसे मिश्रण-पिण्डों में एल्यूमिना की औसत मात्रा २४ प्रतिशत होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में प्रलेपित मृत्पात्रों में स्फटिक या चक-



F मक की मात्रा सदैव ३० प्रतिशत K से अधिक होनी चाहिए। अन्यथा प्रलेप में चटक-दोप आ जाने की सम्भावना रहती है। इन सब बातों के होते हुए भी अन्तिम प्रभाव, प्रारम्भिक तथा प्रलेप पकाव के तापक्रमों और पकाने की दशाओं पर निर्भर करता है।

पकाने का प्रभाव—प्रलेपित

चित्र २६. पकाते समय विभिन्न पदार्थों की भारहानि

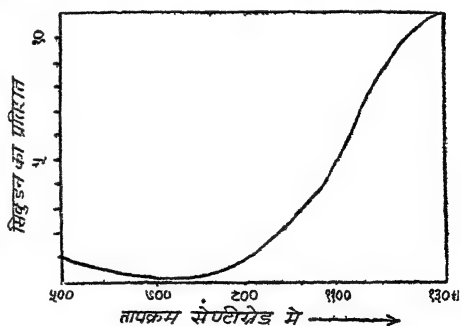
मृत्पात्र-पिण्ड को पकाने के समय उसके अन्दर होनेवाली क्रियाओं को समझने के लिए यहाँ दिये हुए तीन रेखाचित्रों का अध्ययन काफी लाभदायक

होगा। चित्र २६ में भिन्न तापक्रमों पर पकाने से तीन भिन्न पदार्थों, केओलिन (K), एक कोयले की खान से निकली अग्निमिट्टी (F) तथा साधारण प्रलेपित मृत्पात्र पिण्ड (E) की भारहानि दिखाते हुए तीन रेखाचित्र दिये गये हैं। दबाव विधि से २ इंच भुजा की बर्गाकार टालियाँ बनाकर तथा उन्हें कई दिन तक हवा में सुखाकर परीक्षण-खण्डों के रूप में प्रयोग किया गया था। इन टालियों को तोलकर विद्युत् भट्ठियों द्वारा धीरे-धीरे बढ़ते तापक्रम में पकाया गया था। तापक्रम उत्तापमापक की सहायता से नापा गया था।

रेखाचित्र से पता चलता है कि 460°से० से नीचे केओलिन में बहुत कम भारहानि होती है, जब कि अग्निमिट्टी लगभग 350°से० तक धीरे-धीरे भार खोती जाती है। उसके बाद 400° तक भारहानि अकस्मात् अधिक हो जाती है। ये दो अवस्थाएँ कोयले की खान से निकली अग्निमिट्टी में उपस्थित विभिन्न कार्बनिक पदार्थों के कारण हैं, जो भिन्न-भिन्न तापक्रमों पर जल जाते हैं। प्रलेपित मृत्पात्र में लगभग 450°से० तक लगभग एक प्रतिशत भारहानि होती है। परन्तु इसके पश्चात् तीनों रेखाचित्रों में आकस्मिक वृद्धि होती है। यह आकस्मिक भारहानि केलास जल के निकल जाने के कारण होती है और साधारण मृत्पात्र में यह हानि पूरे पिण्ड की ६ से ८ प्रतिशत तक होती है। चूँकि इस भारहानि का अधिकांश भाग केलास जल की हानि के कारण होता है, जो वाष्प बन जाता है तथा इस तापक्रम पर उसका आयतन काफी अधिक होता है, अतः यह स्पष्ट है कि प्रलेपित मृत्पात्र, प्रारम्भिक पकाव में धीरे-धीरे पकाये जायँ और इस वाष्प को बाहर ले जाने के लिए काफी हवा भट्ठी में भेजी जाय।

चित्र २७ में प्रलेपित मृत्पात्र (E) पर तापजनित आयतन परिवर्तन दिखाया गया है।

रेखाचित्र से पता चलता है कि 400°से० तक आयतन-वृद्धि होती रहती है। यह आयतन-वृद्धि मुख्य रूप से मिश्रण-पिण्ड में उपस्थित स्फटिक केलासों के रूपान्तर के कारण होती है। 400°से० से ऊपर 1000°से० तक मिश्रण-पिण्ड में बहुत धीरे-



चित्र २७. प्रलेपित मृत्पात्र में आयतन परिवर्तन

होता है। 400°से० से ऊपर 1000°से० तक मिश्रण-पिण्ड में बहुत धीरे-

धीरे आकुचन प्रारम्भ होता है, परन्तु इससे अधिक तापक्रम पर आकुचन की गति बहुत तेज हो जाती है। प्रायः ऐसा सोचा जाता है कि यह आकुचन निर्जलित मिट्टी से प्राप्त मुक्त एल्यूमिना तथा मुक्त सिलीका का आपस में संयोग करके मूलाइट बनने और तरल द्रावक में मुक्त सिलीका तथा मुक्त एल्यूमिना के कुछ कण घुल जाने के कारण होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस तापक्रम पर एक दूसरा क्रांतिक परिवर्तन होता है। अतः उस समय पकाने की गति धीमी कर देनी चाहिए। अन्तिम तापक्रम पर ताप-शोषण का महत्त्व इस कारण होता है कि इस तापक्रम पर आकुचन की गति अत्यधिक होती है।

अब हम अच्छा परिणाम पाने के लिए प्रारम्भिक पकाव के उचित तापक्रम का कुछ अनुमान कर सकते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में तापक्रम बढ़ने की गति तब तक धीमी रहे, जब तक कि पूरी भट्ठी का तापक्रम लगभग 150° से० नहीं हो जाता, अर्थात् सारा नमी जल एवं द्रवित जल वाष्प बनकर दूर नहीं हो जाता। इसके बाद यह तापक्रम बढ़ने की गति उस समय तक बढ़ायी जा सकती है, जब तक कि तापक्रम 450° से० नहीं हो जाता या भट्ठी का भीतरी भाग लाल होना प्रारम्भ नहीं हो जाता। इस समय से लगभग 600° से० तक यह गति कम होनी चाहिए। 600° से० पर पूरी भट्ठी लाल ठोस के रूप में होती है। 600° से० से 900° से० तक तापक्रम बढ़ने की गति काफी बढ़ायी जा सकती है और उसके बाद 950° से० से 1120° से० तक तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। अन्तिम तापक्रम पर पात्रों के आकार व उनके ठोस होने की सीमा के अनुसार न्यूनाधिक काल तक ताप-शोषण कराना चाहिए।

प्रलेपित मृत्पात्रों की बड़ी भट्ठियों में पकाने की वास्तविक क्रिया के आधार पर पात्र पकाने का निर्देश नीचे दिया गया है—

तापक्रम-परास	पकाव-समय	तापक्रम-वृद्धि की गति
150° से० तक	१५ घण्टा	10° से० प्रति घण्टा
150° से 450° से० तक	१५ „	20° से० „ „
450° „ 600° से० तक	१५ „	10° से० „ „
600° „ 950° से० तक	१४ „	25° से० „ „
950° „ 1120° से० तक	१४ „	12° से० „ „

योग ७३ घण्टा

ताप-शोषण-काल २ से ४ घण्टा तक होता है ।

भट्ठी को ठण्डा करने की गति 200° से ० तक तेज होती है, बाद में १० घण्टो अन्दर ठण्डा करने की गति कम कर देनी चाहिए, अन्यथा चटक दोष आ जायगा । लेपित मृत्पात्र सदैव दो बार पकाये जाते हैं ।

प्रारम्भिक पकाव के लिए भट्ठी में पात्रों का रखना—भट्ठी के अन्दर सभी पात्र गरो में रखे जाते हैं । यह सैगर एक दूसरे के ऊपर रखते हुए सकेन्द्र वृत्तो में रखे जाते हैं । इन वृत्तो को चक्र कहा जाता है । साधारण आकार की भट्ठी में ५ या ६ तक से चक्र होते हैं । केन्द्रीय चक्र में खोखले सैगरों को एक दूसरे के ऊपर रखकर एक खोखला स्तम्भ बनाया जाता है, जिससे तली के केन्द्रीय छिद्र से लौ भट्ठी के ऊपरी तरे तक ले जायी जा सके । भट्ठी के ऊपर गुम्बद के नीचे २ फुट स्थान छोड़ दिया जाता है, जिससे गरम गैसें सब भागों में फैल सकें और आवश्यकता होने पर गुम्बद में छिद्र खोलकर धुआँ निकाला जा सके ।

प्रारम्भिक पकाव के लिए तश्तरी की भाँति चपटी वस्तुओं को सैगर में रखते समय १ वस्तुओं के बीच रेत की तह दी जाती है । इस रेत के कण सूक्ष्म तथा गोलाकार होने चाहिए । रेत की तह देने का कारण यह है कि पात्र पकाते समय आकुचन के कारण त्र में गति होती है । रेत होने से इस गति में सरलता आ जाती है और रेत कण गोल होने पर इस गति से पात्रतल पर खरोच पड़ जाती है । एक दूसरे के ऊपर रखी १० चपटी वस्तुओं का स्तम्भ एक पूर्व पकाये हुए मजबूत तथा चपटे आधार पर खा जाता है । आधार को पूर्व पकाने का कारण यही है कि वह ऊपर रखी वस्तुओं का भार सहन कर सके और टूट न जाय । इन स्तम्भों के चारों ओर भी रेत भर दी जाती है, जिससे वस्तुएँ अपने स्थान पर रुकी रहे व आकृति न खोने पायें । अण्डाकार ढी तश्तरी रखते समय दो तश्तरियों के बीच बड़ी सावधानी से रेत की तह दी जाती है । सबसे ऊपर की तश्तरी के लम्बे भाग पर रेत का कुछ अधिक भार दिया जाता है, जिससे आकुचन होने के समय तश्तरी ऊपर की ओर टेढ़ी न हो सके ।

दो प्याले आपस में एक दूसरे से जोड़कर सैगरों में रखे जाते हैं । सैगर में रखी सभी वस्तुओं पर रेत की पतली तह छिड़क दी जाती है, जिससे पकाते समय वस्तु को गै या गिरे हुए धूलिकणों से हानि न पहुँचे ।

टाली पकाना—टालियाँ एक-दूसरे के ऊपर स्तम्भों में बिना रेत की तह दिये रखी जाती हैं। सबसे नीचे पूर्व पकायी हुई टाली रहती है, जो स्तम्भ की सब टालियों का भार सह सके। एक स्तम्भ में लगभग १२ टालियाँ होती हैं। सबसे ऊपरी टाली के ऊपर एक प्रारम्भिक पकाव में पकी हुई टाली रख दी जाती है, जिससे टालियाँ साफ रहे। एक इंच से कुछ अधिक स्थान प्रत्येक टाली स्तम्भ के ऊपर छोड़ दिया जाता है, जिससे सैगर के भीतर गरम गैसें बह सकें। टालियाँ दबाव यन्त्रों से बनकर सीधी भट्ठी में आती हैं। अतः जलवाष्प काल में पकाव-गति बहुत धीमी होनी चाहिए। टालियों के प्रारम्भिक पकाव में लगभग १३० से १४० घण्टे तक का समय लगता है और अन्तिम तापक्रम ११००° से होता है। भट्ठी ठण्डी करने में लगभग एक सप्ताह लग जाता है, कारण शीघ्रता से ठण्डी करने में टालियों के चटकने का भय रहता है।

टालियों के प्रारम्भिक पकाव के लिए निम्नलिखित निर्देश कार्योपयोगी है—

१००° से ० तक	तापक्रम	३० घण्टों में लाया जाता है।
१००° से ० से १५०° से ०	॥	१० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
१५०° ॥ ॥ २००° ॥ ॥	॥	४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
२००° ॥ ॥ ४००° ॥ ॥	॥	१२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
४००° ॥ ॥ ७००° ॥ ॥	॥	२३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
७००° ॥ ॥ ९००° ॥ ॥	॥	२० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
९००° ॥ ॥ ११००° ॥ ॥	॥	३० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
योग		१२९ घण्टे।

तापशोषण अधिक काल तक न करने से चटक-दोष आ जायगा।

प्रारम्भिक पके हुए पात्रों में दोष—प्रारम्भिक पकाव के पश्चात् पात्र भट्ठी से निकालकर छाँटे जाते हैं और दोषपूर्ण पात्र छाँटकर अलग कर दिये जाते हैं। सुनियन्त्रित कारखानों में भी प्रारम्भिक पकाव में पात्रों के नष्ट होने का औसत १०-१५ प्रतिशत तक होता है। प्रारम्भिक पकाव के समय उत्पन्न दोष सारांश रूप में इस प्रकार है—

१. माल्य-दोष—इसमें पात्रतल पर छोटी-छोटी रेखाएँ उभर आती हैं। मूल रूप में यह दोष मिश्रण-पिण्ड बनाते समय उसके बीच रह गयी हवा के बुलबुलों के कारण

होता है। पात्र-निर्माण के समय दबाव आदि के कारण ये बुलबुले फैलकर लम्बी रेखाओं के रूप में हो जाते हैं। पात्र पकाते समय यही हवा पात्र-तल को फुलाकर उस-पर उभरी हुई रेखाओं को जन्म देती है, जो देखने में माला-जैसी लगती है। ये दोष ढलाई तथा जाली दोनों विधियों से बने पात्रों पर देखे जाते हैं। ये दोष पकाने से पूर्व पात्र को खरादने और बाद में रगड़कर साफ करने से दूर हो सकते हैं।

२. पात्रों का टेढ़ापन—प्रारम्भिक पकाव में ठीक प्रकार से न रखने या भट्ठी में अधिक पक जाने पर पात्र टेढ़े हो जाते हैं। अधिक पक जाने की अवस्था में पात्र काँचीय होगा तथा सैगर में ठीक न रखने से पात्र अकाँचीय होगा। इस आधार पर हम पता लगा सकते हैं कि पात्र सैगर में ठीक न रखने से टेढ़ा हुआ है या अधिक पक जाने से।

३. काले चिह्न-दोष—इस दोष में पात्र पर छोटे-छोटे काले चिह्न पड़ जाते हैं। ये चिह्न, पात्र को सैगर में रखते समय प्रयोग में आयी रेत में लौह की उपस्थिति से या कच्चे सैगरों में पात्र रखकर पात्र पकाने से होते हैं। यदि भट्ठी-नाँसे अधिक धूममय हो तो लौह-कणों के अवकरण से काले चिह्न पड़ जाते हैं। वातावरण आक्सीकारक होने पर इन चिह्नों का रंग बादामी हो जाता है।

४ चटक-दोष—इसमें पात्र चटक जाता है। यह दोष पात्र को सैगर तथा भट्ठी में ठीक ढग से न रखने से, प्रारम्भ में पकाव गति के अत्यधिक होने से, पकाते समय अत्यधिक ठण्डी हवा के भट्ठी में प्रवेश करने से तथा भट्ठी को अत्यधिक शीघ्रता से ठण्डा करने से होता है। पात्र-मिश्रण-पिण्ड में अधिक महीन पिसा चकमक भी पकाते समय चटक-दोष उत्पन्न करने में सहायक होता है।

५. बादामी रंग-दोष—इस दोष में पात्रतल पर बादामी रंग की छाप लग जाती है। वातावरण के बारी-बारी से अवकारक तथा आक्सीकारक होने से यह दोष आ जाता है। इसका कारण सप्तम अध्याय में वर्णन किया जा चुका है।

६. छादनियाँ या काँचीय चकत्ते—इस दोष में पात्रतल पर श्वेत छादनी आ जाती है। यह छादनी पात्र-मिश्रण-पिण्ड में उपस्थित धूलनशील लवणों के कारण होती है। यह दोष किनारों पर अधिक प्रकट होता है, कारण वहाँ से वाष्पीकरण सर्वाधिक होता है। पात्रतल पर इस छादनी के रहने से प्रलेप पात्र को नहीं पकड़ पाता और छूटकर गिर जाता है। कभी-कभी यह छादनी अधिक पकने पर काँचीय भी हो जाती है।

प्रारम्भिक पकाव के पश्चात् टालियो में मुख्य रूप से दो दोष पाये जाते हैं। प्रथम दोष में असमान आकुचन के कारण टाली एक ओर कम चौड़ी होकर पच्चड या फन्नी की आकृति की हो जाती है। दूसरे दोष में टाली चटक जाती है।

पच्चड-दोष मुख्य रूप से दोषपूर्ण दबाव-क्रिया तथा दोषपूर्ण पकाव-क्रिया के कारण होता है।

यदि टाली-निर्माण के समय दबाव चारों ओर समान नहीं है, तो पकाते समय टाली में असमान आकुचन होगा और टाली एक ओर दूसरी ओर की अपेक्षा कम चौड़ी हो जायगी। अतः उसकी आकृति फन्नी-जैसी हो जायगी। इसी कारण इस दोष को फन्नी या पच्चड दोष कहते हैं। इसी प्रकार पकाते समय यदि सैगर के एक ओर का तापक्रम दूसरी ओर से भिन्न है, तो असमान आकुचन होगा और यह दोष आ जायगा। प्रारम्भिक पकाव का यह दोष मुख्य रूप से सैगरो को भट्ठी में ठीक प्रकार से न रखने के कारण होता है।

टाली-मिश्रण-पिण्ड में बहुत महीन पिंसी हुई सिलिका की मात्रा अत्यधिक रहने के कारण टालियाँ प्रायः चटक जाती हैं। इस दोष को आधुनिक कारखानों में पिंसी हुई सिलिका के कण-आकार को नियन्त्रित करके दूर किया जाता है। यह कण-आकार-नियन्त्रण, पिंसी हुई सिलिका के तल-अङ्क (Surface factor) को निर्धारित करके करते हैं। तल-अङ्क-निर्धारण-विधि त्रयोदश अध्याय में वर्णित की जायगी। साधारण उपयोगी पिंसी हुई सिलिका का तल-अङ्क २३५ से २४० तक होता है तथा इस सिलिका का विश्लेषण इस प्रकार है—

महीन सिलिका	५० प्रतिशत
मध्यम सिलिका	३५ ,,
मोटी सिलिका	१५ ,,

चूँकि टालियाँ पकाने से पूर्व सुखायी नहीं जाती, अतः पकाते समय तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार पकाव के पश्चात् विशेष कर ८००° से ० तापक्रम आ जाने पर भट्ठी को ठण्डी भी धीमी गति से और समान रूप से करना चाहिए। यदि ये सावधानियाँ नहीं बरती गयीं तो ये दोनों दोष आ जाने की सम्भावना रहेगी।

चिकन-प्रलेप—प्रलेपित मृत्पात्रों पर प्रारम्भिक पकाव के पश्चात् प्रयोग किये जानेवाले प्रलेप क्षारीय सीसायुक्त या चूनेदार होते हैं। आवश्यकतानुसार प्रलेप विभिन्न तापक्रमों पर पकाये जाते हैं। प्रायः ये प्रलेप इतने पर्याप्त स्वच्छ और पारदर्शक होते हैं कि इनके नीचे पात्रतल पर के रंगीन चित्र स्पष्ट दीखते रहते हैं। अधिक क्षारीय प्रलेपों का प्रयोग अब बहुत ही कम होता है, कारण उनमें चटक दोष की धारणा अधिक रहती है।

क्षारीय प्रलेप निम्नलिखित सूत्र से बनाया जा सकता है—

$$\left. \begin{array}{l} \circ ७ \text{ क्षार} \\ \circ ३ \text{ चूना} \end{array} \right\} \circ १५ \text{ एल्यूमिना, } २५ \text{ सिलीका।}$$

क्षार और चूना की आपेक्षिक मात्राएँ प्रलेपित होनेवाले मृत्पात्र के मिश्रण-पिण्ड के सगठन पर निर्भर करती हैं। अधिक क्षारीय प्रलेप अधिक सिलीकावाले मिश्रण-पिण्डों के लिए उपयोगी हैं तथा चूनेदार प्रलेप कम सिलीकावाले मिश्रण-पिण्डों के लिए उपयोगी हैं।

सीसायुक्त प्रलेप कौचित करके या बिना कौचित किये ही प्रयोग किये जाते हैं। अकौचित प्रलेप घरेलू उपयोग की वस्तुओं, विशेष कर भोजन-पात्रों पर नहीं प्रयोग किया जाता। कारण इससे सीसा-जनित विष उत्पन्न हो जाता है।

एक सीसायुक्त अकौचित प्रलेप का सगठन इस प्रकार है—

१० लेड मोनोक्साइड ० १५ एल्यूमिना १ ७५ सिलीका।

यह प्रलेप स्वच्छ तथा पारदर्शक होता है और निम्नलिखित पदार्थों से बनाया जा सकता है—

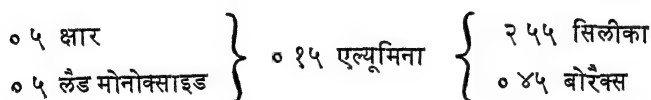
सफेदा	६७ ३ भाग
चकमक	२२ ६ भाग
चीनी मिट्टी	१० १ भाग

यदि प्रलेप अपारदर्शक बनाना हो तो जिंक आक्साइड का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

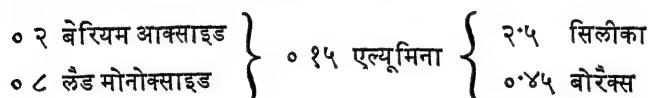
सफेदा	५४ भाग
चीनी मिट्टी	२० „
चकमक	१६ „
जिक आक्साइड	८ „
खडिया	२ „
योग	<u>१००</u>

बरडूल (E Berdull) द्वारा आविष्कृत निम्नलिखित तीन कॉचित प्रलेप अधिक सीसा होने पर भी सीसा-जनित विषदोष से मुक्त है ।

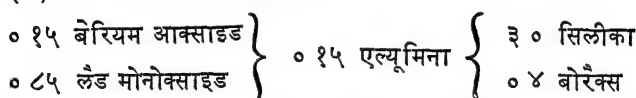
(१) ६५०° से० से ६७०° से० पर पकनेवाला—



(२) ७९०°—८००° से० पर पकनेवाला—



(३) १०००° से० पर पकनेवाला—



प्रलेपित मृत्पात्रों पर प्रयोग किये जानेवाले सीसायुक्त प्रलेप प्रायः सीसा और बोरैक्स को अलग-अलग कॉचित करके, इन कॉचितों को मिलाकर बनाये जाते हैं ।

इसका कारण यह है कि सीसा और बोरैक्स को अलग-अलग कॉचित करने से प्रलेप में सीसा-जनित विषदोष का भय नहीं रहता । इससे प्रलेप की अम्लो में घुलन-शीलता कम हो जाती है । चूँकि कॉचितों में केवल काँचीय पदार्थ होते हैं, इनमें कोई लचीला अवयव नहीं होता । अतः कॉचित मिश्रण को लचीला बनाने के लिए कुछ चीनी मिट्टी या सफेदा मिलाया जाता है । लचीला पदार्थ न मिलाने से सूखने पर लगाया हुआ प्रलेप पात्रतल से छूट जायगा । प्रलेप और कॉचित मिश्रणों के अवयव नीचे दिये जाते हैं—

बोरैक्स काँचित ।

० ५५ कैल्शियम आक्साइड	}	० २७ एल्यूमिना	{	२ ३ सिलीका
० १० पोटैशियम				० ७ बोरैक्स
० ३५ सोडियम				

सीसा-काँचित ।

० ९ लैड मोनोक्साइड	}	० १५ एल्यूमिना, २ ५३ सिलीका ।	
० १ क्षार			

प्रलेप-मिश्रण ।

० ३५ लैड मोनोक्साइड	}	० २८ एल्यूमिना	{	२ ८ सिलीका
० ३५ कैल्शियम आक्साइड				० ४५ बोरैक्स
० ३० क्षार				

यह प्रलेप १०२०° से० से १०४०° से० तक पकता है ।

काँचितो और प्रलेपो के अवयव-सूत्रो की गणना त्रयोदश अध्याय मे की गयी है ।

दो और काँचित सीसा प्रलेप नीचे दिये जाते हैं ।

(१) ९८०° से १०२०° से० तक पकनेवाला—

काँचित मिश्रण		प्रलेप-मिश्रण	
लाल सीसा	६७	काँचित	८२
स्फटिक	२८	चीनी मिट्टी	१०
चीनी मिट्टी	५	स्फटिक	८
योग	<u>१००</u>	योग	<u>१००</u>

(२) १०४०° से १०६०° से० पर पकनेवाला—

काँचित मिश्रण		प्रलेप-मिश्रण	
लाल सीसा	२०	काँचित	८२
बोरैक्स	२२	फेल्सपार	१०
स्फटिक	३०	चीनी मिट्टी	८
फेल्सपार	१७	योग	<u>१००</u>
सगमरसर	११		
योग	<u>१००</u>		

लेखक द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में निकाले गये कुछ कौंचित सीसा प्रलेप नीचे दिये जाते हैं—

(अ) 1000° से 1040° से० के बीच पकनेवाला—

कौंचित-मिश्रण		प्रलेप-मिश्रण	
लाल सीसा	२०	कौंचित	८२
बोरैक्स	२०	स्फटिक	१०
फेल्सपार	१८	चीनी मिट्टी	८
स्फटिक	३२	योग	<u>१००</u>
खडिया	१०		
योग	<u>१००</u>		

(आ) 1060° से 1100° से० के बीच पकनेवाला—

कौंचित-मिश्रण		प्रलेप-मिश्रण	
लाल सीसा	२०	कौंचित	८०
बोरैक्स	१८	फेल्सपार	१०
फेल्सपार	२०	केओलिन	१०
स्फटिक	३५	योग	<u>१००</u>
खडिया	७		
योग	<u>१००</u>		

उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्रों के लिए उपयोगी दो अकौंचित सीसा प्रलेप नीचे दिये जाते हैं। प्रलेप (१) का पकाव तापक्रम 1000° से 1040° से० तक और प्रलेप (२) का 1100° से 1120° से० तक है।

	(१)	(२)
सफेदा	६०	४०
स्फटिक	२५	२५
फेल्सपार	७	१५
चीनी मिट्टी	३	५
जिक आक्साइड	×	५
सगमरमर	५	१०
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>

सीसा-रहित प्रलेप—दीवार की श्वेत टालियों में प्रायः सीसा-रहित प्रलेप प्रयोग किये जाते हैं, कारण लैंड आक्साइड का भार अधिक होने के कारण एक ही तल ढकने के लिए आवश्यक सीसा-रहित प्रलेप की अपेक्षा सीसा के प्रलेप की मात्रा अधिक लगेगी। कभी-कभी सीसायुक्त प्रलेप सीसा-रहित प्रलेप से तीन गुना तक लगता है। सीसा-जनित विष का भय दूर करने के लिए घरेलू उपयोग की वस्तुओं पर आजकल सीसा-रहित प्रलेप का काफी प्रयोग होता है। सीसा-रहित प्रलेपों की अपेक्षा सीसायुक्त प्रलेपों में कॉचीयपन अधिक होता है और पकाव तापक्रम का परास भी अधिक होता है। केलासीकरण की धारणा भी कम पायी जाती है।

सीसा-रहित प्रलेपों के कुछ अवयव-संगठन नीचे दिये जाते हैं—

(क) सीसा-रहित अकॉचित प्रलेप—

फेल्सपार	४०	४५	५०
स्फटिक	२५	२०	२२
खडिया	१०	१०	१८
चीनी मिट्टी	१०	१०	१०
बेरियम कार्बोनेट	×	१५	×
जिक आक्साइड	१५	×	×
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>

उपर्युक्त प्रलेप लगभग १२००° से० पर पकते हैं। अन्तिम प्रलेप प्रथम दो की अपेक्षा कम तापक्रम पर पकता है।

(ख) सीसा-रहित कॉचित प्रलेप—

(१) ० ३ सोडियम आक्साइड ० ७ पोटैशियम „	}	० ३८ एल्यूमिना	{	३८ सिलिका
				१० बोरैक्स
(२) ० ४८ कैल्शियम आक्साइड ० ४१ सोडियम „ ० ११ पोटैशियम „	}	० २९ एल्यूमिना	{	३५३ सिलिका
				० ९ बोरैक्स

ये प्रलेप लगभग 1000° से० पर पकते हैं। कैल्शियम आक्साइड के एक अंश के बदले बेरियम आक्साइड लाभ सहित डाला जा सकता है। बेरियम आक्साइड से प्रलेप की चमक और गलनशीलता बढ़ती है। परन्तु अधिक मात्रा होने पर चटक-दोष की धारणा आ जाती है।

1160° से० पर पकनेवाले दो और सीसा-रहित प्रलेपो के सगठन दिये जाते हैं। प्रथम जर्मनी तथा दूसरा अमेरिका से निकला है।

(क)	००५ पोटैशियम आक्साइड	}	०३१ एल्यूमिना	{	२५ सिलीका ०४५ बोरेक्स
	०१५ सोडियम "				
	०२४ कैल्शियम "				
	०१५ मैगनीशियम "				
	०४१ स्ट्रोंशियम "				
(ख)	०४९ कैल्शियम आक्साइड	}	०३१५ एल्यूमिना	{	२७६४ सिलीका ०२८७ बोरेक्स
	०२१ क्षारीय "				
	०१० मैगनीशियम "				
	००८ बेरियम "				
	०११४ जिंक "				
	०००६ लीथियम "				

प्रलेप में स्ट्रोंशियम आक्साइड, प्राकृतिक खनिज स्ट्रोंशिएनाइट अर्थात् स्ट्रोंशियम कार्बोनेट के रूप में डाला जा सकता है, या बनाये हुए स्ट्रोंशियम आक्साइड (SrO) के रूप में डाला जा सकता है। लीथियम आक्साइड (Li_2O) को लिथोस्पार खनिज के रूप में डालते हैं।

सीसा-रहित प्रलेपो के अवयव चुनते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) भास्मिक आक्साइडों की संख्या यथासम्भव अधिक रहनी चाहिए। साधारणतः पाँच आक्साइड अच्छा परिणाम देते हैं।

(२) लीथिया (Li_2O), स्ट्रोंशिया (SrO)—क्षारों में लीथियम आक्साइड सबसे अधिक शक्तिशाली द्रावक है और स्ट्रोंशियम आक्साइड क्षारीय मिट्टियों में सर्वाधिक शक्तिशाली द्रावक है। प्रलेप में सीसे के स्थान पर इन दोनों आक्साइडों का

मिश्रण डालना सर्वोत्तम होता है। इससे प्रलेप गलनाङ्क भी कम हो जाता है और प्रलेप अधिक चिकना तथा चमकीला होता है।

(३) जिंक आक्साइड (ZnO)—यद्यपि जिंक आक्साइड Al_2O_3 तथा SiO_2 के साथ उच्च तापक्रम पर गलनेवाला सुद्राव मिश्रण बनाता है, परन्तु प्रलेप में ०.२ अणु तक इसकी उपस्थिति से प्रलेप की चमक और तरलता बढ़ जाती है। परन्तु अत्यधिक मात्रा में जिंक आक्साइड रहने से प्रलेप का केलासीकरण हो जाता है।

(४) मैगनीशिया (MgO)—सीसा-रहित प्रलेप में चूना के बदले मैगनीशिया ०.१५ अणु तक डालने से प्रलेप की चमक या प्रलेप तल बनावट को कोई हानि नहीं पहुँचती। इससे प्रलेप की तरलता बढ़ती है। इसकी उपस्थिति में प्रलेप में क्षारो की मात्रा बढ़ायी जा सकती है, कारण इसका ताप प्रसार गुणक कम है।

(५) बेरीटा (BaO)—सेगर के समय से ही प्रलेप में लैड आक्साइड के बदले बेरीटा का प्रयोग होता आया है। जिंक आक्साइड की भाँति बेरीटा भी, Al_2O_3 तथा SiO_2 के साथ उच्च तापक्रम पर सुद्राव मिश्रण बनाता है। परन्तु एक बार बनने के पश्चात् उसकी अधिक तरलता सीसे की भाँति ही रहती है। अतः बेरीटा PbO के बदले डाला जा सकता है। चूँकि बेरियम आक्साइड और लैड आक्साइड दोनों ही विषैले हैं, अतः भोजन पात्रों के लिए प्रयोग करने के पूर्व इन्हें कौचित कर लेना चाहिए।

(६) फ्लोराइड—फ्लोरीन में द्रावक शक्ति काफी अधिक है, जिसका उपयोग सीसा-रहित प्रलेप बनाने में किया जा सकता है। क्राईओलाइट ($Cryolite-AlF_3 \cdot 3NaF$) या सोडियम सिलीको फ्लोराइड के रूप में फ्लोरीन डालने से प्रलेप में क्षारो की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे चटक-दोष आ सकता है। परन्तु फ्लोर-स्फार (CaF_2) के रूप में डालने से यह भय नहीं रहता। फ्लोराइडों से पात्र-प्रलेप की श्वेतता में भी वृद्धि होती है।

सीसा-रहित प्रलेप में केलासीकरण की धारणा होने के कारण इन प्रलेपों को बड़ी सावधानीपूर्वक पकाना चाहिए। अन्यथा प्रलेप की चमक जाती रहती है। भट्ठी में प्रलेप पकते ही तापक्रम शीघ्रता से 400° से ० ले आना चाहिए, जिससे केलासीकरण न होने पाये। इसके पश्चात् भट्ठी को धीरे-धीरे ठण्डा करे, जिससे चटक-दोष या फस्ती-दोष न आने पाये।

अनुज्ज्वल प्रलेप (Matt Glaze)—यदि प्रलेप में केलासीकरण होने दिया जाय, तो पात्र की चमक कम हो जाती है। यदि प्रलेप नियन्त्रित करके ठीक ढंग से बनाया जाय, तो यह चमकहीन प्रलेप भी बड़ा सुन्दर दीखता है। सुनियन्त्रित चमकहीन प्रलेप को अनुज्ज्वल या मेट (Matt) प्रलेप कहा जाता है। अनुज्ज्वल प्रलेप अपारदर्शक होता है। प्रलेप में सरलता से केलास बननेवाले आक्साइडों, जैसे CaO तथा ZnO की मात्रा अधिक होने पर तथा एल्यूमिना की मात्रा कम होने पर और प्रलेप को धीरे-धीरे ठण्डा करने पर प्रलेप अनुज्ज्वल हो जाता है। एल्यूमिना से पिघले हुए प्रलेप की श्यानता बढ़ जाती है और केलासीकरण में बाधा पड़ती है। जिस मेजोलिका प्रलेप में ६७ भाग सफेदा, २३ भाग स्फटिक, १० भाग चीनी मिट्टी हो, उसमें १० भाग खडिया मिलाने से मनोहारी अनुज्ज्वल प्रलेप बनता है। १० भाग जिक आक्साइड डालने से प्रलेप चमकदार तो रहेगा, परन्तु छोटे-छोटे अपारदर्शक चकत्ते पड़ जायेंगे। यदि जिक आक्साइड बढ़ाकर २० भाग कर दिया जाय तो पूरा प्रलेप केलासीकृत हो जायगा और प्रलेप-तल अपारदर्शक हो जायगा। प्राकृतिक चीनी मिट्टी की अपेक्षा निस्तापित चीनी मिट्टी का प्रभाव प्रलेप की अनुज्ज्वलता पर अच्छा पड़ता है। इसका कारण यह है कि निस्तापित चीनी मिट्टी में मूलाइट केलासों का केलासीकरण पूर्व ही हो चुका होता है।

सीसा-रहित अनुज्ज्वल प्रलेप बनाने के लिए कौचित मिश्रण तथा प्रलेप-मिश्रण के सगठन नीचे दिये जाते हैं—

कौचित मिश्रण

बोरैक्स	४० भाग
फेल्सपार	२० ,,
स्फटिक	२५ ,,
खडिया	१५ ,,
योग	<u>१००</u>

प्रलेप-मिश्रण

कौचित	७० भाग
चीनी मिट्टी	१० ,,
जिक आक्साइड	२० ,,
योग	<u>१००</u>

यह प्रलेप लगभग १०००° से० पर पकता है तथा धीरे-धीरे ठण्डा करने पर अनुज्ज्वल प्रलेप बनता है।

निम्नलिखित अवयवों से एक और सुन्दर रंगीन अनुज्ज्वल प्रलेप बनाया जा सकता है—

फेल्सपार	३६
खडिया	१०
सफेदा	३८
चीनी मिट्टी	१२
ताम्र आक्साइड	४

यह प्रलेप १०००° से० पर पककर बड़ा सुन्दर हरा अनुज्ज्वल प्रलेपतल बनाता है। दूसरे रंग उत्पन्न करने के लिए ताम्र आक्साइड के बदले दूसरे रजक डाले जा सकते हैं।

अपारदर्शक उज्ज्वल प्रलेप—जब पात्र बनाने के लिए लौह-युक्त मिट्टियों का प्रयोग किया जाता है, तो पात्र के पकाने के पश्चात् पात्र का प्राकृतिक रंग छिपाने के लिए श्वेत अपारदर्शक प्रलेप प्रयोग किया जाता है। इसे अपारदर्शक उज्ज्वल प्रलेप या एनामेल प्रलेप कहा जाता है। यह प्रलेप प्रायः दूधिया श्वेत ही रहने दिया जाता है। परन्तु उसे उचित रजकों से रंग भी सकते हैं। लौह के कारण लाल हो गये पात्रों के लिए एक उपयोगी श्वेत एनामेल प्रलेप निम्नलिखित अवयवों से बनाया जा सकता है—

० ५ लैड मोनोक्साइड	}	० २ एल्यूमिना	{	३ ४ सिलिका
० ४ क्षार				० ७ टिन आक्साइड
० १ चूना				

इस टिन आक्साइड को कौचित मिश्रण में नहीं वरन् कौचित पीसने के समय कौचित में मिलाना सर्वोत्तम होता है। सीसा-रहित अकौचित तथा रंगीन एनामेल प्रलेपों के कुछ सगठन नीचे दिये जाते हैं—

	(१)	(२)	(३)	(४)
सफेदा	६०	५८	६०	६५
स्फटिक	२४	२०	२२	२५
फेल्सपार	×	७	×	५
अग्नि-मिट्टी	१२	१०	१२	२
लौह आक्साइड	×	५	१	×
पाइरोलूसाइट	४	×	३	×
कोबाल्ट आक्साइड	×	×	२	×
क्रोमिक आक्साइड	×	×	×	३
योग	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>	<u>१००</u>

प्रलेप १ बैंगनी बादामी, २ गाढा बादामी, ३ काला और ४ हरेरंग का है।

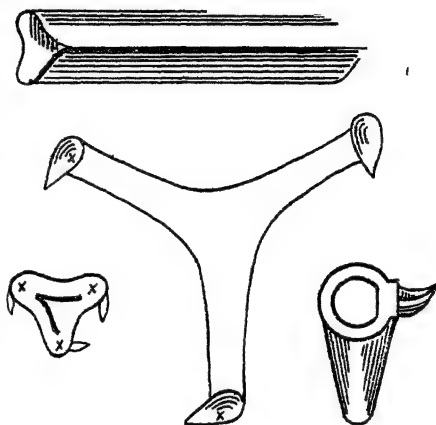
यह प्रलेप ९५०° से० और १०००° से० के बीच पकते हैं। प्रलेप साधारण प्रलेपो की अपेक्षा कुछ अधिक मोटा लगाना चाहिए।

प्रलेप घोले में डुबोने के पश्चात् सर्वप्रथम पात्र, कृत्रिम सुखानेवाले प्रकोष्ठों में या सुखानेवाले ताखों में सुखाये जाते हैं। इसके पश्चात् पात्र की तली से प्रलेप को ब्रुश द्वारा खुरचकर छुटा दिया जाता है, जिससे प्रलेप पकाव के समय पात्र सैगर से न चिपक जाय। कभी-कभी पात्र के तल भागों पर प्रलेप में डुबोने से पूर्व तेल लगा दिया जाता है जिससे इन भागों पर प्रलेप ही नहीं चढ़ता।

जब बड़े पात्रों को, जिन्हें उठाने आदि में कठिनाई पड़ती है, प्रलेपित करना हो तो बौछार-विधि का प्रयोग किया जाता है। दीवारों की टालियों को प्रलेपित करने के लिए कई प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। सर्वाधिक उपयोग किये जाने-वाले एक ऐसे यन्त्र में दो बेलन होते हैं, जिनके बीच से होकर टालियों को गुजरना पड़ता है। ऊपर के बेलन पर मोटी रबड़ की परत चढ़ी रहती है। यह ऊपरी बेलन टाली को नीचे के बेलन पर दबाता है। नीचे के बेलन का आधा भाग प्रलेप घोले में डूबा रहता है और बेलन घूमता रहता है। अतः इस प्रलेप की पतली परत टालियों पर चढ़ जाती है।

कोणवाली या दूसरे प्रकार की टालियों के लिए, जो बेलन के बीच से नहीं गुजर सकती, प्रलेपित करने की दूसरी विधि है, जिसमें ऊपर से प्रलेप की फुहार छोड़ी जाती है।

प्रलेप पकाव के लिए पात्रों का सैगर में रखना—प्रलेप पकाने के लिए पात्रों को सैगर में रखते समय कुछ सावधानी तथा बुद्धिमत्ता की आवश्यकता है। प्रलेपित पात्र एक दूसरे को बिना छूते हुए रखे जायँ। अन्यथा उच्च तापक्रम पर, जब प्रलेप पिघल जायगा, पात्र एक दूसरे से चिपक जायँगे। इसके लिए भिन्न आकृति तथा आकार के दुर्गल आधारों का उपयोग किया जाता है। ये आधार इन वस्तुओं को केवल बिन्दुओं या छोटे भागों पर रोकते हैं। इन आधारों के, उनकी आकृतियों के अनुसार, विभिन्न नाम होते हैं। इन आधारों का प्रयोग करने की विधि भी एकदम उन पर रखे गये पात्रों की आकृति पर ही निर्भर करती है। इनमें से कुछ का वर्णन नीचे किया जाता है—



थिम्बल (Thimble)—यं खोखले शकु होते हैं, जो एक दूसरे में ठीक बैठ जाते हैं तथा कुछ बाहर निकले रहते हैं। तश्तरी जैसी चपटी वस्तुएँ रखने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है।

चित्र २८ प्रलेप पकाव के हेतु पात्रों को रखने के लिए विभिन्न आधार

काक स्पर (Cock-spur)—ये छोटे त्रिभुजाकार आधार होते हैं, जिनमें नीचे की ओर तीन पाये लगे रहते हैं। इन पायों पर ये रुके रहते हैं। ऊपर तीनों कोनों से तीन ठोस सूच्याकार भाग निकले रहते हैं, जिन पर पात्र रखा जाता है। ये आधार तश्तरी जैसी चपटी वस्तुओं को एक दूसरे से अलग करने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं।

सैडल (Saddles)—ये ठोस त्रिगुणाकार लम्बे टुकड़े होते हैं, जिनके ऊपरी किनारे तीक्ष्ण होते हैं। इनसे पात्र के प्रलेप तल पर छोटा चिह्न नहीं पड़न पाता।

हेड पिन (Head pins)—ये त्रिभुजाकार छोटे टुकड़े होते हैं, जिन पर विभिन्न आकार की वस्तुएँ रखी जाती हैं।

प्रलेपित मृत्पात्रों को रखनेवाले सैंगरो का भीतरी भाग ब्रुश की सहायता से प्रलेप-घोले से पोत दिया जाता है। व्यय में कमी करने के विचार से यह प्रलेप-घोला प्रायः प्रलेप-घोला रखनेवाले हौज के धोवन से प्राप्त किया जाता है। सैंगर के भीतरी तल पर प्रलेप पोतने का कारण यह है कि उच्च तापक्रम पर सैंगर तल द्वारा प्रलेप-वाष्पों के अवशोषण का भय नहीं रहता है। प्रलेप पकाव के तापक्रम के अनुसार प्रलेप पकाने में २० से ३० घण्टे तक का समय लगता है।

सजावट—उत्कृष्ट प्रलेपित मृत्पात्रों को सजाने के लिए हस्त चित्रकारी का प्रयोग अधिक किया जाता है। यह चित्रकारी प्रलेपन से पूर्व पात्र-तल पर या प्रलेपन के पश्चात् पके हुए प्रलेपतल पर की जा सकती है। पात्रतल पर चित्रकारी के लिए विशेष प्रकार के अन्तःप्रलेप रजको का प्रयोग किया जाता है। प्रलेपतल पर चित्रकारी के लिए प्रलेपतल अर्थात् एनामेल रजको का प्रयोग किया जाता है।

चित्रों तथा रजको के उचित चुनाव के पश्चात् पात्र जलचित्र-विधि या बौछार-विधि द्वारा सुन्दर तथा कलात्मक ढंग से सजाये जा सकते हैं।

प्रलेपतल रजन पकाव—प्रलेप पकाने के पश्चात् प्रलेप-तल पर जो रजकों द्वारा सजावट की जाती है, उसे पका लेना चाहिए, जिससे प्रयोग किये गये रजक पिघलकर प्रलेप-तल पर स्थिर हो जायें। पात्र निर्माण के इस अन्तिम पकाव को एनामेल रजन पकाव कहते हैं। इस पकाव में १० से १५ घण्टे तक का समय लगता है और तापक्रम ७००° से ९००° से० तक होता है। इस पकाव के लिए साधारण बन्द भट्टियों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें मफल भट्टी (Muffle-furnace) कहते हैं। भट्टी का ऊपरी अर्द्धभाग निचले अर्द्धभाग की अपेक्षा सदैव अधिक गरम होता है। अतः जलविधि या बौछार-विधि से सजाये गये पात्रों को भट्टी के ऊपरी भाग में रखा जाता है, कारण इन्हे उच्च तापक्रम पर पकाना आवश्यक होता है। भट्टी के अन्दर कोयले का धुआँ आदि नहीं पहुँचना चाहिए, अन्यथा सजावट के रंग खराब हो जायेंगे। प्रत्येक बार पात्र पकाने के पश्चात् भट्टी का भीतरी भाग चीनी मिट्टी और थोड़े सोडा सिलिकेट के मिश्रण का घोला बनाकर उससे पोत दिया जाता है तथा जोड़ आदि पर की दरारों मिट्टी और महीन छरी से भरकर बन्द कर दी जाती हैं।

नवम अध्याय

टेरा-कोटा

टेरा-कोटा शब्द उन सभी सरन्ध्र मृत्पात्रों के लिए प्रयोग किया जाता है, जो साधारण मिट्टियों से बनाये जाते हैं, और प्रलेपहीन होते हैं। हिन्दी में इसे 'पकी मिट्टी की वस्तुएँ' कहा जा सकता है। इस वर्ग की मुख्य वस्तुओं में साधारण ईंटे, खपड़े, टालियाँ तथा साधारण मिट्टी से बनी घरेलू तथा अन्य उपयोग की प्रलेपहीन वस्तुएँ आती हैं।

ईंटे, टालियाँ आदि मृद्वस्तुएँ बनाने के लिए मिट्टी ऐसी हो कि जिसके कुछ भाग का द्रवणांक अपेक्षाकृत कम हो तथा कुछ भाग कम गलनशील हो, कारण ऐसी वस्तुएँ केवल कडी होने तक ही पकायी जाती हैं, जिससे वे वायु और पानी के प्रभाव से नष्ट न हो सकें। मिट्टी का कम गलनशील भाग वस्तु की आकृति बनाये रखता है, तथा गलनशील भाग पिघलकर वस्तु को कड़ा रखता है। ईंट बनानेवाले मिट्टी-मिश्रण-पिण्ड में न्यूनाधिक मात्रा में मृत्सार अवश्य रहता है, जिससे उसमें लचीलापन आ जाता है। परन्तु साथ ही चट्टानों के लचकहीन चूर्ण अवश्य मिले रहते हैं और इन लचकहीन पदार्थों का पूरे मिश्रण-पिण्ड के गुणों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मिट्टी में प्रायः पाये जानेवाले फेल्सपार तथा औगाइट (Augite) के अवशेष अधिक गलनशील होते हैं। मृत्सार स्वयं दुर्गल पदार्थ है। अतः मृद्वस्तुओं की आकृति बनाये रखने में सहायक होता है। स्फटिक और दूसरे दुर्गल खनिज भी वस्तुओं की आकृति बनाये रखने में सहायक होते हैं। अभी तक निश्चित रूप से पता नहीं चल सका है कि सर्वोत्तम परिणाम पाने के लिए मिट्टी में दुर्गल और गलनशील अवयव किस अनुपात में रखे जायँ।

मिट्टी के विषय में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके पात्रों के सुखाने तथा पकाने में आकुचन यथासम्भव कम हो। सुखाते समय के आकुचन से उत्पन्न कठिनाइयों

या दोषों को तो वस्तु-निर्माण के समय पानी की यथासम्भव कम मात्रा का प्रयोग करने से या सुखाते समय टेढ़ी हो गयी ईंट या टाली जैसी वस्तुओं को पुनः दबाव लगाकर सीधा करने से छूटकारा पाया जा सकता है। परन्तु पकाते समय के आकुचन से उत्पन्न कठिनाइयों को नियन्त्रित करना कठिन है। यदि पकाते समय आकुचन अत्यधिक हो तो पात्र की आकृति नष्ट हो जाती है। मृद्-वस्तु को सुखाने के पश्चात् उसमें रन्ध्रता जितनी ही कम होगी वस्तु की आकृति स्थिर रखना उतना ही सरल होगा।

पकाने पर रंग—यदि साधारण मिट्टी में वेनेडिक अम्ल या टिटैनिक अम्ल जैसे तत्वों को छोड़ दे, क्योंकि मिट्टी में इनकी मात्रा बहुत ही थोड़ी होती है, तो मिट्टी को रंग प्रदान करनेवाले पदार्थों की संख्या सीमित हो जायगी। व्यावहारिक रूप से देखा जाय तो साधारण मिट्टी में रजक यौगिकों में केवल लौह तथा मैंगनीज के आक्साइड हैं। चूना तथा मैंगनीशिया के कार्बोनेट इनके रंगों की आभाओं पर प्रभाव डालते हैं। आक्साइडों के रजनगुण उनकी भौतिक अवस्था और रासायनिक संगठन पर निर्भर करते हैं। पकाने के पश्चात् मिट्टी की अवस्था का भी रजक के रजनगुणों पर प्रभाव पड़ता है। साधारण मिट्टीयों में मैंगनीज आक्साइड इतनी कम मात्रा में रहता है कि इसका रंगोत्पादक प्रभाव बहुत ही कम होता है। मैंगनीज केवल लौह आक्साइड से उत्पन्न रंग की आभाएँ उत्पन्न करने और इन्हें विकसित करने में सहायता देता है। चूना, मैंगनीशिया और एल्यूमिना में स्वयं कोई रजन शक्ति नहीं है, परन्तु इनकी उपस्थिति से लौह आक्साइड द्वारा उत्पन्न रंग काफी बदल जाता है।

यदि मिट्टी में लौह आक्साइड की मात्रा कम है और एल्यूमिना की अधिक है तथा पकाने का तापक्रम उच्च है, तो पकाने के बाद रंग न्यूनाधिक पीला या पीला बादामी होगा। एल्यूमिना की मात्रा कम होने पर यह रंग पीले बादामी से लाल बादामी रंग तक की आभाएँ उत्पन्न करेगा। पाँच प्रतिशत से कम लौह आक्साइड होने पर लाल रंग विकसित नहीं होता। लौह की मात्रा और अधिक होने पर यह रंग और भी गाढ़ा हो जाता है। चूना तथा मैंगनीशिया लौह आक्साइड की ओर शक्तिशाली विरजक का कार्य करते हैं। अर्थात् लौह से उत्पन्न रंग को कम कर देते हैं। यदि चूने की मात्रा लौह आक्साइड की मात्रा से दुगुनी है, तो काफी उच्च तापक्रम पर लौह आक्साइड का लाल रंग पूर्णतया नष्ट हो जाता है और यह रंग पीले हरे रंग में परिवर्तित हो जाता है। पकाते समय भट्ठी के अन्दर के वातावरण का भी रजको पर काफी महत्व-

पूर्ण प्रभाव पड़ता है। अवकारक वातावरण में फ़ैरिक लौह, फ़ैरस लौह में परिवर्तित हो जाता है। कभी-कभी फ़ैरस आक्साइड और अवकृत होकर लौह धातु में बदल जाता है। अतः इन अवकारक अवस्थाओं में रंग भूरा या लोहा अधिक होने पर काला तक हो सकता है। आक्सीकारक वातावरण में फ़ैरस आक्साइड लाल या पीले फ़ैरिक आक्साइड में बदल जाता है। विराम भट्टियों में पकाने के प्रथम काल में सदैव अवकरण होता है और पकाने के अन्तिम काल की ओर अवकरण क्रिया कम होती जाती है। सभी अविराम भट्टियों में वातावरण सदैव आक्सीकारक ही रहता है, जब तक कि उसे अवकारक बनाया न जाय। भट्ठी को ठण्डा भी आक्सीकारक वातावरण में किया जाता है।

ईधन गैसों में गन्धक की उपस्थिति भी मिट्टी के रंग पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। यह गन्धक ईधन के रूप में प्रयोग किये गये कोयले से आता है। यह गन्धक-प्रभाव चूनेदार मिट्टियों की वस्तुओं पर विशेष रूप से स्पष्ट होता है जिनके तल पर यह कैल्शियम सल्फेट बन जाता है। यदि इस प्रकार अलग हो गया चूना, सिलिकेट में परिवर्तित न किया जा सका तो लौह के रंग पर चूने की उपस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कभी-कभी अधिक चूनेदार मिट्टियों से बने पात्रों के उन भागों पर जो आक्सीकारक वातावरण में पके हैं, गहरा लाल रंग उत्पन्न होता है। इस गहरे लाल रंग के चकत्तों का रंग गलकाम्ल अवशोषण के कारण अवकृत होकर हल्का हो जाता है। इस प्रकार एक बार भिन्न रंग के चकत्ते पड़ जाने पर पात्र में रंग की कई आभाएँ आ जाती हैं।

पकाने के तापक्रम से भी मिट्टी के रंग में बहुत परिवर्तन आ जाता है। बढ़ते हुए तापक्रम में लौह आक्साइड या अन्य लौह यौगिकों का रंग गहरा होता है। अतः उच्च तापक्रम पर पकायी जानेवाली मिट्टियों का रंग साधारणतः गाढ़ा होता है। परन्तु यदि मिट्टी में कुछ चूना है, तो उच्च तापक्रम पर लौह आक्साइड के कारण रंग कम गाढ़ा रह जायगा। केवल चूनारहित मिट्टियों में लौह आक्साइड पर ही रंग निर्भर करता है।

मैकवे ने १९३६ ई० में अपना विचार व्यक्त किया कि पकी मिट्टियों में रंग, मिट्टी-कणों के तापजनित आकार-प्रसार के कारण होता है। जिससे कण पास-पास आ जाते हैं। उसने एक प्रयोग द्वारा दिखाया कि लौह आक्साइड पूरा आक्सीकृत

हो जाने पर भी, उपर्युक्त क्रिया के कारण मिट्टी का रंग काला ही रहता है। शेलडान (Sheldon) ने १९३५ ई० में इस विचार का विरोध करते हुए कहा, कि केलासी-करण का और केलासो के घोल का रंग पर प्रभाव पड़ता है। जब विकसित लाल कण, विशेष कर कौंचित तरल पदार्थ में, घुल जाते हैं, तो मिट्टी का रंग बदल जाता है। इन केलासो का घुलना, उच्च तापक्रम, अवकारक वातावरण तथा डोलोमाइट से बने कौंच की उपस्थिति पर निर्भर करता है।

ईंटें—बहुत प्राचीन काल से ही मकान बनाने के लिए पकी मिट्टी से बनी ईंटों का प्रयोग होता आया है। ईंटों से मकान बनाना बहुत ही सुविधाजनक भी है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मिस्र-निवासी ईंटों का प्रयोग बीस हजार वर्ष पूर्व से करते आ रहे हैं और भारतवर्ष में रहने के लिए मकान बनाने के लिए ईंटों का प्रयोग चार हजार वर्ष ईसा पूर्व से होता आया है।

विभिन्न देशों में ईंटों के आकार काफी भिन्न होते आये हैं। मिस्र तथा रोम की प्राचीन ईंटें आधुनिक ईंटों की अपेक्षा बहुत बड़ी बनती थी, परन्तु भारतवर्ष में प्राचीन काल की ईंटें वर्तमान ईंटों से बहुत छोटी होती थी। आधुनिक काल में सभी देशों में ईंटों का आकार ९"×४ ५"×३" के लगभग रखा जाता है। इंग्लैण्ड की ईंटों का प्रामाणिक आकार ९"×४ ३/४"×२ ५/८" है। ईंट की चौड़ाई इतनी हो कि चपटी पड़ी हुई ईंट, ईंट उठानेवाले की उँगलियों के बीच में सरलता से आ जाय। मकान बनाने में सुविधा के लिए ईंट की लम्बाई चौड़ाई से दूनी होनी चाहिए। ईंट की मोटाई ३" से अधिक नहीं होनी चाहिए।

ईंट-निर्माण—ईंट-निर्माण की प्राचीनतम विधि साँचे की सहायता से हाथ से ईंटें बनाना है। यह विधि भारत तथा दूसरे ऐसे देशों में अब भी प्रयोग में लायी जाती है, जहाँ पर केवल स्थानीय माँग पूरी करने के लिए, केवल स्थानीय मिट्टियों का प्रयोग करते हुए छोटे-छोटे भट्ठे बनाये जाते हैं। ईंट बनाने से पूर्व साँचे में अन्दर काफी रेत लगा ली जाती है। मिट्टी का लोदा भी साँचे में डालने से पूर्व रेत में काफी लपेट लिया जाता है। ईंट बनानेवाला बनी हुई मिट्टी के ढेर से आवश्यक मिट्टी काटकर रेत में लपेटकर साँचे में रख उसे हाथ से दबाता है। साँचा भर जाने पर आवश्यकता से अधिक मिट्टी एक तार द्वारा काट दी जाती है। यह तार एक धनुषाकार लकड़ी के सिरो के बीच लगा रहता है। प्रत्येक बार ईंट बनाने के लिए साँचे में मिट्टी डालने

से पूर्व साँचे में थोड़ा-सा रेत डालकर उसे पूरे साँचे में घुमाकर गिरा देना चाहिए। इससे साँचे के भीतरी सब भागों में रेत चिपक जाती है और साँचे से ईंट निकालने में सरलता होती है। सुखाने के पश्चात् ईंटें पकाने के लिए पजावे या भट्ठे में रखी जाती हैं। भट्ठे में ईंटों को रखते समय प्रत्येक दो ईंटों के बीच में कोयले की पतली परत रखी जाती है। भट्ठे के बाहर की ओर कुछ स्थानों पर चूल्हे बनाये जाते हैं, जिनमें लकड़ी जलाकर कोयले को आग पकड़ा दी जाती है। हवा जाने के लिए पजावे की दीवारों में उचित स्थानों पर छिद्र रखे जाते हैं जिनसे होकर हवा अन्दर पहुँचती रहती है। हवा जाने के लिए भट्ठे में कितने बड़े छिद्र कहाँ किये जायँ जिससे अन्दर जानेवाली हवा का नियन्त्रण हो सके, इसे पकानेवाला अनुभव से जानता है। भट्ठे के आकार के अनुसार ईंटें पकाने में ६ से १२ सप्ताह तक का समय लगता है। यह देखने के लिए कि ईंटें पक गयी या नहीं, भट्ठे के बाहर की ओर दीवार में छिद्र करके इन छिद्रों से ईंटों को देखकर पता लगा लिया जाता है।

अस्थायी उत्पादन के लिए पजावा-विधि वास्तव में सर्वोत्तम है तथा अनुकूल ऋतु में पकाने की क्रिया सफल हो जाने पर सबसे सस्ती भी पड़ती है। साधारण रूप से एक भट्ठे में ईंटों के पिघल जाने या टूट जाने से कुल ईंटों का लगभग आठवाँ भाग नष्ट हो जाता है। परन्तु प्रतिकूल ऋतु में एक चौथाई हानि साधारण है।

रक्षक ईंटें—मकानों के बाहरी भागों के लिए विशेष प्रकार की रक्षक ईंटों का प्रयोग आजकल काफी प्रचलित है। इन ईंटों का तल अधिक ठोस होता है अतः साधारण ईंटों की अपेक्षा वातावरण के कुप्रभावों से अपेक्षाकृत अप्रभावित रहता है। मकान के बाहरी भाग के रंग का भी काफी महत्त्व होता है, इस कारण इन ईंटों का रंग सुन्दर और समान होना चाहिए। अच्छी रक्षक ईंटों का बनाना मिट्टी की समानता तथा पकाते समय की सावधानी पर काफी निर्भर करता है। कभी-कभी इन ईंटों को पकाने से पूर्व इन पर एक पतली परत पोत दी जाती है, जिससे तैयार ईंट का तल अधिक कठोर, टिकाऊ तथा देखने में सुन्दर हो जाय। यह परत ईंट पकाने के आवश्यक तापक्रम पर ही काँचीय हो जाती है।

ईंट बनाने की मिट्टी में कास्टिक सोडा की विभिन्न मात्राएँ डालने से पकाने के न्यून तापक्रम पर ही ईंट कठोर बन जाती है। कास्टिक सोडा की यह मात्रा मिट्टी के प्रकार के अनुसार १५ से ७ प्रतिशत तक होती है। कास्टिक सोडा की आवश्यक मात्रा

मिलाकर न्यून तापक्रम (500° से०) पर पकाने से ही ईंट में वही गुण आ जाते हैं, जो उच्च तापक्रम पर पकाई ईंट में होते हैं।

साधारण ईंटों को पकाने के लिए विभिन्न भट्ठियों का प्रयोग होता है। परन्तु आज-कल सुरग भट्ठियों के प्रयोग की धारणा बढ़ती जा रही है। सुरग भट्ठी में ईंधन तथा परिश्रम कम लगता है और ईंटें टूटती भी कम हैं। ईंटों के गुण भी सुधर जाते हैं।

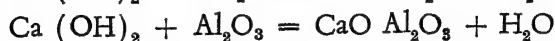
फर्शी ईंटें या नीलाभ ईंटें—ये ईंटें फर्श के लिए प्रयोग की जाती हैं और अधिक लौह आक्साइडवाली मिट्टियों से बनायी जाती हैं। प्रारम्भ में पकाने की क्रिया साधारण रूप से होती है, परन्तु पकाने के अन्तिम काल में ईंटों के रन्ध्र बन्द हो जाने से पूर्व अग्नि-द्वार पर कोयले की काफी मात्रा डालकर तथा भट्ठी में वायु का जाना यथासम्भव कम करके भट्ठी के अन्दर शक्तिशाली अवकारक वातावरण उत्पन्न किया जाता है। परिणाम-स्वरूप अवकृत लौह आक्साइड सिलिका से संयोग करके ईंट के तल पर काला या नीलाभ काला रंग उत्पन्न करता है। यदि अवकरण प्रारम्भ होने से पूर्व ही ईंट के रन्ध्र बन्द हो गये, तो ईंट के अन्दर के भाग लाल या बादामी रहेंगे और ऊपरी तल पर नीले चकत्ते रहेंगे। ये नीले चकत्ते स्थायी नहीं होते। भट्ठी को उसी अवकारक वातावरण में ठण्डा करना चाहिए, अन्यथा ईंट तल पर का कुछ लौह आक्साइड पुनः आक्सीकृत हो जायगा और ईंट तल पर लाल चकत्ते भी पड़ जायेंगे। जिनसे नीले रंग की शोभा नष्ट हो जायगी। अवकारक वातावरण में ईंट का काँचीकरण अच्छा होता है और ईंट अधिक मजबूत हो जाती है। इसी मजबूती के कारण इन ईंटों का प्रयोग साधारणतः फर्श बनाने में किया जाता है।

बालू-चूना ईंटें—रेतीले जिलों में, जहाँ मिट्टी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलती, बालू-चूना ईंटों का निर्माण सफल हो सकता है। इन ईंटों के निर्माण में बड़े कारखानों से प्राप्त धातुमल तथा बड़े शहरों की मोरियों से प्राप्त रेत आदि का भी सफल तथा लाभदायक उपयोग किया जा सकता है। तथाकथित बालू-चूना ईंटें बुझो हुए चूने को रेत के साथ मिलाकर बनायी जाती हैं तथा उन पर उच्च दबाववाले जलवाष्प की क्रिया करायी जाती है। ईंट में होनेवाली क्रियाएँ इस प्रकार समझी जा सकती हैं—

वातावरण की क्रिया से चूने का पुनः कार्बोनेट बन जाता है। इस प्रकार अवक्षेपित चूना कार्बोनेट कुछ चिपचिपा रहता है, जिसमें गीली अवस्था में बालू-कणों को जोड़कर रखने की शक्ति काफी होती है। परन्तु सूखने पर यह काफी कड़ा हो जाता है।



जलवाष्प और दबाव की उपस्थिति में चूने के कुछ अश सिलीका और एल्यूमिना से संयोग करके सिलीकेट या एल्यूमिनो सिलीकेट बनाते हैं। इन्हें हाइड्रोलिक चूना कहा जाता है। हाइड्रोलिक चूना पानी के साथ मिलने पर जमकर सीमेंट की भाँति कठोर हो जाता है और दूसरे कणों को जोड़कर रखता है।



यहाँ रेत या बालू शब्द अधिक सिलीकामय पदार्थों, जैसे धातुमल कड़्का छरी आदि के चूर्ण, के लिए प्रयोग किया गया है। ये पदार्थ इतने महीन पिसे हुए हो कि कम से कम १० प्रतिशत चूर्ण १५० नम्बर की चलनी से और शेष २० नम्बर की चलनी से छन जाय। अत्यधिक महीन चूर्ण से ईंटों की तनन क्षमता तो बढ़ती है, परन्तु सपीडन क्षमता काफी कम हो जाती है। रेत में मिट्टी ५ प्रतिशत से कम होनी चाहिए। १ या २ प्रतिशत मिट्टी की उपस्थिति आवश्यक है। शुद्ध सिलीकावाली रेत प्रयोग करने पर सर्वोत्तम परिणाम निकलता है।

चूना यथासम्भव शुद्ध होना चाहिए। आवश्यक चूने की मात्रा रेत के भार की १० से १५ प्रतिशत तक होनी चाहिए। परन्तु सर्वोत्तम परिणाम पाने के लिए किसी विशेष रेत के साथ चूने की कितनी मात्रा डाली जाय, यह प्रयोग द्वारा निर्धारित करना चाहिए और उन्ही पदार्थों के रहने पर वही मात्रा प्रयोग की जाय।

रेत तथा चूना दो भिन्न विधियों से मिलाये जाते हैं। एक विधि में रेत के साथ मिलाने के पूर्व चूने को पूर्णरूपेण बुझा लिया जाता है। इस विधि में बिना बुझा चूना बिलकुल नहीं होना चाहिए, अन्यथा ईंट कमजोर हो जायगी। दूसरी विधि में एक मिश्रण यन्त्र में बिना बुझा चूना रेत के साथ मिलाया जाता है। इसके पश्चात् इस मिश्रण में आवश्यक पानी की इतनी मात्रा डाली जाती है कि चूना बुझ जाय और लचीला पिण्ड बन जाय। पानी मिलाने के बाद मिश्रण-पिण्ड दो-तीन दिन तक रखा रहता है, जिससे पानी पूरे पिण्ड में समान रूप से मिल जाय और चूना पूरी तरह बुझ जाय।

इसके पश्चात् दबाव-विधि द्वारा यन्त्रों की सहायता से ईंटे बनायी जाती है। ईंटे बनाने में काफी अधिक दबाव, १ से २ टन प्रति वर्ग इंच, का प्रयोग किया जाता है। ऐसा देखा जाता है कि दूसरी विधियों से प्राप्त ईंटों की अपेक्षा लचीली-विधि से प्राप्त ईंटे अधिक मजबूत होती हैं। बनाने के पश्चात् ईंटे छकड़ों में रखी जाती हैं तथा औटो-

क्लेव में लगभग १० घण्टों तक पकायी जाती है। औटोक्लेव में १८०° से० के तापक्रम तथा १२० पाउंड प्रतिवर्ग इंच दबाववाली जलवाष्प का, ईंटें पकाने के लिए प्रयोग किया जाता है। इस औटोक्लेव में पकाने के पश्चात् ईंटों का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु अभी भी वे थोड़ी भुरभुरी होती हैं। खुले स्थानों में कुछ सप्ताह या मास रखने से उनके गुणों में भी सुधार आ जाता है और मजबूती भी बढ़ जाती है। बालू-चूना ईंटें भी उन्हीं सब कार्यों के लिए प्रयोग की जाती हैं, जिनके लिए साधारण ईंटों का प्रयोग होता है। परन्तु बालू-चूना ईंटों को पकाने में, मिट्टी की ईंटों को पकाने में होनेवाली असुविधाएँ व परेशानियाँ नहीं होती। बालू-चूना ईंटों का औसत दबाव-बल लगभग २५०० पाउंड प्रतिवर्ग इंच है। साधारण गृह-निर्माण में प्रयोग होनेवाली ईंटों का दबाव बल १५०० से २५०० पाउंड प्रति वर्ग इंच होता है। परन्तु पुल आदि के निर्माण में प्रयोग होनेवाली उत्तम श्रेणी की ईंटों का दबाव बल बहुत अधिक होता है। बालू-चूना ईंटों से दूसरा लाभ यह है कि इनमें मिट्टी ईंटों की भाँति छादनी नहीं आती है। भारत-वर्ष में बंगाल, आसाम जैसे नम स्थानों को यह गुण वरदान-स्वरूप है।

खपडे और छत की टालियाँ—रहनेवाले मकानों की छत ढकने के लिए खपडों का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से होता आया है। जिन टालियों को पश्चिमी देशों में रोमन टालियाँ कहते हैं, उन टालियों के विकसित रूप का प्रयोग भारत में उस काल के बहुत पूर्व होता था जिस काल में रोम निवासियों ने उनका प्रयोग सीखा था। वास्तव में रोम निवासियों ने खपडों का प्रयोग ग्रीक निवासियों से सीखा और ग्रीक निवासियों ने इस कला को पूर्वी देशों से सीखा था।

इंग्लैण्ड में चपटे खपडों का प्रयोग अधिक होता है। ये खपडे १० से १५ इंच तक लम्बे और ५ से १० इंच तक चौड़े होते हैं। इनके एक सिरे पर एक या दो हुक निकले रहते हैं जिससे ढालू छत पर ये आधारों पर से सरक न जायें।

मारसेल टाली (Marseilles Tiles)—इन टालियों में नालियाँ और उठे हुए किनारे होते हैं। इन टालियों का प्रयोग फ्रांस और दूसरे यूरोपीय देशों में काफी होता है। इन टालियों का प्रयोग करते समय एक टाली का किनारा दूसरी टाली की नाली में घुसा रहता है। अतः एक टाली साधारण खपडे की अपेक्षा अधिक क्षेत्र ढक लेती है। इन टालियों की मोटाई लगभग आधा इंच होने से इनमें मजबूती भी अधिक होती है। इन खपडों का प्रयोग अच्छे प्रकार के मकानों की छत बनाने में होता है।

भारतवर्ष में इस प्रकार की टालियो का निर्माण सर्वप्रथम दक्षिणी भारत में मँगलौर नामक स्थान में प्रारम्भ हुआ था। अतः दक्षिणी भारत में इन टालियो को 'मँगलौर टालियो' कहते हैं। परन्तु उत्तर भारत में इन टालियो का निर्माण बंगाल के बर्नपुर नामक स्थान में प्रारम्भ होने से इन्हें उत्तरी भारत में 'बर्न टाली' कहा जाता है।

टालियो के कारखाने प्रायः वहाँ बनाये जाते हैं, जहाँ कार्योपयोगी मिट्टियाँ अधिकता से उपलब्ध हों। यह तो साधारण अनुभव की बात है कि मिट्टी पाने के स्थानों पर मिट्टी खोदने पर मिट्टी की भिन्न तहें निकला करती हैं। अतः इसमें महत्त्वपूर्ण ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन भिन्न परतों से प्राप्त मिट्टियाँ इस प्रकार मिलायी जायें कि मिश्रण-पिण्ड सन्तोषजनक बने। उपलब्ध भिन्न मिट्टियों को ठीक प्रकार मिलाने का ज्ञान इस उद्योग में अत्यावश्यक है और इस ज्ञान की पूर्णता के लिए किये गये प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं जाते। यदि मिट्टियों पर, विशेष कर पगयन्त्र में क्रिया के पश्चात्, कुछ दिनों तक अम्लक्रिया होने दी जाय तो अच्छा परिणाम निकलता है। इस कार्य के लिए रेतीली मिट्टी अच्छी होती है, कारण यदि मिट्टी अधिक लचीली हुई, तो सुखाते और पकाते दोनों समय आकुचन अधिक होता है। परिणाम-स्वरूप सुखाने तथा पकाने के समय टालियाँ ऐठ जाती हैं। रेत कणों का आकार सूक्ष्म होना चाहिए, अन्यथा पकी हुई टालियो की रन्ध्रता बढ़ जायगी, जो नहीं होनी चाहिए।

टालियाँ बनाने की दो विधियाँ हैं। एक है लचीली विधि, दूसरी है अर्द्ध-शुष्क विधि। ये दोनों विधियाँ ईंटे बनाने की विधियों के समान हैं। लचीली विधि से साधारण खपड़े हाथ द्वारा लकड़ी के साँचों में मिट्टी दबाकर ही बनाये जाते हैं। परन्तु मोटी टालियाँ बनाने के लिए धातवीय साँचों का तथा यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी इन साँचों के अन्दर जिप्सम प्लास्टर की तह लगी रहती है। लचीली-विधि से खपड़े बनाने के लिए प्रयोग की जानेवाली मिट्टी बहुत मुलायम नहीं होनी चाहिए। मुलायम मिट्टी में कठोर मिट्टी की अपेक्षा अधिक आकुचन होने के कारण मुलायम मिट्टी से बने पात्र में अपेक्षाकृत अधिक रन्ध्रता होती है। अर्द्ध-शुष्क-विधि से, मिश्रण-पिण्ड से टालियाँ बनाने के लिए पालिश किये हुए ढलवाँ लोहे के साँचों का प्रयोग होता है, कारण इसमें अधिक दबाव का प्रयोग किया जाता है, जो लकड़ी का साँचा नहीं सहन कर सकता। साँचे में मिट्टी चिपक न जाय, इसके लिए हर बार प्रयोग से पूर्व साँचे के अन्दर थोड़ा तेल पोत दिया जाता है। इस विधि से बनी टालियाँ सन्तोष-

जनक नहीं होती, कारण अधिक दबाव द्वारा बनी टालियो में परत-दोष अधिक पाया जाता है तथा साँचे भी शीघ्र घिस जाते हैं।

भारतवर्ष में साधारण मकानों में प्रयोग किये जानेवाले खपड़े थोड़े परिवर्तन सहित रोमन टालियो के प्रकार के होते हैं। ये खपड़े सदैव लचीली-विधि से बनाये जाते हैं। चपटे खपड़े हाथ द्वारा दबाकर लकड़ी के साँचों का प्रयोग करके बनाये जाते हैं। इन साँचों में प्रयोग से पूर्व अन्दर की ओर रेत छिड़ककर उसकी पतली तह लगा दी जाती है। दो खपड़ों के जोड़ को ढकनेवाले गोल खपड़ों को 'नरिया' कहते हैं। नरिया कुम्हार के चाक पर भी बनायी जाती है।

टाली पकाना—टालियाँ अधोगति विराम भट्ठियों में सर्वोत्तम पकती हैं। अविराम भट्ठियों का प्रयोग तभी किया जा सकता है, जब उत्पादन अत्यधिक हो और भट्ठी इस कार्य के लिए विशेष रूप से बनायी गयी हो। न्यूकैसल प्रकार की क्षैतिज भट्ठियों का टालियों और ईंटों दोनों के पकाने में काफी प्रयोग होता है। भट्ठी में टालियाँ रखने का ढग विशेष रूप से उनकी आकृति पर निर्भर करता है। टालियाँ प्रायः पास-पास खड़ी करके रखी जाती हैं। परन्तु दो टालियों के बीच में इतना स्थान रखा जाता है कि गरम गैसें बह सकें। भट्ठी में टालियाँ कुछ नम अवस्था में ही रखी जाती हैं। अन्यथा भट्ठी में रखते समय उनके टूट जाने से काफी हानि होती है। यदि टालियो में नमी की अनुपस्थिति के कारण कुछ लचीली शक्ति न हो, तो उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर उठाकर रखने में टूट जाने का भय रहता है। टालियाँ पकाने में पकी हुई टाली के रंग पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके लिए भट्ठी के वातावरण का नियन्त्रण परमावश्यक है। टालियाँ पकानेवाली भट्ठियों को गरम और ठण्डा बहुत धीरे-धीरे किया जाता है अन्यथा टालियाँ चटक जायँगी।

टाली-निर्माण में टाली का रंग काफी महत्वपूर्ण होता है। साधारणतः टालियाँ लाल रंग की बनायी जाती हैं, परन्तु कुछ देशों में काली टालियो का भी प्रयोग किया जाता है। चिकने तल-सहित लाल रंग की टालियाँ बनाने के लिए, उन्हें पकाने से पूर्व लाल गेरू और सोडा सिलीकेट धोल से पोत दिया जाता है। यह पोतना उस समय विशेष रूप से उपयोगी होता है, जब प्रयोग की गयी मिट्टी में लौह आक्साइड की मात्रा कम तथा चूने की मात्रा अधिक हो और मिट्टी समाग न हो। इस पोताई के कारण टाली के तल पर रंग की एक पतली परत चढ़ जाती है तथा

टाली के तल की अवशोषण-शक्ति कम हो जाती है। इस परत से टाली पर काफी समय तक काई या फफूंद भी नहीं लगती। काली टालियाँ उसी प्रकार बनती हैं, जिस प्रकार नीलाभ ईंटे बनती हैं। काली टालियाँ बनाने के लिए मिट्टी में लोहा अधिक मात्रा में होना चाहिए।

घरेलू मृत्पात्र—ये पात्र काफी सस्ते, हलके तथा सरन्ध्र होते हैं और प्रायः साधारण सहज गलनीय और अधिक लचीली मिट्टियों से बनाये जाते हैं। भारतवर्ष में कुम्हार नदियों, तालाबों आदि में जमी हुई मिट्टी का प्रयोग करते हैं। ये मिट्टियाँ काफी लचीली और सगठन में समाग होती हैं। इनसे बने पात्र काफी सरन्ध्र होते हैं और भोजन बनाने तथा पीने का पानी रखने के लिए इनका प्रयोग बहुत प्रचलित है।

इस प्रकार के मृत्पात्र बनाने के लिए मिट्टी तैयार करना बहुत सरल है। मिट्टी पानी के साथ केवल गूंधी जाती है। गूंधने की क्रिया भी अधिकतर पैरों से की जाती है। गूंधने के पश्चात् कुछ दिन तक उसे ढँककर ऐसा ही छोड़ देने से उस पर अम्ल-क्रिया होने देने से उसकी कार्योपयोगिता बढ़ जाती है। परन्तु अधिकांश अवस्थाओं में, विशेष कर नदी या तालाब से प्राप्त मिट्टी होने पर अम्लक्रिया न कराकर मिट्टी सीधी ही प्रयोग की जाती है।

भारतवर्ष में इस प्रकार के घरेलू मृत्पात्रों को अब भी वही पुराने चाको द्वारा बनाया जाता है। यह वाक पत्थर का एक चपटा गोलाकार भाग होता है और मनुष्य द्वारा चलाया जाता है। उसके निरन्तर चलते रहने के लिए थोड़े समय (लगभग ५ मिनट) बाद उसकी गति कम होने पर उसे फिर चला दिया जाता है। इस प्रकार कुम्हार का आधा समय तो केवल चाक घुमाने में ही नष्ट हो जाता है। यदि आधुनिक विकसित चाको, जिनका वर्णन तृतीय अध्याय में किया जा चुका है, का प्रयोग किया जाय तो, उत्पादन काफी बढ़ाया जा सकता है। छोटी तथा हलकी वस्तुओं को बनाने के लिए स्वयं चलनेवाले चाको का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु भारी वस्तुओं को बनाने के लिए अधिक शक्तिशाली चाक सहायक लडके द्वारा चलाया जाना चाहिए। चाक को चलाने के लिए एक सहायक होने से कुम्हार दोनों हाथ से कार्य कर सकेगा और चाक की गति भी आवश्यकतानुसार नियन्त्रित की जा सकती है।

भारत में साधारण मृद-वस्तुओं को पकाने की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। कारण इस दिशा में काफी सुधार किया जा सकता है। भारतीय

कोटा पकाने के लिए सैगरो की आवश्यकता नहीं पड़ती । अतः पकाने का व्यय भी काफी कम हो जाता है । जब पात्र पक जाते हैं और भट्ठी धीरे-धीरे ठण्डी हो जाती है, तो ऊपर से मिट्टी की पट्टियाँ को हटाकर भट्ठी के ऊपर से पात्र निकाल लिये जाते हैं । अधिकांश अवस्थाओं में इस प्रकार पात्रों को पकाने में तापक्रम 900° से 0 से ऊपर नहीं जाता । इस प्रकार की साधारण भट्ठियाँ, चुनार शहर (उत्तर प्रदेश) में, प्रसिद्ध चुनार मृद्-वस्तुओं को पकाने में प्रयोग की जाती हैं ।

दशम अध्याय

दुर्गल वस्तुएँ

दुर्गल पदार्थ—दुर्गलता या तापसहता शब्दों का प्रयोग, कुछ विशेष अवस्थाओं में, किसी पदार्थ की ताप के प्रति रोधकशक्ति के लिए किया जाता है। परन्तु साधारणतया ऐसे किसी भी पदार्थ को तापसह नहीं माना जाता, जो 1350° से 1800° से० से कम तापक्रम पर गलने का थोड़ा भी बाहरी चिह्न प्रकट करे।

साधारणतया दुर्गल पदार्थों की दुर्गलता निम्नलिखित अवस्थाओं पर निर्भर करती है—

(क) भट्ठी के अन्दर भट्ठी-गैसों की क्रिया।

आक्सीकारक वातावरण में ग्रेफाइट और कार्बोरण्डम जल जाते हैं, जब कि अवकारक वातावरण में क्रोमाइट और हैमेटाइट अवकृत होकर अपनी दुर्गलता खो बैठते हैं।

(ख) प्रयोग के समय दबाव का प्रभाव।

दबाव की उपस्थिति में अधिक एल्यूमिनावाली केओलिन की अपेक्षा अधिक सिलिकामय अग्नि-मिट्टी उच्च तापक्रम सहन कर सकेगी। परन्तु दबाव न होने पर केओलिन की दुर्गलता साधारणतया अधिक होती है। डाक्टर मेलर ने दिखाया है, कि २५२ पौंड प्रति वर्ग इंच दबाव की प्रत्येक वृद्धि से चीनी मिट्टी का विकृति-तापक्रम 20° से० घट जाता है।

(ग) भट्ठी के अन्दर रासायनिक क्रिया।

कुण्ड में मैगनीशिया ईंटों या डोलोमाइट ईंटों पर पिघले हुए कॉच की क्रिया बड़ी सरलता से होती है। जब कि चूने तथा सीमेण्ट की भट्ठियों में सिलिकाईंटों पर क्रिया हो जाती है।

इसी कारण अपनी रासायनिक क्रियाओं के आधार पर दुर्गल पदार्थ निम्नलिखित भागों में बाँटे जाते हैं—

१ **अम्लीय पदार्थ**—सिलिकामय चट्टानें, अग्निमिट्टियाँ, केओलिन, सिली-मेनाइट और केईनाइट आदि ।

२ **भास्मिक पदार्थ**—इसमें मैग्नेसाइट, डोलोमाइट, जिरकोनिया, बौक्साइट, हैमेटाइट तथा भास्मिक धातुमल आदि हैं ।

३ **उदासीन पदार्थ**—इस प्रकार के पदार्थों में क्रोमाइट, ग्रेफाइट, कार्बोरण्डम आदि हैं ।

दुर्गल वस्तुएँ बनाने के लिए प्रयुक्त सिलिकामय पदार्थों में सिलिकामय खनिज, जैसे स्फटिक क्वार्टजाइट, गैनिस्टर (Ganister) आदि, तथा श्वेत बालू हैं । सिलिकामय खनिजों का संगठन काफी भिन्न होता है । परन्तु दुर्गल वस्तुएँ बनाने के लिए उनमें कम से कम ९० प्रतिशत सिलिका (SiO_2) अवश्य होनी चाहिए तथा उनमें मुख्य रूप से एल्यूमिना, लोहा तथा क्षार ही अपद्रव्य के रूप में रहे, जिसमें भी लौह तथा क्षार दोनों मिलकर ५ प्रतिशत से अधिक न हों ।

यद्यपि केलासीय स्फटिक भारतवर्ष में अधिकता से पाया जाता है, परन्तु दुर्गल वस्तु-निर्माण में प्रायः इसका प्रयोग नहीं किया जाता, कारण स्फटिक काफी कठोर होने से इसको चूर्ण करने में अधिक व्यय पड़ता है । क्वार्टजाइट एक चट्टान होती है, जिसमें स्फटिक केलास रहते हैं तथा सिलिसिक अम्ल इन स्फटिक केलासों को सीमेण्ट की भाँति जोड़कर रखने का कार्य करता है । अपद्रव्यों के कारण क्वार्टजाइट में स्फटिक के छोटे केलास पीले से बादामी रंग तक के होते हैं । क्वार्टजाइट रन्ध्रहीन होता है और तोड़ने पर चिकना तल प्राप्त होता है ।

गैनिस्टर (Ganister)—ये जलज (Sedimentary) सिलिकामय चट्टानें हैं जिनके कण बहुत ही सूक्ष्म होते हैं । इस खनिज में लगभग १० प्रतिशत तक मिट्टी रहती है और यह पानी के साथ पीसने पर लचीला पिण्ड बनाता है । स्फटिक और क्वार्टजाइट की ईंटें बनाने के लिए कोई और लचीला खनिज मिलाना पड़ता है । परन्तु गैनिस्टर चूर्ण से ईंटें बनाने के लिए किसी बाहरी लचीले पदार्थ के मिलाने की आवश्यकता नहीं होती । नीचे क्वार्टजाइट तथा मृदु गैनिस्टर के विशेष विश्लेषण दिये जाते हैं ।

	मृदु गैनिस्टर	क्वार्टजाइट
सिलिका	८८ ४	९७ ८५
एल्यूमिना	६ ४	१ ८१
फैरिक आक्साइड	१ ७	० ३८
चूना	० ७	×
मैगनीशिया	० ४	×
क्षार	×	×
हानि	२ ४	० ३२

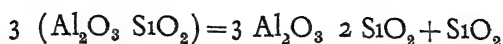
दुर्गल वस्तु-निर्माण के लिए उपयोगी श्वेत बालू में सिलिका ९५ प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए और चूना, लोहा तथा क्षार में से प्रत्येक ० ५ प्रतिशत से कम होना चाहिए। कण-आकार यथासम्भव समान हो और यह २० से २५ नम्बर तक की चलनी से छन जाय।

गैनिस्टर के प्राप्तिस्थान—(इलाहाबाद जिले में) बरगढ, जबलपुर, वीकानेर, (बडौदा में) पेण्डनलू और सनकेदा तथा (पंजाब में) जैजोन।

सिलीमेनाइट ($Al_2O_3 \cdot SiO_2$)—प्राकृतिक सिलीमेनाइट की रचना लम्बे सुई आकारवाले केलासो से होती है। इसका गलनाङ्क काफी उच्च, 1850° से ० है। यह प्रायः बादामी से भूरे रंग का होता है और पीसने में काफी कठोर होता है। पीसे हुए चूर्ण में प्रायः पीसनेवाले यन्त्रों से लौह आ जाता है। इस लौह को विद्युत्-चुम्बक से दूर कर देना चाहिए। इसके चूर्ण में लचीलापन बिलकुल नहीं होता। अतः इससे वस्तुएँ बनाने के लिए इसमें चीनी मिट्टी मिलायी जाती है। लौह की थोड़ी मात्रा रहने से भी इसकी दुर्गलता काफी कम हो जाती है।

सिलीमेनाइट के प्राप्तिस्थान—आसाम में खासी तथा सारे पहाड़, नान्गस्टन, (रीवाँ में) पिपरा, (मध्यप्रदेश में) भण्डारा।

केईनाइट ($Kyanite-Al_2O_3 \cdot SiO_2$)—यद्यपि सिलीमेनाइट और केईनाइट के रासायनिक सगठन एक ही हैं, परन्तु उनके भौतिक गुण भिन्न होते हैं। पर्याप्त उच्च तापक्रम पर गरम करने पर ये दोनों ही मूलाइट केलासो में बदल जाते हैं। केईनाइट सबसे कम तापक्रम पर अधिक आयतन वृद्धि के साथ मूलाइट केलासो में बदल जाता है, जब कि सिलीमेनाइट उच्च तापक्रम पर बहुत ही कम आयतन वृद्धि के साथ मूलाइट में बदलता है।



केईनाइट के प्राप्ति-स्थान—भारतवर्ष में इस खनिज का ९० प्रतिशत से अधिक भाग बिहार के सिंहभूमि जिले से प्राप्त होता है। दूसरी छोटी खाने अजमेर, मारवाड़, राजपूताना तथा मैसूर में हैं। उड़ीसा के मयूरभञ्ज में भी केईनाइट की अच्छी खाने पायी जाती है। सन् १९५२ ई० में इस खनिज का वार्षिक उत्पादन १२ हजार टन था। स्फटिक की तह सहित केईनाइट की कुछ दूसरी खाने भी उड़ीसा के गगपुर नामक स्थान में बतायी जाती हैं।

सिंहभूमि से प्राप्त केईनाइट का विश्लेषण इस प्रकार है—

सिलीका ३८५, एल्यूमिना ५७५५, टिटैनियम आक्साइड ०४ फ़ैरिक आक्साइड १०१ चूना तथा मैगनीशिया नगण्य, क्षार ०६ तथा हानि १८।

इसकी अग्नि-परीक्षा का परिणाम इस प्रकार है—

	१०००° से०	११००° से०	१२००° से०	१३००° से०	१४००° से०
आयतन परिवर्तन		१६(-)	३८(-)	२००(+)	२२४(+)
निरपेक्ष घनत्व	३२५	३२६	३२७	२८९	२८७

सह्यताप १७७०° से० से अधिक है।

उपर्युक्त परिणामों से स्पष्ट है कि १२००° से० तक पदार्थ में आकुचन होता है। परन्तु इस तापक्रम से ऊपर आयतन में एकाएक वृद्धि होने लगती है और घनत्व कम होने लगता है। यह परिवर्तन केईनाइट के मूलाइट में परिवर्तित होने का सूचक है।

मैगनीशिया—प्राकृतिक अयस्क मैग्नेसाइट को निस्तापित करने से मैगनीशिया प्राप्त होता है। मैगनीशिया का सन् १८६८ ई० में प्रथम बार, लौह गलाने-वाली भट्टियों में दुर्गल परत लगाने के लिए प्रयोग किया गया था। परन्तु इसका अधिक उपयोग इस्पात बनाने की भास्मिक विधि के प्रयोग के पश्चात् हुआ। इस्पात बनाने की यह विधि टामस और गिलक्राइस्ट (Thomas and Gil Christ) ने सन् १८८० ई० में निकाली थी।

शुद्ध मैगनीशियम आक्साइड लगभग २८००° से० पर गलता है। परन्तु व्यापारिक मैगनीशिया काफी कम तापक्रम पर ही पिघल जाता है, कारण उसमें लोहा, मिट्टी, सिलीका आदि अपद्रव्य रहते हैं। शुद्ध मैगनीशियम आक्साइड ईटे

बनाने के काम नहीं आ सकता, कारण इससे कठोर पिण्ड नहीं बनेगा। अतः ईंटें बनाने के लिए ६ से ८ प्रतिशत तक अपद्रव्य या द्रावकवाले अशुद्ध मैग्नीशिया का प्रयोग करते हैं।

मैग्नेसाइट मुख्य रूप से भूरे तथा सूक्ष्मकणीय पिण्ड के रूप में प्रकृति में मिलता है, जिसमें लगभग ८५ प्रतिशत से ९० प्रतिशत तक $Mg CO_3$ होता है। चूना, लौह मिट्टी और सिलिका मुख्य अपद्रव्य हैं तथा पकाने के पश्चात् अवकृत लौह के कारण पिण्ड का रंग काला हो जाता है।

मैग्नेसाइट को ८००° से ९००° से० पर निस्तापित करने से इसका भार केवल आधा रह जाता है और कास्टिक मैग्नीशिया या दाहक मैग्नीशिया में परिवर्तित हो जाता है। यह दाहक मैग्नीशिया पानी के साथ चूने की भाँति बुझकर ताप उत्पन्न करता है। दाहक मैग्नीशिया को और अधिक गरम करने पर इसका घनत्व बढ़ता है और एक केलासीय कठोर पिण्ड में परिवर्तित हो जाता है जिसे मृत मैग्नीशिया या पेरीक्लेज (Periclase) कहा जाता है। इस परिवर्तन में काफी आकुचन होता है और आपेक्षिक घनत्व बढ़ जाता है। मैग्नेसाइट का आपेक्षिक घनत्व ३.०२ है, जब कि पेरीक्लेज का आ० घ० ३.६ से ३.६५ तक होता है। मृत मैग्नीशिया बनाने के लिए निस्तापन तापक्रम १४००° से० से १६००° से० तक होता है। अशुद्ध मैग्नेसाइट कम तापक्रम पर निस्तापित किया जाता है। अन्तिम पदार्थ अर्थात् मृत मैग्नीशिया को ऐसा बनाना चाहिए, कि उसे पकाने पर उसमें और अधिक आकुचन न हो। मृत मैग्नीशिया को पीसकर उसमें पानी मिलाने से लचीलापन नहीं उत्पन्न होता, परन्तु इसमें ८ से १० प्रतिशत दाहक मैग्नीशिया मिला देने से ईंट बनाने के लिए आवश्यक लचीलापन आ जाता है। इस निस्तापित पदार्थ को प्रायः घूमनेवाले छिद्रमय बेलनों में पानी से धोकर इसका चूना दूर कर दिया जाता है। अन्तिम पीसने की क्रिया बॉल-मिन्ड में होती है।

भारत में मैग्नेसाइट के प्राप्तिस्थान—(१) मद्रास में सलेम के पास खडिया पहाड़, जिनमें ९६ से ९७ प्रतिशत तक मैग्नीशियम कार्बोनेट रहता है। इसका प्रयोग ईंटें बनाने में तथा निर्यात के लिए मृत मैग्नीशिया बनाने में होता है। भारतीय उत्पादन का लगभग ९० प्रतिशत मैग्नेसाइट इस स्थान से प्राप्त होता है।

(२) कुर्ग में सेरिंगला।

(३) मद्रास में त्रिचनापल्ली जिला।

(४) मैसूर मे हसन और मैसूर जिले।

(५) आन्ध्र मे करनूल जिला।

कुछ विशेष स्थानो के मैग्नेसाइटो के विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं—

अवयव	मैसूर मैग्नेसाइट	सलेम मैग्नेसाइट	साल्सवर्ग मैग्नेसाइट
चूना	० ४	० ३	० २
मैग्नीशिया	४७ १	४६ ३	४० ९
लौह आक्साइड	० १	० २	५ ९
एल्यूमिना	० १	० ३	१ १
सिलिका	×	० २	२ २
कार्बन-डाई-आक्साइड	५२ ९	५१ ९	४५ ०

विश्व के बढ़ते हुए इस्पात उद्योग मे मैग्नीशिया ईंटो की बढ़ती हुई माँग को ध्यान मे रखते हुए मैग्नीशिया प्राप्त करने के दूसरे साधन खोजे गये थे। समुद्री पानी से साधारण नमक बनाने के उद्योग मे प्राप्त उपजात मैग्नीशियम क्लोराइड, मैग्नीशिया प्राप्त करने का अच्छा साधन सिद्ध हुआ है।

अमरीका मे प्रशान्त महासागर के किनारे पर स्थित एक कारखाने मे घुलनशील मैग्नीशियम लवण पर चूने की क्रिया करायी जाती है। यह चूना समुद्री सीपो को निस्तापित करके बनाया जाता है। इस क्रिया मे अघुलनशील मैग्नीशियम हाइड्रॉक्साइड अवक्षेपित हो जाता है।



अवक्षेप को घूर्णक (Rotary) भट्ठी मे निस्तापित करके मृत मैग्नीशिया बनाया जाता है। इसे अधिक उपयोगी बनाने के लिए निस्तापन से पूर्व इसमे उपयुक्त द्रावक मिला दिये जाते हैं।

शुद्ध मृत मैग्नीशिया बनाने के लिए शुद्ध मैग्नेसाइट को विद्युत्-भट्ठी मे पकाया जाता है। अशुद्ध मृत मैग्नीशिया की अपेक्षा शुद्ध मृत मैग्नीशिया प्रयोग के समय अधिक दबाव सहन कर सकता है। यह पका हुआ पदार्थ पानी के साथ महीन पीसने पर बड़े कणो को जोड़कर रखता है। अतः शुद्ध मृत-मैग्नीशिया ईंटे बनाने के लिए कण जोड़कर रखनेवाले किसी द्रावक की आवश्यकता नहीं होती।

मैग्नीशिया ईंटे बनाने की पुरानी विधि मे मृत मैग्नीशिया को इतना महीन

पीसा जाता था कि २० नम्बर की चलनी से छन जाय। उसके पश्चात् ५,००० से ६,००० पौंड प्रति वर्ग इंच के दबाव पर, दबाव-विधि से ईटे बनाकर, वे 1300° से 1400° से० पर पकायी जाती थी। नवीन विधि में यह पकाने की क्रिया नहीं होती। अतः इसमें निर्माण-व्यय काफी सीमा तक कम हो गया है।

नवीन विधि में पीसने के बाद चूर्ण को छानकर विभिन्न आकार के कण अलग-अलग कर लिये जाते हैं। इन भिन्न आकार के पदार्थों के सुनियन्त्रित मिश्रण के साथ कुछ रासायनिक यौगिक मिला दिये जाते हैं। इस नवीन विधि से ईटे बनाते समय प्रयुक्त होनेवाला दबाव बहुत अधिक, लगभग १०,००० पौंड प्रति वर्ग इंच होता है।

ऐसा कहा जाता है कि असाधारण उच्च दबाव से मैग्नीशिया के सूक्ष्म कण रासायनिक यौगिक की उपस्थिति में अर्द्धतरल अवस्था में आ जाते हैं और पदार्थ इतना कठोर हो जाता है कि बाद में इसे पकाकर ठोस व कठोर करने की आवश्यकता नहीं रहती।

सरन्ध्र मैग्नेसाइट ईटे—बाजार में एक प्रकार की नयी मैग्नीशिया ईटे आती है। इन ईटों में लौह की मात्रा कम होती है। ये ईटे भास्मिक और अम्लीय दोनों प्रकार के धातुमलो को सह सकती हैं। इस ईट की मुख्य विशेषता इसकी अत्यधिक सरन्ध्रता है, जो लगभग ३२ प्रतिशत होती है। साधारणतया अधिक सरन्ध्र ईटे धातुमल से शीघ्र ही क्रिया कर बैठती हैं, परन्तु इस ईट के निर्माण में मुख्य रूप से रन्ध्रों के आकार और आकृति को नियन्त्रित किया जाता है। साधारण सरन्ध्र ईटों में रन्ध्र एक दूसरे से मिले रहने के कारण केशिका क्रिया होती है और अवशोषण अधिक होता है। परन्तु इन ईटों के रन्ध्र एक दूसरे से मिले नहीं होते, अतः केशिका क्रिया नहीं हो पाती और अवशोषण कम हो जाता है। इस प्रकार इन ईटों के ऊपरी रन्ध्रों में धातुमल घुसकर एक पतली परत के रूप में ईट पर फैल जाता है और धातुमल का अन्दर जाना बन्द कर देता है। इस प्रकार ये ईटे अपनी अधिक सरन्ध्रता और प्रत्यास्थता लोच को स्थिर रखते हुए धातुमल और तापक्रम परिवर्तनों को अधिक सह सकती हैं। इन ईटों में लौह और एल्यूमिना की अनुपस्थिति से ये ईटे अम्लीय धातुमल से भी अप्रभावित रहती हैं, कारण शुद्ध मैग्नीशिया 1600° से० से क्रम तापक्रम पर सिलिका से संयोग नहीं करता।

फोस्टेराइट—यह एक खनिज है, जिसका रासायनिक संघटन $2\text{MgO} \cdot \text{SiO}_2$ है और आजकल भास्मिक दुर्गल ईटों के बनाने में प्रयोग किया जाता है।

MgO तथा SiO_2 की प्रकृति में पाये जानेवाले अन्य यौगिकों में टाल्क, सर्पेन्टाइन (Serpentine— $3\text{MgO} \cdot 2\text{SiO}_2 \cdot 2\text{H}_2\text{O}$) आदि विभिन्न हाइड्रेटेड मैग्नेसाइट हैं। फोस्फोराइट ईटों के उपयोग ने इन प्राकृतिक मैग्नीशियम खनिजों के उपयोग की सम्भावना को जन्म दिया है। ५७३ प्रतिशत MgO तथा ४२७ प्रतिशत SiO_2 के मिश्रण को काफी गरम करने से फोस्फोराइट बनता है। बौवेन और एण्डरसन ने पता लगाया कि MgO और SiO_2 से बननेवाले यौगिकों में फोस्फोराइट का द्रवणांक सर्वाधिक है। लोहा रहने पर उच्च तापक्रम पर यह मैग्नीशियो फोराइट ($\text{MgO} \cdot \text{Fe}_2\text{O}_3$) में परिवर्तित हो जाता है।

श्रेष्ठ फोस्फोराइट ईटों की दुर्गलता काफी अधिक होती है। इनका सह्यताप 1710° से ० से अधिक होता है। इसकी असाधारण दुर्गलता और उच्च दबाव की उपस्थिति में कार्यक्षमता साधारण मैग्नेसाइट ईटों से अधिक है।

डोलोमाइट—डोलोमाइट शब्द वैसे प्रायः सभी मैग्नीशियम और कैल्शियम कार्बोनेटों के पत्थरों के लिए प्रयोग किया जाता है। परन्तु वास्तव में यह एक निश्चित खनिज है, जिसका रासायनिक विश्लेषण इस प्रकार है—

मैग्नीशियम आक्साइड	..	२१-२२ प्रतिशत
चूना	..	३०-३१ ..
कार्बन डाई आक्साइड	..	४७-४८ ..

इसका रासायनिक संगठन सूत्र $\text{MgCO}_3 \cdot \text{CaCO}_3$ से प्रकट किया जा सकता है। चूना पत्थर से डोलोमाइट कठोरता, आपेक्षिक घनत्व तथा ठण्डे नमक के अम्ल की क्रिया द्वारा निम्न प्रकार से पहचाना जा सकता है। डोलोमाइट चूना पत्थर से अधिक कठोर होता है तथा इसका आपेक्षिक घनत्व भी अधिक होता है (डोलोमाइट २.८ से २.९ तक और कैल्साइट २.७५)। ठण्डे नमक के अम्ल की डोलोमाइट पर क्रिया उतनी तेज नहीं होती जितनी कि कैल्साइट पर।

डोलोमाइट भट्ठी की भीतरी दुर्गल परत के रूप में उन सभी अवस्थाओं में प्रयुक्त होता है, जिनमें मैग्नेसाइट का प्रयोग किया जाता है। परन्तु मैग्नेसाइट की परत अधिक टिकाऊ और अधिक कार्योपयोगी होती है। इस कारण डोलोमाइट सस्ता होने पर भी भट्ठियों में डोलोमाइट के स्थान पर मैग्नेसाइट की परत लगायी जाती है।

मैगनेसाइट की भाँति डोलोमाइट को भी उच्च तापक्रम पर खूब निस्तापित कर लेना चाहिए, जिससे यह पूरी तरह आकुचित हो जाय ।

निस्तापन से पूर्व लगभग १० प्रतिशत कैल्शियम क्लोराइड डालने से डोलोमाइट को अलग से बुझाने की आवश्यकता नहीं होती । यह कैल्शियम क्लोराइड डोलोमाइट ईंटें बनाने में दूसरे कणों को जोड़कर रखने का कार्य करता है । इस कार्य के लिए एच० जी० स्क्रुट (H G Schrucht) ने लौह आक्साइड डालने की भी सलाह दी है । कुछ निर्माण-कर्त्ता १० प्रतिशत तक केओलिन का भी प्रयोग करते हैं ।

डोलोमाइट में सबसे बड़ी कमी यह है कि डोलोमाइट अधिक शुद्ध होने पर इससे मजबूत ईंटें बनाना बड़ा कठिन है । इस कमी का कारण यह है कि इसमें उपस्थित मुक्त चूना अधिक काल तक विशेष कर नम स्थानों में रखने पर पानी और कार्बन डाई आक्साइड अवशोषित कर लेता है, जिससे मृत् डोलोमाइट चूर्ण हो जाता है । इस परेशानी को दूर करने के लिए कभी-कभी डोलोमाइट की पकी हुई ईंट पर कोलतार जैसे नमी अवशोषित न करनेवाले पदार्थों की परत पोत दी जाती है, जिससे कुछ समय तक ईंट वातावरण की नमी से सुरक्षित रहे ।

सिलीका की अधिक मात्रा रहने पर डोलोमाइट मौनो कैल्शियम सिलीकेट ($\text{CaO} \cdot \text{SiO}_2$) बनाता है, जिसका द्रवष्पाक कम है । अतः इस दशा में ईंटें न्यून तापक्रम पर आकृति खो सकती हैं । सिलीका की मात्रा कम रहने पर डोलोमाइट डाई कैल्शियम सिलीकेट ($2\text{CaO} \cdot \text{SiO}_2$) बनाता है । यह बहुत ही उच्च तापक्रम पर पिघलता है और साथ ही शुद्ध डोलोमाइट की ईंटों में कणों को जोड़कर रखने का कार्य भी करता है तथा उच्च दबाव पर कार्यक्षमता भी बढ़ा देता है । मैगनेसाइट ईंटों की अपेक्षा डोलोमाइट ईंटों में चूनावाले धातुमलों की ओर अधिक प्रतिरोधक शक्ति है, कारण धातुमल का चूना, कैल्शियम डाई सिलीकेट से क्रिया करके और अधिक दुर्गल ट्राईकैल्शियम सिलीकेट ($3\text{CaO} \cdot \text{SiO}_2$) बनाता है ।

उपयोग—(१) भास्मिक विधि की खुली इस्पात भट्टियों तथा बेसेमर परिवर्तक भट्टियों में दुर्गल परत के लिए । (२) सीसे की भट्टियों में, जिनमें धातुमल अधिक भास्मिक होता है । (३) ताम्र प्रद्रावण भट्टियों में । (४) भास्मिक मिश्र धातुओं (Alloys) को गलानेवाली घरियाओं के बनाने में ।

डोलोमाइट के प्राप्तिस्थान—आसाम में जयन्ती पहाड़ियों के पास । गगपुर

(बगाल मे)। जयन्ती से प्राप्त होनेवाला डोलोमाइट सम्भवत भारत का सर्वोत्तम डोलोमाइट है। इस डोलोमाइट की विशेषताएँ, इसमे सिलीका लोहा आदि अपद्रव्यो तथा क्षारो का न्यून मात्रा मे होना है, जैसा कि निम्नलिखित विश्लेषण से देखा जा सकता है—

कैल्शियम कार्बोनेट	..	५२.००
मैगनीशियम कार्बोनेट	..	४६.७०
लौह आक्साइड	..	०.३९
सिलीका	..	०.२०
एल्यूमिना	..	०.५७
क्षार	..	०.१४

जिरकोनिया (ZrO_2) तथा **जिरकोन** ($Zr SiO_4$)—ये दो खनिज मुख्य रूप से ब्राजील, लका और ट्रावनकोर मे पाये जाते हैं। जिरकोनिया को दुर्गल पदार्थों की भाँति प्रयोग करने से पूर्व शुद्ध कर लेना आवश्यक है। जब कि जिरकोन से केवल लौहकणो को दूर करके वैसा ही प्रयोग किया जा सकता है।

जिरकोनिया को शुद्ध करने की अनेक विधियाँ हैं। उनमे से एक मे जिरकोनिया को सर्वप्रथम नमक के अम्ल या गन्धकाम्ल के साथ गरम करके लौह और टिटैनियम (Ti) को दूर कर देते हैं। उसके बाद उसे सोडा के साथ गलाकर पानी मे अच्छी तरह मिलाकर छान लेते हैं। यह घोल गाढा करके इसमे केलास बनने दिये जाते हैं। ये केलास सोडियम जिरकोनेट के केलास होते हैं। इन केलासो को अमोनिया के साथ क्रिया कराकर निस्तापित करने पर शुद्ध जिरकोनियम आक्साइड अर्थात् जिरकोनिया मिलता है।

दुर्गल पदार्थ के रूप मे प्रयोग करने के लिए शुद्ध जिरकोनियम आक्साइड को 1400° से 0° पर निस्तापित करके उसका सारा आकुचन निकाल देते हैं। जिरकोन गरम करने पर आकुचित नहीं होता। अतः इसे निस्तापित करने की आवश्यकता नहीं होती। केवल लौह अपद्रव्य विद्युत्-चुम्बक द्वारा दूर कर दिये जाते हैं।

इन खनिजो के गलनाक बहुत अधिक (2500° से 0°), तापचालकता कम तथा लम्ब-प्रसार-गुणक बहुत ही कम (0.00000004) है। अतः इनका प्रयोग मुख्यतः चिन्तगारी प्लग, उच्चतनाव विद्युत्-रोधक और विशेष प्रकार की रासायनिक प्रयोग-शाला की परीक्षण-भट्ठियाँ बनाने मे होता है।

द्रावनकोर के समुद्री किनारे की रेत से जिरकोन का उत्पादन सर्वप्रथम मेसर्स द्रावनकोर मिनरल कम्पनी लिमिटेड द्वारा १९२२ ई० में प्रारम्भ हुआ था। इसके बाद एसोशिएटेड मिनरल कम्पनी लिमिटेड तथा ऐफ० ऐक्स पेरीरा एण्ड सन्स लिमिटेड आदि दूसरी कम्पनियों ने उत्पादन प्रारम्भ किया था। अब ये सब कारखाने द्रावनकोर कोचीन की सरकार द्वारा ले लिये गये हैं। द्रावनकोर के इस समुद्री किनारे की रेत से जिरकोन का कुछ वर्षों का उत्पादन दिया जा रहा है—

१९३५ ई० में ६६५४ टन

१९३६ ई० में २२१०० „

१९३७ ई० में १३२९ „

१९३८ ई० में १४५० „

साधारणत १,००० से १,५०० टन जिरकोन प्रतिवर्ष द्रावनकोर की इस रेत से उत्पन्न किया जा सकता है। अब चूँकि अलवेई का विरल-मृदा (Rare-earths) कारखाना इस मोनोजाइट रेत की १,५०० टन मात्रा को प्रतिवर्ष उपयोग में लायेगा। अतः जिरकोन के उत्पादन के और बढ़ जाने की सम्भावना है। परन्तु भारतीय उद्योग के लिए जिरकोन की बहुत थोड़ी मात्रा पर्याप्त होती है अतः शेष सारे उत्पादन का निर्यात कर दिया जाता है। इधर कुछ वर्षों से इसका निर्यात बाजार दूसरे देशों ने, विशेष कर आस्ट्रेलिया ने, अपने हाथ में ले लिया है। अतः सन् १९४९ ई० के बाद जिरकोन का उत्पादन बिल्कुल बन्द हो गया था।

बौक्साइट—इस खनिज को अशुद्ध एल्यूमिनियम हाइड्रॉक्साइड समझा जाता है, जिसमें सिलीका टिटैनियम आक्साइड तथा फेरिक आक्साइड मुख्य अपद्रव्य होते हैं। विभिन्न स्थानों से प्राप्त बौक्साइटों का रासायनिक सगठन काफी भिन्न होता है। परन्तु दुर्गल वस्तुओं के निर्माण में प्रयोग होनेवाले एक अच्छे नमूने का सगठन इन सीमाओं के बीच होना चाहिए—

एल्यूमिना

सिलीका

लौह आक्साइड

टिटैनियम आक्साइड

पानी

५०-९० प्रतिशत

३-५ „

०.५-४ „

८ प्रतिशत से कम

१०-३० प्रतिशत

शुद्ध बौक्साइट जिप्सम से मुलायम होता है और आपेक्षिक घनत्व लगभग २.९ होता है, पर अशुद्ध बौक्साइट काफी कठोर होता है।

बौक्साइटो में विभिन्न अपद्रव्यों के कारण उनके रंग भी भिन्न होते हैं। इन्हीं रंगों के आधार पर व्यापारिक बौक्साइटो को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जाता है—

श्वेत बौक्साइट—इस वर्ग के बौक्साइटो का रंग प्रायः हलका भूरा या थोड़ा पीला होता है। इस प्रकार के बौक्साइटो में सबसे कम लोहा रहने के कारण दुर्गल वस्तु-निर्माण में इसका उपयोग होता है। इस प्रकार के खनिज में मुख्य अपद्रव्य सिलिका होता है।

लाल बौक्साइट—इस वर्ग के बौक्साइटो का रंग ईंट जैसा लाल होता है। यह रंग मुख्य रूप से लौह आक्साइड अपद्रव्य के कारण होता है। इसे दुर्गल पदार्थ की भाँति कभी नहीं प्रयोग किया जाता।

नीला बौक्साइट—इस प्रकार के बौक्साइट का नीला रंग मुख्य रूप से कलिल फेरस सल्फाइड अपद्रव्य के कारण होता है। दुर्गल पदार्थ की भाँति प्रयोग होनेवाले बौक्साइट में लौह की ५ प्रतिशत से अधिक मात्रा आपत्तिजनक होती है।

सिलिकामय अपद्रव्यों को दूर करने के लिए बौक्साइट चूर्ण को घूर्णक ड्रम में जलधारा से धोया जाता है। अपद्रव्य एल्यूमिना से हलके होते हैं अतः जलधारा उन्हें बहाकर ले जाती है।

पिसे हुए बौक्साइट में लचीलापन नहीं होता। अतः यह अकेला ही ईंटे बनाने के काम में नहीं आ सकता। अग्निमिट्टी की ईंटों में इसे छर्री के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। इसके डालने से अग्निमिट्टी ईंटों की तापसहता काफी सीमा तक बढ़ जाती है। बौक्साइट से ईंटे बनानी हो तो सर्वप्रथम बौक्साइट में २०-२५ प्रतिशत चीनी मिट्टी मिलाकर पानी के साथ इसका मिश्रण-पिण्ड बना लेते हैं। इन पिण्डों के बड़े-बड़े लोदे बनाकर उन्हें लगभग १२००° से ० पर निस्तापित किया जाता है, जिससे उनका सारा आकुचन निकल जाय। इसके पश्चात् इन निस्तापित लोदों को पीसकर छर्री बनाकर इसके साथ लचीली अग्निमिट्टी मिलाकर ईंटे बना ली जाती हैं।

यदि केवल शुद्ध बौक्साइट का प्रयोग करना हो तो धुले हुए बौक्साइट चूर्ण के साथ चूने का पानी मिलाकर वस्तुएँ बना ली जाती हैं। परन्तु प्रायः इसका उपयोग अग्निमिट्टियों की दुर्गलता बढ़ाने के लिए किया जाता है।

बौक्साइट से बनी दुर्गल वस्तुएँ उन भट्ठियों के लिए विशेष उपयोगी होती हैं जिनमें उच्च तापक्रम तथा अधिक सवेग शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। जैसे चूर्ण-भट्ठियाँ तथा पडलिंग-भट्ठियाँ आदि।

बौक्साइट के प्राप्तिस्थान—बम्बई में बेलगाँव तथा कोल्हापुर।

कश्मीर में जम्मू के पास चकरगाँव।

मध्य प्रदेश में जबलपुर और कटनी के बीच तथा बालाघाट जिला।

आन्ध्र में विशाखपत्तनम् जिला।

बिहार में पालामऊ जिले में मोहबन्द, राँची जिले के लोहारडागा के पश्चिम में।

उड़ीसा में गजाम जिला, काला हॉडी।

काला हॉडी के एक विशेष बौक्साइट का विश्लेषण नीचे दिया जाता है—

सिलिका	० ९३
एल्यूमिना	६७ ८८
फैरिक आक्साइड	४००९
टिटैनियम आक्साइड	१०४
चूना	० ३६
गरम करने पर हानि	२६ ४७

लौह अयस्क—हैमेटाइट (Fe_2O_3) और मैग्नेटाइट (Fe_3O_4) भी कभी-कभी दुर्गल ईंटों के बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। फैरिक आक्साइड, आक्सीकारक वातावरण में, सिलिकामय धातुमलो की ओर काफी प्रतिरोधक शक्ति रखता है। अतः इन लौह अयस्को से बनी ईंटें वाष्पित्र गैस नालियाँ तथा ऐसे दूसरे स्थानों में प्रयोग की जा सकती हैं, जहाँ गरम गैसों के साथ हवा की काफी मात्रा हो। कभी-कभी इन ईंटों को लौह गलानेवाली भट्ठियों में परत देने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसमें इस दुर्गल परत का कुछ अंश अवकृत हो जाता है, जो आगे चलकर प्राप्त कर लिया जाता है।

लौह अयस्क के प्राप्तिस्थान—बिहार में सिंहभूमि जिला। उड़ीसा में मयूरभंज। मध्यप्रदेश में रायपुर और चाँदा। मैसूर में भद्रावती।

भास्मिक धातुमल—टामस और गिलक्राईस्ट-विधि द्वारा इस्पात बनानेवाले

कारखानो से प्राप्त धातुमल को भास्मिक धातुमल कहा जाता है। यह धातुमल डोलोमाइट ईटें बनाने में ईट कणों को जोड़कर रखने का कार्य करता है। अकेला भास्मिक धातुमल दुर्गल पदार्थ के रूप में नहीं प्रयोग किया जा सकता, कारण इसमें चूना और सिलीका की अधिक मात्रा रहती है। इसका मुख्य उपयोग सीमेण्ट बनाने में होता है।

इस भास्मिक धातुमल को कभी-कभी टामस-धातुमल भी कहा जाता है। इसके सगठन की सीमाएँ नीचे दी जाती हैं—

सिलीका	३० से ३६ प्रतिशत
एल्यूमिना और फ़ैरिक आक्साइड	१२ से १७ ,,
चूना	४८ से ५० ,,
मैगनीशिया	०० से ०३ ,,

ग्रेफाइट—यह भूरे काले रंग का एक खनिज है जो कार्बन का केलासीय रूप होता है। इसे प्लम्बेगो या काला सीसा भी कहते हैं। प्रकृति में ग्रेफाइट दो रूपों, चूर्ण रूप तथा परतमय रूप, में पाया जाता है। इस चूर्ण रूप ग्रेफाइट को पहले अकेलासीय कार्बन समझा जाता था, परन्तु शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी में देखने पर पता चलता है, कि इसकी रचना सूक्ष्म केलासीय है। दुर्गल घरियाओं को बनाने के लिए उत्तम परतमय ग्रेफाइट लका में मिलता है। यदि ग्रेफाइट अधिक परतमय हुआ, तो बनी हुई वस्तुओं में परतदोष आ जायगा। अतः वस्तु के टूटने की सम्भावना बढ़ जायगी। लका के ग्रेफाइट के कण कोण-सहित हैं। अतः इससे वस्तु में परत-दोष नहीं आता, जैसा कि दूसरे परतमय ग्रेफाइटों से बनी वस्तुओं में होता है। चूर्ण ग्रेफाइट मुख्य रूप से धातु के ढलाई-कारखानों में तथा काली सीसे की पेसिले बनाने के कारखानों में प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी लकड़ी के कोयला और अलकतरा को विद्युत्-भट्ठी में गरम करके कृत्रिम ग्रेफाइट बनाया जाता है। कार्बोरण्डम उद्योग में भी उपजात के रूप में ग्रेफाइट प्राप्त होता है।

श्रेष्ठ दुर्गल वस्तुएँ बनाने में प्रयोग किये जानेवाले ग्रेफाइट में कम से कम ९० प्रतिशत कार्बन होना चाहिए तथा माइका लौह यौगिक आदि अपद्रव्य यथासम्भव अनुपस्थित हों। ग्रेफाइट के अपद्रव्यों को प्लवन (Floatation) विधि से या बर्न (Burr) यन्त्र में पीसकर दूर किया जाता है।

वाष्पशील पदार्थों को दूर करने के लिए प्रयोग से पूर्व खनिज को ८००° से ९००° से० पर निस्तापित करते हैं। भारतीय तथा लका के ग्रेफाइटो में वाष्पशील पदार्थ ५ प्रतिशत तक होते हैं।

परतमय ग्रेफाइट के राख बनानेवाले अवयव बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। यदि परतदार ग्रेफाइट उचित आकार का और पर्याप्त कठोर है, तो १५ प्रतिशत तक राख होने पर भी यह कार्योपयोगी रहता है। माइका की उपस्थिति बहुत ही आपत्तिजनक है, कारण प्रयोग की साधारण अवस्थाओं में यह सरलता से पिघलकर घरिया पर छिद्रों को जन्म देती है। कार्बोनेट भी नहीं रहने चाहिए, अन्यथा गरम करने पर वे विच्छेदित होकर वस्तु को सरन्ध्र कर देते हैं। थोड़ी मात्रा में गन्धक प्रायः मिला रहने पर भी इसकी उपस्थिति, विशेष कर पाइराइटोज के रूप में, बहुत ही आपत्तिजनक है। ग्रेफाइट की राख १०००° से० तक नहीं गलनी चाहिए।

घरिया-निर्माण में उपयोगी ग्रेफाइट का कण-आकार बहुत ही छोटी सीमाओं के बीच होता है। दुर्गल वस्तु को कठोर और ठोस बनाने के लिए यह कण-आकार-नियन्त्रण बहुत ही आवश्यक है।

प्राकृतिक ग्रेफाइटो का आपेक्षिक घनत्व २.०१ से २.५८ तक होता है। इसकी तापचालकता अधिक तथा प्रसार-गुण बहुत कम है। अतः आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनों का इस पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। अग्निमिट्टी में ग्रेफाइट की थोड़ी मात्रा मिला देने से अग्नि-मिट्टी पर आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनों का हानिकर प्रभाव काफी कम हो जाता है और तापचालकता भी काफी बढ़ जाती है। इस दिशा में दूसरे कार्बन पदार्थों से ग्रेफाइट बहुत श्रेष्ठ है, कारण यह हवा में बहुत धीमी गति से जलता है। ग्रेफाइट में लचीलापन बिल्कुल नहीं होता है। अतः इसकी घरिया आदि बनाने के लिए इसमें चीनी मिट्टी, बॉल-मिट्टी तथा अग्निमिट्टी आदि लचीले पदार्थ डाले जाते हैं। ये पदार्थ कणों को जोड़कर रखने का कार्य करते हैं। शुद्ध ग्रेफाइट की चीनी मिट्टी पर कोई क्रिया नहीं होती, परन्तु ग्रेफाइट के अपद्रव्य दुर्गल मिट्टियों के लिए द्रावक का कार्य कर सकते हैं।

भारतवर्ष में ग्रेफाइट निम्नलिखित स्थानों पर खोदा जाता है—मध्यप्रदेश के बेतूल क्षेत्र में, उड़ीसा के पटना, सम्बलपुर और अथमलिक क्षेत्र में, आन्ध्र में विशाख-पत्तनम् के पास, मैसूर के कोलार जिला में तथा हैदराबाद एव राजपूताना में। इन

खानो में से आन्ध्र और उडीसा की केवल कुछ खानो में ही परतमय ग्रेफाइट मिलता है। कुछ समय पूर्व लन्दन की मॉरगल क्रुसीबिल कम्पनी लिमिटेड द्वारा ट्रावनकोर के बेलानौद, कुलेन तथा बेंगानूर नामक स्थानों से श्रेष्ठ प्रकार का परतमय ग्रेफाइट खोदकर निकाला जाता था। इस कम्पनी द्वारा सन् १९०१ से १९११ ई० तक ३५,००६ टन ग्रेफाइट निकाला गया था। परन्तु इसके बाद खुदाई अकस्मात् बन्द कर दी गयी। खुदाई बन्द करने का कारण जहाँ तक सम्भव है, यह रहा होगा कि उस समय ८०० में ९०० फुट की गहराई पर खुदाई करना उतना सरल नहीं था, जितना आज है। उन खानों में अब फिर से खुदाई प्रारम्भ होने की सम्भावना है।

कार्बोरण्डम—कार्बोरण्डम सिलिकान कार्बाइड (SiC) होता है और विशेष प्रकार की घरियाएँ तथा मफल-भट्ठियाँ बनाने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण दुर्गल पदार्थ है। साधारण प्रयोग की दुर्गल वस्तुएँ बनाने के लिए यह बहुत ही मँहगा है। कार्बोरण्डम प्रकृति में नहीं पाया जाता, कृत्रिम होता है। शक्तिशाली विद्युत्-धारा की उपस्थिति में सिलिका और कोक में संयोग कराकर इसे बनाया जाता है।



५५ भाग रेत तथा ३५ भाग कोक को १० भाग लकड़ी के बुरादे और २-४ भाग साधारण नमक के साथ मिलाकर विशेष प्रकार की विद्युत्-भट्ठी में डाला जाता है।

लगभग १८००° से० पर आंशिक गलना प्रारम्भ हो जाता है। क्रिया हो जाने के पश्चात् पदार्थों को धीरे-धीरे ठण्डा किया जाता है, जिससे केलासीकरण अच्छा हो। लकड़ी का बुरादा पदार्थों को सरन्ध्र बनाये रखने के लिए डाला जाता है, जिससे कार्बन मोनोक्साइड गैस सरलता से निकल जाय। साधारण नमक डालने से लौह-अशुद्धि वाष्पशील लौह क्लोराइड के रूप में उड़ जाती है।

पिघले पिण्ड के बीच में ग्रेफाइट तथा उसके चारों ओर केलासीय तथा अकेलासीय कार्बोरण्डम और दूसरे अपद्रव्य रहते हैं। धोकर तथा गन्धकाम्ल की क्रिया द्वारा इस अशुद्ध कार्बोरण्डम को इन पदार्थों से अलग किया जाता है। कार्बोरण्डम केलास काफी कठोर होते हैं। यह गाढ़े पीले से भूरे या नीलाभ काले तक बहुत-से रंगों के होते हैं। परन्तु विशुद्ध कार्बोरण्डम रंगहीन होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व ३.१७ से ३.२ तक और द्रवणांक २३००° से० से अधिक होता है। इसके द्रवणांक का निश्चित रूप से पता नहीं चल पाया है। इसमें लचीलापन बिल्कुल नहीं होता।

व्यापार में सिलिकान कार्बाइड बहुत-से व्यापारिक नामों से बेचा जाता है। उदाहरणार्थ क्रिस्टोलोन (Crystolone), सिल्फेक्स (Silfix), ग्लोवार, कार्बोफ्रेक्स (Carbofrax) आदि।

कार्बोरण्डम शान पत्थरों के रूप में भी प्रयोग किया जाता है, कारण कठोरता के क्षेत्र में हीरे के बाद इसी का स्थान है।

क्रोमाइट—यह क्रोमियम आक्साइड और लौह आक्साइड का मिश्रण है, जिसे प्रायः क्रोम आइरन अयस्क कहा जाता है। एक अच्छे क्रोमाइट में ६८ से ७० प्रतिशत तक क्रोमियम आक्साइड होता है। परन्तु इतना अच्छा अयस्क कम पाया जाता है। दुर्गल-वस्तु-निर्माण में प्रयोग होनेवाले अयस्क में प्रायः ३५ से ४० प्रतिशत क्रोमियम आक्साइड होता है और ६ प्रतिशत से कम सिलिका होती है।

क्रोमाइट का आपेक्षिक घनत्व लगभग ४.५ है और यह २०००° से ० से अधिक तापक्रम पर पिघलता है। क्रोमाइट में सर्वाधिक आकुचन ५००° से ० के आसपास पाया जाता है, जो सम्भवतः अणु-एकत्रीकरण (Polymerisation) के कारण होता है। इसमें १० से १५ प्रतिशत तक केओलिन मिलाने से इसकी दुर्गलता में कोई विशेष कमी नहीं आती। धातुमलो की इस पर क्रिया नहीं होती अतः खुली भट्टियों में दुर्गल परत लगाने के लिए इसका काफी प्रयोग किया जाता है।

दुर्गल वस्तुएँ बनाने के अतिरिक्त क्रोमाइट विशेष प्रकार के इस्पातो, अनेक रस-द्रव्यों तथा वर्णकों के बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। दुर्गल-वस्तु-निर्माण के लिए क्रोमाइट अयस्क में क्रोमिक आक्साइड की मात्रा के साथ उसकी भौतिक अवस्थाओं और उसमें उपस्थित अपद्रव्यों के प्रकार भी काफी विचारणीय होते हैं। यदि अयस्क में उपस्थित सिलिका अपद्रव्य सरपेण्टाइन के रूप में है, तो इससे बनी वस्तुओं की दुर्गलता काफी कम हो जाती है। विभिन्न रस-द्रव्यों को बनाने के लिए अधिक फेरिक आक्साइड वाली अयस्क अधिक उपयोगी होती है, कारण इस पर क्षारों की क्रिया सरलता से होती है। क्रोमियम धातु प्राप्त करने के लिए श्रेष्ठ प्रकार की अयस्क काम में लायी जाती है, जिसमें ४८ प्रतिशत या अधिक क्रोमियम आक्साइड हो तथा सिलिका, गन्धक, फास्फोरस आदि अपद्रव्य कम हो।

क्रोमाइट अयस्क के प्राप्तिस्थान—क्रोमाइट अयस्क मैसूर, उड़ीसा तथा बिहार के सिंहभूमि जिले में मिलती है। बिलोचिस्तान में भी काफी श्रेष्ठ प्रकार की अयस्क

पायी जाती है। यहाँ कुछ स्थानों से प्राप्त क्रोमाइट अयस्को के विश्लेषण दिये जाते हैं—

अवयव	मैसूर अयस्क	बिलोचिस्तान अयस्क	सिंहभूमि अयस्क
क्रोमिक आक्साइड	५१.०	५६.०	५१.०२
फेरिक आक्साइड	२२.५	१३.०	१९.४८
एल्युमिना	७.५	११.०	—
सिलीका	४.५	१.०	२.९०
चूना	०.५	१.०	—
मैगनीशिया	१२.५	१५.०	—

उड़ीसा प्रदेश के कोइन्झार में नौसाली गाँव के निकट बौला जंगल में क्रोमाइट की बड़ी अच्छी खाने हैं। ये खाने सबसे पास के रेलवे स्टेशन भद्रक से ३५ मील दूर हैं। इन खानों की खोज के बाद एक दम सन् १९४३ ई० से ही उत्पादन प्रारम्भ हो गया था। इन खानों में ५० फुट की गहराई तक सब प्रकार के अयस्क के २००,००० टन होने का अनुमान किया जाता है। परन्तु इसे अभी भी सिद्ध करना शेष है। कोइन्झार अयस्क में ४० से ५३ प्रतिशत तक क्रोमिक आक्साइड है। अतः यह धातु उत्पादन श्रेणी की है। निम्नलिखित सारणी में कोइन्झार में प्राप्त ५ विशेष क्रोम अयस्को के विश्लेषण दिये गये हैं।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
	%	%	%	%	%
क्रोमिक आक्साइड	४७.०	४५.६	५३.३	५३.२	४७.६
लौह	१२.२	१४.५	११.३	११.७	१२.२
सिलीका	१०.०	११.६	४.७	४.०	१०.०
फेरस आक्साइड	१५.७	१८.६	१४.५	१५.०	१५.७
अनुपात क्रोमियम लौह	२.६/१	२.२/१	३.२/१	३.१/१	२.५६/१

क्रोम मैगनेसाइट—लौह सहित मैगनेसाइट या क्रोमाइट की ईंटें अधिक दबाव पर कार्य नहीं कर सकती तथा तापक्रम परिवर्तनों को सहन नहीं कर सकती। यद्यपि सिलीका ईंटों का सह्यताप क्रोमाइट ईंटों के सह्यताप से कम है, परन्तु इन्हीं कारणों से

भास्मिक इस्पात-विधि की भट्ठियों के उन भागों पर क्रोमाइट ईंटों का प्रयोग नहीं किया जाता, जिन भागों में दबाव या तापक्रम-परिवर्तन अधिक रहता है और अब भी इनके स्थान पर सिलिका ईंटों का प्रयोग किया जाता है।

इधर कुछ वर्षों के अन्वेषण कार्य द्वारा क्रोम और मैंगनीशिया ईंटों की इस कठिनाई को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। इन अन्वेषण कार्यों से पता चला है कि क्रोम और मैंगनीशिया को मिला देने से क्रोम मैंगनीशिया ईंट का दबाव तथा तापक्रम-सहन करने की शक्ति बढ़ जाती है। इस प्रकार की काफी ईंटें बाजार में विभिन्न नामों से बिकती हैं। इन क्रोम मैंगनीशिया ईंटों में सबसे बड़ा दोष यह है कि प्रयोग के समय ये लौह को अवशोषित करके फूल जाती हैं।

नीचे कुछ विशेष प्रकार की दुर्गल ईंटों के तुलनात्मक भौतिक गुण दिये जाते हैं—

दुर्गल ईंट	सह्यताप सेण्टीग्रेडों में	रन्ध्रता प्रतिशत में	दबाव पर दुर्गलता सेण्टीग्रेडों में	
			Ta	Te
१. सिलिका ईंट	१६८० से अधिक	१९.९०	१६७०°	१७१०°
२ भारतीय क्रोमाइट	१७७५° ,, ,,	२०.७५	१४२५°	१४२५°
३ अमेरिका की क्रोमाइट	,, ,, ,,	१५.८०	१४४४°	१४६०°
४ भारतीय मैंगनेसाइट	,, ,, ,,	२४.८०	१५२०°	१५२०°
५ आस्ट्रिया की मैंगनेसाइट	,, ,, ,,	१६.७०	१३००°	१५००°
६ कम लौहयुक्त मैंगनेसाइट	,, ,, ,,	२५.८०	१६८८°	१७२०°
७ इंग्लैण्ड की क्रोम मैंगनेसाइट	१७५५° ,, ,,	२२.३०	१५२०°	१५६०°
८ आष्ट्रिया ,, ,, ,,	,, ,, ,,	२०.४०	—	—
९ जर्मनी ,, ,, ,,	,, ,, ,,	२५.२०	१६६०°	१७४५°
१० फास्ट्रोइट	१८५०° ,, ,,	—	१६४०°	१७३७°

नोट—Ta = प्राथमिक गलन तापक्रम।

Te = विकृति तापक्रम।

दुर्गल वस्तुएँ बनाने में प्रयोग होनेवाले कुछ खनिजों के उत्पादन नीचे दिये जाते हैं।

उत्पादन इकाइयाँ सैकड़ा टनो में—

वर्ष	क्रोमाइट	ग्रेफाइट	केईनाइट	चीनी मिट्टी
१९४४	३९६	९ २७	२९२	४६५
१९४५	३११	१३ ००	३३७	६७३
१९४६	२४२	१६ ००	१३५	७२८
१९४७	३४७	१२ ००	१४३	६६६
१९४८	२२५	१६ ००	१२६	४१२
१९४९	१९४	११ ००	१९९	४२४
१९५०	१६७	१६ ००	३५५	५३६
१९५१	१६७	१७ ००	४२५	६९१
१९५२	३५२	२९ ००	२६९	८६०

छर्रों—अनुभव से पता चला है कि अग्निमिट्टियों में कुछ छर्रों मिलाकर बनायी गयी दुर्गल वस्तुओं के गुण काफी सुधर जाते हैं। छर्रों प्रायः साफ, टूटी अग्निईटो या सैगरो को मोटे चूर्ण के रूप में पीसकर बनाते हैं। इस छर्रों चूर्ण को बाद में तीन वर्गों में बाँटा जाता है। बड़ी छर्रों, मध्यम छर्रों तथा महीन छर्रों। बड़ी छर्रों के कणों का औसत व्यास लगभग ७ मिलीमीटर, मध्यम का ३ मिलीमीटर तथा महीन का ३ मिलीमीटर से कम होता है। इन विभिन्न कण आकारवाली छर्रियों को मिलाने के अनुपात काफी भिन्न होते हैं। परन्तु इन्हें सदैव इस अनुपात से मिलाये कि बड़े कणों के बीच के स्थान को छोटे कण भर दें। इससे वस्तु का घनत्व और शक्ति बढ़ जाती है। अनेक कारखानों में, विशेषकर भारत तथा इंग्लैण्ड के कारखानों में छर्रों-कण-आकार-विभाजन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। परन्तु जर्मनी में छर्रों के वर्गीकरण पर अधिक ध्यान दिया जाता है। टूटे सैगर अग्निमिट्टी के साथ ही चूर्णक यन्त्रों में पीसे जाते हैं और उसके बाद इस चूर्ण को पानी के साथ मिलाकर सैगर आदि दुर्गल वस्तुएँ बनायी जाती हैं। छर्रों से बनी हुई दुर्गल वस्तुओं पर छर्रों का प्रभाव साराशत इस प्रकार पड़ता है—

(अ) छर्रों की मात्रा का प्रभाव

(१) सुखाव तथा पकाव आकुचन दोनों काफी कम हो जाते हैं, कारण छर्रों रहने से वस्तु के लिए मिश्रण-पिण्ड बनाने में पानी की कम मात्रा की आवश्यकता होती है।

(२) मिट्टी में छरीं की मात्रा जितनी ही अधिक होगी, मिश्रण की तनन एवं सपीडन क्षमताएँ उतनी ही कम होगी।

(३) छरीं-मिट्टी-मिश्रण की आभासित रन्ध्रता बढ़ जाती है। छरीं मिलाते समय उस पर की गयी क्रियाओं का भी मिश्रण-पिण्ड की प्रकृति और रन्ध्रता पर काफी प्रभाव पड़ता है। यदि छरीं, जलने पर कम ठोस हो जानेवाली मिट्टियों से बनायी गयी है, तो पात्र अधिक सरन्ध्र होता है। यदि अग्निमिट्टी के साथ मिलाने से पूर्व छरीं को पानी में डालकर उसे पानी अवशोषित कर लेने दिया जाय, तो अग्निमिट्टी के सूक्ष्म कण छरीं के रन्ध्रों में नहीं घुस सकेंगे। अतः ऐसी दशा में वस्तु अधिक सरन्ध्र होगी। परन्तु यदि सूखी छरीं के साथ मिट्टी मिलाकर उस पर पानी डाला जाय, तो मिट्टी के सूक्ष्म कण छरीं के रन्ध्रों में घुसकर वस्तु की रन्ध्रता कम कर देते हैं।

(आ) छरीं के कण-आकार का प्रभाव

(१) छरीं के भिन्न कण-आकारों का आकुचन पर कोई नियमबद्ध प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु उच्च तापक्रम पर बहुत महीन छरीं अधिक आकुचन उत्पन्न करती हैं। इसका कारण यह है कि कण कुछ पिघल जाते हैं।

(२) बड़े आकार की छरीं से मिश्रण की शक्ति पकाने के पूर्व और पश्चात् दोनों अवस्थाओं में कम हो जाती है। अग्नि-मिट्टी और मोटी छरीं के मिश्रण की अपेक्षा, मिट्टी और महीन छरीं का मिश्रण अधिक दबाव सहन कर सकेगा। बड़े कणवाली छरीं वस्तुओं को भुरभुरा बना देती है।

(३) छरीं के कण बड़े रहने पर पकाते व ठण्डा करते समय वस्तु की तापक्रम-परिवर्तन-रोधक शक्ति काफी बढ़ जाती है।

(४) मध्यम कण-आकारवाली छरीं की अपेक्षा महीन छरीं से रन्ध्रता अधिक आती है। परन्तु महीन छरीं से उच्च तापक्रम पर कौचीयपन शीघ्र होता है।

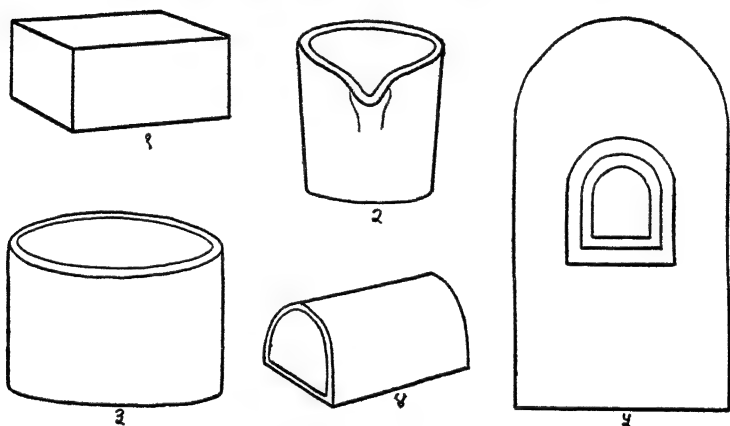
इन सब बातों का ध्यान रखते हुए प्रायः विभिन्न कण-आकारवाली छरियों को उचित अनुपात में मिलाकर छरीं-मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। यह अनुपात इस बात पर निर्भर करता है कि बननेवाली वस्तु किस कार्य के लिए प्रयोग की जायगी।

छरियों का रासायनिक संगठन अग्निमिट्टी के समान ही होना चाहिए और प्रयोग से पूर्व छरीं यथासम्भव उच्च तापक्रम पर पका ली गयी हो। यूरोपीय देशों में प्रायः अग्निमिट्टियों को लगभग 1400° से० पर पकाकर छरीं बनायी जाती है और इसे

शेमोटे (Chamotte) के नाम से बेचते हैं तथा इंग्लैण्ड में छर्री को ग्राग (Grog) कहते हैं।

छर्री शब्द प्रायः पकी हुई मिट्टियों के चूर्ण के लिए प्रयोग किया जाता है, परन्तु कभी-कभी यह शब्द चूर्ण सिलीका या निस्तापित बौक्साइट, कार्बोरण्डम आदि के लिए भी प्रयोग किया जाता है।

दुर्गल वस्तुएँ—उपर्युक्त दुर्गल पदार्थों से बनी वस्तुएँ 'दुर्गल वस्तुएँ' कहलाती हैं। विभिन्न उद्योगों में प्रयोग की जानेवाली भिन्न दुर्गल वस्तुओं में मुख्य रूप से दुर्गल ईंटे, सैगर, मफल, घरियाएँ और काँच गलाने के भाण्ड आदि हैं।



चित्र ३० विभिन्न दुर्गल वस्तुएँ

१ अग्निईंटे २ घरिया ३ सैगर, ४ मफल ५ काँच गलाने का भाण्ड।

दुर्गल ईंटे—दुर्गल ईंटे अधिकतर अग्नि-मिट्टियों से बनायी जाती हैं। अग्नि मिट्टी के अतिरिक्त दूसरे दुर्गल पदार्थ भी इस कार्य के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। जब दुर्गल ईंटे अग्निमिट्टियों से बनायी जाती हैं, तब उन्हें अग्निईंटे भी कहा जाता है। विशेष अवस्थाओं में शुद्ध रेत, स्फटिक चूर्ण, क्वार्ट्जाइट तथा केओलिन उद्योग से प्राप्त रेत आदि जैसे अधिक सिलीकामय पदार्थों से भी दुर्गल ईंटे बनायी जाती हैं। इन्हें सिलीका ईंटे कहा जाता है। विशेष कार्यों के लिए प्रयोग की जानेवाली ईंटों के

बनाने के लिए प्रायः मैग्नेसाइट, क्रोमाइट, बौक्साइट, ग्रेफाइट या कार्बोरण्डम-जैसे विशेष दुर्गल पदार्थ प्रयोग किये जाते हैं।

उपयोग—अग्निमिट्टियों से बनी दुर्गल ईंटे मुख्यतः भट्ठियों, गैस-नल, वाष्पित्र आदि की दुर्गल परत बनाने में प्रयुक्त की जाती है। अर्द्ध सिलीका ईंटे अधिकतर भट्ठियों की गोलाकार छत तथा मेहराबे, क्यूपोला (Cupola) और घरिया भट्ठी आदि के बनाने के काम आती हैं, कारण इनमें आयतन का अपरिवर्तित रहना आवश्यक है। अर्द्धसिलीका ईंटो पर धातुमल की या दूसरे रासायनिक सक्रिय पदार्थों की क्रिया शीघ्रता से होती है। यदि यह धातुमल आदि गुणों में भास्मिक हो तो ईंटो पर क्रिया और भी शीघ्रता से करते हैं। अर्द्धसिलीका ईंटे अधिकतर कोक बनानेवाली भट्ठियों के निर्माण में प्रयोग की जाती है। अच्छी अग्निईंटो या सिलीका ईंटो की अपेक्षा अर्द्धसिलीका ईंटे सदैव ही कम दुर्गल होती हैं, कारण अग्निमिट्टी में रेत गैनिस्टर या सिलीका-चट्टान-चूर्ण डालने से उसकी दुर्गलता सदैव कम ही हो जाती है। जहाँ अधिक तापरोधकता और आकुचन के पूर्ण अभाव की आवश्यकता हो वहाँ शुद्ध सिलीका ईंटे, विशेषकर जिनमें थोड़ा चूना भी मिला हो, प्रयुक्त की जाती हैं। काँच भट्ठियों के ऊपरी भाग तथा गैसतापित भट्ठियों के सर्वाधिक गरम भागों के बनाने में सिलीका ईंटो का प्रयोग बहुत किया जाता है। इस कार्य के लिए अग्निईंटे कम उपयोगी होती है, कारण गरम करने पर सिकुड़ने के कारण अधिक कालिक प्रयोग के पश्चात् ये ईंटे गिर जाती हैं। परन्तु अग्नि-ईंटे, सिलीका ईंटो या अर्द्ध सिलीका ईंटो की अपेक्षा आकस्मिक ताप-परिवर्तन अधिक सह सकती हैं।

प्रकोष्ठ-भट्ठियों, कोक-भट्ठियों या मफेल-भट्ठियों के बीच की दीवारें बनाने के लिए मुख्य रूप से ग्रेफाइट प्लम्बेगो या कार्बोरण्डम ईंटो का प्रयोग होता है, कारण इन दीवारों में अधिक तापचालकता और आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनों को सहन करने की क्षमता अधिक होनी चाहिए। इन ईंटो में अम्लीय और क्षारीय धातुमलों के सक्षारक प्रभाव को सहने की शक्ति अधिक होती है। अतः ये ताँबा, सीसा, एल्यूमिनियम, इस्पात आदि को गलानेवाली भट्ठियों में प्रायः प्रयोग की जाती हैं। क्रोमाइट ईंटे उदासीन होती हैं और उन सभी कार्यों के लिए प्रयोग की जाती हैं, जिनमें कार्बन ईंटे प्रयोग की जाती हैं। परन्तु कार्बन ईंटो की अपेक्षा क्रोमाइट ईंटो में बाहरी धक्का व चोट सहने की शक्ति अधिक होती है।

जहाँ अधिक दुर्गलता तथा भास्मिक धातवीय आक्साइड और भास्मिक धातुमलो के लिए प्रतिरोधक शक्ति की आवश्यकता हो, वहाँ डोलोमाइट और मैग्नीशिया भास्मिक ईंटें प्रयुक्त की जाती हैं। इन ईंटों का मुख्य उपयोग लौह और इस्पात उद्योग में भट्ठियों और परिवर्तकों के अन्दर दुर्गल परत लगाने में होता है। डोलोमाइट ईंटों का स्थान मैग्नीशिया ईंटें लेती जा रही हैं, कारण डोलोमाइट ईंटें मैग्नीशिया ईंटों की अपेक्षा कम टिकाऊ होती हैं। सोना, चाँदी और प्लैटीनम की शोधन-भट्ठियों तथा सीसा एण्टीमनी और ताम्र अयस्को के लिए प्रद्रावण-भट्ठियों के बनाने में मैग्नीशिया ईंटें अधिक उपयोगी हैं। सीमेण्ट की घूर्णक-भट्ठियों में भी इनका प्रयोग किया जाता है। जिरकोनिया ईंटें और मैग्नीशिया ईंटें समान कार्यों के लिए प्रयोग की जाती हैं। परन्तु जिरकोनिया ईंटें अधिक दुर्गल तथा विद्युत्-भट्ठियों की छत व मेहराबों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं। मैग्नीशिया ईंटों की अपेक्षा बौक्साइट ईंटें सीमेण्ट की घूर्णक भट्ठियों तथा सीसे की शोधन-भट्ठियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं। ठीक प्रकार से बनायी जाने पर बौक्साइट ईंटों में असाधारण सक्षारण सहन-क्षमता आ जाती है।

दुर्गल ईंटें बनाने के लिए प्रयोग की जानेवाली अग्निमिट्टियों पर प्रयोग से पूर्व प्राकृतिक क्रियाएँ करा ली जाती हैं। प्राकृतिक क्रियाओं से मिट्टी समाग तथा कम ठोस हो जाती है। परिणाम-स्वरूप इसमें पानी अच्छी तरह मिलाया जा सकता है और मिश्रण-पिण्ड यन्त्र में समान रूप से गुजरता है। देखा गया है कि बहुत से कार्यों के लिए दुर्गल ईंटें दो या दो से अधिक मिट्टियों के मिश्रण से अच्छी बनती हैं। कारण ऐसा करने से ईंट में सभी आवश्यक गुण लाये जा सकते हैं, जो एक ही मिट्टी में होना कठिन है। आकुचन को उचित सीमा के भीतर रखने के लिए अग्निमिट्टी के साथ थोड़ी छर्ी की मात्रा भी मिलानी चाहिए। काँचित द्रावक तरल में मोटी छर्ी की अपेक्षा महीन छर्ी शीघ्रता से घुलकर ठोस ईंट बनाती है, जिसके कारण आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तन से ईंट शीघ्र ही चटक जाती है। दुर्गल वस्तु-निर्माण में प्रयोग किये जानेवाले पदार्थों के कण-आकार के नियन्त्रण से वस्तु में अनेक उपयोगी गुण आ जाते हैं।

पकाते समय ईंट के अधिक गलनशील अवयव एक श्यान द्रव-सा बनाते हैं, जो शेष पदार्थों को जोड़कर रखने का कार्य करता है। इस श्यान द्रव पर (विशेषकर बड़े कणवाले पदार्थों का प्रयोग करने पर) दबाव की उपस्थिति में वस्तु की दुर्गलता निर्भर

करती है। ईंट के अगलनशील कणों को जोड़कर रखनेवाला मिट्टी से प्राप्त श्यान द्रव छर्नी में उपस्थित श्यान द्रव से भिन्न होता है, चाहे छर्नी उसी मिट्टी से क्यों न बनी हो। इसका कारण यह है कि छर्नी बनाते समय मिट्टी को उच्च तापक्रम पर पकाने के कारण मिट्टी का द्रावक कम गलनशील पदार्थों को अपने में इतना घुला लेता है, कि वह अधिक श्यान और कम गलनशील हो जाता है। इस प्रकार छर्नी का यह द्रावक कम गलनशील और अधिक श्यान होता है। जब मिट्टी और छर्नी को साथ-साथ पकाया जाता है, तो छर्नी की अपेक्षा मिट्टी के द्रावक शीघ्र गल जाते हैं और स्वतन्त्र रूप से अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। ईंटों को उच्च तापक्रम पर पूर्णतया पका देने से द्रावक कड़ा हो जाता है और कम गलनशील पदार्थों को अब और अधिक नहीं घुला सकता। अतः इससे बनी हुई ईंट दबाव पर अधिक दुर्गल होती है। अर्द्ध सिलिका ईंटें कभी-कभी केओलिन शोधन कारखानों से प्राप्त रेतों से भी बनायी जाती हैं। परन्तु इन रेतों में प्रायः फेल्सपार माइका आदि गलनशील पदार्थ रहते हैं। अतः इनसे बनी ईंटें द्वितीय श्रेणी की होती हैं। इन ईंटों का आकुचन बहुत ही कम होता है, कारण उनमें सिलिका की मात्रा अधिक रहती है।

दुर्गल ईंट-निर्माण—अग्नि-ईंटें बनाने की सर्वसाधारण विधि में अग्नि-मिट्टियों को छर्नी के साथ चूर्ण कर लिया जाता है। परन्तु श्रेष्ठ ईंटें बनाने के लिए यह विधि सन्तोषजनक नहीं है। अच्छी ईंटें बनाने के लिए मिट्टियाँ पूर्व ही अलग-अलग चूर्ण कर ली जाती हैं और विभिन्न कण आकारवाली छर्णियों को उचित अनुपात में मिलाकर छर्नी-मिश्रण बना लिया जाता है। इसके बाद मिट्टी में छर्नी-मिश्रण की उचित मात्रा मिलाते हैं। बाद में एक मिश्रक में मिट्टी तथा, छर्नी-मिश्रण के मिश्रण में पानी की उचित मात्रा मिलाकर लचीला पिण्ड बना लिया जाता है। मिश्रक से पिण्ड पगयन्त्र में जाता है। ये पगयन्त्र क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। परन्तु क्षैतिज पगयन्त्र को प्राथमिकता दी जाती है, कारण इसमें मिट्टी अच्छी प्रकार गूंधी जाती है।

विपरीत दिशा-मिश्रकों के विकास से पदार्थों के कण-आकार का नियन्त्रण सरल हो गया है, कारण इन मिश्रकों में पदार्थ थोड़े पिसने के साथ-साथ मिलते भी जाते हैं। यह यन्त्र पैन-यन्त्र की भाँति होता है। परन्तु इसमें भारी बेलनों के स्थान पर मिश्रक पखे लगे रहते हैं और एक हलका बेलन होता है। यन्त्र का बाहरी ड्रम एक दिशा में घूमता

है तथा मिश्रक पखे और बेलन उसकी विरुद्ध दिशा में घूमते हैं। हलका बेलन घूमकर मिश्रण को गूँधता है, परन्तु कण-आकार को छोटा नहीं करता। आवश्यकता होने पर इस अवस्था में पानी या और कोई कणों को जोड़कर रखनेवाला पदार्थ डाला जा सकता है।

यदि अग्नि-मिट्टी कडी हो तो मिश्रण को पगयन्त्र में भेजने से पूर्व उसे एक या अधिक दिन तक अवशोषण गड्ढों में रख दिया जाता है। इससे मिश्रण-पिण्ड पानी को समाप्त रूप से अवशोषित कर लेता है, जिससे आगे की क्रियाओं में सरलता होती है।

ईंटे बनाने के लिए अनेक प्रकार के यन्त्र प्रयोग किये जाते हैं। परन्तु हाथ से ईंटे बनाना अब भी प्रचलित है। कुछ लोगों का विश्वास है कि हाथ से बनी ईंटे यन्त्रों से बनी ईंटों की अपेक्षा अधिक अच्छी होती है, कारण यन्त्रों से बनाने पर अधिक दबाव के कारण ईंट अधिक ठोस हो जाती है। यन्त्रों द्वारा अधिक दबाव से बनी ईंटों में आन्तरिक तनाव कभी-कभी काफी अधिक हो जाता है। जब ईंटों की आकृति, स्पष्टता और आकार तथा यथार्थता अधिक महत्वपूर्ण हो, तो प्रायः हस्तचालित प्रेसों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु इस विधि से उत्पादन कम हो जाता है।

इंग्लैण्ड में हाथ से बनी ईंटों के लिए कम मुलायम मिट्टी का प्रयोग करते हैं। एक कुशल कारीगर केवल एक बच्चे की सहायता से, हाथ से २००—२५० ईंटे प्रति घंटा बना सकता है। ये ईंटे इतनी यथार्थ होती हैं, कि दुबारा दबाने की आवश्यकता नहीं होती। अमेरिका में हाथ से ईंटे बनाने के लिए मुलायम मिश्रण-पिण्ड का प्रयोग करते हैं। परन्तु इन ईंटों की आकृति व आकार में यथार्थता लाने के लिए इन्हें दुबारा दबाना पड़ता है। अमेरिका में एक कारीगर दो बच्चों की सहायता से प्रति घंटा ४०० ईंटे हाथ से बना सकता है। ये ईंटे आशिक रूप से सूख जाने पर दबाव यन्त्रों में दबायी जाती हैं। यहाँ पर भी एक मनुष्य दो बच्चों की सहायता से एक घण्टे में लगभग उतनी ही ईंटे दबा कर ठीक कर देता है जितनी कि बनानेवाला कारीगर एक घण्टे में बनाता है।

यन्त्रों से ईंटे बनाने के लिए साधारणतया तीन विधियाँ प्रचलित हैं। लचीली विधि, अर्द्ध-लचीली विधि तथा अर्द्धशुष्क विधि। लचीली विधि में काफी नरम मिश्रण-पिण्ड का प्रयोग किया जाता है, जैसा कि हाथ से बनी ईंटों के लिए प्रयोग किया जाता

है। इस विधि में ईंटे अधिकतर तार से काटकर बनायी जाती है। इस कार्य लिए मिश्रक में अच्छी प्रकार मिलाया हुआ मिश्रणपिण्ड विशेष प्रकार के पगयन्त्र में रखा जाता है। इस पगयन्त्र से मिश्रण-पिण्ड एक ठोस ढण्डे के रूप में निकलता है। इस ढण्डे की चौड़ाई और मोटाई बननेवाली ईंट की चौड़ाई और मोटाई के समान होती है। अतः इसमें से जितनी लम्बी ईंट बनानी हो, उतने लम्बे टुकड़े काट लिये जाते हैं। इस ठोस ढण्डे से पहले ६ ईंटों की लम्बाई के बराबर टुकड़ा काट लिया जाता है, जो आगे चलकर एक लकड़ी में लगे तारों की सहायता से ६ बराबर भागों में काट दिया जाता है। इस प्रकार एक बार में ६ या ६ से अधिक ईंटे बनती हैं और तत्क्षो पर सुखाने के लिए ले जायी जाती हैं। जब आकृति व आकार में यथार्थता लानी हो तो कुछ सूख जाने के बाद इन ईंटों को दुबारा दबाया जाता है।

अर्द्ध लचीली विधि में मध्यम कण आकार का अग्नि-मिट्टी चूर्ण, छर्ी और पानी की उचित मात्राएँ एक मिश्रक में मिलायी जाती हैं, जिससे नरम पिण्ड बन जाय। इस पिण्ड को एक नाँद-मिश्रक में ले जाते हैं, जहाँ इसमें अग्नि-मिट्टी का महीन चूर्ण मिलाकर इसे कुछ कड़ा कर लिया जाता है। इस पिण्ड को पगयन्त्र में ले जाकर विशेष प्रकार के यन्त्रों की सहायता से ईंटे बनायी जाती हैं। इस विधि में यद्यपि इतना अधिक पानी नहीं मिलाया जाता कि ईंट ऐंठ जाय या आकुचित हो जाय, परन्तु फिर भी अग्नि-मिट्टी के सभी गुण तथा लचीलापन विकसित हो जाता है। चूँकि इस विधि में अधिक दबाव की आवश्यकता नहीं पडती, अतः अधिक दबाव से बनी ईंटों में उच्च दबाव के कारण आने वाले दोषों से भी छुटकारा मिल जाता है।

अर्द्ध-शुष्क-विधि से ईंटे बनाने के लिए काफी शक्तिशाली प्रेस की आवश्यकता पडती है। इस विधि में छर्ी तथा मिट्टी के मिश्रण को अर्द्ध-शुष्क चूर्ण के रूप में प्रयोग किया जाता है। चूर्ण में केवल इतना पानी रहता है कि दबाने पर वह ठोस हो जाय। पानी की मात्रा प्रायः १० प्रतिशत से अधिक नहीं रहती और यह पानी जलवाष्प के रूप में चूर्ण में मिलाया जाता है, कारण इतनी थोड़ी मात्रा में द्रव पानी को समान रूप से मिलाना कठिन है। यह विधि शैल और दूसरी शुष्क मिट्टियों के लिए प्रयोग की जाती है, जिनमें लचीलापन कम होता है। इस कार्य के लिए अनेक प्रकार के प्रेसों का प्रयोग किया जाता है, जो दो तीन बार में थोड़ा-थोड़ा करके काफी दबाव डाल सकते हैं। दबाव कितना ही अधिक क्यों न हो, केवल एक बार दबाने से ईंट मजबूत नहीं बनती।

दो-तीन बार दबाव देने से ईंट से अधिक हवा निकल जाने के कारण ईंट ठोस हो जाती है। इस विधि से बनी ईंटो में आकार व आकृति की अधिक यथार्थता एवं कम आकुचन तथा अधिक दबाव सहन शक्ति होती है। परन्तु अर्द्ध लचीली विधि से बनी ईंटो की अपेक्षा इनमें घर्षण-रोधक शक्ति कम रहती है तथा वे धातुमलो और भट्ठी-गैसो के सक्षारक प्रभाव को कम सह पाती हैं। छरीं-मिट्टी-मिश्रण को पानी के साथ मिलाकर यदि उच्च दबाव लगाया जाय तो ईंटो के तल पर एक रक्षक परत जैसी बन जाती है, जो साधारण घर्षण से ईंट की रक्षा करती है।

सुखाना—अर्द्ध-शुष्क विधि से बनायी गयी ईंटो में पानी की मात्रा इतनी कम रहती है कि उन्हें बिना सुखाये ही सीधे भट्ठी में ले जाया जाता है। हाथ से दबाकर बनायी गयी साधारण ईंटो में २०-२५ प्रतिशत तक पानी रहता है। अर्द्ध लचीली विधि से बनी ईंटो में पानी १० से १५ प्रतिशत तक रहता है। पानी की मात्रा उस विधि पर निर्भर करती है, जिस विधि से ईंटें बनायी गयी हैं। २० प्रतिशत पानी होने पर साधारण आकार की दस हजार ईंटो को सुखाने में लगभग ७ टन पानी सुखाकर दूर करना होता है।

ईंटें प्रायः खुले स्थानों में सुखायी जाती हैं, विशेषतः उस समय जब ईंटें हाथ से दबाकर बनायी गयी हों। साँचे से निकालकर ईंटें ऐसे स्थान पर चपटी लिटा दी जाती हैं, जिसपर पहले से ही रेतकी पतली परत छिड़क दी गयी हो। पर्याप्त कठोर हो जाने पर ईंटें स्तम्भ बनाकर रखी जाती हैं। स्तम्भ बनाते समय प्रत्येक दो ईंटों के बीच में इतना स्थान रखा जाता है, कि बीच में हवा सरलता से बह सके। ये ईंटस्तम्भ प्रायः ऊँचे स्थान पर बनाये जाते हैं, जिससे आगे चलकर सूखने की गति शीघ्र हो। धरातल से १० फुट की ऊँचाई पर सूखने की गति धरातल की अपेक्षा लगभग दुगुनी होती है। वर्षा की सम्भावना होने पर ये ईंट-स्तम्भ पुआल की चटाइयों आदि हल्की चीजों से ढक दिये जाते हैं, जिससे ईंटों पर अधिक भार भी न पड़े और पानी से सुरक्षित भी रहे।

बड़े-बड़े ईंट के कारखानों में ईंटें सुखाने के लिए अलग से ढके हुए स्थान रखे जाते हैं। जिससे सुखाने की क्रिया तेज हो और कम स्थान में ही अधिक उत्पादन हो सके। इसके लिए बहुत से कृत्रिम सुखानेवाले स्थानों की रचना होती है, परन्तु भारतवर्ष जैसे गरम देशों में यह आवश्यक नहीं है, कारण यहाँ हवा काफी गरम रहती है। कृत्रिम

ढग से गरम किये गये स्थान उन देशो मे आवश्यक होते है, जिनमे धूप कम निकलती है। पश्चिमी देशो मे सुखाने के लिए भट्ठी के व्यर्थ ताप का उपयोग करते है। सुखानेवाले प्रकोष्ठ मे उचित स्थानो पर पखे लगाने से सुखाने की गति काफी तेज की जा सकती है। पखो से हवा का प्रवाह बन्द नहीं होता।

दुर्गल ईंटों के गुण—वैसे तो दुर्गल ईंटो के गुण उन पदार्थों पर निर्भर करते है, जिनसे वे बनायी जाती है। परन्तु ईंट बनाने तथा पकाने के समय उन पदार्थों पर की गयी क्रियाओ का भी ईंटो के गुणो पर प्रभाव पडता है। दुर्गल ईंटो के मुख्य गुण साराशत इस प्रकार है—

दुर्गलता—ईंटो की दुर्गलता उन अवस्थाओ पर निर्भर करती है, जिनमे ईंट का परीक्षण किया जा रहा है। यदि परीक्षा के समय वातावरण आक्सीकारक हो तथा तापक्रम 10° से० प्रति मिनट की गति से बढ रहा हो, तो दुर्गल ईंट का गलनताप 1540° से० होता है। श्रेष्ठ प्रकार की दुर्गल वस्तुओ मे 1670° से० से नीचे गलने का कोई चिह्न नहीं प्रकट होना चाहिए।

अधिक काल तक गरम करने का ईंट पर प्रभाव उसके सगठन पर निर्भर करता है। सिलिका ईंटे प्रारम्भिक गलन तापक्रम आते ही एक दम विकृत हो जाती है, जब कि अग्निमिट्टी ईंटे बहुत धीरे-धीरे विकृत होती है। इस विकृति का मुख्य कारण अग्नि-मिट्टी को अधिक काल तक गरम करने पर सिलीमेनाइट या मूलाइट केलासो का बनना बताया जाता है। यदि निर्माणकर्त्ता द्वारा दुर्गल ईंट पूरी तरह से पकायी नहीं गयी, तो आगे चलकर प्रयोग के समय अग्नि-मिट्टी से बनी ईंट मे आकुचन और सिलिका ईंट मे प्रसार होगा। ईंट के आकुचन तथा प्रसार की परीक्षा के लिए परीक्षण टुकडे ($3'' \times 2'' \times 2''$) को दो घण्टे मे 1410° से० तक गरम करके आक्सीकारक वातावरण मे इसी तापक्रम मे २ घण्टे तक और रखा जाता है। अच्छी दुर्गल ईंटो के इस परीक्षण मे एक प्रतिशत से अधिक आकुचन या प्रसार नहीं होना चाहिए।

रचना—प्रयोगकर्त्ता प्राय ईंट की रचना को कम महत्त्व देते है। परन्तु इसका काफी महत्त्व होता है। खुरदरी रचनावाली ईंटे, चिकनी रचनावाली ईंटो की अपेक्षा आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनो को अधिक सहन कर सकती है। परन्तु चिकनी रचना-वाली ईंटे खुरदरी रचनावाली ईंटो की अपेक्षा घातुमलो और भट्ठी-नौसो की क्रिया के सक्षारक प्रभाव को अधिक काल तक सह सकती है। ईंट के तल पर बनी रक्षक परत ही

प्रायः धातुमलो औ भट्ठी-गौसो की क्रिया के सक्षारक प्रभाव को सहन करती है। यह परत उच्च दबाव से बनायी गयी ईंटो में बन जाती है, कारण उच्च दबाव से मिट्टी के कुछ सूक्ष्मतम कण ऊपरी तल पर आ जाने हैं जिससे एक पतली तथा ठोस परत बन जाती है। इस परत के कारण ईंट का ऊपरी तल रन्ध्रहीन हो जाता है, जब कि भीतरी भाग सरन्ध्रही रहता है। इस ठोस, कठोर परत से ईंट की घर्षण-रोधकता बढ़ जाती है, जो कभी-कभी काफी महत्त्वपूर्ण विशेषता सिद्ध होती है।

भट्ठी के अन्दर दुर्गल ईंट के तल पर बने धातुमल और साधारण भट्ठी-ईंधन की राख के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि धातुमल का सगठन दुर्गल ईंट की थोड़ी मात्रा तथा राख की बहुत अधिक मात्रा से बने मिश्रण के सगठन के समान ही होता है। गरम ईंधन-राख ईंट के तल पर जमकर एक काँचीय परत बनाती है। यह परत और अधिक गरम करने पर ईंट के कुछ भाग को घुलाना प्रारम्भ कर देती है और अन्त में भट्ठी की दीवार के सहारे नीचे को बह जाती है। इस प्रकार ईंट का कुछ भाग धीरे-धीरे घुलकर नष्ट हो जाता है। यदि ईंट का तल इतना पर्याप्त कठोर हो, कि इस द्रव को ईंट में घुसने से रोक सके तो ईंट का नष्ट होना कुछ कम हो जाता है।

प्रामाणिक दुर्गल ईंटो की रचना समान होनी चाहिए तथा उसके तल में छिद्र या दरारे नहीं होनी चाहिए। ईंट के सब ओर के तल यथार्थ समतल और कम सरन्ध्र हो। दुर्गल ईंटो की रन्ध्रता प्रायः आयतन के बिचार से १२ प्रतिशत से कम और भार के बिचार से ६ प्रतिशत से कम नहीं होती।

दबाव-शक्ति—ईंटो की कठोरता उनमें बने सीमेण्ट जैसे पदार्थों के कारण होती है जो अगलनशील अवयवों के कणों को जोड़कर रखते हैं। यह जोड़नेवाला पदार्थ प्रयुक्त किये जानेवाले पदार्थों में उपस्थित द्रावको के पिघलने से बनता है। इसका बनना ईंटो के पकाने के समय तथा तापक्रम और ईंट निर्माण में प्रयुक्त किये गये दबाव पर निर्भर करता है। ठण्डी अवस्था में ईंटो की दबाव-शक्ति अधिकांश अवस्थाओं में आवश्यक दबाव शक्ति से बहुत अधिक होती है। परन्तु किसी भी अवस्था में यह १८०० पौंड प्रति वर्ग इंच से कम नहीं होनी चाहिए।

चूँकि दुर्गल ईंटें उच्च तापक्रम पर प्रयुक्त की जाती हैं, अतः ठण्डी अवस्था में दबाव शक्ति की अपेक्षा प्रयोग के उच्च तापक्रम पर दबावशक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है। बौडिन (Bodin) ने दिखाया था कि कुछ अग्नि-मिट्टी और बौक्साइट से बनी ईंटो की

दबाव शक्ति 1000° से 0 पर अधिकतम होती है। उसके आगे तापक्रम बढ़ने पर यह शीघ्रता में घटने लगती है। दबाव की उपस्थिति में अग्नि ईंटों की विकृति का कारण किमी मीमा तक यह बताया जाता है कि मिश्रण में द्रावको की थोड़ी मात्रा दबाव की उपस्थिति में अगलनशील सूक्ष्म कणों से रासायनिक क्रिया करती है, जो साधारण दबाव की अवस्थाओं में बहुत धीरे-धीरे होती है। द्रावको की उपस्थिति के अतिरिक्त और भी कई कारणों से ईंट कमजोर हो जाती है। वाट ने मुझाव रखा कि 1200° से 0 के लगभग अग्नि-ईंटों की विकृति मिलीमेनाइट के शीघ्र केलासीकरण के कारण होती है। दबाव की उपस्थिति में केलासीकरण की गति अत्यधिक शीघ्र होने से ईंट विकृत हो जाती है। अग्नि-ईंटों को 25 पाउंड प्रति वर्ग इंच दबाव पर 1350° से 0 तक गरम करने में उनमें कोई विचारणीय विकृति नहीं होनी चाहिए। इसी दबाव पर सिलीका ईंटों को 1500° से 0 का तापक्रम सहना चाहिए।

चटक कर टूटना—आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तन से जब ईंट चटकती है, तो प्रायः देखा जाता है, कि दरारे छोटी-छोटी न होकर एक रेखा के रूप में ईंट के अन्दर तक चली जाती हैं। अतः ईंट टुकड़ों में टूट जाती है। उसे अंग्रेजी में स्पॉलिंग (Spalling) कहते हैं। यह दोष ईंट की रचना पर निर्भर करता है। अधिक ठोस ईंट की अपेक्षा कम ठोस ईंट कम टूटेगी। इस क्षेत्र में इसी कारण अग्नि-मिट्टी ईंटें सिलीका ईंटों की अपेक्षा श्रेष्ठ, समझी जाती हैं। इसकी परीक्षा करने के लिए पहले से तौली हुई ईंट को 1350° से 0 तक गरम करके 15 मिनट तक उस पर ठण्डी हवा बहाते हैं। इस प्रकार 10 बार परीक्षण के पश्चात् ईंट को पुनः तोला जाता है। अच्छी दुर्गल ईंट में इस परीक्षण के कारण टुकड़े टूट जाने से भार में 12 प्रतिशत से अधिक हानि नहीं होनी चाहिए। इन अवस्थाओं में मैगनीशिया ईंटें पूर्णतया नष्ट हो जाती हैं।

सैगर—सैगर विभिन्न आकार और आकृति के अग्निमिट्टी के बक्स होते हैं जिनमें रखकर वस्तुएँ पकायी जाती हैं। जिससे वस्तुएँ लौ के सीधे सम्पर्क में न आये और भट्ठी-गैमों से सुरक्षित रहे। ये गोलाकार या चौकोर होते हैं।

मृद्-वस्तु निर्माण में प्रयोग होनेवाली दुर्गल वस्तुओं में सबसे महत्त्वपूर्ण सैगर ही है। ये प्रायः अग्नि-मिट्टियों और छर्री के मिश्रण से बनाये जाते हैं। छर्री का कार्य सरन्ध्र बनाना होता है। बननेवाली वस्तु की मजबूती तथा मिट्टी के लचीलेपन का ध्यान रखते हुए छर्री का अनुपात यथासम्भव अधिक रखना चाहिए। छर्री से सैगर

उचित आकार में काट लेते हैं। इसके बाद ढाँचे समेत सैगर की दीवारें तलीवाली पटिया पर खड़ी की जाती हैं। दीवारों की पटियाओं के जोड़ सावधानीपूर्वक एक लकड़ी के चाकू द्वारा दबाकर मिला दिये जाते हैं। तली और दीवार की पटियाएँ भी जोड़ दी जाती हैं। अब ढाँचा उठा लिया जाता है और सैगर के अन्दर की ओर भी उसी प्रकार जोड़ आदि ठीक कर दिये जाते हैं। इंग्लैण्ड में प्रायः सैगर की तली बनानेवाले मिश्रण-पिण्ड में दीवार बनानेवाले मिश्रण-पिण्ड की अपेक्षा छर्नी अधिक अनुपात में रहती है। एक कारीगर इस विधि से ४० से ५० सैगर तक प्रति दिन बना सकता है।

यन्त्र दबाव-विधि—इस विधि से किसी भी आकृति और आकार के सैगर बनाये जा सकते हैं। पानी का यथासम्भव कम प्रयोग करते हुए मिश्रण-पिण्ड ठीक बनाया जाय जिससे दबाने से ठीक सैगर बन सके। लचीले मिश्रण-पिण्ड की अपेक्षा अल्प लचीले मिश्रण-पिण्ड से अच्छा परिणाम निकलता है। इस विधि में सबसे बड़ा दोष यही है कि सैगर की दीवारों की अपेक्षा उसकी तली पर अधिक दबाव पड़ता है, जिसके कारण सैगर में असमान मजबूती आ जाती है और दीवार जल्दी टूट जाती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए केवल वे सैगर ही इस विधि से बनाये जाते हैं, जिनकी ऊँचाई चार इंच से अधिक न हो। अधिक ऊँचे सैगर इस विधि से बनाने पर तीन-चार बार के प्रयोग के पश्चात् दीवारों पर चटक जाते हैं। विद्युत्-चालित यन्त्रों से एक मनुष्य ३०० से ४०० तक तीन इंच ऊँचे सैगर प्रति दिन बना सकता है।

जाली विधि—जाली यन्त्र से केवल गोलाकार सैगर ही बनाये जा सकते हैं। इसके लिए मिश्रण-पिण्ड इतना मुलायम होना चाहिए कि प्रोफाइल आसानी से कार्य कर सके। इस विधि में प्रयुक्त होनेवाले साँचे प्रायः दो भागों में बनाये जाते हैं। सैगर की दीवारें बनाने के लिए साँचे का भाग एक से दो इंच तक मोटा चक्र होता है। चक्र की मोटाई सैगर के आकार पर निर्भर करती है। सैगर की तली ऊपर की ओर कुछ उठी हुई होती है जिससे तली के निचले भाग में मेहराब जैसी बन जाय। इससे तली में मजबूती आ जाती है। जाली से सैगर बनाने की क्रिया साधारण मृत्पात्र बनाने की क्रिया-जैसी ही है। परन्तु प्रत्येक बार प्रयोग से पूर्व साँचे में महीन मिट्टी-चूर्ण छिड़क दिया जाता है, जिससे साँचे से सैगर सरलतापूर्वक निकल आये। साँचे में छिड़कने के लिए यह मिट्टी-चूर्ण प्रायः दबाव विभाग की सफाई से प्राप्त धूल होती है। सैगर बनाने के लिए प्रोफाइल लकड़ी के लगभग एक इंच मोटे टुकड़े में लगी रहती है, जिससे प्रयोग के समय वह मजबूती से रुकी रहे और कार्य कर सके।

ढलाई विधि—कॉच-घर के भाण्ड जैसे सैगर कभी-कभी प्लास्टर के साँचे द्वारा ढलाई-विधि से बनाये जाते हैं। इस कार्य के लिए ढलाई घोला बनाने में क्षारों का प्रयोग करके छर्ची को अधिक अनपात में डाला जा सकता है। अतः इस प्रकार सैगर की दुर्गलता भी बढ़ायी जा सकती है। परन्तु इस विधि में व्यय अधिक पड़ता है। इससे यह विधि कम प्रचलित है।

सैगर लकड़ी के ताखों पर सुखाये जाते हैं। गीले सैगर एक दम सीधे लकड़ी के ताखों पर नहीं रखे जाते, वरन् प्लास्टर या लोहे की पट्टियाँ पर रखे जाते हैं। यूरोप में, जहाँ पर दो प्रकोष्ठवाली भट्टियाँ प्रयुक्त की जाती हैं, ये सुखानेवाले ताख प्रायः दूसरे प्रकोष्ठ के चारों ओर बनाये जाते हैं। नलों-द्वारा भट्टियों का व्यर्थ ताप इन ताखों में बहाया जाता है। इंग्लैण्ड में एक प्रकोष्ठवाली भट्टियाँ प्रयोग करने के कारण सैगर सुखाने के लिए अलग से कमरे बनाये जाते हैं, जिन्हें वाष्पित्र के फालतू ताप से गरम किया जाता है। सैगर बहुत शीघ्रता से नहीं सुखाने चाहिए, अन्यथा सुखाने समय सूक्ष्म दरारे पड़ जाती हैं, जो आगे प्रयोग करने के समय बड़ जाती हैं।

सैगर उसी भट्ठी में पकाये जाते हैं, जिसमें साधारण पात्र पकाये जाते हैं, परन्तु कच्चे सैगरो को खाली ही पकाना चाहिए। एक प्रकोष्ठवाली साधारण भट्ठी में सबसे ऊपर का भाग कच्चे सैगर पकाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु यूरोपीय देशों की दो प्रकोष्ठवाली भट्टियों में ऊपरी प्रकोष्ठ प्रायः कच्चे सैगरो को पकाने के लिए रखा जाता है। ऊपर के प्रकोष्ठ में सैगर या तो खाली रखे रहते हैं या उनमें हलके पात्र रख दिये जाते हैं। इस प्रकार की पकावविधि सस्ती होती हुई भी सन्तोषजनक नहीं है, कारण सैगर पूरी तरह पक नहीं पाते और यदि उन्हें भट्ठी में रखते या भट्ठी से निकालते समय सावधानी न बरती गयी तो ऐठ सकते हैं और टूट सकते हैं।

प्रलेपित मृत्पात्रों, विशेषकर सीसा-प्रलेप से प्रलेपित मृत्पात्रों को रखने के लिए प्रयुक्त किये जानेवाले सैगर प्रायः अन्दर की ओर प्रलेप घोले से पोत दिये जाते हैं, जिससे सैगर प्रलेप वाष्पों को न अवशोषित कर सके। इस कार्य के लिए प्रलेप प्रायः प्रलेप रखनेवाले कुण्डों या नाँदों को धोने से प्राप्त किया जाता है। यदि बार-बार गरम व ठण्डा करने के कारण सैगर की तली से छोटे-छोटे टुकड़े टूटकर गिरने प्रारम्भ हो जायँ, तो इस सैगर तली का बाहरी भाग भी प्रलेप-घोले से पोत दिया जाता है। इस प्रकार पोतने से सैगर का कार्यकाल भी बढ़ जाता है। सैगरो को नम स्थानों में

रखने या किसी प्रकार उनकी नमी अवशोषित कर लेने से भी सैंगरो का जीवन कम हो जाता है।

सैंगरो को कई बार प्रयोग करने के पश्चात् उनकी दीवारों में दरारे पड़ जाती हैं, या किनारे टूटकर गिरने लगते हैं। पता लगने पर इन स्थानों की मरम्मत कर देनी चाहिए। इन दरारों की मरम्मत करने के लिए उपयोगी सीमेण्ट उचित अनुपात में छर्नी, व्यर्थ प्रलेप या सोडा सिलीकेट मिलाकर बनाया जा सकता है। थोड़ा लचीलापन लाने के लिए इसमें थोड़ी चीनी मिट्टी मिलायी जा सकती है। परन्तु अधिक चीनी मिट्टी डालने से सीमेण्ट में आकुचन होगा और जोड़ टूटकर गिर जायेंगे। जब सोडा सिलीकेट डालकर सीमेण्ट बनाया गया हो तो सैंगर को पुनः प्रयोग करने से पूर्व दुबारा काफी उच्च तापक्रम पर गरम कर ले, कारण सोडा सिलीकेट की उपस्थिति में यह सीमेण्ट काफी उच्च तापक्रम पर कड़ा होता है।

सैंगर के जीवनकाल अर्थात् कार्यकाल के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। प्रयोग के समय की अवस्थाओं के अनुसार वे ३ से २५ पकाव तक चल सकते हैं। जो सैंगर साधारण अवस्थाओं में १५ पकाव तक चलता है उत्पादन शीघ्र कर देने से वह ८ या ९ पकाव ही चलेगा। टाली कारखानों में सैंगर २५ पकाव तक चल जाते हैं, कारण साधारण मृत्पात्रों की अपेक्षा टालियाँ धीरे-धीरे पकायी व ठण्डी की जाती हैं। यूरोपीय देशों के कुछ पोरसिलेन कारखानों में जहाँ बहुत ही उच्च तापक्रम पर तथा शीघ्र गति से पात्र पकाये जाते हैं, सैंगर केवल ३ पकाव तक ही कार्य करता है। श्वेत मृत्पात्रों को पकाने में सैंगर का औसत काल ६ पकाव तक है।

सैंगर बनाने के लिए विभिन्न पदार्थ—कुछ लेखकों ने सैंगर निर्माण में कार्बोरण्डम को एक सन्तोषजनक पदार्थ बताया है। परन्तु दूसरे लेखकों का कहना है, कि गलित स्फटिक चूर्ण का प्रयोग करके कम मूल्य में ही कार्बोरण्डम से अच्छे या कम-से-कम वैसे ही सैंगर बनाये जा सकते हैं। इनमें कार्बोरण्डम—जैसा अवकारक प्रभाव का भय भी नहीं रहता। गलित स्फटिक चूर्ण को किसी भी दुर्गल मिट्टी के साथ छर्नी के स्थान पर भी प्रयुक्त किया जा सकता है। माल और अग्नि-मिट्टियों के स्थान पर बॉल मिट्टी और चीनी मिट्टी का मिश्रण डालने से सैंगर का कार्य काल बढ़ जाता है। सैंगर जितने ही उच्च तापक्रम पर प्रयोग किया जाय, बॉल-मिट्टी की मात्रा उतनी कम प्रयोग करनी चाहिए। उचित मिट्टी-मिश्रण के साथ ५०-६० प्रतिशत गलित स्फटिक चूर्ण

का प्रयोग करने से जल्दी-जल्दी गरम ब ठडा करने मे सैगर जल्दी नही टूटता । गलित स्फटिक बूर्णवाले सैगर को बजाने पर बड़ा धीमा शब्द निकलना चाहिए । जो सैगर अच्छा शब्द उत्पन्न करते हैं, वे अपेक्षाकृत शीघ्र ही चटक जाते हैं । मैके (H. Thie Macke) ने सन् १९३४ ई० मे पता लगाया कि सैगर के साधारण मिश्रणपिण्ड मे लगभग १५ प्रतिशत टालक प्रयोग करने से सूखी तथा पकी हुई दोनों अवस्थाओं मे सैगर मे अधिक मजबूती आ जाती है और सम्पूर्ण आकुचन तथा प्रसार-गुणक कम हो जाता है । टालक की इस मात्रा से सैगर का तल चिकना होता है, और ताप-परिवर्तन अधिक सह सकता है ।

मफल (Muffle)—मफल, दुर्गल बक्स या प्रकोष्ठ होते हैं, जिनमे रखकर पात्रों को लौ या ईधन-गैसों के सीधे सम्पर्क से बचाकर गरम किया जा सकता है । मफल और सैगर के कार्य समान ही हैं । अन्तर केवल इतना है कि मफल भट्ठी के अन्दर स्थायी रूप से बने होते हैं, उन्हे सैगरो की भाँति आसानी से हटाया नहीं जा सकता । मफल विभिन्न आकारों के बनाये जाते हैं । छोटे मफल अलग-अलग भागों मे नहीं बनाये जाते, वरन् पूरा मफल एक साथ ही बनाया जाता है । इसकी तली चपटी और छत गोलाई लिये रहती है । बड़े मफल प्रायः कई भागों मे दुर्गल ईंटों या दुर्गल टालियों से बनाये जाते हैं । जोड़ पर विशेष प्रकार की टालियाँ या ईंटे प्रयुक्त की जाती हैं, जिनमे किनारे व नालियाँ रहती हैं । एक टाली की नाली मे दूसरी टाली का किनारा रहता है । इस प्रकार भट्ठी-गैस से मफल मे अन्दर नहीं जा पाती ।

चूँकि मफल या प्रकोष्ठ मे ताप उसकी दीवारों से होकर घुसता है, अतः मफल या प्रकोष्ठ दीवारों का कार्योपयोगी मजबूती का ध्यान रखते हुए यथासम्भव पतली हो और दीवारों की ताप-चालकता अधिक हो । ईंटों से बनी बड़ी मफल की दीवारें $\frac{1}{2}$ इंच मोटी तथा छोटी मफल की दीवारें $\frac{1}{4}$ से $\frac{3}{8}$ इंच तक मोटी होती हैं ।

एक अच्छी मफल मे निम्नलिखित गुण आवश्यक होते हैं—(१) आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनों की सहनक्षमता । (२) दीवारों की उच्च ताप-चालकता । (३) उच्च तापक्रम पर तली का मजबूत रहना । तापक्रम-परिवर्तन-रोधकता, अग्नि-मिट्टी और छर्नी का उचित अनुपात से बना मिश्रण-पिण्ड प्रयोग करने से लायी जा सकती है । आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनों को कम सरन्ध्र पदार्थ की अपेक्षा अधिक सरन्ध्र पदार्थ अधिक सह सकता है । अग्नि-मिट्टी की ताप-चालकता उसमे ग्रेफाइट

कार्बोरण्डम या कार्बन मिलाकर काफी बढ़ायी जा सकती है। इन कार्बनिक पदार्थों को मिलाकर बनायी गयी मफल दीवारों को बाहर की ओर अग्निमिट्टी के घोल से पोत देना चाहिए, अन्यथा ये कार्बनिक पदार्थ जलकर निकल जायेंगे और मफल की दीवार कमजोर हो जायगी। प्रयोगशालाओं के लिए छोटी मफल बनाने के लिए गलित स्फटिक काफी लाभदायक होता है, कारण इस मफल को भी बिना चटकने के भय के शीघ्रता से गरम व ठण्डा किया जा सकता है। गलित स्फटिक से बनी मफल, भट्ठी-गैसों के लिए अपारगम्य होती है, जब कि अग्नि-मिट्टी और छर्री से बनी मफल में यह गुण नहीं होता। एक साथ पूरी बनायी जानेवाली छोटी मफल की तली बनाने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। तली ऐसी हो कि उच्च तापक्रम पर वस्तुओं के भार से यह टूट न जाय। तली बनाने में मोटी और महीन छर्रियों को उचित अनुपात में प्रयुक्त करने से तली में भार सहने की क्षमता बढ़ जाती है। कार्बोरण्डम की थोड़ी मात्रा से तली की मजबूती काफी बढ़ जाती है। छर्री को अग्नि-मिट्टी के साथ मिलाने से पूर्व उसे पानी में डाल रखना चाहिए जिससे मफल अधिक सरन्ध्र रहे। मफल का सरन्ध्र रहना परमावश्यक है।

मफल निर्माण—छोटी मफल लकड़ी के ढाँचे की सहायता से हाथ से अच्छी बनती है। अल्प लचीला तथा कड़ा मिश्रण-पिण्ड भीगे हुए पटसन के कपड़े पर पीटकर उचित मोटाई में फैला दिया जाता है। इस चपटे पिण्ड को एक लकड़ी के ढाँचे के चारों ओर लपेट देते हैं। बाद में यह पटसन का कपड़ा छुड़ा लिया जाता है और चपटे पिण्ड के दो सिरो को जोड़कर लकड़ी के करण (Tool) से चिकना करके ठीक कर दिया जाता है। इसी प्रकार मफल का पिछला भाग बनाकर जोड़ दिया जाता है। जोड़ते समय अधिक पानी का प्रयोग न करे, अन्यथा सुखाते समय जोड़ चटक जायगा। जब मिट्टी कुछ सूख जाय तो लकड़ी का ढाँचा निकाल लिया जाता है और मफल छिद्रमय लकड़ी के ताखों पर धीरे-धीरे सुखायी जाती है। सुखाते समय मफल का पीछे का भाग नीचे रहना चाहिए। छोटी मफल सैगरों की भाँति ढालकर भी बनायी जा सकती है। कभी-कभी मफल का खोखला भाग यन्त्रों की सहायता से बनाकर उसमें तली हाथ से जोड़ दी जाती है।

छोटी मफलों को सुखाने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है, कारण इनके शीघ्र या असमान सुखाव से इनके चटक जाने या ऐठ जाने की सम्भावना होती है। सुखाते समय पड़ी छोटी दरारों का पकाने से पूर्व पता नहीं चल पाता और पकाने के बाद उन्हें

किसी प्रकार सुधारा नहीं जा सकता। भारतवर्ष—जैसे गरम देशों में प्रथम स्तर में उन्हे ठण्डे स्थान में सुखाना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो इस काल के सुखाव के लिए कमरा धरातल के नीचे बनाया जाय तो अच्छा। बाद में गरम ताखों में या खुली धूप में रखकर सुखाया जा सकता है।

अधोगति भट्टियों में पकाने के लिए मफलो को भी सैगरो की भाँति एक दूसरे के ऊपर रखकर उच्च तापक्रम पर पकाया जाता है। कच्चे सैगरो के पकाने की भाँति इन्हे साधारण मृत्पात्र भट्ठी के ऊपरी भाग में रखकर भी पकाया जा सकता है।

घरियाएँ—घरियाएँ दुर्गल पदार्थों से बनायी जाती हैं। घरियाओं की आकृति प्रायः साधारण गिलास—जैसी होती है, जिनका ऊपरी भाग खुला रहता है। ये विशेष प्रकार के दुर्गल पदार्थों से बनायी जाती हैं। इनका प्रयोग प्रलेप तथा एनामेल निर्माण में कौंचितो के प्रद्रावण तथा धातु और मिश्रधातुओं के गलाने में होता है। घरियाएँ सभी आकार की होती हैं। सबसे छोटी घरिया प्रयोगशाला के प्रयोग के लिए होती है और सबसे बड़ी घरियाओं में लोहा, ताँबा आदि गलाये जाते हैं। प्रयोगशाला में रासायनिक विश्लेषण के लिए घरिया अधिक दुर्गल रासायनिक पोरसिलेन से बनायी जाती है। जब कि सोने तथा चाँदी के शोधन के लिए क्यूपोला नामक छोटी-छोटी घरियाएँ अस्थिराख से बनायी जाती हैं, कारण अस्थिराख में ताँबे, सीसे आदि के आक्साइडों को अवशोषित करने का गुण है। यह आक्साइड सोने तथा चाँदी में प्रायः अपद्रव्य के रूप में रहते हैं। गलित सोने और चाँदी को अस्थिराख अवशोषित नहीं कर पाती।

घरियाओं में उत्तम दुर्गलता के साथ-साथ आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनों को सहन करने की क्षमता भी होनी चाहिए, कारण गलित पदार्थ को गिराने के लिए उच्च तापक्रम पर ही घरियाओं को भट्ठी से बहुत शीघ्रता से निकाला जाता है। जिस पदार्थ से घरिया बनी है, उस पदार्थ पर घरिया में गलाये गये गलित पदार्थ की रासायनिक क्रिया नहीं होनी चाहिए। अतः विशेष कार्यों के लिए उपयोगी घरिया बनाने में दुर्गल पदार्थों का चुनाव बड़ी सावधानी से करना चाहिए।

घरिया बनाने में प्रयुक्त किये गये कच्चे मालों के आधार पर घरियाओं को मोटे रूप से निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है। (क) अग्नि-मिट्टी की घरियाएँ। (ख) प्लम्बेगो तथा ग्रेफाइट की घरियाएँ। (ग) विशेष घरियाएँ।

अग्नि-मिट्टी की घरियाएँ—साधारण कार्यों और विशेषकर चिकन-प्रलेप तथा कौंच

कलड्योको काँचित बनाने के लिए अग्नि-मिट्टी की घरियाएँ प्रयोग की जाती हैं। ये घरियाएँ अधिक दुर्गल होती हैं और अधिकांश गलित पदार्थों का सक्षारक प्रभाव सहन कर सकती हैं। परन्तु इनमें आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनों को सहन करने की क्षमता कम होती है। अतः कुछ बार प्रयुक्त करने के पश्चात् वे चटक जाती हैं। अग्नि-मिट्टी की घरियाएँ अधिक दुर्गल अग्नि-मिट्टी तथा उसी अग्नि-मिट्टी से बनी २५ प्रतिशत छर्री के मिश्रण से बनायी जाती हैं। जब अग्नि-मिट्टियों के साथ बॉल-मिट्टी भी प्रयुक्त की जाय, तो छर्री ५० प्रतिशत तक डाली जा सकती है, जैसा कि लन्दन की घरियाओं में होता है। हैसियन (Hessian) सिलिकामय घरियाएँ बनाने के लिए अग्निमिट्टी के साथ शुद्ध बालू भी मिला दी जाती है। ये घरियाएँ सोना, चाँदी आदि बहुमूल्य धातुएँ गलाने के काम आती हैं। इन घरियाओं में प्रायः मुक्त सिलिका और मिट्टी की समान मात्राएँ रहती हैं। मजबूत घरिया बनाने के लिए मिट्टी काफी लचीली होनी चाहिए।

प्लम्बेगो घरियाएँ— ये घरियाएँ अधिक दुर्गल और आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तनों की ओर काफी सहनशील होती हैं। चूँकि कार्बन रासायनिक क्रियाओं की ओर उदासीन है, अतः लगभग सभी धातुएँ और मिश्रधातुएँ इन घरियाओं में गलायी जा सकती हैं। इन घरियाओं की ताप-चालकता भी अधिक होती है। इन घरियाओं में केवल एक दोष है। वह यह कि यदि इन घरियाओं का तल अग्नि-मिट्टी घोले से पोत न दिया जाय तो वे शीघ्र ही आक्सीकृत हो जाती हैं। साधारण अग्नि-मिट्टी में ५ से ८ प्रतिशत ग्रेफाइट या गैस कार्बन मिलाकर घरिया बनाने से घरिया के दुर्गल गुण सुधर जाते हैं और उनमें आकस्मिक तापक्रम परिवर्तनों को सहने की क्षमता भी बढ़ जाती है। ये मिश्र घरियाएँ प्रायः शुद्ध इस्पात और पीतल जैसी सुग्राही मिश्र धातुओं को गलाने के लिए प्रयोग की जाती हैं, कारण इन्हें गलाने में अधिक कार्बन की उपस्थिति हानिकर होती है। साधारण प्लम्बेगो घरियाएँ एक भाग लचीली अग्नि-मिट्टी और दो से तीन भाग तक ग्रेफाइट या कोक चूर्ण मिलाकर बनायी जाती हैं। ये घरियाएँ प्रायः ढलवाँ लोहा, नरम इस्पात, कठोर इस्पात तथा ताँबा आदि के गलाने के काम आती हैं।

अग्नि-मिट्टी की घरियाओं की अपेक्षा कम सरुध्र तथा अधिक टिकाऊ होने और गलित पदार्थों को कम अवशोषित करने के कारण, ग्रेफाइट या प्लम्बेगो घरियाएँ सोना, चाँदी आदि मूल्यवान् धातुओं और मिश्र धातुओं को गलाने के काम आती हैं। इन घरियाओं का तल अधिक चिकना होने के कारण इनसे गलित पदार्थ गिराने में भी सरलता रहती है। गलित पदार्थ घरिया में नहीं लगा रहता।

ग्रेफाइट या प्लम्बेगो घरियाएँ बनाने के लिए ग्रेफाइट को ८००° से ९००° से० पर निस्तापित किया जाता है, जिससे वाष्पशील पदार्थ निकल जायें। उसके बाद इसे ८० से ९० नम्बर तक की चलनी से छाना जाता है। अग्नि-मिट्टी अलग से चूर्ण करके ६० से ८० नम्बर तक की चलनियो से छानी जाती है। यदि छरी का उपयोग करना हो, जैसा कि बड़ी घरियाओ में होता है, तो छरी को चूर्ण करके ३० से ४० नम्बर तक की चलनियो से छान लिया जाता है। अब इन पदार्थों को उचित अनुपात में लेकर अच्छी तरह मिला लिया जाता है। इसमें पानी मिलाकर कुछ समय तक अम्लक्रिया होने के लिए छोड़ दिया जाता है। अम्लक्रिया से मिश्रण-पिण्ड की कार्योपयोगिता बढ़ जाती है। अम्लक्रिया होने के पश्चात् पिण्ड पगयन्त्र में गूँधा जाता है और अब घरियाएँ बनाने के लिए पिण्ड तैयार है।

बड़ी घरियाओ को हाथ से बनाना ठीक समझा जाता है, कारण इससे घरिया अधिक मजबूत और अच्छी बनती है। हाथ से बनाने के लिए एक घरिया के लिए पर्याप्त मिश्रण लेकर एक तिपाई पर जोर से पटक दिया जाता है, जिससे मिश्रण-पिण्ड ठोस रचना का हो जाय। इसके बाद इसे हाथ से लकड़ी या प्लास्टर के साँचे में घरिया की आकृति दे दी जाती है। यह घरिया बहुत धीरे-धीरे सुखायी जाती है, अन्यथा सूक्ष्म दरारे पड़ जाती हैं। छोटी घरियाओ को बनाने के लिए दबाव विधि या जाली विधि का प्रयोग किया जाता है। जाली विधि की अपेक्षा दबाव विधि से बनी घरियाएँ अधिक ठोस होती हैं। स्वर्णकारों के लिए सोना चाँदी गलाने के लिए प्लम्बेगो घरियाएँ हस्त-चालित दबाव यन्त्रों से बनायी जाती हैं।

पकाने से पूर्व प्लम्बेगो या ग्रेफाइट घरियाओ को धुली हुई महीन अग्नि-मिट्टी और सोडा सिलिकेट के घोले से बहुत पतला पोत दिया जाता है। इस पोतने के कारण पकाने पर घरिया के ऊपर नमक प्रलेप की भाँति सोडा एल्यूमिनो सिलिकेट की पारदर्शक परत चढ़ जाती है। इस परत के कारण घरिया का ग्रेफाइट सरलता से आक्सीकृत नहीं हो पाता तथा घरिया तल भी चिकना रहता है। ग्रेफाइट घरियाएँ मफल भट्ठियों में ९००° से ९५०° से० पर सर्वोत्तम पकती हैं। मफल में वातावरण अवकारक रखा जाता है। इसके लिए जब मफल ८००° से० से ऊपर उष्मा पर होती है, तो मफल में बने छिद्रों से उसमें कोयला-चूर्ण या लकड़ी के टुकड़े फेंके जाते हैं।

विशेष घरियाएँ—विशेष कार्यों के लिए विभिन्न प्रकार की घरियाएँ बनायी जाती

है। इनके निर्माण में कभी-कभी एलण्डम अर्थात् गलित एल्यूमिना चूर्ण, कार्बोरण्डम, क्रोमाइट तथा जिरकोनिया आदि विशेष दुर्गल पदार्थों का प्रयोग किया जाता है।

एलण्डम (Alundum) धरियाएँ—ये धरियाएँ अत्यधिक दुर्गल तथा ताप की अच्छी चालक होती हैं। इनका मूल्य अधिक होने के कारण साधारण औद्योगिक कार्यों में इनका प्रयोग नहीं किया जाता।

गलित सिलीका धरियाएँ—जब गलित पदार्थ भास्मिक गुणोवाला न हो तो ये धरियाएँ काफी लाभदायक सिद्ध होती हैं। पोरसिलेन धरियाओं की भाँति ये धरियाएँ भी चिकनी और रन्ध्रहीन होती हैं तथा पोरसिलेन धरियाओं की अपेक्षा आकस्मिक तापक्रम-परिवर्तन अधिक सह सकती हैं। अतः प्रयोगशालाओं के साधारण कार्यों के लिए पोरसिलेन धरियाओं का स्थान गलित सिलीका धरियाएँ धीरे-धीरे लेती जा रही हैं। इन धरियाओं को बनाने के लिए स्फटिक को 1700° से 0 से ऊपर गलाकर उसे धरिया की आकृति में जमा दिया जाता है।

धरिया-निर्माण—दुर्गल धरियाएँ भी उन विभिन्न विधियों से बनायी जा सकती हैं, जिनसे गोल मृत्पात्र बनाये जाते हैं। ये विधियाँ हैं—(१) प्लास्टर सॉचो द्वारा ढालना, (२) जाली विधि, (३) चाक विधि, (४) यन्त्रचालित प्रेसों में दबाकर (५) हाथ से दबाकर।

जब मिट्टी या मिश्रण-पिण्ड अधिक लचीला न हो, तो धरिया निर्माण के लिए ढलाई विधि अधिक उपयोगी होती है। अधिक लचीले मिश्रण-पिण्ड से ढलाई विधि द्वारा सन्तोषजनक धरियाएँ नहीं बन सकती। ढलाई-घोला, साधारण रूप से सोडा सिलीकेट या सोडा कार्बोनेट की थोड़ी मात्रा डालकर बनाया जाता है। ढलाई-घोले का घनत्व ३६ औंस प्रति पाइण्ट होना चाहिए। यदि मिट्टी में घुलनशील सल्फेट हो तो विद्युद्विश्लेष्यों को डालने से पूर्व बेरियम कार्बोनेट की थोड़ी मात्रा डालकर उन्हें अवक्षेपित कराकर दूर कर देना चाहिए, कारण घुलनशील सल्फेट विद्युद्विश्लेष्यों के रूप में प्रयुक्त क्षारों की क्रिया में बाधा डालते हैं। अधिक उत्पादन के लिए जाली विधि अच्छी रहती है। परन्तु इस विधि से केवल मध्यम आकार की धरियाएँ ही बनानी चाहिए। बड़ी धरियाओं के लिए जाली विधि का प्रयोग कभी न करे। जाली विधि के लिए मिश्रण-पिण्ड काफी नरम होता है। अतः धरिया की दीवारें कम ठोस रह जाती हैं, जो नहीं होना चाहिए।

किसी विशेष आकृति की बड़ी घरिया बनाने के लिए चाक-विधि का प्रयोग अच्छा होता है। चूँकि चाक से केवल बहुत ही योग्य और उत्तरदायी व्यक्ति ही अच्छी घरिया बना सकता है तथा निर्माण गति भी धीमी होती है, अतः इस विधि से बनी घरियाओं का मूल्य अधिक पड़ता है।

छोटे और मध्यम आकार की घरियाएँ बनाने के लिए प्रायः हस्तचालित या यन्त्रचालित दबाव यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। दबाव विधि से बनी बड़ी घरियाओं में वही दोष आ जाते हैं, जो इस विधि से बने बड़े सैंगरो में आ जाते हैं। बाजार में घरियाएँ बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के दबाव यन्त्र मिलते हैं, जिनमें से प्रत्येक में कोई न कोई कमी होती है। एक आधुनिक यन्त्रचालित दबाव यन्त्र से दो मनुष्य ६ इंच व्यासवाली ७५० घरियाएँ प्रतिघण्टा बना सकते हैं।

अत्यधिक बड़ी घरियाएँ बनाने के लिए हाथ से दबाकर बनाना सर्वोत्तम विधि है। इस विधि में छोटी मफल निर्माण की भाँति वे उलटकर रखे हुए लकड़ी के ढाँचों पर बनायी जाती हैं या इस्पात के साँचों में इस्पात करण (Tool) की सहायता से बनायी जाती हैं। घरिया की तली दीवारों से मोटी होती है। अतः आवश्यक मोटाई की तली ढाँचे पर पहले बना ली जाती है। उसके बाद हाथ से धीरे-धीरे आवश्यक मोटाई की दीवारें बना दी जाती हैं। कभी-कभी लकड़ी का ढाँचा घूमती हुई ऊर्ध्वाधर धुरी पर रखा जाता है और एक लकड़ी के करण द्वारा उसके चारों ओर घरिया बना दी जाती है। इस्पात के साँचों की सहायता से घरिया बनाने के लिए मिश्रण-पिण्ड साँचे में रखा जाता है और इस्पात के करण को हाथ से घुमाते हुए साँचे में पिण्ड दबाया जाता है।

घरियाओं को पकाने और सुखाने में वही सावधानियाँ रखी जाती हैं, जो छोटी मफलों को सुखाने व पकाने में रखी जाती हैं।

एकादश अध्याय

ईंधन, भट्ठियाँ तथा चूल्हे

ईंधन—जो पदार्थ ताप उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं, ईंधन कहलाते हैं। इन पदार्थों को सरलतापूर्वक जलकर यथासम्भव अधिकतम ताप उत्पन्न करना चाहिए। औद्योगिक कार्यों में अधिकतर प्रयोग होनेवाले सब ईंधनों को सेल्यूलोज (Cellulose) से निकला हुआ समझा जाता है और उन्हें निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है—

अवस्था	प्राकृतिक ईंधन	कृत्रिम ईंधन
ठोस ईंधन	लकड़ी, पीट (Peat), लिगनाइट या बादामी कोयला, विटमिनी कोयला तथा ऐन्थ्रासाइट कोयला।	काठकोयला, कोक, कोयला ईंटे।
द्रव ईंधन	पेट्रोलियम तेल।	शेल तथा अलकतरा से प्राप्त आसुत तेल, स्प्रिट।
गैस ईंधन	प्राकृतिक पेट्रोलियम गैस।	कोयला गैस, कोक भट्ठी गैस, उत्पादक गैस तथा तेल गैस।

ठोस ईंधन

लकड़ी—जब से मनुष्य ने अग्नि का उपयोग सीखा, उसी समय से लकड़ी विश्व-प्रचलित ईंधन रही है। हवा में सुखाने पर भी लकड़ी में नमी, लगभग २० प्रतिशत रहती है। अतः इसका ऊष्मीय मान (Calorific-value) बहुत कम है। इस कारण, यह अत्यधिक उच्च तापक्रम उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त नहीं की जा सकती। परन्तु यह शीघ्र ज्वलनशील है, काफी लम्बी लौ के साथ जलती

है तथा जलने पर कालिख तथा राख कम उत्पन्न करती है। हवा की अनुपस्थिति में 160° से० या अधिक तापक्रम पर गरम करने से लकड़ी काठ-कोयला में परिवर्तित हो जाती है। ईंधन के रूप में काठ-कोयला का ऊष्मीयमान अधिक है। सस्ती मिलने तथा कृत्रिम साधनों से अधिक सुखा लेने पर लकड़ी अच्छा ईंधन है।

पीट कोयले (Peat coals)—पीट आशिक रूप से विच्छेदित निम्नस्तर के वनस्पति पदार्थ, यथा मौस (Moss) आदि है। ये पदार्थ अपने वनस्पति गुण खोकर आशिक रूप से कोयला बन गये हैं जिनका रंग बादामी से काले तक होता है। ताजे खोदे गये पीट में कभी-कभी ९० प्रतिशत तक पानी रहता है और हवा में सुखाने पर इसमें लगभग २० प्रतिशत पानी रह जाता है। पीट का सगठन बदलता रहता है, परन्तु इसमें लकड़ी की अपेक्षा राख अधिक और ऊष्मीय मान कम होता है।

लिग्नाइट कोयले (Lignite coals)—लिग्नाइट, कोयले का वह रूप है, जो पीट और कोयले के बीच की अवस्था में होता है। लिग्नाइटों के भौतिक गुण और रासायनिक सगठन काफी भिन्न होते हैं। श्रेष्ठ प्रकार का कोयला बादामी कोयला कहलाता है और यह यूरोप के देशों में तथा भारत में आसाम एवं दक्षिणी भारत के साउथ आर्कटिक जिले में पाया जाता है। इसमें पानी की मात्रा ४० से ६० प्रतिशत तक रहती है। सूखा लिग्नाइट आर्द्रताग्राही है। यूरोपीय देशों में लिग्नाइट को चूर्ण करके उसमें अलकतरा, डामर या पिच (Pitch) मिलाकर छोटी-छोटी ईंटें बनायी जाती हैं। ये ईंटें कारखानों तथा घरेलू उपयोग में ईंधन की भाँति प्रयोग होती हैं। अलकतरा डामर ईंट को जोड़कर रखने का कार्य करता है तथा जिस लिग्नाइट से ईंट बनी है, उसकी अपेक्षा ईंट की आर्द्रताग्राहता कम और ऊष्मीयमान अधिक कर देता है।

बिटूमिनी कोयले—इनमें वाष्पशील हाइड्रो कार्बनों की मात्रा सर्वाधिक होती है और लम्बी पीली लौ सहित जलते हैं। यह निश्चित किया जा चुका है कि जिन बिटूमिनी कोयलों में वाष्पशील पदार्थों की मात्रा मध्यम अर्थात् १६ से २० प्रतिशत के बीच रहती है, वही प्रयोग में सबसे सस्ते पड़ते हैं। वाष्पशील अवयव अधिक होने पर गैसें बिना जले ही निकल जाती हैं और कम रहने पर ईंधन के लिए चूल्हे में होकर हवा की अधिक मात्रा भेजनी पड़ती है। बिटूमिनी कोयले लम्बी लौ के साथ जलकर अधिक ताप उत्पन्न करते हैं। अतः ये कोयले मृत्पात्र तथा काँच भट्टियों के लिए अधिक

उपयोगी ईंधन है। कोयला चुनते समय उसमें राख की मात्रा तथा राख की गलनशीलता पर ध्यान देना काफी महत्वपूर्ण है।

एन्थ्रासाइट कोयले (Anthracite-coals)—इस प्रकार के कोयलो में वाष्पशील पदार्थों की मात्रा सबसे कम होती है तथा स्थिर कार्बन अधिक होता है। ये कोयले छोटी लौ के साथ जलने के कारण स्थानीय उच्च तापक्रम उत्पन्न करते हैं। उच्च तापक्रम पर प्रयुक्त होनेवाली भट्टियों, विशेषकर मृत्पात्र, काँच, तथा सीमेण्ट भट्टियों के लिए ये कोयले उपयोगी नहीं हैं। इन्हें मुख्य रूप से धातु-उत्पादन भट्टियों, घरिया भट्टियों तथा जलगैस उत्पादन में प्रयुक्त किया जाता है।

कोक (Coke)—हवा की अनुपस्थिति में कोयले के आसवन (Distillation) से उसके वाष्पशील भाग गैस बनकर निकल जाते हैं। जो ठोस भाग बच जाता है, उसे कोक कहते हैं। कोक में कोयले की लगभग सम्पूर्ण राख तथा स्थिर कार्बन रहता है। राख की केवल थोड़ी-सी मात्रा वाष्पशील होकर निकल जाती है। भट्ठी कार्य के लिए एक अच्छे कोयले में ८५ प्रतिशत से कम कार्बन नहीं रहना चाहिए और राख की मात्रा १० प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। एन्थ्रासाइट की भाँति कोक भी घरियाओ आदि वस्तुओं को सीधे गरम करने में प्रयुक्त किया जाता है।

ठोस ईंधनों का औसत प्रतिशत संगठन

ईंधन	कार्बन	हाइड्रोजन	आक्सीजन और नाइट्रोजन	ऊष्मीय मान	राख
सेल्यूलोज	४४४	६२	४९४	४१५०	—
शुष्क बलूत या ओक (Oak) लकड़ी	५०१६	६०२	४३४	५०३५	०-३७
शुष्क पीट	५७०	६१	३४९	४५००	५-१०
शुष्क लिग्नाइट	५६-८५	५-७	१०-३७	५०००-७६००	५-१०
बिटुमिनी कोयला	८२	५	१३	८५००	१०-२०
एन्थ्रासाइट	९०	३	३	८८००	९-१५
कोक	८९	०.५	२५	७०००	१०-१४

कुछ भारतीय कोयलों का औसत संगठन

कोयले की खाने	स्थिर कार्बन	वाष्पशील अवयव	नमी	राख	विशेष विवरण
१ आसाम	४८.९९	४३.५८	३.१९	४.२४	३.१४ प्रतिशत गन्धक।
२ रानीगज (बंगाल)	५४.९५	३३.९५	२.५७	११.१०	—
३ झरिया (बिहार)	५६.८०	२८.१०	१.७०	१५.१०	राख १२-२१ प्रतिशत तक होती है।
४ डाल्टनगज (बिहार)	४२.००	३०.९०	६.६०	१९.५०	—
५ मध्यप्रदेश	४५.८०	३४.५०	४.५०	१५.२०	ऊष्मीय मान ५७०० है तथा संगठन काफी बदलता रहता है।
६. उमरिया (मध्य-भारत)	६६.७१	१९.७१	५.४६	८.१२	—
७ तालचर (उड़ीसा)	४४.११	३५.६५	११.३३	८.९१	—
८ सिन्गेरिनी (हैदराबाद)	५६.५०	२५.२५	७.६०	१०.६५	इसमें लौह पाइ-राइटीज अपद्रव्य काफी मात्रा में रहता है।
९. पंजाब	४०.००	३७.००	९.००	१०.००	लगभग ४ प्रतिशत गन्धक रहता है।

द्रव ईंधन

औद्योगिक भट्टियों में प्रयुक्त किये जानेवाले द्रव ईंधनों में प्राकृतिक पेट्रोलियम के भारी अंश तथा शेल और अलकतरा के आसवन से प्राप्त तेल आते हैं। इन तेलों की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित होनी चाहिए—

(क) इनका ऊष्मीय मान अधिक हो। शेरमान तथा क्रोफ समीकरण द्वारा द्रव-ईंधन का सन्निकट ऊष्मीय मान निकाला जा सकता है। साधारणतया जिन तेलों का आपेक्षिक घनत्व कम होता है, उनका ऊष्मीय मान अधिक होता है।

(ख) ईंधन, तेल का दमकाक (Flash point) अधिक होना चाहिए। यदि

ईंधन तेल कम तापक्रम पर ही जलने लगता है, तो तेल में एकाएक आग लग जाने का डर है। इन तेलों का दमकाक 60° से 0° से अधिक होना चाहिए।

(ग) ये तेल न तो अधिक श्यान हो और न 0° से 0° पर गाढ़े हो जायें। ईंधन तेलों की श्यानता तापक्रम के साथ काफी घटती है। भिन्न स्थानों से प्राप्त समान घनत्ववाले एक ही तेल की श्यानताएँ भी भिन्न होती हैं। अत्यधिक श्यान तेल बिना पूर्व गरम किये ज्वालक (Burner) में सरलता से बह नहीं सकते।

(घ) इन तेलों में गन्धक एक प्रतिशत से कम, पानी दो प्रतिशत से कम तथा रेत, मिट्टी, धूल आदि ठोस नाममात्र के लिए होने चाहिए।

पेट्रोलियम—पेट्रोलियम ससार के विभिन्न देशों में थोड़ा-बहुत पाया जाता है। पृथ्वी से ताजा निकलने पर इसका रंग तथा इसकी तरलता काफी भिन्न होती है। रंग पीले से लगभग काले तक होता है। आपेक्षिक घनत्व 0.77 से 1.06 तक होता है। रासायनिक संगठन के विचार से यह विभिन्न हाइड्रो-कार्बनों से मिलकर बना होता है। ससार में पाये जानेवाले पेट्रोलियम मुख्य दो प्रकार के होते हैं—
(अ) पैराफिन-जनक तेल, (आ) एसफाल्ट-जनक तेल। एसफाल्ट-जनक तेल गहरे रंग के तथा अधिक श्यान होते हैं। भट्ठियों में जलाने के लिए अशोधित ईंधन तेल इन्हीं प्राकृतिक पेट्रोलियमों के आसवन से, उनके हलके अंश दूर करके, मिलते हैं।

प्राकृतिक पेट्रोलियम से प्राप्त हलके तेल अन्तः दहन इंजिनों तथा प्रकाश उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। विभिन्न स्थानों से प्राप्त पेट्रोलियमों द्वारा प्राप्त होनेवाले भारी तेलों का अनुपात काफी भिन्न होता है। अमेरिका के पेट्रोलियम से लगभग 20 प्रतिशत भारी तेल मिलता है, जोकि औद्योगिक भट्ठियों में प्रयुक्त किया जाता है। बर्नियों से प्राप्त पेट्रोलियम से 75 प्रतिशत भारी ईंधन तेल निकलता है।

शेल तेल—स्काटलैण्ड, न्यू साउथ वेल्स तथा न्यूजीलैण्ड में मिलनेवाली शेल मिट्टियों के आसवन से कुछ ईंधन तेल प्राप्त किये जाते हैं। एक टन शेल मिट्टी से 1.2 से 40 गैलन तक अशोधित तेल प्राप्त होता है। इस अशोधित तेल से आसवन द्वारा मूल्यवान् हलके तेल, जैसे मोटर स्प्रिट, नैफ्था, स्नेहक तेल (Lubricating oil) आदि, निकाल लिये जाते हैं और तब बचा हुआ तेल, ईंधन तेल के रूप में प्रयोग किया जाता है।

अलकतरा तेल (Tar oils)—अलकतरा के आसवन से मूल्यवान् हलके तेल, अन्य वाष्पशील यौगिक तथा पिच के अतिरिक्त अन्य तेल मिलते हैं जिन्हे ईंधन तेलो के रूप में प्रयोग किया जाता है।

अलकतरा के आसवन से विभिन्न तापक्रमों पर प्राप्त विभिन्न पदार्थ नीचे दिये जाते हैं—

(१) हलके तेल जो 170° से 0° तक के तापक्रम पर मिलते हैं। इन तेलों से मोटर स्प्रिट, बेन्जोल आदि प्राप्त किये जाते हैं।

(२) मध्य या कार्बोलिक तेल, जो 170° से 230° से 0° तक के तापक्रम पर मिलते हैं। इन तेलों से टार अम्ल, नैपथेलीन आदि प्राप्त किये जाते हैं।

(३) क्रीओजोट तेल (Creosote oils) जो 230° से 270° से 0° तक के तापक्रम पर मिलते हैं। ये तेल जीवाणुनाशक तथा काष्ठ-रक्षक की भाँति प्रयुक्त किये जाते हैं।

(४) एन्थ्रासीन (Anthracene) जो 270° से 320° से 0° तक के तापक्रम पर मिलते हैं। इनसे कृत्रिम रंग बनाये जाते हैं।

(५) पिच (Pitch)—अलकतरा से वाष्पशील द्रव पदार्थों को दूर करने पर जो काला ठोस पदार्थ बच जाता है उसे पिच कहते हैं। इस पिच पर अम्लीय या क्षारीय पदार्थों की कोई क्रिया नहीं होती तथा इसे सड़क बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। अलकतरा के आसवन में हलके तेल तथा पिच को छोड़ शेष तरल तेलों को व्यापार में अलकतरा तेल कहा जाता है। इनका प्रयोग ईंधन तेलों के रूप में या विभिन्न रासायनिक यौगिकों के बनाने में किया जाता है।

विभिन्न द्रव ईंधनों का औसत संगठन

द्रव ईंधन	कार्बन	हाइड्रोजन	आवसां- जन तथा नाइट्रोजन	गन्धक	ऊष्मीय मान
पेट्रोल तेल	८४.५	१२.५	२.०	०.५-१.०	१०९००
शेल तेल	८७.५	११.१	१.५	०.४	१०६००
अलकतरा तेल	८७.९	८.१	३.५	०.५-१.०	८९००

द्रव ईंधनों का बौछारीकरण—द्रव ईंधन में आग लगा देने से यह ऊपरी तल पर पीली कज्जलीय लौ-सहित जलता है। यह कज्जलीय लौ भट्ठी के अपेक्षाकृत ठण्डे

भागो के सम्पर्क में आने पर उन पर काला कार्बन जमा करती है। परन्तु यदि जलाने से पूर्व बौछार विधि द्वारा तेल को सूक्ष्म कणों में विभक्त कर दिया जाय या गरम करके वाष्पीकृत कर दिया जाय और हवा के साथ अच्छी तरह मिला दिया जाय, तो दहन शीघ्र और पूर्ण होता है तथा भट्ठी की दीवारों पर ठोस कार्बन के जम जाने का भय भी नहीं रहता। पुनर्जीवक (Recuperator) या पुनरुत्पादक (Regenerator) द्वारा पर्याप्त गरम की गयी हवा को तेल में भेजकर तेल वाष्पीकृत किया जाता है। परन्तु तेल के बौछारीकरण के लिए उच्च दबाववाली जलवाष्प या हवा का प्रयोग किया जाता है।

हलके आसुतो को छोड़कर दूसरे साधारण द्रव ईंधन वाष्पीकृत होने के पश्चात् कुछ ठोस कार्बनिक पदार्थ छोड़ देते हैं। अतः वाष्पीकरण यन्त्र की समय-समय पर सफाई करनी पड़ती है। इसी कारण औद्योगिक अविराम भट्टियों में वाष्पीकरण ज्वालक कम प्रयोग किये जाते हैं। इन ज्वालकों का नियन्त्रण भी सरल नहीं है।

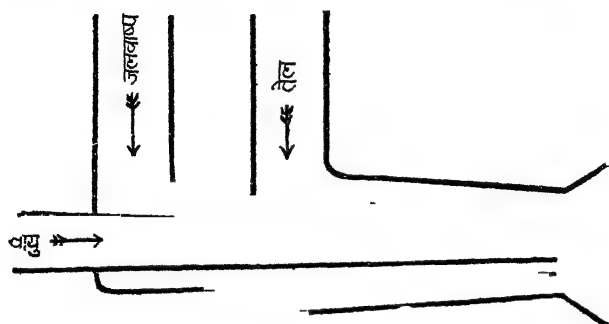
ईंधन तेलों के सभी दाहक यन्त्र बौछारीकरण सिद्धान्त पर आधारित होते हैं। इन्हें प्रायः तेलज्वालक कहा जाता है। बौछारीकरण का अर्थ ईंधन तेल को सूक्ष्म कणों में विभाजित कर देना होता है। ज्वालक में तेल एक भण्डार-कुण्ड से आता है। यह भण्डार-कुण्ड पर्याप्त ऊँचाई पर होता है, जिससे तेल अपने आप ज्वालक के भीतर आ सके।

तेल-ज्वालक विभिन्न प्रकार के होते हैं। परन्तु वे सभी न्यूनाधिक एक ही सिद्धान्त पर बने होते हैं।

इन ज्वालकों का साधारण सिद्धान्त यह है कि तेल और जलवाष्प या गरम वायु दो पृथक् सकेन्द्र-नलों से ज्वालक में भेजे जाते हैं। जलवाष्प या वायु अपने दबाव के कारण तेल को सूक्ष्म कणों में विभक्त कर देती है। यदि तेल अधिक श्यान हो, जैसा कि विशेष कर जाड़ों के दिनों में होता है, तो तेल को जलवाष्प नलों द्वारा भण्डार में ही गरम कर लिया जाता है। यह ज्वालक इस प्रकार बने होते हैं कि उन्हें भागों में निकाला जा सके और परिणाम-स्वरूप समय-समय पर आसानी से साफ किया जा सके।

होल्डेन बौछार यन्त्र या तेल-ज्वालक में तेल गुरुत्वाकर्षण बल द्वारा बाहरी नल में भेजा जाता है। साथ ही अन्दरवाले नल में जलवाष्प भेजा जाता है। तेल और जलवाष्प के इस खिचाव प्रभाव के कारण बीच के नल से हवा स्वयं अन्दर प्रवेश करती है तथा बड़े प्रकोष्ठ में ज्वालक के सम्मुख भाग में स्थित चौड़े नल में तेल-

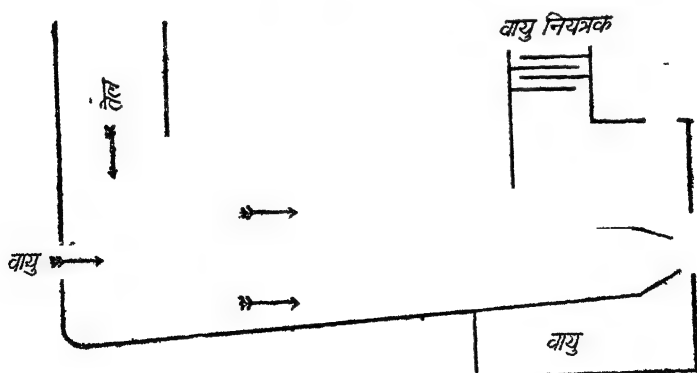
फुहार, जलवाष्प तथा वायु तीनों मिल जाते हैं। इस चौड़े नल में सामने की दीवार



चित्र ३१. होल्डेन जलवाष्प-बौछार यन्त्र

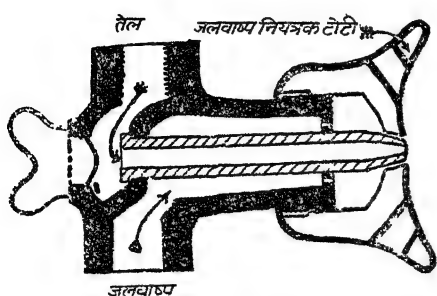
में विभिन्न कोणों पर कई छिद्र कटे होते हैं, जिनमें से होकर निकलने पर मिश्रण और भी अच्छी तरह मिल जाता है। इस प्रकार का ज्वालक रेलवे तथा समुद्री जहाजों के वाष्पित्रों में प्रायः प्रयुक्त किया जाता है।

कार्बोर्गेन ज्वालक विधि में तेल पर दो तरफ से वायु-धाराएँ टकराकर तेल को सूक्ष्म कणों में विभाजित कर देती हैं। बाद में तेलकण वायु से मिल जाते हैं। इस प्रकार के ज्वालक से लम्बी और तीव्र लौ निकलती है तथा कार्बन जमा नहीं होता। इसका प्रयोग प्रायः काँच भट्ठियों में किया जाता है।



चित्र ३२ कार्बोर्गेन वायु-बौछार यन्त्र

वेड ज्वालक में बौछारीकरण के लिए जलवाष्प और वायु दोनों ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं। इंग्लैण्ड में मृत्पात्र भट्ठियों में इसका प्रयोग काफी होता है।



चित्र ३३. वेड ज्वालक।

आपेक्षिक दक्षताएँ इस प्रकार हैं। जलवाष्प-बौछार यन्त्र ६८७५ प्रतिशत तथा वायु-बौछार यन्त्र ७८ से ८३ प्रतिशत।

विभिन्न बौछार यन्त्रों के लिए विभिन्न दबाव आवश्यक होते हैं। साधारणतया २० से ३० पौंड प्रति वर्ग इंच का दबाव पर्याप्त होता है।

मृत्पात्र भट्ठियों में जलवाष्प-बौछार यन्त्र प्रयुक्त करने पर लगभग २० पौंड प्रति वर्ग इंच औसत दबाववाले शुष्क जलवाष्प का प्रयोग करना चाहिए। प्रायः प्रति पौंड तेल पर १ ३५ पौंड जलवाष्प की आवश्यकता होती है।

जलवाष्प-बौछार यन्त्र के गुण-दोष

गुण—

(क) ज्वालक में पहुँचने से पूर्व रास्ते में ही तेल, जलवाष्प द्वारा गरम हो जाता है, जिससे बौछारीकरण अच्छा होता है।

(ख) जलवाष्प का विच्छेदन होने के कारण दहन प्रकोष्ठ ठण्डे रहते हैं, जिससे दुर्गल ईंट आदि अधिक दिन तक चलती हैं।

(ग) दहन प्रकोष्ठ में विच्छेदित जलवाष्प, जलगैस के रूप में भट्ठी में जाती है, जो वहाँ पुनः ईंधन का काम देती है।

(घ) अधिकांश मृदवस्तु-कारखानों में वाष्पित्र होते हैं। अतः उनके व्यर्थ जलवाष्प का इनमें उपयोग किया जा सकता है।

केवल वायु-बौछार यन्त्र में, केवल जलवाष्प-बौछार यन्त्र की अपेक्षा लगभग आधे जलवाष्प की आवश्यकता होती है। वायु-बौछार यन्त्र में जलवाष्प की यह मात्रा वायु में दबाव उत्पन्न करने के काम आती है। कैरमोड (Kermode) के अनुसार जलवाष्प और वायु-बौछार यन्त्रों की

दोष—

(क) जलवाष्प ईंधन, के लिए दहन सहायक नहीं है। अतः वायु का भेजना आवश्यक हो जाता है, जिसका नियन्त्रण सरल नहीं होता।

(ख) धूमनल से निकलनेवाले जलवाष्प अपने साथ काफी ताप ले जाते हैं, कारण जलवाष्प की ऊष्मा-धारिता, वायु या दूसरी दहनजनित गैसों की अपेक्षा लगभग दूनी है। इस प्रकार जलवाष्प का प्रयोग करने पर ताप की काफी मात्रा व्यर्थ चली जाती है।

(ग) कम तापक्रम पर पकाव-क्रिया होने पर जलवाष्प के प्रयोग से कार्बनीकरण अधिक होता है।

(घ) जलवाष्प भट्ठी के ठण्डे भागों में जमकर हानिकर प्रभाव उत्पन्न करता है।

जलवाष्प के उपर्युक्त गुण-दोष विवेचन के कारण वर्तमान समय में, जहाँ पर वाष्पित्र का व्यर्थ जलवाष्प प्राप्य नहीं है, वहाँ वायु ज्वालक ही अधिक उपयोगी समझे जाते हैं।

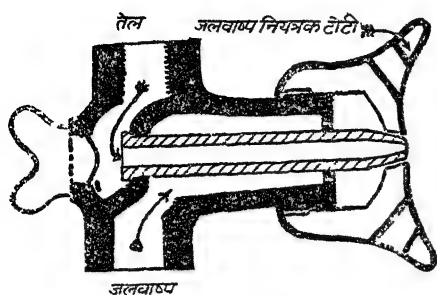
गैसीय ईंधन

प्राकृतिक गैस—अमेरिका के पेट्रोलियम प्राप्त होनेवाले क्षेत्रों, विशेष कर पेनसिलवानिया स्थान से अत्यधिक मात्रा में प्राकृतिक गैस निकलती है। भारतवर्ष के पूर्वी पंजाब के ज्वालामुखी क्षेत्रों तथा पूर्वी बंगाल में भी यह गैस निकलती है। जाड़ों की अपेक्षा गरमियों में गैस की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। केवल विभिन्न स्थानों से प्राप्त होनेवाली गैस के ही सगठन भिन्न नहीं होते, वरन् एक छिद्र से विभिन्न समयों में निकली गैस के सगठन भी भिन्न होते हैं। प्राकृतिक गैस का मुख्य अवयव मीथेन गैस है। इसमें मीथेन गैस ९० प्रतिशत तक होती है।

पिट्सबर्ग से प्राप्त होनेवाली प्राकृतिक गैस का औसत सगठन इस प्रकार है—

मीथेन गैस	८३.० प्रतिशत
ईथेन गैस	१२.० ”
हाइड्रोजन गैस	४.५ ”
नाइट्रोजन गैस	०.५ ”
योग	<u>१००.०</u>

वेड ज्वालक में बौछारीकरण के लिए जलवाष्प और वायु दोनों ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं। इंग्लैण्ड में मृत्पात्र भट्टियों में इसका प्रयोग काफी होता है।



चित्र ३३. वेड ज्वालक।

आपेक्षिक दक्षताएँ इस प्रकार हैं। जलवाष्प-बौछार यन्त्र ६८.७५ प्रतिशत तथा वायु-बौछार यन्त्र ७८ से ८३ प्रतिशत।

विभिन्न बौछार यन्त्रों के लिए विभिन्न दबाव आवश्यक होते हैं। साधारणतया २० से ३० पौंड प्रति वर्गइंच का दबाव पर्याप्त होता है।

मृत्पात्र भट्टियों में जलवाष्प-बौछार यन्त्र प्रयुक्त करने पर लगभग २० पौंड प्रति वर्ग इंच औसत दबाववाले शुष्क जलवाष्प का प्रयोग करना चाहिए। प्रायः प्रति पौंड तेल पर १ ३५ पौंड जलवाष्प की आवश्यकता होती है।

जलवाष्प-बौछार यन्त्र के गुण-दोष

गुण—

(क) ज्वालक में पहुँचने से पूर्व रास्ते में ही तेल, जलवाष्प द्वारा गरम हो जाता है, जिससे बौछारीकरण अच्छा होता है।

(ख) जलवाष्प का विच्छेदन होने के कारण दहन प्रकोष्ठ ठण्डे रहते हैं, जिससे दुर्गल ईंटे आदि अधिक दिन तक चलती हैं।

(ग) दहन प्रकोष्ठ में विच्छेदित जलवाष्प, जलगैस के रूप में भट्टी में जाती है, जो वहाँ पुनः ईंधन का काम देती है।

(घ) अधिकांश मृद्वस्तु-कारखानों में वाष्पित्र होते हैं। अतः उनके व्यर्थ जलवाष्प का इनमें उपयोग किया जा सकता है।

केवल वायु-बौछार यन्त्र में, केवल जलवाष्प-बौछार यन्त्र की अपेक्षा लगभग आधे जलवाष्प की आवश्यकता होती है। वायु-बौछार यन्त्र में जलवाष्प की यह मात्रा वायु में दबाव उत्पन्न करने के काम आती है। कैरमोड (Kermode) के अनुसार जलवाष्प और वायु-बौछार यन्त्रों की

दोष—

(क) जलवाष्प ईंधन, के लिए दहन सहायक नहीं है। अतः वायु का भोजना आवश्यक हो जाता है, जिसका नियन्त्रण सरल नहीं होता।

(ख) धूमनल से निकलनेवाले जलवाष्प अपने साथ काफी ताप ले जाते हैं, कारण जलवाष्प की ऊष्मा-धारिता, वायु या दूसरी दहनजनित गैसों की अपेक्षा लगभग दूनी है। इस प्रकार जलवाष्प का प्रयोग करने पर ताप की काफी मात्रा व्यर्थ चली जाती है।

(ग) कम तापक्रम पर पकाव-क्रिया होने पर जलवाष्प के प्रयोग से कार्बनीकरण अधिक होता है।

(घ) जलवाष्प भट्ठी के ठण्डे भागों में जमकर हानिकर प्रभाव उत्पन्न करता है।

जलवाष्प के उपर्युक्त गुण-दोष विवेचन के कारण वर्तमान समय में, जहाँ पर वाष्पित्र का व्यर्थ जलवाष्प प्राप्य नहीं है, वहाँ वायु ज्वालक ही अधिक उपयोगी समझे जाते हैं।

गैसीय ईंधन

प्राकृतिक गैस—अमेरिका के पेट्रोलियम प्राप्त होनेवाले क्षेत्रों, विशेष कर पेनसिलवानिया स्थान से अत्यधिक मात्रा में प्राकृतिक गैस निकलती है। भारतवर्ष के पूर्वी पंजाब के ज्वालामुखी क्षेत्रों तथा पूर्वी बंगाल में भी यह गैस निकलती है। जाड़ों की अपेक्षा गरमियों में गैस की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। केवल विभिन्न स्थानों से प्राप्त होनेवाली गैस के ही सगठन भिन्न नहीं होते, वरन् एक छिद्र से विभिन्न समयों में निकली गैस के सगठन भी भिन्न होते हैं। प्राकृतिक गैस का मुख्य अवयव मीथेन गैस है। इसमें मीथेन गैस ९० प्रतिशत तक होती है।

पिट्सबर्ग से प्राप्त होनेवाली प्राकृतिक गैस का औसत सगठन इस प्रकार है—

मीथेन गैस	८३.० प्रतिशत
ईथेन गैस	१२.० ”
हाइड्रोजन गैस	४.५ ”
नाइट्रोजन गैस	०.५ ”
योग	<u>१००.०</u>

अमेरिका में प्राकृतिक गैस ईंटों के कारखानों में अधिक प्रयोग की जाती है। ये गैसें पुनरुत्पादकों में नहीं प्रयुक्त की जा सकती, कारण उच्च तापक्रम पर इनमें उपस्थित हाइड्रो-कार्बन विच्छेदित होकर मुक्त कार्बन जमा करते हैं। अतः उच्च तापक्रम की भट्टियों में इनका प्रयोग सीमित है। कभी-कभी गैस को दबाया भी जाता है, जिससे उसके उच्च क्वथनांकवाले अवयव द्रवीभूत हो जाते हैं, जिन्हें द्रव ईंधन की भाँति बेच दिया जाता है।

कोयला गैस—हवा की अनुपस्थिति में गैस कोयला अर्थात् लम्बी लौ सहित जलने वाले बिटुमिनी कोयला के आसवन से कोयला गैस प्राप्त होती है। यह आसवन क्रिया विशेष प्रकार की दुर्गल भट्टियों में की जाती है। कोयला के अतिरिक्त कोक, गैस कार्बन, अलकतरा और अमोनिया उपजात के रूप में मिलती हैं। एक टन अच्छे कोयले से इन पदार्थों की निम्नलिखित मात्राएँ मिलती हैं।

(क) कोयला गैस	१०,००० से १२,००० घनफुट या १८ प्रतिशत
(ख) अलकतरा	१४ गैलन या ६ प्रतिशत
(ग) अमोनिया (द्राव)	८ प्रतिशत
(घ) कोक	६८ प्रतिशत

कोयला गैस का औसत संगठन

हाइड्रोजन	..	४४.८ प्रतिशत
मीथेन	..	३४.५ "
असम्पृक्त हाइड्रोकार्बन	.	४.५ "
कार्बन मॉनोक्साइड		७.८ "
कार्बन डाई आक्साइड	..	०.२ "
नाइट्रोजन आक्सीजन आदि	.	८.२ "
योग		<u>१००.०</u>

कोयला गैस का औसत ऊष्मीय मान ५०० ब्रिटिश ऊष्मीय मात्रक (B T U) प्रति घनफुट होता है।

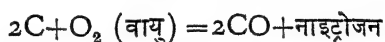
कोक भट्टी गैस—धातु उत्पादन के लिए कोक बनाते समय उपजात के रूप में हमें कोक भट्टी गैस मिलती है। इसका संगठन कोयला गैस से बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है। अन्तर केवल इतना होता है कि कोक भट्टी गैस में नाइट्रोजन और कार्बन मॉनोक्साइड की मात्रा अधिक रहती है। इन दोनों गैसों की अधिक मात्रा रक्त

ऊष्मा-तप्त कोयले पर वायु की क्रिया से बनती है। कोक भट्ठी गैस का औसत सगठन इस प्रकार है—

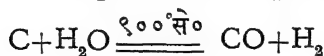
हाइड्रोजन	.	४७ ७ प्रतिशत
मीथेन	..	२६ २ "
इथाइलीन आदि	..	३ ० "
कार्बन मौनोक्साइड	..	९ ० "
कार्बन डाई आक्साइड	..	० ५ "
नाइट्रोजन	..	१३ ६ "

कोक भट्ठी का औसत ऊष्मीय मान लगभग ४५० ब्रि० ऊ० मा० प्रति घनफुट होता है। परन्तु औद्योगिक भट्टियों के लिए यह गैस अधिकतर प्राप्य नहीं होती, कारण यह इस्पात कारखानों में ही कोक बनानेवाले विभाग से प्राप्त होती है। ये इस्पात के कारखाने स्वयं ही सारी की सारी गैस प्रयुक्त कर लेते हैं। अच्छे बिटूमिनी कोयला की एक टन मात्रा से ६३००—६४०० घनफुट कोक भट्ठी गैस प्राप्त होती है।

उत्पादक गैस (Producer gas)—यह गैस वायु तथा जलवाष्प दोनों की क्रिया द्वारा ठोस कार्बन के अपूर्ण दहन से प्राप्त होती है। यदि कार्बन पर केवल वायु की रासायनिक क्रिया करायी जाय तो केवल कार्बन मौनोक्साइड और अक्रिय नाइट्रोजन बनेगी। इस मिश्रण को वायु-गैस कहा जाता है।



परन्तु यदि कार्बन पर केवल जलवाष्प की रासायनिक क्रिया करायी जाय तो कार्बन मौनोक्साइड (CO) और H₂ बनते हैं। इन दोनों गैसों के मिश्रण को जलगैस कहते हैं।



चूँकि जलगैस निर्माण में जलवाष्प के विच्छेदन के लिए ताप की अधिक मात्रा की आवश्यकता पड़ती है, अतः साधारण उत्पादक गैस वायु और जलवाष्प दोनों की क्रिया से बनायी जाती है। वायु तथा जलवाष्प की मात्राओं के अनुपात पर उत्पादक गैस का सगठन निर्भर करता है।

उत्पादक गैस-निर्माण में उत्पादक के अन्दर होनेवाली क्रियाओं को समझने के

लिए कोयले के ढेर को चार मडलो में बाँटा जा सकता है—(१) राख-मडल (२) दहन-मडल (३) विच्छेदन-मडल तथा (४) आसवन-मडल ।

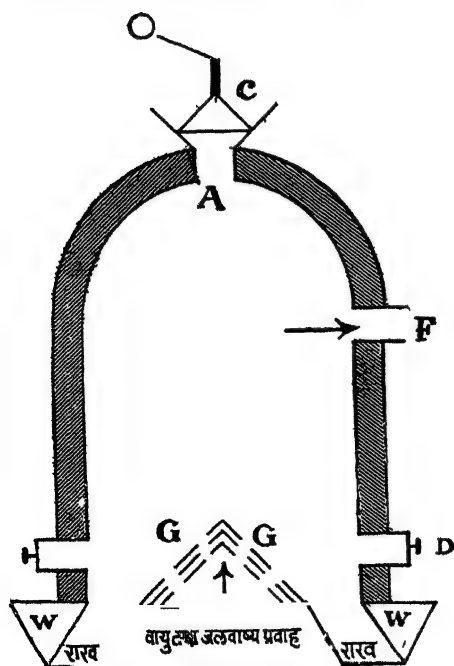
वायु और जलवाष्प सर्वप्रथम लोहे की जाली की छड़ों में होकर राख-मडल में प्रवेश करती हैं। यह वायु और जलवाष्प राख को ठण्डा रखती हैं और इस प्रकार उसको गलकर ठोस ककड़ होने से बचाती हैं ।

इसके बाद गरम वायु और जलवाष्प दहन-मडल में प्रवेश करती हैं। इस मडल में कार्बन के पूर्ण दहन से कार्बन डाई-आक्साइड बनकर काफी ताप उत्पन्न करता है। इस ताप से तृतीय मडल का कोयला उज्ज्वल रक्त-ऊष्मा पर रहता है। एक पाँड कार्बन से कार्बन-डाई-आक्साइड बनने पर १४,६४७ ब्रि० ऊ० मा० ताप उत्पन्न होता है।

यह सब गरम गैसें अब विच्छेदन-मडल में पहुँचकर कार्बन मोनोक्साइड और हाइड्रोजन में विच्छेदित हो जाती हैं। चूँकि जलवाष्प और कार्बन डाई आक्साइड

के इस विच्छेदन में काफी ताप की आवश्यकता पड़ती है, अतः स्पष्ट है कि जलवाष्प की केवल सीमित मात्रा ही भेजी जानी चाहिए और कोयला को उच्च तापक्रम पर रखना चाहिए।

यदि उत्पादक गैस कोयले से बनायी गयी है, तो कोयले की ऊपरी सतह अर्थात् आसवन-मडल से उसमें उपस्थित हाइड्रोकार्बन आसृत हो जायेंगे और इस प्रकार गैस में विभिन्न हाइड्रोकार्बनों की मात्रा अधिक हो जायगी। यदि गैस कोक या एन्थ्रासाइट से बनायी गयी है, तो उसमें हाइड्रोकार्बन नाममात्र को रहेंगे। यदि कोयला की तह कम मोटी है और जल-



चित्र ३४. गैस उत्पादक

वाष्प की मात्रा कम है तो गैस उत्पादक अधिक गरम होकर हाइड्रोकार्बनो को हाइड्रोजन तथा कज्जल में विच्छेदित कर देगा। इस कज्जल का कुछ भाग कार्बन डाई आक्साइड में परिवर्तित हो सकता है। परिणाम स्वरूप गैस में हाइड्रोजन और कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा अधिक होगी तथा कार्बन मोनोक्साइड कम रहेगी। हाइड्रोकार्बनो के विच्छेदन से प्राप्त यह कज्जल गैस उत्पादक की नालियों को बन्द कर देती है।

परन्तु कम तापक्रम पर कार्बन मोनोक्साइड, कार्बन डाई आक्साइड तथा मुक्त कार्बन में विच्छेदित होना प्रारम्भ कर देती है। यह विच्छेदन $500^{\circ}\text{से}0$ के लगभग सर्वाधिक होता है और $1000^{\circ}\text{से}0$ पर समाप्त हो जाता है। इन दो कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए साधारण बिटूमिनी कोयले का प्रयोग करते समय उचित नियन्त्रण के लिए गैस उत्पादक $600^{\circ}\text{से}0$ पर रखा जाता है। यद्यपि इस तापक्रम पर कार्बन मोनोक्साइड के विच्छेदन से कुछ कज्जल बनता है, परन्तु इस कज्जल का परिमाण उस कज्जल के परिमाण से कम होता है, जो उच्च तापक्रम पर हाइड्रोकार्बनो के विच्छेदन से प्राप्त होता है।

कोयले की तह का यह तापक्रम-नियन्त्रण जलवाष्प और वायु की उचित मात्राएँ भेजकर किया जाता है।

समीकरण $(C + H_2O = CO + H_2)$ के अनुसार १८ पौंड जलवाष्प को हाइड्रोजन में विच्छेदित करने के लिए १,२४,२०० ब्रि० ऊ० मा० ताप की आवश्यकता होती है, परन्तु साथ ही C से CO बनने में ५३,४०० ब्रि० ऊ० मा० ताप प्राप्त होगा। अतः प्रत्येक पौण्ड जलवाष्प विच्छेदित करने में ३९३३ ब्रि० ऊ० मा० ताप की आवश्यकता होगी। यह ताप C को CO या CO_2 में परिवर्तित करने से प्राप्त किया जाता है।

व्यवहार में गैस बनाते समय यह उद्देश्य रहता है कि CO की मात्रा अधिकतम और CO_2 की मात्रा न्यूनतम रहे। इसके लिए CO बनते ही गैस उत्पादक से बाहर ले जायी जाती है, जिससे $2CO + O_2 = 2CO_2$ की क्रिया कम हो जाय। CO को शीघ्रता से बाहर ले जाने के लिए कोयला यथासम्भव कम दबाकर भरा जाय, अन्यथा गैस निकलने में देर लगेगी। बिटूमिनी कोयले में गरम करने पर फूलकर एक ठोस पिण्ड बन जाने की धारणा होती है। परिणाम-स्वरूप हवा और गैसों का बहना बन्द

हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए कम ठोस रेतीले कोयले या कोक को बिटूमिनी कोयले के साथ मिला दिया जाता है। बिटूमिनी कोयले के वाष्पशील हाइड्रोकार्बन उत्पादक गैस में आ जाते हैं।

गैस उत्पादक से सीधी आनेवाली गैस को अशोधित उत्पादक गैस कहते हैं तथा इसे बिना किसी शोधन के ऐसे ही जलाया जाता है। अशोधित अवस्था में गैस का प्रयोग करनेवाली भट्टियाँ गैस उत्पादक के सीधे सम्पर्क में होती हैं। इस दशा में गैस का तापक्रम, वातावरण-तापक्रम से अधिक होता है। यह अधिक ताप उद्योग में प्रयुक्त हो जाता है। जब अशोधित गैस को ठण्डा करके इससे जलवाष्प, अलकतरा, अमोनिया आदि दूर कर दिये जाते हैं, तो गैस शुद्ध हो जाती है और इसे विशुद्ध या शोधित गैस कहते हैं। यह गैस, गैस धारकों में रखी जा सकती है या नलों में बहाकर दूर ले जायी जा सकती है, कारण विशुद्ध गैस का कोई अशुद्ध जमता नहीं है, जिससे कि नल बन्द हो जायँ। उत्पादक गैस का ऊष्मीय मान कुछ कम है। अशोधित उत्पादक गैस का ऊष्मीय मान १२५ से-१७० ब्रि० ऊ० मा० प्रति घनफुट तथा शोधित गैस का औसत ऊष्मीय मान १२० ब्रि० ऊ० मा० प्रति घनफुट होता है।

उत्पादक गैस का संगठन

गैस उत्पादन का तापक्रम	कार्बन डाई आक्साइड	कार्बन मोनोक्साइड	हाइड्रोजन	मीथेन	नाइट्रोजन
४४०° से०	५५	२६८	१४६	३४	४९७
८१०° से०	६०	२८३	२०७	४८	४०२
९२५° से०	३०	३२७	१७९	१२	४५२

तेल गैस (Oil gas)—यह गैस हवा की अनुपस्थिति में खनिज तेलों के विच्छेदन से प्राप्त होती है। विच्छेदन क्रिया विशेष प्रकार की लौह या अग्नि मिट्टी की भट्टियों में की जाती है। इसमें प्रकाश-जनन तथा ताप-जनन शक्तियाँ अधिक होती हैं। कोयला गैस की अपेक्षा इस गैस में विशेषता यह है कि इसको दबाकर प्रयोग करने पर भी इसकी प्रकाश-जनन शक्ति कम नहीं होती। कोयला गैस दबाकर रखने पर उसके सभी द्रवणीय हाइड्रोकार्बन जमकर और तरल बनकर अलग हो जाते हैं।

वात-भट्ठी गैस—ढलवाँ लोहा के उत्पादन में यह गैस उपजात के रूप में मिलती

है। गैस का सगठन इस बात पर निर्भर करता है कि भट्ठी में कोक या कोयला में से किस ईंधन का प्रयोग किया गया था। नीचे इसका सगठन दिया जा रहा है—

सगठन	कोक प्रयोग करने पर	कोयला प्रयोग करने पर
CO	२७—३०	२७—३०
CO ₂	९—१२	८—१०
H ₂	१—२.५	४—५.५
CH ₄	×	२.५—४
N ₂	५७—६०	५५—५८

वैसे इस गैस का ऊष्मीय मान बहुत कम है, परन्तु कोक भट्ठी गैस के साथ मिलाने पर यह काफी अच्छे ईंधन की भाँति कार्य कर सकती है।

विभिन्न ईंधन गैसों का ऊष्मीय मान

(ब्रि० ऊ० मा० प्रति घनफुट में)

कोयला गैस	४५०—५००
कोक भट्ठी गैस	४००—५००
उत्पादक गैस	१२५—१७५
वात भट्ठी गैस	९५—१०५

भट्ठियाँ और चूल्हे

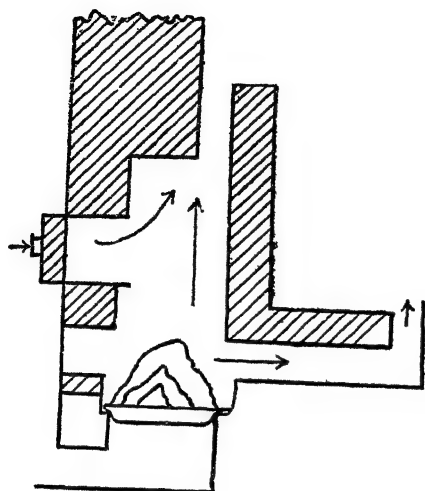
मृत्पात्र पकाते समय भट्ठी में विशेष अवस्थाओं के आवश्यक होने के कारण मृद्-उद्योग भट्ठियाँ दूसरी भट्ठियों से भिन्न होती हैं। मृद्-वस्तुओं की तापचालकता प्रायः बहुत ही कम रहती है, जिसके कारण उन्हें पकाने का उच्च तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ाया जाना चाहिए। ठण्डा करना भी न्यूनाधिक बहुत धीमी क्रिया है तथा वस्तुओं के ठण्डा होने में विकिरण द्वारा प्राप्त ताप का उपयोग किया जा सकता है, जैसा कि प्रकोष्ठ तथा सुरंग भट्ठियों में होता है।

प्रत्येक मृद्-उद्योग-भट्ठी को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(क) भट्ठियों के लिए चूल्हे,

(ख) प्रकोष्ठ तथा

(ग) चिमनी या धूमनल ।



चित्र ३५ मृद्वस्तु-भट्ठियों के लिए क्षैतिज जालीवाला चूल्हा

ईंधन वास्तव में चूल्हे में जलाया जाता है या गैसों में परिवर्तित किया जाता है। उसके बाद ये ताप या दहनशील गैसें उस प्रकोष्ठ में जाती हैं, जिसमें पकाने के लिए पात्र रखे जाते हैं। यहाँ दहनशील गैसें जलकर पात्रों को ताप देती हैं और उसके बाद गैस-नालियों में होती हुई चिमनी द्वारा बाहर निकल जाती हैं। चिमनी के कारण भट्ठी में गैसों का प्रवाह बना रहता है।

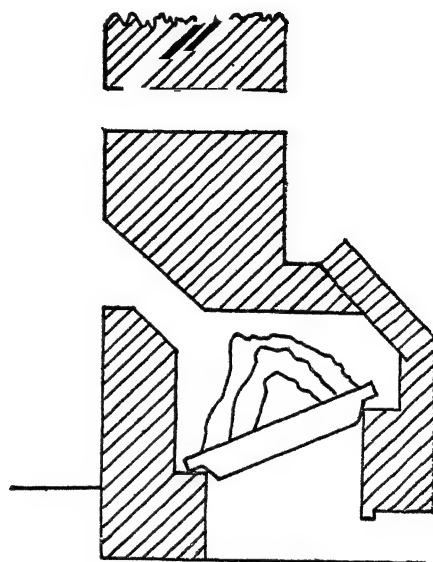
मृद्वस्तु भट्ठियों के चूल्हे की आकृति प्रयोग किये जानेवाले ईंधन और भट्ठी के अधिकतम तापक्रम के अनुसार भिन्न होती है।

लकड़ी जलाने के लिए जाली की आवश्यकता नहीं होती। लकड़ी का प्रयोग करनेवाली भट्ठियों में प्रायः एक ही चूल्हा होता है, जैसा कि टेरा-कोटा और छत की टालियाँ पकाने की भट्ठियों में होता है। चुनार के प्रसिद्ध प्रलेपित मृत्पात्र भी इसी प्रकार की भट्ठियों में पकाये जाते हैं। इस भट्ठी का नमूना चित्र २९ में दिखाया गया है।

कोयला जलाने के लिए सभी चूल्हों में लोहे के डंडों की जाली होती है। प्रलेपित मृत्पात्र भट्ठियों में लौह डंडे क्षैतिज अवस्थामें रखे जाते हैं और जाली के पास ही बने हुए द्वार से कोयला डाला जाता है, जैसा कि चित्र ३५ में दिखाया गया है। प्रत्येक बार कोयला चूल्हे में डालने के पश्चात् कोयला डालनेवाला ईंधन-द्वार बन्द कर दिया जाता है। आवश्यक हवा की मात्रा चूल्हे में भोजन के लिए ईंधन-द्वार के ऊपर वायु-द्वार होता है। इस वायुद्वार में होकर जानेवाली हवा की मात्रा को नियन्त्रित किया

जा सकता है। इस प्रकार के चूल्हो में कोयला न्यूनाधिक पूरा जल जाता है और कोयला के दहन से उत्पन्न उत्तप्त गैसें दीवारों तथा तली सभी की ओर से प्रकोष्ठ में घुसती हैं।

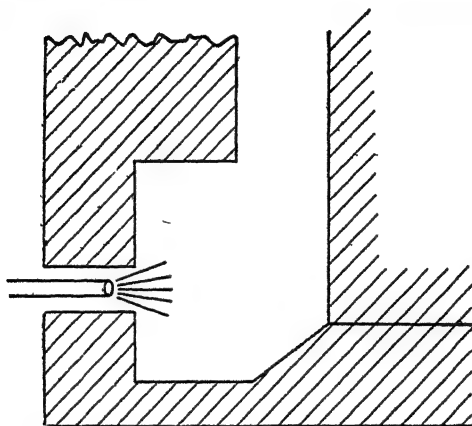
पोरसिलेन भट्टियों में चूल्हे की जाली क्षैतिज न रखकर झुकी हुई रखी जाती है, जैसा कि चित्र ३६ में दिखाया गया है। इसका कारण यह है कि ये चूल्हे केवल अर्द्ध गैस उत्पादकों की भाँति ही कार्य करते हैं। इस कारण चूल्हे में कोयले की तह मोटी रखी जाती है और कोयला चूल्हे के ऊपरी भाग की ओर से डाला जाता है। चूल्हे में अधिक कोयला रहने के कारण गरम हवा चूल्हे में नहीं जाती। अतः आनेवाली हवा को चूल्हे में घुसने से पूर्व ही गरम करने का प्रबन्ध रखा जाता है। इस हवा को गरम करने के लिए भट्ठी के ही व्यर्थ ताप का उपयोग किया जाता है।



चित्र ३६. पोरसिलेन भट्ठी के लिए झुकी हुई जालीवाला चूल्हा

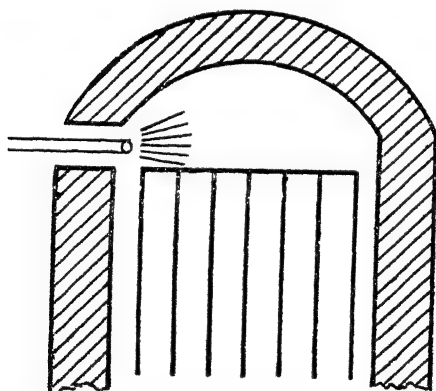
जब मृत्पात्र भट्टियों में ईंधन के रूप में तेल का प्रयोग किया गया हो, तो तेल जलाने के लिए विशेष प्रकार के प्रकोष्ठ चूल्हों की आवश्यकता होती है। चित्र ३७ में एक ऐसा प्रकोष्ठ चूल्हा दिखाया गया है। इन तेल चूल्हों में इतना पर्याप्त स्थान होना चाहिए कि बौछारीकृत तेल पूरी तरह जल सके, जिससे भट्ठी प्रकोष्ठ में केवल गरम लौ और दहन-जनित गैसें ही घुसें। चूँकि तेल जलने पर, दहन-स्थान पर अत्यधिक ताप उत्पन्न होता है, अतः प्रकोष्ठ चूल्हों के चारों ओर अधिक दुर्गल पदार्थों की परत होनी चाहिए, जिससे अधिक ताप व्यर्थ न जाय। कभी-कभी तेल जलाने के लिए अलग से प्रकोष्ठ नहीं होता बल्कि मुख्य भट्ठी के ऊपरी भाग में ही तेल-दहन-क्रिया की जाती है। चित्र ३८ में तेल-ज्वालक को भट्ठी के ऊपरी भाग में दिखाया गया है।

इसमें भट्ठी की गोलाकार छत के नीचे तेल दहन के लिए पर्याप्त स्थान होता है। तेल



चित्र ३३. तेल ईंधन के लिए प्रकोष्ठ चूल्हा

दहन के पश्चात् गरम लौ व गैसे, प्रकोष्ठ में रखी हुई पकनेवाली वस्तुओं के चारों ओर होकर नीचे चली जाती हैं।

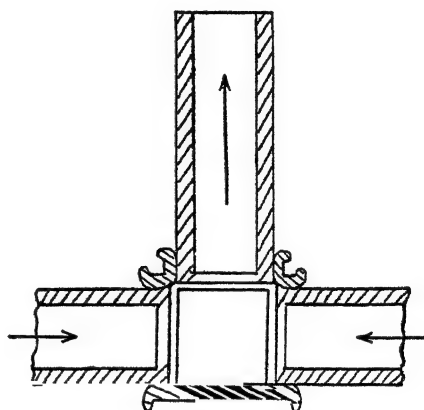


चित्र ३४. भट्ठी की गोल छत के नीचे तेल-दहन

मृद्-उद्योग भट्ठियों में प्राकृतिक या कृत्रिम गैसीय ईंधन प्रयोग करने पर विशेष प्रकार के गैस-ज्वालाक प्रयोग किये जाते हैं, जिससे ईंधन गैस के पूर्ण दहन के लिए

आवश्यक हवा और गैस का अनुपात नियन्त्रित किया जा सके। चित्र ३९ में इसी प्रकार का एक गैस-ज्वालक दिखाया गया है।

मृद्-उद्योग भट्टियों के क्षैतिज जालीवाले चूल्हे में प्रति वर्गफुट जाली के लिए ८ से १२ पाउंड प्रतिघण्टा बिटूमिनी कोयला खर्च होता है। चूल्हे की जाली ४ फुट से अधिक लम्बी और ३ फुट से अधिक चौड़ी नहीं होनी चाहिए, अन्यथा चूल्हे की सफाई करते समय तापक्रम अधिक घट जायगा। जाली के लौह डंडों का अनुप्रस्थ काट (Cross-section) ४ सेण्टीमीटर वर्ग हो और जाली बनाते समय दो दंडों के बीच की



चित्र ३९. मृद्-उद्योग भट्टियों के लिए गैस ज्वालक

दूरी भी ४ सेण्टीमीटर ही रखनी चाहिए। इस प्रकार बनी जाली में धातुमल न्यूनतम मात्रा में बनता है और इस प्रकार की जाली से केवल ३ प्रतिशत ही कोयला बिना जले हुए गिर जाता है।

ग्रीव्स वाकर (Greaves-Walker) के अनुसार जाली के क्षेत्रफल और भट्ठी के फर्श के क्षेत्रफल में अनुपात १ (४ से ८) होना चाहिए। दुर्गल ईटे पकाने के लिए यह अनुपात अधिक से अधिक १/४ हो सकता है। नमक प्रलेपन में सर्वोत्तम परिणाम के लिए ये सीमाएँ १ (६ से ८) होनी चाहिए। जाली का क्षेत्रफल बढ़ाने से पकाव-गति भी बढ़ जाती है। उच्च तापक्रम पर पोरसिलेन-पात्र पकाने के लिए यूरोपीय देशों की भट्टियों में यह अनुपात १ (३.५ से ५) तक रहता है। साधारण मृत्पात्र मफल प्रकोष्ठ के फर्श का क्षेत्रफल प्रायः चूल्हे की जाली के क्षेत्रफल का चौगुना रहता है।

चूल्हे की जाली और उसकी छत के बीच पर्याप्त स्थान रहना आवश्यक है। लम्बे चूल्हे में ताप एक ही स्थान पर केन्द्रित होकर उस भाग की दीवारों को अधिक गरम करके उन्हें हानि पहुँचाता है। चूल्हे से भट्ठी प्रकोष्ठ में लौ प्रवेश के लिए बने

लौ-द्वार की दीवारे ऊँची और गोलाकार होनी चाहिए। ऊँचे लौ-द्वार से पात्रो पर लौ प्रभाव नहीं पड़ता और ताप भट्ठी के केन्द्र पर अधिक जाता है। अर्द्धवृत्ताकार लौ-द्वार अधिक टिकाऊ होते हैं।

भट्ठी का प्रकोष्ठ वह स्थान है, जहाँ पात्र पकाने के लिए रखे जाते हैं। इन प्रकोष्ठो की आकृति गोल या चौकोर होनी है। प्रकोष्ठ में वस्तुएँ रखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि भट्ठी के अन्दर पात्रो को पकानेवाली गरम गैसों के ठीक प्रकार से बहने के लिए पात्रो के बीच उचित मार्ग रहे। प्रकोष्ठ के अन्दर प्रधान समस्या गैसों से पात्रो को अधिकाधिक ताप देने की तथा ताप को पूरे प्रकोष्ठ में समान रूप से वितरित करने की होती है, जिससे प्रकोष्ठ के सभी भाग समान रूप से गरम हो। यह भी ध्यान रखा जाय कि कहीं पात्रो के तापक्रम में आकस्मिक परिवर्तन न हो और पात्रो को दहन-जनित गैसों से तथा गैसों द्वारा ले जाये गये ईंधन के छोटे-छोटे कणों और राख से हानि न पहुँचे।

भट्ठी में गैसें दो विधियों से जाती हैं। एक तो चूल्हे पर दबाव उत्पन्न करके और दूसरे गैसें निकलनेवाले सिरे पर पखा या चिमनी द्वारा खिचाव उत्पन्न करके। गैसों के अधिक दबाव पर रहने से प्रकोष्ठ से गैसों के बाहर निकल जाने का भय है और खिचाव का प्रयोग करने पर प्रकोष्ठ दीवारों की सूक्ष्म दरारों में से ठण्डी हवा के अन्दर आ जाने का भय, परिणाम-स्वरूप प्रकोष्ठ का तापक्रम कम हो जाने का भय है। वातावरण से अधिक दबाव पर कार्य करनेवाली भट्ठियों की दीवारों व छतों का तापक्रम वातावरण से कम दबाव पर काम करनेवाली भट्ठियों के इन स्थानों के तापक्रम की अपेक्षा अधिक होता है। अतः वातावरण से अधिक दबाववाली भट्ठियों में दुर्गल परत का जीवन-काल कम हो जाता है। ईंधन के रूप में तेल या गैसों का प्रयोग करनेवाली भट्ठियाँ वातावरण से अधिक दबाव पर कार्य करती हैं। अतः खिचाव उत्पन्न करने के लिए इनमें चिमनी की आवश्यकता नहीं होती।

भट्ठी-दीवार और छत—भट्ठी की दीवार इतनी मोटी हो कि वह तापक्रम के कुप्रभावों को सह सके तथा अत्यधिक ताप-विकिरण को रोक दे। परन्तु साथ ही एक अच्छे चूल्हे की अधिकतम मोटाई से अधिक मोटी भी न होनी चाहिए। भट्ठी की दीवार मोटी होने से चूल्हे में उत्पन्न ताप शीघ्रता से चूल्हे के बाहर नहीं जाता, वरन् चूल्हे में ही केन्द्रित होकर चूल्हे की दीवारों को शीघ्र गलाकर मरम्मत का खर्च बढ़ा देता है।

इन सब दृष्टिकोणों से विचार करते हुए, यदि दीवार में ताप-पृथक्करण ईंटे लगा दी जायें तो पतली व सीधी दीवार सर्वोत्तम होती है, कारण दीवार पतली होने से चूल्हे का कुछ भाग भट्ठी प्रकोष्ठ के अन्दर घुसा रहेगा और दीवारों को पकाने व गरम करने में ईंधन व्यर्थ खर्च नहीं होगा। चूल्हा अन्दर निकले रहने से भट्ठी प्रकोष्ठ का पात्र रखने का स्थान कुछ अवश्य कम हो जाता है, परन्तु भट्ठी के जीवन-काल तक इसके कारण समय, ईंधन और मरम्मत में बचत से लाभ, कम स्थान रह जाने की हानि की अपेक्षा, अधिक होता है। यदि दीवारों में ताप-पृथक्करण ईंटे लगायी जायें तो एक अच्छे अग्निबक्स या चूल्हे की आकृति के अनुरूप होते हुए दीवारे यथासम्भव जितनी मोटी बनायी जा सके, बनानी चाहिए।

गोलाकार भट्टियों की अपेक्षा चौकोर भट्टियों की दीवारे मोटी बनायी जाती है, कारण गोल भट्टियों में प्रयोग किये गये गोल लौह-बन्धन, चौकोर भट्टियों में प्रयोग किये गये लौह-बन्धनों की अपेक्षा अधिक कार्यक्षम होते हैं। 1100° से 0 तक पकानेवाली भट्ठी की दुर्गल परत $4\frac{1}{2}$ इंच से अधिक मोटी नहीं होनी चाहिए। इससे अधिक तापक्रमवाली भट्टियों में दुर्गल परत 9 इंच मोटी होनी चाहिए। गोल भट्ठी में दुर्गल ईंटों की दीवार बाहरी साधारण ईंटों की मुख्य दीवार से बिलकुल सटाकर नहीं बनायी जाती, कारण इससे बाहरी दीवार पर प्रभाव डाले बिना ही भीतरी दुर्गल दीवार प्रसारित या आकुचित हो सकती है तथा सटाकर न बनाने से दुर्गल परत की मरम्मत भी स्वतन्त्रतापूर्वक सरलता से हो सकती है। चौकोर भट्टियों में दुर्गल परत तथा भट्ठी की मुख्य बाहरी दीवार के बीच बन्धन अवश्य रहने चाहिए।

यदि गोल भट्ठी ताप-पृथक्कृत नहीं की गयी है, तो दीवार 40 इंच से अधिक मोटी नहीं बनानी चाहिए तथा चौकोर भट्ठी में इस अवस्था में दीवार 48 इंच से अधिक मोटी नहीं बनानी चाहिए।

जब $4\frac{1}{2}$ इंच मोटी ताप-पृथक्करण परत प्रयोग की गयी हो तो गोल भट्ठी की पूरी दीवार 24 इंच ($4\frac{1}{2}$ " अग्निईंटे, $4\frac{1}{2}$ " ताप-पृथक्करण ईंटे तथा 15 " साधारण ईंटे) हो सकती है। यदि साधारण ईंटों के स्थान पर विशेष सरन्ध्र साधारण ईंटों का प्रयोग किया जाय, तो प्रारम्भ में कुछ खर्च अधिक होने पर भी अन्त में यह लाभ-जनक ही होगा।

छत गोलाकार होने पर भट्ठी की दीवारों के ऊपरी भाग से छत की ऊँचाई भट्ठी के व्यास की एक चौथाई होनी चाहिए। चौकोर भट्ठी के लिए यह दूरी भट्ठी के अन्दर की चौड़ाई की एक तिहाई होनी चाहिए।

भट्ठी छत के गोल भाग की ऊँचाई अधिक होने पर ईंधन अधिक लगता है, पकाने में समय अधिक लगता है, भट्ठी के ऊपरी भाग में रखे पात्र अधिक पक जाते हैं और भट्ठी की तली पर ताप कम पहुँचता है।

भट्ठी की गोलाकार छत मुख्य दीवार पर रुकी हुई होनी चाहिए, अन्दर की दुर्गल परत पर नहीं। इसमें भट्ठी की छत या दीवारों की दुर्गल परत की मरम्मत एक-दूसरे के काम में बाधा डाले बिना की जा सकती है।

ताप-पृथक्करण ईंटें

आधुनिक भट्ठियाँ प्रायः विशेष प्रकार की ताप-पृथक्करण ईंटों से ताप-पृथक्कृत की जाती हैं। यह ताप-पृथक्करण ईंटें अधिक सिलिकामय, अधिक सरन्ध्र प्राकृतिक मिट्टियों से बनायी जाती हैं। यह मिट्टी विशेष जीवाणुओं के अवशेषों से प्राप्त होती है तथा इसे इनफ्यूसोरियल या डार्डिऐटोमेसम मिट्टी (Infusorial or Diatomaceous earths) कहा जाता है। नीचे जर्मनी तथा अमेरिका की दो इनफ्यूसोरियल मिट्टियों के विश्लेषण दिये जाते हैं—

प्राप्तिस्थान	सिलिका	एल्यूमिना	फैरिक आक्साइड	कैल्शियम कार्बोनेट	पानी	हानि
ओवर हॉल (जर्मनी)	८७.९	०.१	०.७	०.७	८.४	२.३
कैलीफोर्निया (अमेरिका)	८५.३	५.४	१.१	१.१	५.६	१.५

इस मिट्टी से बनी ईंटों को ठीक प्रकार से पकाने पर इनमें असह्य सरन्ध्र बन जाते हैं, जिसके कारण इन ईंटों की दुर्गलता बढ़ने के साथ-साथ इनकी ताप-चालकता काफी कम हो जाती है।

भट्ठी की दीवार में ये ईंटें रहने पर ताप-विकिरण द्वारा ताप-हानि में; १६-२० प्रतिशत कमी आ जाती है, साथ ही पकायी गयी वस्तुओं के गुण भी सुधर जाते हैं और पकाने का समय भी कम हो जाता है।

उच्च तापक्रम-पृथक्करण ईंटों के गुण

गुण	अग्नि ईंट	(क)	(ख)
भार पौंडो मे	८	३७	२५
१४००° से० पर आकुचन	००	५६	३९
११००° से० पर ताप-चालकता	०००४०	०००१७	०००११
तापक्रम-परिवर्तन-रोधकता	सन्तोषजनक	सन्तोषजनक	असन्तोषजनक

(क) = मिट्टी और कार्बनिक पदार्थों से बनी एक साधारण सरन्ध्र ईंट ।

(ख) = इनफ्यूसोरियल मिट्टी से बनी हुई दुर्गल सरन्ध्र ईंट ।

पूर्वलिखित केलीफोर्निया की मिट्टी से बनी एक इंच मोटी परत के ताप-पृथक्करण गुण १२ इंच मोटी साधारण ईंट के समान होते हैं। निरन्तर गरम रहने-वाली भट्ठी में इन ईंटों की ४ इंच मोटी परत लगा देने से ५० से ७५ प्रतिशत ताप-विकिरण रुक जाता है।

उच्च तापक्रम पर ताप-विकिरण रोकने के लिए ईंट में रन्ध्र सूक्ष्म तथा एक दूसरे से असम्बद्ध होने चाहिए। बड़े तथा सम्बद्ध रन्ध्र होने पर उत्तप्त वायु में सबहन धाराएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे ताप-विकिरण अधिक हो जाता है। रन्ध्र काफी सूक्ष्म होने चाहिए, जिससे दो तरफ भिन्न तापक्रम होने पर वायु में गति न उत्पन्न होने पाये।

गैस नालियाँ तथा चिमनी—भट्ठी में प्रयुक्त होनेवाले ईंधन के दहन से उत्पन्न गैसीय पदार्थ भट्ठी प्रकोष्ठ से विभिन्न गैस-नालियों में होकर चिमनी के रास्ते बाहर निकल जाते हैं। इन गैस-नालियों की संख्या इतनी हो कि गैसें भट्ठी-प्रकोष्ठ में कोई परेशानी उत्पन्न किये बिना ही सरलता से बाहर निकल जायँ। इस कारण गैस-नालियाँ बनाते समय उनके आयतन पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

गणना करके देखा गया है कि एक किलोग्राम बिटूमिनी कोयले के जलने पर ७.५६ घनमीटर गैसें उत्पन्न होती हैं। परन्तु भट्ठी के अन्दर गैसों के प्रवाह को स्थिर रखने के लिए, कोयले के पूर्ण दहन के लिए आवश्यक हवा से ३०-३५ प्रतिशत अधिक हवा भेजी जानी चाहिए। मृद्-उद्योग-भट्टियों की गैस-नालियों में गरम गैसें

का औसत वेग ८ से १० फुट प्रति सेकण्ड रहता है। अतः इस आधार पर गैस-नालियों के आयतन की गणना की जा सकती है।

चिमनी द्वारा गैसों में प्राकृतिक खिचाव उत्पन्न होता है। चिमनी का यह खिचाव, चिमनी के अन्दर की गरम गैसों तथा चिमनी के बाहर की ठण्डी हवा के समान आयतनों के भारों के अन्तर के कारण होता है। यह खिचाव इतना पर्याप्त होना चाहिए कि भट्ठी तथा गैस-नालियों आदि की सभी गति-रोधक शक्तियों पर काबू पाकर चिमनी में गैसों के बहने की गति इतनी पर्याप्त हो कि बाहरी हवा का इस पर कोई विशेष प्रभाव न पड़े। इन सारी समस्याओं को सोचते हुए चिमनी बनाने समय चिमनी की ऊँचाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए, कारण चिमनी की ऊँचाई जितनी ही अधिक होगी, खिचाव उतना ही अधिक होगा।

उच्च तापक्रमवाली भट्ठियों की चिमनियों के निर्माण में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। साधारणतया भट्ठियों के भट्ठी-प्रकोष्ठ का व्यास जितने फुट होता है, गोलाकार चिमनी का भीतरी व्यास या वर्गाकार चिमनी की भीतरी भुजा उतने ही इंच रखी जाती है। चिमनी के अन्दर की परत दुर्गल ईंटों की होनी चाहिए। इस परत का भीतरी भाग यथासम्भव चिकना होना चाहिए, जिससे गैसों के बहने में रोक्न न्यूनतम हो। लगभग ढाई इंच वायु-स्थान भीतरी दुर्गल परत और बाहरी साधारण ईंटों की दीवार के बीच रखना चाहिए। चिमनी की बाहरी दीवार अच्छी प्रकार पकायी गयी ईंटों से बनानी चाहिए। चिमनी की भीतरी दुर्गल परत और बाहरी मुख्य दीवार के बीच स्थान-स्थान पर दुर्गल ईंटों के बन्धन दिये जाते हैं, जिससे वे मजबूती से खड़ी रहे। कारखाने की चिमनियों में गरम गैसों का वेग १० से २० फुट प्रति सेकण्ड के बीच रहता है तथा तापक्रम २५०° से ० के लगभग रहता है।

भट्ठियाँ

आधुनिक मृद-उद्योग भट्ठियाँ निम्नलिखित भागों में बाँटी जा सकती हैं—

(क) विराम भट्ठियाँ

(१) छतहीन भट्ठियाँ।

(२) छतसहित भट्ठियाँ।

(i) ऊर्ध्वगति भट्ठियाँ।

की क्रिया अविराम होने के कारण, पात्र रखने व निकालने की मजदूरी में भी कुछ कमी हो जाती है।

ग्रीन्स वाकर की गणना के अनुसार ईंट पकाने की एक अविराम भट्ठी में सम्पूर्ण ताप का केवल १९.५५ प्रतिशत ही वस्तुओं को पकाने में काम आता है। वाकर के अनुसार विभिन्न तापहानियों के प्रतिशत इस प्रकार हैं—

११००° से० पर मकान की ईंटों के पकानेवाली भट्ठी का ताप-व्यय-विवरण इस प्रकार है—

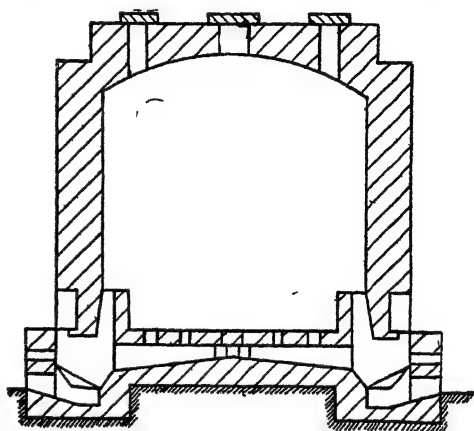
गरम गैसों द्वारा तापहानि	..	२७ ३३ प्रतिशत
राख द्वारा ताप-हानि	..	३ ५१ „
विकिरण और ठण्डे होने से तापहानि	..	४९ ६१ „
ईंटों के पकाने के लिए ताप	..	१९ ५५ „
योग		<u>१०० ००</u>

अविराम सुरग भट्ठी में ४५ प्रतिशत या अधिक ताप का उपयोग पात्र पकाने में होता है, जब कि विराम भट्ठियों में १९.५५ प्रतिशत ही ताप का उपयोग हो पाता है। नार्टन (Norton) के अनुसार साधारण आकार की १,००० ईंटों को १२७०° से० तक पकाने में विभिन्न भट्ठियों में लगनेवाली कोयले की मात्रा इस प्रकार है—

अधोगति गोलाकार भट्ठियों में	..	२२०० पौंड
अधोगति चौकोर भट्ठियों में	..	१८०० पौंड
अविराम सुरग भट्ठियों में	.	७००-८०० पौंड

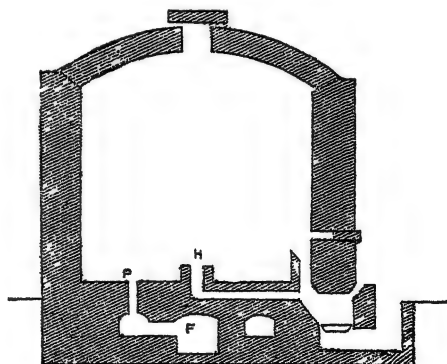
साधारण प्रकार की छतहीन भट्ठियों को अंग्रेजी में क्लैम्प (Clamp) कहा जाता है तथा हिन्दी में इन्हे भट्ठा या पजावा कहते हैं। इस प्रकार की भट्ठियाँ मुख्य रूप से साधारण ईंटें पकाने के काम आती हैं। पजावे के कई लाभ होते हैं, जैसे (१) कम निर्माण-व्यय, (२) आवश्यकतानुसार छोटा या बड़ा आकार, (३) कम ईंधन-व्यय, (४) ईंट बनाने के साथ-साथ पजावे में ही रखते जाने से ईंटों को रखने के लिए अलग से स्थान की आवश्यकता नहीं होती (५) पकी ईंटें पजावे से सीधी बेची जा सकती हैं या काम में लायी जा सकती हैं। अतः मजदूरी-व्यय कम हो जाता है। पजावे में दोष भी होते हैं, जैसे ईंटें अधिक टूट जाती हैं; कहीं ईंटें कम पकती हैं, कहीं अधिक। भट्ठों के बाहर की ओर रखी ईंटें अच्छी तरह नहीं पक

पाती, जिनकी संख्या २०-२५ प्रतिशत तक होती है। वर्षा, तूफान आदि प्राकृतिक अवस्थाओं पर भी कोई नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। प्राचीन पजावों में पहला सुधार यह किया गया कि पकनेवाली वस्तुओं को चारों ओर से पूर्व पकी हुई ईंटों की दीवार से घेर दिया जाय। जब इस दीवार युक्त छतहीन पजावे को छत से ढँक दिया गया तो वह आधुनिक भट्ठी का साधारणतम रूप हो गया। भट्ठी की छत पर धुआँ तथा गरम गैसों के निकलने के लिए छिद्र बने होते हैं। चूँकि इस प्रकार की भट्ठियों में गैसों का बहाव नीचे से ऊपर चिमनी की ओर होता है, अतः इन्हें ऊर्ध्वगति भट्ठियाँ कहा जाता है। चित्र ४० में एक ऊर्ध्वगति भट्ठी दिखायी गयी है।



चित्र ४०. ऊर्ध्वगति भट्ठी

अधोगति विराम भट्ठियाँ या तो एक प्रकोष्ठवाली होती हैं या दो प्रकोष्ठवाली। दो प्रकोष्ठवाली भट्ठियों में एक प्रकोष्ठ दूसरे प्रकोष्ठ के ऊपर बना होता है। इस प्रकार की एक प्रकोष्ठवाली गोलाकार भट्ठी चित्र ४१ में दिखायी गयी है।

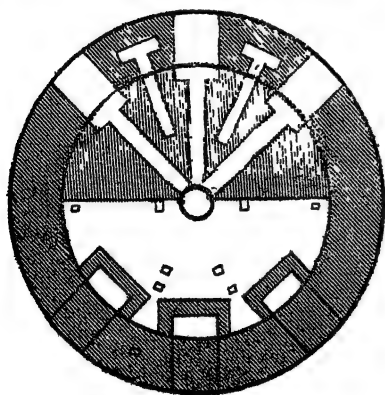
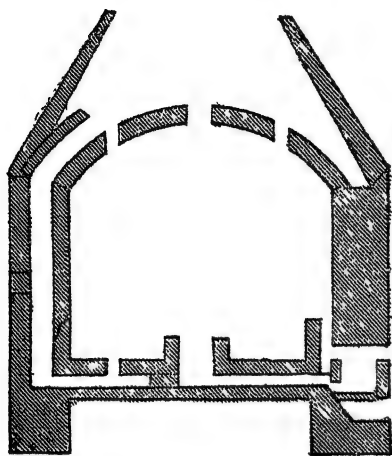


चित्र ४१. अधोगति भट्ठी

इस भट्ठी का प्रकोष्ठ गोलाकार है। परन्तु प्रकोष्ठ आयताकार या वर्गाकार भी हो सकते हैं। ऊर्ध्वगति भट्ठियों की अपेक्षा अधोगति भट्ठियों में ताप भट्ठी के सब भागों में समान रूप से वितरित होता है। अतः भट्ठी के एक भाग में रखे पात्रों के अधिक पकने की तथा दूसरे भाग में रखे पात्रों के कम

पकने की सम्भावना कम रहती है। ये भट्ठियाँ १० से १५ फुट तक ऊँची होती हैं और सभी चूल्हों से गरम गैसें व लौ भट्ठी-फर्श के नीचे बनी गैस-नालियों द्वारा एक मुख्य गैस-नाली (H) में इकट्ठी होकर भट्ठी में जाती है।

गरम गैसें व लौ भट्ठी में पहुँचकर ऊपर उठती हैं और भट्ठी की गोल छत से टकराकर परावर्तित होकर समानान्तर ताप-धाराओं के रूप में भट्ठी के फर्श पर आती



हैं। यदि भट्ठी की छत ठीक आकृति की बनायी जाय तो ताप समान रूप से पूरी भट्ठी में वितरित हो जाता है। ऊपर से नीचे आते समय गैसें पकनेवाले पात्रों के बीच बहती हुई आती हैं और बाद में भट्ठी के फर्श पर बने छिद्र रास्तों द्वारा बाहर निकल जाती हैं। ये सभी रास्ते एक मुख्य भण्डार स्थान में जाकर खुलते हैं। यह भण्डार स्थान भट्ठी के फर्श के नीचे बनी एक गैस-नाली (F) द्वारा बाहरी चिमनी से जुड़ा रहता है। प्रायः कई भट्ठियों के लिए एक चिमनी रहती है। भट्ठी की छत पर एक या अधिक छिद्र रहते हैं, जिन पर ढक्कन लगे रहते हैं। जब भट्ठी को ठण्डा करना हो तो इन छिद्रों का ढक्कन खोल, गरम गैसें बाहर निकाल कर, भट्ठी शीघ्रता से ठण्डी की जा सकती है।

इंग्लैण्ड में उत्कृष्ट श्वेत मृत्पात्र बनाने के लिए एक विशेष प्रकार की अधोगति भट्ठी का अधिक प्रयोग होता है। चित्र ४२ में इस प्रकार की

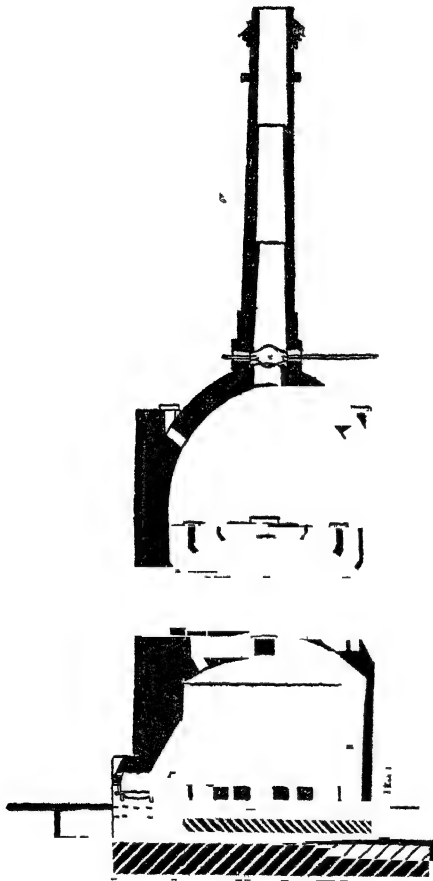
चित्र ४२. इंग्लैण्ड की श्वेत मृत्पात्र भट्ठी
एक भट्ठी दिखायी गयी है। इसमें चूल्हों की संख्या ९ से ११ तक होती है। चूल्हों

से लौ, लौ-द्वारो तथा भट्ठी की तली के एक केन्द्रीय छिद्र से, भट्ठी में पहुँचती है। यह केन्द्रीय छिद्र भट्ठी-फर्श के नीचे बनी गैस-नालियों द्वारा प्रत्येक चूल्हे से जुड़ा रहता है। इस प्रकार भट्ठी के केन्द्र तथा परिधि से लौ और गरम गैसें सीधी ऊपर जाकर छत से टकराती हैं। छत से टकराने के बाद इनकी गति नीचे की ओर हो जाती है। नीचे आकर भट्ठी-फर्श पर बने रास्तो द्वारा गैसें, गैस-नालियों में होकर, भट्ठी की छत पर बनी चिमनी द्वारा बाहर निकल जाती हैं। ये गैस-नालियाँ भट्ठी की दीवारों के बीच में बनी होती हैं। इससे जानेवाली गैसों का ताप व्यर्थ नहीं जाता, कारण इस ताप से भट्ठी की दीवारें गरम रहती हैं। इस प्रकार की भट्ठी की ताप-दक्षता अधिक है। भट्ठी की छत के मध्य में गैसों के बाहर जाने के लिए एक बड़ा गैस-द्वार है, जिस पर ढक्कन लगा रहता है। इस केन्द्रीय गैस-द्वार के चारों ओर और छोटे-छोटे गैसद्वार ढक्कन-सहित होते हैं। इन छोटे गैस-द्वारों का उपयोग यह है कि जब भट्ठी का कोई भाग दूसरे भागों की अपेक्षा अधिक गरम हो जाता है, तो इस गरम भाग के ऊपर का गैस-द्वार थोड़ा खोलकर उस भाग को ठण्डा कर लिया जाता है। ये भट्टियाँ प्रायः १५ से २० फुट तक ऊँची और लगभग इतनी ही चौड़ी बनायी जाती हैं। समाई बराबर होने पर भी कम ऊँची भट्ठी की अपेक्षा कम चौड़ी भट्ठी में मजदूरी-व्यय अधिक लगता है और सैगर भी अधिक टूटते हैं।

दो प्रकोष्ठवाली भट्टियों का जन्म एक प्रकोष्ठवाली भट्टियों में पकाव-समय और ईंधन कम लगाने के लिए सुधार के रूप में हुआ था। पोरसिलेन पात्र पकाने के लिए इस प्रकार की एक विशेष भट्ठी चित्र ४३ में दिखायी गयी है। ऊपरी प्रकोष्ठ, निचले प्रकोष्ठ की गरम गैसों द्वारा गरम होता है और प्रायः इसमें प्रलेपन से पूर्व पात्रों का प्रारम्भिक पकाव होता है।

चूल्हों से लौ तथा गरम गैसें लौ-द्वारों से निचले प्रकोष्ठ में घुसती हैं। लौ-द्वार प्रकोष्ठ की दीवारों में बने होते हैं। भट्ठी में घुसकर लौ तथा उत्तप्त गैसें ऊपर चढ़ती हुई छत से टकराकर समानान्तर ताप-धाराओं में नीचे की ओर आती हैं। नीचे आते समय सैगरों के बीच से होती हुई आती हैं और भट्ठी-फर्श पर बने हुए छिद्रों में होकर भट्ठी-दीवारों में बनी गैस-नालियों में होती हुई ऊपर के प्रकोष्ठ में चली जाती हैं। ऊपरी प्रकोष्ठ से गैसें ऊपरी प्रकोष्ठ की छत पर बनी चिमनी द्वारा बाहर निकल जाती हैं।

इन भट्ठियों में लौ-द्वार की दीवारें प्रकोष्ठ के अन्दर नहीं घुसी रहती, जिसके कारण प्रकोष्ठ में सैगर रखने के लिए अधिक स्थान रहता है। परन्तु इस प्रकार की



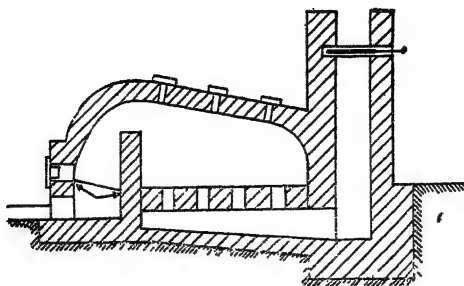
चित्र ४३. पोरसिलेन-पात्र पकाने के लिए दो प्रकोष्ठवाली भट्ठी

भट्ठियों में प्रथम चक्र के पात्र अधिक पक जाते हैं। अतः सेवरेस पोरसिलेन भट्ठियों में इस कठिनाई को दूर करने के लिए सभी लौ-द्वारों के सामने एक गोलाकार ऊँची दीवार बनाकर एकवृत्ताकार नाली बना दी जाती है। इस गोल दीवार के कारण लौ तथा गरम गैसें सीधी ऊपर उठकर छत से टकराकर पात्रों को पकाती हैं। इस प्रकार इस दीवार से प्रथम चक्र में रखे पात्र अत्यधिक नहीं पकते।

कैसेल या न्यूकैसेल (Cassel or New Castle) प्रकार की दो क्षैतिज गति विराम भट्ठियों में प्रायः भट्ठी के सिरे पर केवल एक चूल्हा और दूसरे सिरे पर एक चिमनी होती है। भट्ठी की लम्बाई के समानान्तर लौ क्षैतिज दिशा में चलती है और

बाद में चिमनी से होकर बाहर निकल जाती है। यदि इस प्रकार की भट्ठी की लम्बाई कम हो, तो ताप का वितरण सन्तोषजनक होता है। परन्तु अधिक लम्बी भट्ठियों में

ताप-वितरण समान न होने के कारण पात्रों में दोष आ जाते हैं। उच्च तापक्रम पर

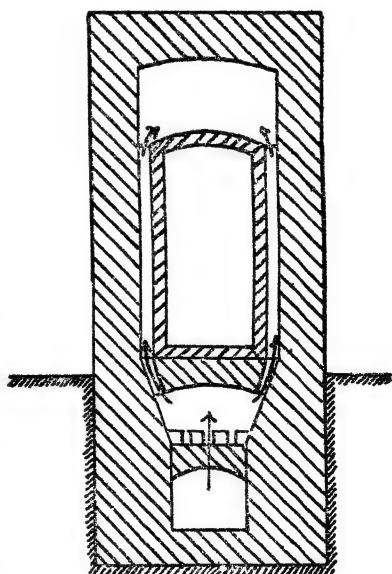


चित्र ४४. कैसल क्षैतिज गति भट्ठी

पात्र पकाने के लिए ये भट्ठियाँ विशेष रूप से उपयोगी होती हैं, जैसे दुर्गल ईंट पकाने के लिए। परन्तु इनमें ईधन अधिक व्यय होता है।

मफल या बन्द भट्ठियाँ—इन

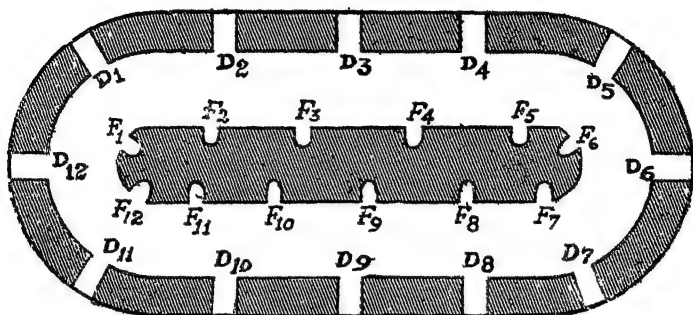
भट्ठियों का विशेष प्रयोग रजन पकाव के लिए तथा ऐसे मृत्पात्रों को पकाने के लिए होता है, जिन्हें पकाते समय ईधन गैसों तथा लौ के सीधे सम्पर्क से बचाना आवश्यक हो। विराम मफल भट्ठियाँ, दुर्गल पदार्थों से बने आयताकार प्रकोष्ठ होते हैं, जो बाहर से गरम किये जाते हैं। इस प्रकार की भट्ठी के अन्दर रखे पात्र केवल भट्ठी की दीवारों के ताप-चालन और ताप-विकिरण के कारण पकते हैं। अतः यह महत्वपूर्ण है कि इस भट्ठी की दीवारें व्यवहार में यथासम्भव पतली तथा ताप की अच्छी चालक हों। ये भट्ठियाँ इस प्रकार बनी होती हैं कि लौ और गरम गैसें भट्ठी की बाहरी दीवार तथा मफल प्रकोष्ठ की दीवारों के बीच के स्थान में बहकर एक गैस-नाली में इकट्ठी हो चिमनी के रास्ते बाहर निकल जाती हैं।



चित्र ४५. मफल भट्ठी

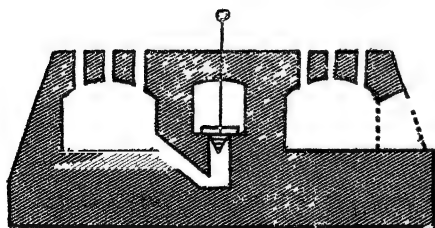
अविराम भट्ठियाँ

हाफमैन भट्ठी, आयताकार अविराम भट्ठियों का एक नमूना होती है। आधुनिक काल की दूसरी आयताकार भट्ठियाँ इधर-उधर थोड़े-बहुत सुधार करके इसी भट्ठी के सिद्धान्त पर बनायी गयी हैं। चित्र ४६ में हाफमैन भट्ठी का अधोदृश्य या प्लान दिखाया गया है। इस भट्ठी में एक आयताकार दहन-प्रकोष्ठ होता है,



चित्र ४६. हाफमैन भट्ठी का अधोदृश्य या प्लान (Plan)

जिसमें बाहर की ओर $D_1, D_2, D_3 \dots$ आदि १२ द्वार होते हैं तथा प्रकोष्ठ के अन्दर $F_1, F_2, F_3 \dots$ आदि १२ गैस-नालियाँ होती हैं। ये सारी गैस-नालियाँ एक मुख्य गैस नाली में खुलती हैं, जो कि बाहर की ओर स्थित एक चिमनी से जुड़ी रहती है। इन १२ द्वारों से पात्र-प्रकोष्ठ में रखे तथा पके हुए पात्र प्रकोष्ठ से बाहर निकाले जाते हैं।



चित्र ४७. हाफमैन भट्ठी का पार्श्व दृश्य

नालियों के बीच का स्थान प्रकोष्ठ कहलाता है और ये प्रायः अस्थायी रूप से एक-दूसरे से अलग कर दिये जाते हैं। प्रारम्भ करने के लिए जिस प्रकोष्ठ में पात्र रखे हैं, उसके

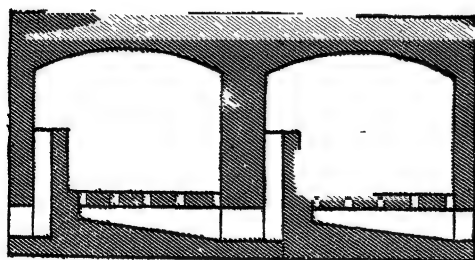
इन १२ गैस-नालियों का एक-दूसरे से एकदम कोई सम्बन्ध नहीं होता और वे १२ शकु आकार के ढक्कनों द्वारा बन्द की जा सकती हैं। इन दो

पासवाले खाली प्रकोष्ठ में आग जलायी जाती है, जिससे पात्रवाला प्रकोष्ठ इतना गरम हो जाय कि बाद में इसमें ऊपर से कोयला डालने पर कोयला जलकर पकाव-क्रिया चालू रखे।

गरम गैसें एक प्रकोष्ठ से दूसरे प्रकोष्ठ में उस समय तक भेजी जाती हैं, जब तक कि उनका तापक्रम कम होकर 200° से 150° से० के बीच तक न पहुँच जाय। इस तापक्रम पर आ जाने के बाद गैसों को और प्रकोष्ठों में ले जाना व्यर्थ है। अतः इसके बाद मुख्य गैस-नाली में होकर चिमनी द्वारा वे बाहर निकाल दी जाती हैं।

उच्च तापक्रम पर पकनेवाले तथा हलके पात्र पकाने के लिए स्थायी प्रकोष्ठवाली अविराम भट्टियाँ अधिक कार्योपयोगी होती हैं, कारण हाफमैन-जैसी भट्टियों में, जिनमें गरम गैसें क्षैतिज दिशा में बहती हैं, भट्टी के अन्दर के वातावरण के सगठन का नियन्त्रण सम्भव नहीं है। इन भट्टियों में ताप-वितरण भी सन्तोषजनक नहीं होता।

इन्हीं कारणों से उच्च तापक्रम पर उत्कृष्ट मृत्पात्र पकाने के लिए मैण्डहाइम (Mendheim) प्रकार की प्रकोष्ठ भट्टियाँ अधिक प्रयोग की जाती हैं। इन भट्टियों में अधिकतर गैसीय ईंधनों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की भट्टियों में गैस-नालियों की सहायता से एक प्रकोष्ठ अगले प्रकोष्ठ से जुड़ा रहता है। प्रकोष्ठों

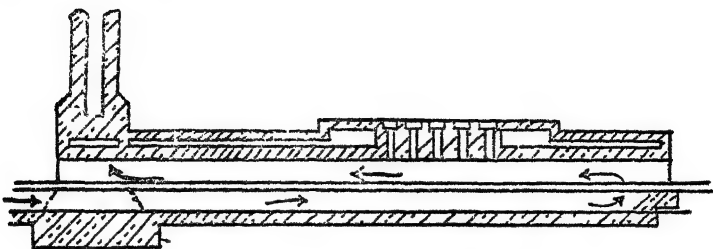


चित्र ४८. मैण्डहाइम प्रकोष्ठ भट्टी

प्रत्येक प्रकोष्ठ में भेजी जाती हैं। बीच में एक चिमनी होती है जिसके द्वारा खिचाव उत्पन्न होता है।

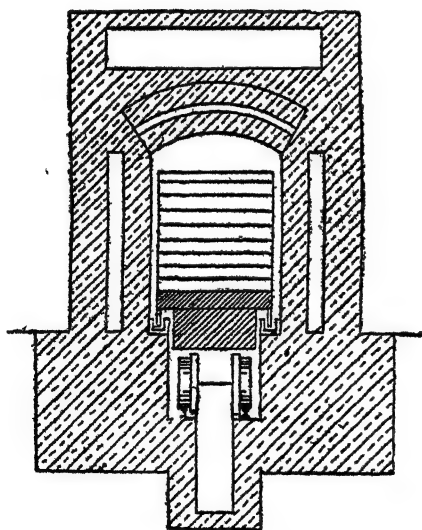
सुरंग भट्टियाँ—मृत्पात्र पकाने के लिए सुरंग भट्टी का विचार १६० वर्ष से

भी अधिक पूर्व से होता आया है। परन्तु व्यावहारिक रूप में इसका विकास केवल



चित्र ४९. बॉक सुरंग भट्ठी का काट-दृश्य

६० वर्ष पूर्व जर्मनी के औटो बॉक (Otto Bock) नामक व्यक्ति ने ही किया था। चित्र ४९ और ५० में इस भट्ठी के क्रमशः काट-दृश्य तथा पार्श्व-दृश्य दिये गये हैं।



चित्र ५०. बॉक सुरंग भट्ठी का पार्श्व-दृश्य

पर नहीं आने पाती। इससे लोहे की पटरियों तथा गाड़ी के पहियों को गरमी से हानि नहीं पहुँचती, जैसा कि चित्र ५० में दिखाया गया है।

इस प्रकार की भट्ठी में २०० से ३५० फुट लम्बी सुरंग होती है, जिसके भीतर लोहे की पट्टी पर गाड़ियाँ या छकड़े ले जाये जाते हैं। इन सुरंगों की चौड़ाई ४ से १२ फुट तक होती है तथा गाड़ी के ऊपरी तख्ते और सुरंग छत के बीच लगभग ५ फुट स्थान रहता है। गाड़ियों पर दुर्गल तख्ते रखे रहते हैं, जिन पर पकानेवाले पात्र रखे जाते हैं। हर गाड़ी के दोनों ओर लोहे की चद्दरे लटकती रहती हैं। ये चद्दरे भट्ठी की दीवार से निकली रेत भरी नालियों में घुसी रहती हैं। इस प्रकार गाड़ियों के तख्तों पर की गरम हवा या गैसें गाड़ी के नीचे पटरियों

कोयला जलाने के लिए आवश्यक हवा चिमनी की ओर से पहले गाड़ियों के नीचे से प्रवेश करके, गाड़ियों के नीचे बहती हुई, प्रकोष्ठ के दूसरे सिरे पर जाकर गाड़ियों के ऊपर हो जाती है। गाड़ियों के नीचे ठण्डी ही हवा बहने से लोहे की पटरी तथा पहिये ठण्डे रहते हैं। प्रकोष्ठ के दूसरे सिरे पर पहुँचकर यही हवा गाड़ियों के ऊपर से होकर चिमनी की ओर बहकर कोयला जलाती हुई चिमनी द्वारा बाहर निकल जाती है। गाड़ियों के ऊपर से बहने पर पहले यह हवा पके हुए पात्रों को ठण्डा करती है। बाद में दहन-मंडल में पहुँचकर कोयला को जलाती है। उसके बाद चिमनी की ओर से आनेवाले बिना पके पात्रों को गरम करती हुई चिमनी द्वारा बाहर निकल जाती है।

प्रारम्भ में बॉक सुरंग भट्ठियों में कोयला जलाया जाता था। यह कोयला पकाव-मंडल के ऊपर बने सुरंग-छत के छिद्रों में से डाला जाता था। परन्तु सुरंग भट्ठी प्रारम्भ होने के ५ वर्ष पश्चात् सीमेस हैस (Siemens Hess) कार सुरंग भट्ठी बनी, जिसमें कोयला के बदले उत्पादक गैस को ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।

कुछ विशेष प्रकार के पात्रों को दूसरी भट्ठियों की अपेक्षा इस प्रकार की भट्ठियों में पकाने से निम्नलिखित लाभ होते हैं—

(क) ईंधन व्यय में विशेष कमी।

(ख) गरम मंडल के स्थिर होने से अवशोषण और विकिरण के कारण ताप-हानि काफी कम हो जाती है।

(ग) भट्ठी की मरम्मत में कम व्यय। अधिक दुर्गल परत, केवल दहन-मंडल के लिए आवश्यक होती है। दूसरे मंडलों में साधारण दुर्गल ईंटों से काम चल जाता है।

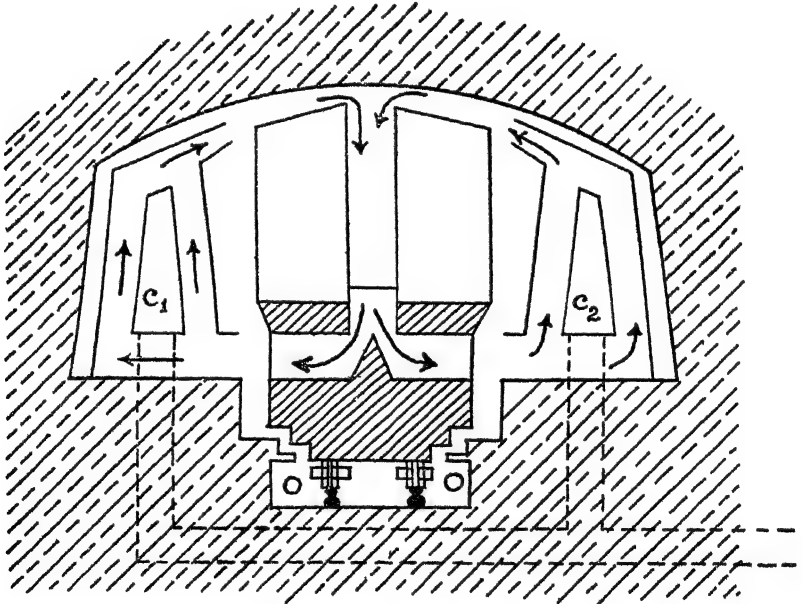
(घ) पात्रों को रखने व निकालने में सरलता के कारण पात्रों की टूट-फूट कम होती है।

(ङ) भट्ठी में आकस्मिक तापक्रम कम होने के कारण पात्रों की विकृति तथा उनका चटकना भी कम हो जाता है।

वृत्ताकार सुरंग भट्ठियाँ—यूरोप तथा अमेरिका के देशों में सुरंग भट्ठियाँ अधिक प्रचलित होती जा रही हैं। इस प्रकार की भट्ठियों में केवल यह विशेषता है कि सुरंग सीधी न होकर वृत्ताकार होती है, अन्यथा इनका सिद्धान्त न्यूनाधिक साधारण सुरंग भट्ठियों के समान ही है। ऐसा कहा जाता है कि वृत्ताकार सुरंग

बनाने में, सीधी सुरग की अपेक्षा कम व्यय पड़ता है तथा एक ही समाई की वृत्ताकार सुरग, सीधी सुरग की अपेक्षा कम स्थान में ही बन जाती है। गाड़ियों में पात्र रखने और पके पात्र गाड़ियों से निकालने के लिए गाड़ियों को घुमाना भी नहीं पड़ता। इस प्रकार गाड़ियों में पात्र रखने और उनसे पात्र निकालने में मजदूरी व्यय भी कम हो जाता है।

ड्रेसलर अविराम मफल भट्ठी—सभी प्रकार के मृत्पात्र पकाने के लिए अविराम सुरग मफल भट्ठियों का प्रयोग काफी किया जाता है। इस भट्ठी में 1300° से 0 तक पात्र पकाये जाते हैं और इसमें पात्र रखने के लिए सैगरो की आवश्यकता नहीं होती, कारण इस प्रकार की भट्ठियों में ईंधन, लौ तथा गरम गैसे पात्रों के सीधे सम्पर्क में नहीं आती। चित्र ५१ में ड्रेसलर सुरग भट्ठी दिखायी गयी है।



चित्र ५१. ड्रेसलर सुरग भट्ठी

ड्रेसलर सुरग भट्ठी के कार्य करने का ढंग काफी भिन्न होता है। जिस सिरे पर पके हुए पात्र निकाले जाते हैं, उसी सिरे पर दहन के लिए आवश्यक हवा घुसती है।

दहन-मण्डल जाने तक यह हवा पके हुए ठण्डे हो रहे गरम पात्रों को ठण्डा करती हुई स्वयं गरम हो जाती है। अतः पात्र ठण्डे भी शीघ्रता से होते हैं और वह ताप भी व्यर्थ नहीं जाता। दहन-मण्डल के दोनों ओर अग्नि-मिट्टी और कार्बोरण्डम से बने हुए दो लम्बे-दहन-प्रकोष्ठ C_1 C_2 होते हैं। गरम हवा भट्ठी-फर्श के नीचे बनी हुई एक नाली में होकर इन दहन-प्रकोष्ठों में प्रवेश करती है। दहन-प्रकोष्ठों में ईंधन गैसें भी भेजी जाती हैं, जो इस गरम हवा के साथ जलकर प्रकोष्ठ के भीतर अत्यधिक ताप उत्पन्न करती हैं। दहन-प्रकोष्ठ की दीवार में कार्बोरण्डम होने से इसकी ताप-चालकता काफी अधिक होती है। अतः ताप, सरलता से दहन-प्रकोष्ठ के बाहर आकर दहन-प्रकोष्ठ के बाहर सुरग में रखे पात्रों को पकाता है। दहन-प्रकोष्ठ के अन्दर खिचाव, चिमनी या पखों की सहायता से उत्पन्न किया जाता है तथा गरम गैसें प्रायः दूसरे कार्यों में प्रयोग कर ली जाती हैं।

मृद-वस्तुओं को पकाने में सबसे नवीन सुधार विद्युत् द्वारा पकाने का है। बाजार में विद्युत् का प्रयोग करनेवाली कुछ भट्टियाँ मिलती हैं और इन भट्टियों में प्रलेप पकाव तथा पोरसिलेन और साधारण मृत्पात्रों के रजन पकाव बड़ी सफलतापूर्वक होते हैं। इन भट्टियों की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

- (१) सभी प्रकार के धूम और वाष्प से रहित स्वच्छ आक्सीकारक वातावरण।
- (२) समान तापक्रम होने के कारण सभी पात्र समान रूप से पकते हैं।
- (३) कम व्यक्तियों की आवश्यकता और नियन्त्रण में सरलता।
- (४) कम मरम्मत-व्यय।
- (५) समय का अत्यधिक कम लगना।

इन भट्टियों में केवल एक दोष है कि विद्युत् का व्यय अधिक हो जाता है।

विभिन्न भट्टियों की आपेक्षिक दक्षताएँ—

अधोगति विराम भट्टियाँ	..	१५-१९ प्रतिशत
हाफमैन आयताकार भट्टियाँ		२१-२३ ”
सुरग भट्टियाँ (गैस दहन)		४१-४३ ”
ड्रेसलर सुरग भट्टियाँ (गैस दहन)		४७-४९ ”

द्वादश अध्याय

उत्तापमापन

भट्ठी के अन्दर तापक्रम नापने के लिए समय-समय पर विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। साधारण विधि में पकनेवाले पात्रों तथा भट्ठी-दीवारों के भीतरी भागों के रंग-परिवर्तन से तापक्रम ज्ञात किया जाता है। परन्तु इसके लिए विशेष अभिज्ञता की आवश्यकता होती है। नीचे भट्ठी के अन्दर रंग-परिवर्तन और उनसे सम्बन्धित सन्निकट तापक्रम दिये गये हैं।

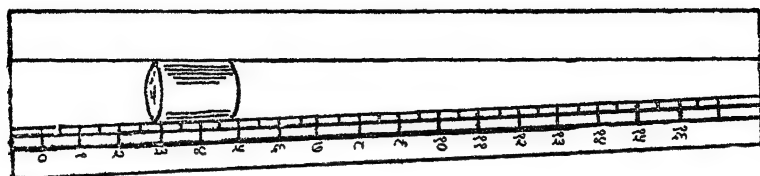
लाल रंग के प्रकट होने पर	..	५००° से०
गाढा लाल	..	७००° ,,
चेरी (Cherry) लाल प्रकट होने पर	..	८००° ,,
उज्ज्वल लाल	..	१०००° ,,
उज्ज्वल नारंगी	..	१२००° ,,
उज्ज्वल श्वेत	..	१३००° ,,
अनुज्ज्वल श्वेत	..	१४००° ,,
क्षिलमिलाता श्वेत	..	१५००° ,,

इन रंगों को तभी देखना चाहिए जब भट्ठी के अन्दर लौ साफ हो जाय तथा उनमें कोई हाइड्रोकार्बन न रहे। तापक्रम-परीक्षक को अँधेरे में खड़ा होना चाहिए, जिससे उसकी आँखों पर धूप की विभिन्न चमकों का प्रभाव न पड़े।

मृत्तिका-उद्योग के सभी कारखानों में जहाँ एकदम ठीक तापक्रम पर पकाव आवश्यक होता है, वहाँ तापक्रम नापने के लिए उत्तापदर्शी (Pyroscope) या उत्ताप मापक (Pyrometer) का प्रयोग किया जाता है।

उत्तापदर्शी—ये विभिन्न खनिजों से बनी छोटी-छोटी वस्तुएं होती हैं, जो मृद-उद्योग भट्ठी के अन्दर का तापक्रम नापने के काम आती हैं। इनका सिद्धान्त यह है कि विशेष खनिजों से बने उत्तापदर्शी एक विशेष तापक्रम पर ही पिघलकर या सिकुड़कर अपनी आकृति खो देते हैं। इसलिए यह केवल एक बार तापक्रम नापने के काम

आ सकते हैं। समय-समय पर बाजार में विभिन्न प्रकार के उत्तापदर्शी मिलते रहते हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण इस प्रकार के हैं—वैजवुड सिलिण्डर, सैगर शंकु, होल्ड-क्राफ्ट (Hold craft's) दण्ड, बुलर-चक्र (Buller's Ring) आदि।



चित्र ५२. वैजवुड उत्तापदर्शी

सन् १७८२ ई० में इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध कुम्हार जोशिया वैजवुड ने मृद्-उद्योग भट्टियों के अन्दर का तापक्रम नापने के लिए प्रथम उत्तापदर्शी बनाया था। यह उत्तापदर्शी इतना उपयोगी निकला कि उस समय के कुम्हारों ने सफलतापूर्वक १०० वर्ष तक इसका ही प्रयोग किया।

इस विधि में निश्चित संगठनवाली मिट्टी से बने बहुत से छोटे-छोटे सिलिण्डर भट्टी के अन्दर रखे जाते हैं और पकाव की विभिन्न अवस्थाओं पर उन्हें निकालकर देखा जाता है। इन निकाले हुए सिलिण्डरों को ठण्डा करके एक विशेष आकुचनमापक की सहायता से उनका आकुचन देखा जाता है। इस आकुचनमापक से सीधा तापक्रम पढ़ा जाता है। यह विधि तभी उपयोगी हो सकती है, जब कि भट्टी के अन्दर तापक्रम समान गति से बढ़ रहा हो, कारण ऐसी अवस्था में उत्तापदर्शी का आकुचन तापक्रम के अनुपात से होगा। परन्तु जिन अवस्थाओं में उत्तापदर्शी का आकुचन समान न हो जैसे ताप-शोषण-काल में, तो तापक्रम ठीक प्रकार से नहीं नापा जा सकता।

सैगर शंकु—यह वह विधि है जो जर्मनी के हेरमान सैगर ने १८८६ ई० में मृद्-उद्योग भट्टियों के अन्दर का तापक्रम नापने के लिए निकाली थी। ये शंकु मृद्-उद्योग खनिजों, धुली केओलिन, फेल्सपार, स्फटिक, सगमर्रर, फैरिक आक्साइड आदि द्वारा बनाये जाते हैं। प्रत्येक शंकु खनिजों के विशेष मिश्रण से बनाया जाता है और इस पर एक नम्बर लिखा रहता है। हर एक नम्बर का शंकु एक विशेष तापक्रम पर पिघलकर भट्टी का तापक्रम बताता है। ये शंकु दो प्रमाणित आकारों में बनाये जाते हैं। साधारण आकार के शंकु तीन भुजावाले $2\frac{1}{2}$ इंच ऊँचे सूचीस्तम्भ (Pyramids) होते हैं। इनकी आधार भुजा, ऊँचाई की चौथाई होती है। छोटे आकार-

वाले शकु लगभग १ इंच ऊँचे और चौथाई इंच आधार भुजावाले होते हैं। छोटे शकु मुख्यत छोटी-छोटी प्रायोगिक भट्टियों के परीक्षण तथा अग्नि-मिट्टियों की दुर्गलता परीक्षण के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। बड़े शकुओं का प्रयोग मृद्-उद्योग भट्टियों में किया जाता है।

जब डाक्टर सैगर ने अपने इन शकुओं को निकाला तो ११५०° से० पर गलने-वाले शकु को उसने १ नम्बर दिया। सैगर शकु इतने उपयोगी सिद्ध हुए कि बाद में इन शकुओं की श्रेणी अधिक उच्च तापक्रम के लिए क्रैमर (Crammer) द्वारा तथा कम तापक्रम के लिए हेख्ट (Hecht) द्वारा बढ़ायी गयी थी। कम तापक्रम नापने-वाले शकु बनाने के लिए उचित अनुपात में बोरिक अम्ल और लैंड आक्साइड का प्रयोग किया गया था। परिणाम-स्वरूप शकु-श्रेणी में ६४ शकु हो गये हैं। इन शकुओं के आधुनिक नम्बर और इनके तापक्रम नीचे सारणी में दिये गये हैं।

शकु नम्बर	तापक्रम	शकु नम्बर	तापक्रम	शकु नम्बर	तापक्रम
०२२	६००	०२अ	१०६०	१९	१५२०
०२१	६५०	०१अ	१०८०	२०	१५३०
०२०	६७०	१अ	११००	२६	१५८०
०१९	६९०	२अ	११२०	२७	१६१०
०१८	७१०	३अ	११४०	२८	१६३०
०१७	७३०	४अ	११६०	२९	१६५०
०१६	७५०	५अ	११८०	३०	१६७०
०१५अ	७९०	६अ	१२००	३१	१६९०
०१४अ	८१५	७	१२३०	३२	१७१०
०१३अ	८३५	८	१२५०	३३	१७३०
०१२अ	८५५	९	१२८०	३४	१७५०
०११अ	८८०	१०	१३००	३५	१७७०
०१०अ	९००	११	१३२०	३६	१७९०
०९अ	९२०	१२	१३५०	३७	१८२५
०८अ	९४०	१३	१३८०	३८	१८५०
०७अ	९६०	१४	१४१०	३९	१८८०
०६अ	९८०	१५	१४३५	४०	१९२०
०५अ	१०००	१६	१४६०	४१	१९६०
०४अ	१०२०	१७	१४८०	४२	२०००
०३अ	१०४०	१८	१५००	—	—

शकु ०१ का गलन-तापक्रम शकु १ के गलन-तापक्रम से एक शकु कम है तथा शकु ०२ का गलन-तापक्रम शकु १ के गलन-तापक्रम से दो शकु कम है। पूरी श्रेणी ६००° से० पर गलनेवाले शकु ०२२ से प्रारम्भ होकर लगभग २०००° से० पर गलनेवाले शकु ४२ पर समाप्त होती है। सन् १९०९ ई० के लगभग यह सोचा गया कि सैगर शकु सगठन से लौह और सीसा के आक्साइड निकाल दिये जायँ, कारण इन आक्साइडो पर अवकारक वातावरण का हानिकर प्रभाव पड़ता है। अतः लौह और सीसा आक्साइड-वाले पुराने शकुओ के स्थान पर लौह सीसा आक्साइड रहित नये शकु बने। इनके नाम मे अक के बाद, 'अ' (a) लगा दिया गया। शकु २१ से शकु २५ तक के पाँच शकुओ के गलन-तापक्रम इतने पास-पास थे कि श्रेणी से उन्हें निकाल दिया गया।

प्रयोग के समय सैगर शकु को अग्नि-मिट्टी के आधार पर रखा जाता है। भट्ठी मे तापक्रम बढ़ने पर शकु नरम होना प्रारम्भ करता है और जब उसका गलनाक आ जाता है, तो इसका टेढ़ा होना प्रारम्भ होकर अन्त मे ऊपरी सिरा आधार छू लेता है।

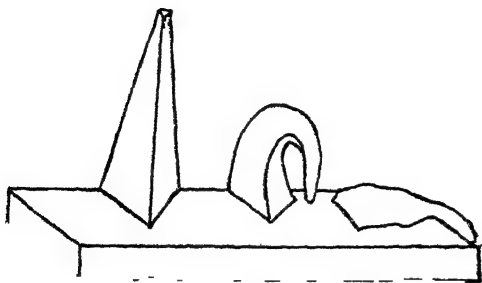
भट्ठी मे पकाव-समय का भी शकु के टेढ़े होने पर काफी गहरा प्रभाव पड़ता है। ऊपर की सारणी मे २ घंटे पकाव समय पर विभिन्न शकुओ के गलन-तापक्रम दिये गये हैं। परन्तु यदि पकाने का समय बढ़ा दिया जाय, तो शकु निश्चित तापक्रम से पूर्व ही नरम होना प्रारम्भ कर देते हैं। उदाहरणार्थ दो दिन तक भट्ठी मे गरम करने पर शकु १०, १३००° से० के स्थान पर १२००° से० पर ही टेढ़ा हो जायगा।

इससे यह स्पष्ट है कि यद्यपि सैगर शकुओ के गलन-तापक्रम सेण्टीग्रेडो मे दिये रहते हैं, पर वे भट्ठी का एकदम निश्चित तापक्रम नहीं बताते। सैगर शकुओ से शकु मिश्रण-पिण्ड पर ताप-जनित रासायनिक क्रिया का सकेत मिलता है। यह सैगर शकु का दोष नहीं, वरन् विशिष्ट गुण है। इसी गुण के कारण मृद्-उद्योग मे शकु इतने लाभदायक सिद्ध हुए हैं। आगे चित्र मे सैगर शकु के टेढ़े होने की विभिन्न अवस्थाएँ दिखायी गयी हैं।

पकाव-क्रिया मे पकाने का समय उतना ही महत्वपूर्ण है जितना पकाने का तापक्रम। कम तापक्रम पर अधिक काल तक तापशोषण से भी पात्र या प्रलेप वैसा ही पक सकता है, जैसा कि उच्च तापक्रम पर शीघ्र पकाव से। भट्ठी मे पकनेवाले पात्रो या प्रलेप और सैगर शकु पर ताप-क्रियाएँ लगभग निश्चित अनुपात मे होती हैं। पात्र पकाने-वाला कारीगर केवल यह जानना चाहता है कि ताप ने पात्र या प्रलेप पर क्या क्रिया

की है और वह भट्ठी का वास्तविक तापक्रम जाने बिना ही केवल सैगर शकुओं के टूटने से इसका पता लगा लेता है। यदि पकाव-क्रिया इसी प्रकार ठीक रखी जा सके

तो भट्ठी के वास्तविक तापक्रम का कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

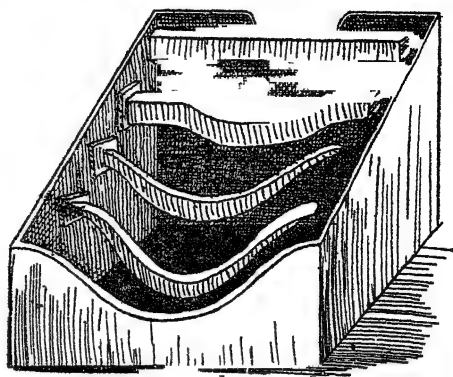


सैगर शकु पर अवकारक गैसों का प्रभाव ताप-प्रभाव का उलटा होता है। कोयला गैस या भजित (Cracked) कार्बन शकु के रन्ध्रों में घुस-

कर उसके तल पर एक दुर्गल परत बनाकर शकु के टूटने होने में उस समय भी बाधा डालते हैं, जब भीतरी भाग में गलने के चिह्न प्रकट होने लगते हैं। ऐसी अवस्थाओं में थोड़ी देर तक भट्ठी में ताजी हवा भेजने से शकु एक दम टूट जायगा। गन्धक गैसों का सैगर शकु के गलन-तापक्रम पर काफी प्रभाव पड़ता है। इन्हीं सब कारणों से विश्वसनीय कारखानों के बने सैगर शकुओं को ही खरीदना चाहिए। प्रारम्भ में सैगर शकु बर्लिन के प्रशियन सरकार के रायल पोरसिलेन कारखाने में बनाये जाते थे। बाद में डाक्टर सैगर और डाक्टर क्रैमर द्वारा प्रबन्धित मृद्-उद्योग की रासायनिक प्रयोगशालाओं में बनाये जाने लगे। इंग्लैण्ड में सैगर शकु स्ट्राक आन ट्रेण्ट की एक सुनियन्त्रित सरकारी प्रयोगशाला में बनाये जाते हैं। अमेरिका में ओर्टोन द्वारा निकाले गये शकु कोलम्बस नामक स्थान में बनाये जाते हैं और उन्हें ओर्टोन शकु कहा जाता है। भारतवर्ष में सैगर शकु बनाने का कोई विशेष कारखाना नहीं है और प्रतिवर्ष काफी सख्या में शकु विदेशों से मँगाने पड़ते हैं। सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

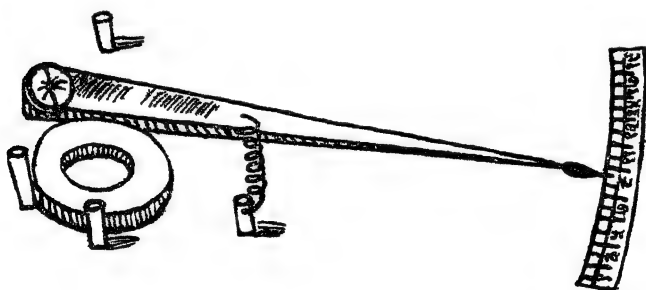
होलड क्राफ्ट दण्ड उत्पाददर्शी—इस प्रकार के उत्पाददर्शी भी सैगर शकु की भाँति ही होते हैं, अन्तर केवल इतना होता है कि इनके परीक्षण टुकड़े शकु आकार के न होकर दण्ड आकार के होते हैं। विशेष आधारों पर इन्हें क्षैतिज अवस्था में रोका जाता है, और क्रांतिक तापक्रम उस समय समझा जाता है, जब दण्ड आधार पर लटक जाय।

प्राय तीन लगातार नम्बरवाले दण्ड एक बक्स में रखकर भट्ठी के अन्दर रखे जाते हैं, जैसा कि चित्र ५४ में दिखाया गया है। इन तीन दण्डों में से सर्वाधिक गलनशील दण्ड के लटक जाने पर परीक्षक को सावधान हो जाना चाहिए। बीच का दण्ड वास्तविक इच्छित तापक्रम पर लटकता है। तीसरे दण्ड से, जो इच्छित तापक्रम से उच्च तापक्रम पर लटकता है, यह पता चलता है कि भट्ठी का तापक्रम अत्यधिक तो नहीं हो गया है।



चित्र ५४. होल्ड क्रॉफ्ट दण्ड उत्तापदर्शी

बुलरचक्र उत्तापदर्शी—बुलर चक्र बिल्कुल वैजबुड सिलिंडरो की भाँति होते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि परीक्षण टुकड़े चक्र-आकृति के होते हैं, जिन्हें भट्ठी से सरलता से निकाला जा सकता है। भट्ठी से निकाले गये चक्रों का आकुचन एक



चित्र ५५. बुलर चक्र के लिए आकुचन प्रमापी

विशेष प्रकार के आकुचन प्रमापी की सहायता से निकाला जाता है। एक ऐसे आकुचन प्रमापी को चित्र ५५ में दिखाया गया है।

इन चक्रों के प्रयोग से भट्ठी का तापक्रम नापा जाता है तथा पकाव के समय भट्ठी के विभिन्न भागों में पकाव-क्रिया पर नियन्त्रण किया जाता है।

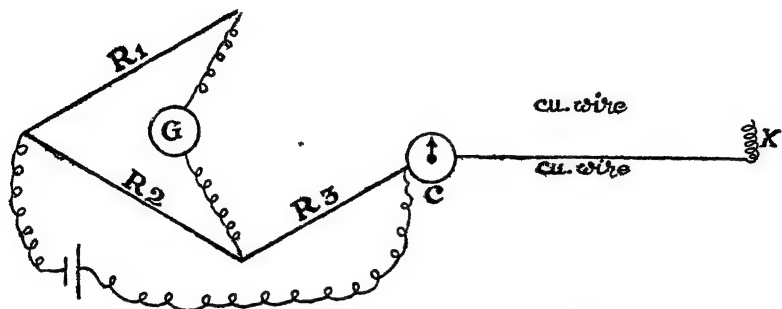
उत्तापमापी (Pyrometer)—भट्ठी के भीतर के उच्च तापक्रम को नापने वाले यन्त्रों को उत्तापमापी या पाइरोमीटर कहते हैं। उत्तापदर्शी केवल एक बार तापक्रम नापने के काम आ सकता है। उत्तापमापी को बार-बार तापक्रम नापने के काम में लाया जाता है, कारण इन यन्त्रों का कार्य उन पदार्थों के भौतिक गुण-परिवर्तन पर आधारित होता है, जिनसे उत्तापमापी बनाया गया है। उत्तापमापी अनेक प्रकार के होते हैं। परन्तु जिनका मृद्-उद्योग में अधिक उपयोग होता है उनमें से मुख्य वैद्युतिक उत्तापमापी, विकिरण उत्तापमापी तथा प्रकाश उत्तापमापी हैं।

वैद्युतिक उत्तापमापी—वैद्युतिक उत्तापमापी दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। प्रथम प्रकार के वे हैं, जिनमें तापक्रम-परिवर्तन से धातुओं के विद्युत्-रोधकता-परिवर्तन का सिद्धान्त प्रयोग किया जाता है। द्वितीय प्रकार के वे हैं जिनमें तापीय युग्म (Thermo couple) के जोड़ों पर असमान तापक्रम होने पर विद्युद्वाहक बल (E M F.) की उत्पत्ति का सिद्धान्त प्रयोग किया जाता है। प्रथम प्रकार के वैद्युतिक उत्तापमापी को प्रतिरोध उत्तापमापी तथा दूसरे प्रकार के उत्तापमापी को तापीय युग्म उत्तापमापी कहते हैं।

आधुनिक प्रतिरोध उत्तापमापी सन् १८८७ ई० में कलैण्डर द्वारा किये गये शोधकार्यों पर आधारित है। उसने पता लगाया कि प्रतिरोध उत्तापमापी में प्लैटिनम तार का प्रयोग सर्वोत्तम होता है। माइका ढाँचे के चारों ओर लपेटा हुआ प्लैटिनम तार 1200° से० तक का तापक्रम सह सकता है। परन्तु 1000° से० से अधिक तापक्रम पर इस तार को अधिक समय तक गरम नहीं करना चाहिए, कारण उच्च तापक्रम पर प्लैटिनम के अणु-विघटन के कारण तार का प्रतिरोध बदल जाता है, जिसके कारण उत्तापमापी द्वारा बताया गया तापक्रम वास्तविक तापक्रम से भिन्न हो जाता है। 300° से० से कम तापक्रम नापने के लिए शुद्ध निकिल के तार का प्रयोग किया जाता है। चित्र ५६ में एक प्रतिरोध उत्तापमापी दिखाया गया है।

इस उत्तापमापी यन्त्र में एक प्रतिरोध कुडली (X) होती है, जो पोरसिलेन नल में रखी रहती है। यह कुडली मुख्य व्हीटस्टोन सेतु से (R_1, R_2, R_3)

ताँबे के तारों द्वारा जुड़ी रहती है। इस व्हीटस्टोन सेतु और X के बीच एक परिवर्तनशील प्रतिरोध बक्स (C) जोड़ दिया जाता है, जिसे घुमाकर X का प्रतिरोध घटाया



चित्र ५६. एक विद्युत् प्रतिरोध उत्तापमापी

बढ़ाया जा सकता है। परिणाम-स्वरूप धारामापी (G) में विक्षेप (Deflection) भी घटाया बढ़ाया जा सकता है। प्रयोग करते समय प्रतिरोध बक्स C का प्रतिरोध ऐसा रखा जाता है कि धारामापी G में विक्षेप बिल्कुल न हो। प्रतिरोध बक्स C का डायल (Dial) इस प्रकार अशक्ति किया जाता है कि धारामापी में विक्षेप शून्य होने पर डायल के अंक तापक्रम को सूचित करते रहे।

सावधानीपूर्वक प्रयोग करने पर इस उत्तापमापी से 1000° से 0° तक केवल $+1^{\circ}$ से 0° की त्रुटि होती है, परन्तु इससे उच्च तापक्रम पर त्रुटि अधिक हो जाने की सम्भावना रहती है। इस प्रकार के उत्तापमापी अभिलेख यन्त्र (Recorder) के साथ भी प्रयोग किये जा सकते हैं, अतः वे प्रयोगशाला की भट्टियों के लिए काफी उपयोगी हैं। परन्तु कारखानों की भट्टियों के लिए वे उपयोगी नहीं हैं, क्योंकि असावधानी पूर्ण प्रयोग तथा भट्ठी गैसों द्वारा कुण्डली का प्रतिरोध बदल जाने के कारण इसके डायल के अंशकन बदल जाते हैं।

तापीय युग्म उत्तापमापी—इस प्रकार के उत्तापमापी धातुओं के तापजनित विद्युत् गुणों के आधार पर बने होते हैं। इस गुण का पता सर्वप्रथम सीबैक (See back) ने १८२० ई० में लगाया था। अतः प्रायः इसे सीबैक प्रभाव कहा जाता है। उसने देखा कि यदि दो विभिन्न धातुओं के तारों से बने पूर्ण परिपथ (Circuit) के दो धातुजोड़ों को असमान तापक्रम पर रखा जाय तो परिपथ में विद्युत्-धारा बहने

लगती है। उसने यह भी पता लगाया कि ऐसी अवस्था में दोनों धातुजोड़ों पर दो विरुद्ध दिशावाले विद्युद्-वाहक बल रहते हैं। दो धातुजोड़ों पर असमान तापक्रम रहने पर बहनेवाली धारा की शक्ति निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है।

- (क) दोनों धातुओं के प्रकार।
- (ख) दो धातुजोड़ों के तापक्रमों का अन्तर।
- (ग) दोनों धातुओं के वास्तविक तापक्रम।

तापीय युग्म बनाने में प्रयोग की जानेवाली धातुओं में निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

- (१) सक्षारण और आक्सीकरण के लिए प्रतिरोध शक्ति।
- (२) अधिक विद्युद्-वाहक बल का विकसित होना।
- (३) तापक्रम बढ़ने पर विद्युद्-वाहक बल का धीरे-धीरे समान अनुपात में बढ़ना।

तापीय युग्म दो प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार के तापीय युग्मों में केवल विरल धातुएँ ही प्रयोग की जाती हैं। द्वितीय प्रकार के तापीय युग्मों में साधारण धातुएँ प्रयोग की जाती हैं।

विरल धातुवाले तापीय युग्मों से 1800° से० तक का तापक्रम नापा जा सकता है, जब कि द्वितीय प्रकार के तापीय युग्म प्रायः 1100° से० तक के तापक्रम ही नापने में प्रयोग किये जाते हैं।

सर्वाधिक प्रयोग में आनेवाले कुछ तापीय युग्म इस प्रकार हैं—

विरल धातु तापीय युग्म

(+) (—)		
रहोडियम	१०	} प्लेटीनम १००
प्लेटीनम	९०	
योग	<u>१००</u>	

यह तापीय युग्म 1800° से० तक का तापक्रम नाप सकता है।

साधारण धातु-युग्म

(-)		(+)
१. ताँबा	५८२८	लोहा १००
निकिल	४१७२	
योग	<u>१००००</u>	

यह तापीय युग्म ११००° से० तक का तापक्रम नाप सकता है।

(+)		(-)
२ निकिल	९०	निकिल ९४
क्रोमियम	१०	मैगनीज ३
योग	<u>१००</u>	एल्यूमिनियम २
		सिलीकान १
		योग <u>१००</u>

यह तापीय युग्म निरन्तर १०९०° से० तक तथा आन्तरायिक रूप से १३१५° से० तक प्रयुक्त किया जा सकता है।

३ (+) शुद्ध लोहा	१००	(-) ताँबा ६०
		निकिल ४०
		योग <u>१००</u>

इस युग्म का ९८०° से० तक बिना किसी भय के प्रयोग किया जा सकता है।

४ (+) निकिल	६४	(-) ताँबा ५५
लोहा	२५	निकिल ४५
क्रोमियम	११	योग <u>१००</u>
योग	<u>१००</u>	

इस युग्म का ५४०° से० तक प्रयोग किया जा सकता है।

साधारण धातुवाले तापीय युग्मों में निम्नलिखित गुण व दोष होते हैं—

गुण (१) ये काफी सस्ते होते हैं।

(११) इस प्रकार के युग्मों से तापक्रम-परिवर्तन का अधिक सकेत मिलता है।

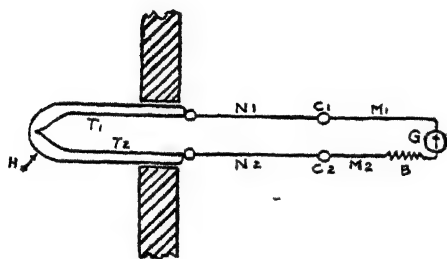
(१११) मोटे तार और बड़े तापीय युग्म प्रयोग किये जा सकते हैं।

दोष (1) साधारण तौर पर इनसे केवल 1100° से० तक का तापक्रम ही नापा जा सकता है।

(11) समय-समय पर इनके अशाकन का परीक्षण करना आवश्यक होता है।

तापीय युग्म के धातुतारों को गंधक गैसों और धुएँ के वातावरण से बचाने के लिए गलित स्फटिक चूर्ण या पोरसिलेन के नलों में रखा जाता है। यह नल बचाव के लिए आवश्यक मोटाई से अधिक मोटे नहीं होने चाहिए, कारण मोटाई से तापीय युग्म की सुग्राहता कम हो जाती है। भट्ठी में तापक्रम-परिवर्तन होने और धारामापी में उसका संकेत प्रकट होने में कुछ निश्चित समय का अन्तर रहता है। इसका कारण यह है कि दुर्गल रक्षक नल को पार करके, तापीय युग्म तक ताप-

क्रम पहुँचने में समय लगता है। चित्र ५७ में विरल धातु से बने तापीय युग्म उत्तापमापी का सिद्धान्त दिखाया गया है।



चित्र ५७. तापीय युग्म उत्तापमापी

द्वारा धारामापी को यन्त्र से जोड़ा गया है। B परिपथ में जोड़ा गया एक भारी प्रतिरोध है। N_1N_2 तापीय युग्म के छोट तारों T_1 T_2 के सम्बद्ध तार हैं।

इस चित्र में H, तापीय युग्म तारों T_1T_2 का गरम जोड़ और C_1 C_2 ठण्डे सिरे हैं। M_1 M_2 तारों के तारों

उत्तापमापी भट्ठी की दीवार के छिद्र में से होकर भट्ठी के अन्दर घुसा दिया जाता है। यदि तापीय युग्म के तार छोटे हैं, तो यन्त्र के ठण्डे धातु-सिरे गरम सिरे के ताप-विकिरण से गरम हो सकते हैं। अतः ठण्डे सिरे को भट्ठी से दूर रखना चाहिए। इस कठिनाई को दूर करने के लिए बाहरी सिरो पर युग्म के तारों को सम्बद्ध तारों (Compensation Extension) अर्थात् दो ऐसे सस्ते मिश्र धातु के तारों से जोड़ दिया जाता है जिनका विद्युद्वाहक बल तापीय युग्म के तारों T_1 T_2 के समान होता है। इस प्रकार ताप-प्रभाव की दृष्टि से युग्म के ठण्डे सिरे

भट्ठी से इतनी दूर हो जाते हैं कि उनका तापक्रम कमरे के तापक्रम पर ही स्थिर रहता है। सम्बद्ध तार साधारण धातुओं या मिश्र धातुओं से बनाये जाते हैं और विरल धातुयुग्म से इतनी दूर रखे जाते हैं कि उन पर 600° से 0° से अधिक तापक्रम कभी न पड़े।

तापक्रम बढ़ने पर तापीय युग्म के तारों का प्रतिरोध भी बढ़ता है, जिससे सूचक अशाकन में अशुद्धि हो जाती है। यह कठिनाई दूर करने के लिए परिपथ में एक भारी प्रतिरोध लगाना चाहिए। यह ऐसे पदार्थों से बनाया जाता है, जिनका प्रतिरोध तापक्रम-परिवर्तन से नहीं के बराबर बदलता है। यह प्रतिरोध परिपथ के दूसरे प्रतिरोधों की अपेक्षा इतना भारी रखा जाता है कि तापीय युग्म के तारों में कोई प्रतिरोध-परिवर्तन अपेक्षाकृत नगण्य होता है और सूचक के अशाकन पर प्रभाव नहीं डालता।

ठण्डे सिरों का सुधार—सूचक अशाकन के समय तापीय युग्म के ठण्डे सिरों को 0° से 0° के स्थिर तापक्रम पर रखा जाता है। परन्तु व्यवहार में ठण्डे सिरों का तापक्रम कमरे के तापक्रम के बराबर होगा। इस परिवर्तन के कारण अशाकन को सुधारने के लिए सूचक को कमरे के तापक्रम पर लगाने के पश्चात् तापीय युग्म से इसे जोड़ा जाता है, कारण तापीय युग्म में उत्पादित धारा ठण्डे और गरम सिरों के तापक्रम-अन्तर के अनुपात में होती है।

तापीय युग्म की विद्युत् धारा, विक्षेप धारामापी या उच्च प्रतिरोध सहित मिली वोल्टमापी द्वारा नापी जाती है।

विकिरण उत्तापमापी—यह यन्त्र स्टैफेन और बोल्त्समैन (Stefan and Boltzman) के पूर्ण विकिरण-सम्बन्धी नियमों पर आधारित होता है। इस नियम के अनुसार किसी गरम वस्तु से सम्पूर्ण विकीर्ण ताप गरम वस्तु और आसपास के ठण्डे स्थान के निरपेक्ष तापक्रमों की चतुर्थ घातों के अन्तर के अनुपात में होता है।

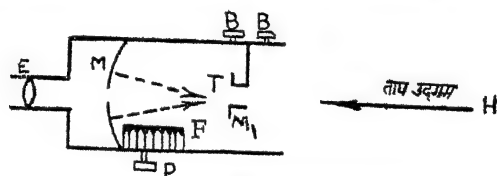
$$E = K (T_1^4 - T_2^4)$$

सभी गरम वस्तुओं से ताप विकिरण होता है। विकीर्ण ताप-किरणों के परावर्तन के सभी नियम प्रकाश-परावर्तन के नियमों के समान होते हैं।

500° से 0° से ऊपर गरम वस्तु से विकीर्ण ऊर्जा (Energy) का कुछ अंश तो प्रकाश के रूप में देखा जा सकता है तथा कुछ अंश जो ताप के रूप में विकीर्ण

होता है नहीं देखा जा सकता। विकिरण उत्तापमापी में गरम वस्तु से विकीर्ण तमाम ऊर्जा काजल पुते हुए तापीय युग्म पर केन्द्रित की जाती है। यह तापीय युग्म सारी ऊर्जा अवशोषित कर लेने के कारण गरम होकर विद्युद्वाहक बल उत्पन्न करता है, जिससे गरम वस्तु का तापक्रम सूचक में पढ़ लिया जाता है।

फेरी (Ferry) विकिरण उत्तापमापी में ताप किरणें एक नतोदर दर्पण पर डालकर एक छोटे-से तापीय युग्म पर केन्द्रित की जाती हैं। तापीय युग्म का एक जोड़ गरम होने के कारण उत्पन्न विद्युद्वाहक बल एक अभिलेख धारामापी द्वारा नापा जाता है, जिसके अंशकन को पढ़कर सीधे तापक्रम का पता चल जाता है। चित्र ५८ में फेरी विकिरण उत्तापमापी की कार्य-विधि दिखायी गयी है।



चित्र ५८. फेरी विकिरण उत्तापमापी

इस यन्त्र में भट्ठी से ताप-किरणें H , नतोदर दर्पण M पर डालकर तापीय युग्म T पर केन्द्रित की जाती हैं। उपनेत्र (Eyepiece) E में से देखते हुए परीक्षक छोटे से दर्पण M , में भट्ठी का बिम्ब देखता है। यन्त्र में लगी हुई दूरबीन की सहायता से परीक्षक उपनेत्र E को आवश्यक ठीक स्थान पर केन्द्रित कर सकता है। दर्पण M के छिद्र के पीछे रखा हुआ सुग्राही तापीय युग्म इस छिद्र से जानेवाली ताप-किरणों के द्वारा गरम हो जाता है। दर्पण M मोर्चा न लगनेवाले इस्पात से बनाया जाता है तथा इस इस्पात पर बिना खरोच पड़े ही पालिश भी की जा सकती है। यह इस्पात टूटने और खराब होने के दोषों से भी मुक्त रहता है।

फोकस करना—एक साधारण विधि द्वारा देखने और फोकस करने की क्रियाएँ सरलता से हो जाती हैं। दर्पण M , में छोटे-छोटे अर्द्ध वृत्ताकार फस्ती की आकृति के दो दर्पण इस प्रकार जुड़े रहते हैं, कि दर्पण पर पड़नेवाला गरम वस्तु का प्रतिबिम्ब एक काले केन्द्र सहित दो अर्द्धवृत्ताकार भागों में विभक्त हो जाता है। पेचदार मुठिया F को घुमाकर इस तरह फोकस किया जाता है कि दोनों प्रतिबिम्ब एक दूसरे के ऊपर रहें।

गरम वस्तु के दूरबीन में देखे गये भाग तथा दूरबीन की गरम वस्तु से दूरी का तापक्रम नापने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । परन्तु दूरबीन और वस्तु के बीच प्रत्येक दो फुट की दूरी के लिए गरम वस्तु कम से कम १ इंच व्यास की होनी चाहिए, जिससे वस्तु का प्रतिबिम्ब तापीय युग्म के सुग्राही भाग को पूरी तरह ढँक ले ।

मृद्-उद्योग-भट्ठियों का तापक्रम नापने के लिए ४-५ फुट लम्बा और ६ इंच व्यासवाला एक दुर्गल नल भट्ठी की दीवार के छेद में होकर भट्ठी में घुसा दिया जाता है। इस नल का एक सिरा बन्द तथा दूसरा खुला रहता है। नल का भट्ठी के अन्दर रहनेवाला बन्द सिरा भट्ठी का तापक्रम लेता है और खुले सिरे पर उत्तापमापी फोकस किया जाता है।

इस उत्तापमापी में मुख्य दोष ये हैं—

(क) भट्ठी के तापक्रम का परिवर्तन-यन्त्र में कुछ समय बाद पता चलता है, कारण नल के गरम होने में कुछ समय लगता है।

(ख) परावर्तक दर्पण तापीय युग्म पर तापकिरणों को केन्द्रित करने में असफल हो सकता है।

ये उत्तापमापी सभी प्रकार की औद्योगिक भट्ठियों के ५०० से १७००° से० तक के तापक्रम नापने के लिए उपयोगी होते हैं।

प्रकाश उत्तापमापी—ये यन्त्र साधारण कार्यों के लिए काफी सुविधाजनक होते हैं और इनसे नापनेवाले तापक्रम का परास ७००° से प्रारम्भ होकर उच्चतम तापक्रम तक होता है। शीघ्रता से तापक्रम पढ़े जाने तथा छोटी वस्तुओं को देखने में सरलता के कारण इस प्रकार के उत्तापमापी क्षणिक तापक्रम नापने के लिए बहुत ही उपयोगी होते हैं।

इस विधि में केवल दिखाई देनेवाले विकिरण का उपयोग किया जाता है। किसी गरम वस्तु का सम्पूर्ण विकिरण उस वस्तु के तापक्रम पर ही नहीं वरन् उसकी उत्सर्जक (Emissive) शक्ति पर भी निर्भर करता है। जिस पदार्थ की उत्सर्जक और अवशोषक शक्तियाँ अधिकतम हो उसे काली वस्तु कहते हैं। काली वस्तु की उत्सर्जक शक्ति इकाई मानी जाती है। अतः दूसरे सभी पदार्थों की उत्सर्जक शक्तियाँ एक से कम होती हैं। उद्योग में काली वस्तु अवस्था का अनुभव करने के लिए बन्द भट्ठी या मफल में वस्तु को गरम करके एक छोटे से छिद्र से उसे

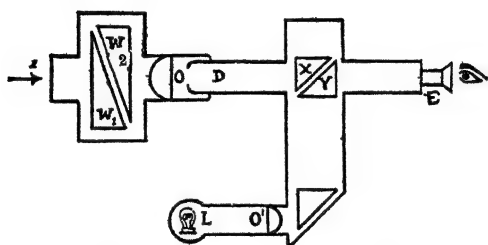
देखना चाहिए। मफल भट्ठियाँ और कुछ मृदुकरण भट्ठियाँ आदर्श काली वस्तु से पर्याप्त समानता रखती हैं। जब काली वस्तु की अवस्थाओं में कोई वस्तु बन्द भट्ठी के अन्दर गरम की जाती है, तो वस्तु की विकिरण तीव्रता काली वस्तु के बराबर होती है। प्रकाश उत्तापमापी को तब प्रयोग करना चाहिए जब भट्ठी के भाग और वस्तुओं के तापक्रम समान होने के कारण भट्ठी की वस्तुएँ भट्ठी दीवारों से जलग न पहचानी जा सकें। यदि गरम होनेवाली वस्तु आसपास के स्थानों से भिन्न दीखती है तो या तो वस्तु आसपास के स्थानों से अधिक गरम है, जैसा कि भट्ठी ठण्डी करते समय होता है, या ठण्डी है, जैसा कि भट्ठी गरम करते समय होता है। प्रथम अवस्था में अर्थात् वस्तु अधिक गरम होने पर नापा हुआ तापक्रम वस्तु के वास्तविक तापक्रम से काफी कम होगा, कारण प्रकाश उत्तापमापी भट्ठी की दीवारों के प्रकाश पर ही फोकस किया जाता है। दूसरी अवस्था में नापा हुआ तापक्रम वास्तविक तापक्रम से काफी अधिक होगा। जब कोई दहकती हुई वस्तु खुले में देखी जाती है, तो नापा हुआ तापक्रम वास्तविक तापक्रम से काफी कम होता है। अतः नापे हुए तापक्रम को ठीक कर लेना चाहिए। यह त्रुटि उज्ज्वल तरल धातु के लिए काफी होती है। परन्तु जब तरल धातु के ऊपरी तल पर आक्साइड की परत जम जाती है, तो यह त्रुटि बहुत कम हो जाती है। तापक्रम नापते समय इस त्रुटि की मात्रा का अनुमान नीचे दी हुई विभिन्न पदार्थों की उत्सर्जन तुलना से स्पष्ट हो जायगा —

ग्रेफाइट चूर्ण	० ९५
कार्बन	० ८५
लौह आक्साइड	० ९२
निकिल आक्साइड	० ८५
तरल उज्ज्वल लौह धातु	० ३७
„ „ निकिल धातु	० ३६
पोरसिलेन	० ५०

काली वस्तु की अवस्थाओं में अर्थात् धीरे-धीरे गरम होती हुई भट्ठी में, तरल उज्ज्वल धातु के तापक्रम का प्रकाश उत्तापमापी से ठीक पता चलेगा, कारण बन्द स्थान में धातु अपने तापक्रम के अनुपात से ही ताप-उत्सर्जन करेगी, जैसा कि खुले स्थान में नहीं कर सकती।

फेरी प्रकाश उत्तापमापी मे गरम वस्तु से प्राप्त प्रकाश के फोकस की तीव्रता की तुलना एक प्रामाणिक प्रकाश के फोकस की तीव्रता से की जाती है।

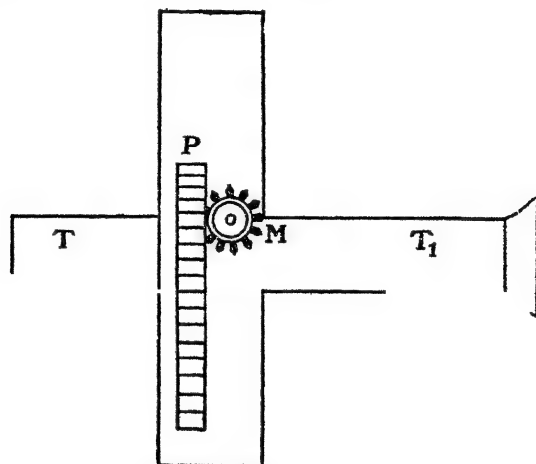
तापक्रम बढ़ने के साथ-साथ प्रकाश की तीव्रता अत्यधिक बढ़ने के कारण इस विधि से तापक्रम नापना सरल हो गया है। 1500° से० पर उत्सर्जित प्रकाश की तीव्रता 1000° से० पर उत्सर्जित प्रकाश की तीव्रता से १३० गुनी होती है। उच्च तापक्रम पर यह वृद्धि और भी अधिक अनुपात में होती है। चित्र ५९ मे फेरी प्रकाश उत्तापमापी दिखाया गया है।



चित्र ५९. फेरी प्रकाश उत्तापमापी

फेरी प्रकाश उत्तापमापी मे गरम स्थान से प्रकाश सर्वप्रथम फन्नी आकृति के दो प्रिज्मो (Prisms) $W_1 W_2$ मे होकर प्रवेश करता है। उसके बाद लैस O द्वारा फोकस होकर X, y दो और प्रिज्मो पर पडकर ध्रुवायित (Polarised) होकर लाल बन जाता है। इसी प्रकार प्रामाणिक बत्ती L से चलनेवाला प्रकाश ध्रुवायित और लाल होकर X, y प्रिज्मो पर पडता है। इस प्रकार इन दो भिन्न स्थानो के प्रतिबिम्ब पास ही बनते हैं, जिन्हे परीक्षक उपनेत्र E मे देखता है। ये दोनो प्रतिबिम्ब या तो अर्द्ध वृत्तो के रूप मे या दो सकेन्द्र चक्रो के रूप मे दीखते हैं। $W_1 W_2$ को आगे-पीछे हटाकर भट्ठी के प्रतिबिम्ब की चमक घटा-बढाकर प्रामाणिक बत्ती के प्रतिबिम्ब की चमक के बराबर कर ली जाती है। स्केल इस प्रकार अशाकित रहता है कि दोनो प्रतिबिम्बो की चमक समान होने पर वह सीधा गरम वस्तु का तापक्रम बताता है। कैम्ब्रिज प्रकाश उत्तापमापी मे उपनेत्र के साथ ही जुडी हुई एक वृत्ताकार प्लेट पर स्केल खुदा रहता है। इस स्केल की सहायता से गरम वस्तुओ से आनेवाले प्रकाश की उज्ज्वलता घटायी-बढायी जाती है। आँख के सामने वृत्ताकार प्लेट रहने से परीक्षक की आँख पर भट्ठी की चमक का हानिकर प्रभाव भी नही पडने पाता।

इन यन्त्रों की यथार्थता प्रमाणित बत्ती के प्रकाश की समानता पर निर्भर करती है। इसके प्रकाश की समानता समय-समय पर एमाइल ऐसीटेड लैम्प द्वारा जाँच लेनी चाहिए। एमाइल ऐसीटेड लैम्प यन्त्र के साथ ही मिलता है।



चित्र ६० वैजप्रकाश उत्पापमापी

वैज प्रकाश उत्पापमापी—इस यन्त्र में एक पीतल का नल होता है जिसमें एक छोटी दूरबीन TT_1 लगी रहती है। इस दूरबीन का अभिदृश्य (Objective) लेंस गरम वस्तु के प्रतिबिम्ब को नल में अन्दर रखे हुए एक चल प्रिज्म P पर फोकस करता है।

इस उत्पापमापी की मुख्य विशेषता काँच का यह चल प्रिज्म है, जो दण्डचक्री (Rack and pinion) M की सहायता से ऊपर नीचे हटाया जा सकता है। इस प्रिज्म का पूरा भाग लाल रंग की विभिन्न आभाओं में अशक्ति रहता है। प्रयोग के समय प्रिज्म को इस प्रकार रखा जाता है कि हलका रंग सामने दीखता रहे। उसके बाद दण्डचक्री को घुमाकर प्रिज्म के रंग की गहराई धीरे-धीरे यहाँ तक बढ़ायी जाती है कि वस्तु दीखना बन्द हो जाता है। इस अवस्था में स्केल पर गरम वस्तु का तापक्रम पढ़ा जाता है।

इस उत्पापमापी के बिगड़ने की सम्भावना कम रहती है और व्यक्तिगत कुशल-हीनताओं के कारण भी त्रुटियाँ कम होती हैं। यह सस्ता है और एक साधारण आदमी भी इस पर कार्य कर सकता है। परन्तु इसमें यथार्थता अधिक नहीं रहती।

त्रयोदश अध्याय

मृद्-उद्योग में गणनाएँ

१. नमी की मात्रा तथा उसका प्रभाव—मृद्-उद्योग के सभी उपयोगी पदार्थों में पानी की कुछ न कुछ मात्रा रहती है। यह पानी दो रूपों में पाया जाता है। ये रूप अवशोषित जल तथा केलास जल हैं। केलास जल खनिज अणु का एक अविच्छिन्न भाग होता है, जैसे केओलिन ($Al_2O_3 \cdot 2SiO_2 \cdot 2H_2O$) में अथवा बोरेक्स ($Na_2O \cdot 2B_2O_3 \cdot 10H_2O$) में। अधिकांश पदार्थों में केलास जल की निश्चित मात्रा ही रहती है। परन्तु कुछ बोरेक्स-जैसे पदार्थों में यह थोड़ा परिवर्तनशील भी होता है।

कच्चे पदार्थों में जो पानी अवशोषित जल के रूप में रहता है, उसे नमी कहते हैं तथा इसकी मात्रा ऋतु एवं पदार्थ रखने के स्थान की अवस्थाओं पर निर्भर करती है। नमी की इस अनिश्चित मात्रा के कारण कच्चे पदार्थ खरीदते समय कुछ प्रामाणिक प्रकारों के आधार पर ही खरीदना चाहिए, अन्यथा आर्थिक हानि हो सकती है। आर्थिक हानि के साथ ही पदार्थों के मिश्रण-पिण्ड में पदार्थों के अनुपात में उस समय तक भूल हो सकती है, जब तक कि प्रत्येक बार पदार्थों में नमी की मात्रा निर्धारित करके तदनुसार अवयव सूत्र को ही न सुधारा जाय।

किसी पदार्थ में उपस्थित नमी की मात्रा ज्ञात करने के लिए उसके नमूने को तौलने के पश्चात् लगभग 110° सें० पर तब तक सुखाया जाय, जब तक कि भार स्थिर न हो जाय। नमूने के प्रारम्भिक तथा सुखाने के पश्चात् स्थिर भारों का अन्तर ही नमूने में उपस्थित नमी की मात्रा होगी। साधारण रीति से पदार्थ के नमूने के प्रारम्भिक भार के आधार पर उसकी नमी का प्रतिशत निकाल लिया जाता है।

नमी के आधार पर हानि के उदाहरण-स्वरूप यदि कोई १५ प्रतिशत नमी-वाली चीनी मिट्टी को ५० प्रतिटन के भाव से खरीदता है, परन्तु यदि इस चीनी

मिट्टी में नमी १५% न होकर २०% हो तो ३) प्रतिटन की हानि होगी। बड़े-बड़े कारखानों में जहाँ प्रतिदिन पदार्थों की काफी मात्राओं की आवश्यकता पड़ती है, इस हानि की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

२. आकुचन—जब मिट्टी की वस्तुएँ सुखायी जाती हैं, तो इनके आकारों में आकुचन आ जाता है। इस आकुचन का कारण उनके अवशोषित जल का वाष्पीकरण होता है। यह आकुचन मुख्य रूप से पानी की उस मात्रा पर, जो वस्तु निर्माण के समय प्रयोग की गयी थी, तथा पदार्थों के कण-आकार पर निर्भर करता है। उदाहरण-स्वरूप बड़े कणवाली रेतीली मिट्टी में बनी वस्तुएँ कम अर्थात् एक प्रतिशत या इससे भी कुछ कम आकुचित होंगी, जब कि महीन कणवाली लचीली मिट्टी से बनी वस्तुएँ सुखाने पर लगभग १६% आकुचित होंगी। मिट्टी की वस्तुओं का वह आकुचन, जो उन्हें सुखाने के कारण होता है, सुखाव-आकुचन कहलाता है। सुखाव-आकुचन सुखाने के तापक्रम पर निर्भर करता है, अतः न्यूनाधिक भी हो सकता है। प्रामाणिक परिणाम के लिए व्यवहार में परीक्षण टुकड़े को ११०° से० पर गरम करके शोषित्र (Desiccator) में ठण्डा किया जाता है।

जब मिट्टी की वस्तुएँ पकायी जाती हैं, तो उनमें कुछ और आकुचन होता है। इस पकाने के समय के आकुचन को पकाव-आकुचन कहते हैं। पकाव-आकुचन, पकाव-तापक्रम के साथ बढ़ता जाता है। इस आकुचन का मुख्य कारण मिट्टी तथा खनिजों के केलास जल का निकलना, कच्चे पदार्थों में उपस्थित कार्बनिक अपद्रव्यों का जलना तथा अधिक गलनशील पदार्थों का प्रारम्भिक गलन होता है। तुलनात्मक परिणामों के लिए वस्तु को एक विशेष तापक्रम पर निश्चित समय तक पकाकर आकुचन की मात्रा ज्ञात की जाती है। विभिन्न मिट्टियों के पकाने के लिए, विभिन्न विशेष अवस्थाओं की आवश्यकता होती है। एक मिट्टी कम तापक्रम पर ही अच्छी तरह पक सकती है, जब कि दूसरी को अच्छी तरह पकाने के लिए उच्च तापक्रम की आवश्यकता हो सकती है।

लम्ब-आकुचन (Linear contraction) ज्ञात करने के लिए परीक्षण टुकड़े पर निश्चित दूरी पर दो रेखाएँ खींच दी जाती हैं। इस टुकड़े को सुखाया जाता है और बाद में फिर उन दोनों रेखाओं के बीच की दूरी नाप ली जाती है। प्रारम्भिक तथा आकुचित दूरी का अन्तर ही सुखाव-आकुचन होता है। तत्पश्चात्

परीक्षण टुकड़े को पकाया जाता है और इसी प्रकार पकाव-आकुचन ज्ञात कर लिया जाता है। गणना निम्नलिखित समीकरण द्वारा की जाती है।

$$\text{प्रतिशत लम्ब आकुचन} = \frac{\text{प्रारम्भिक लम्बाई—आकुचित लम्बाई}}{\text{प्रारम्भिक लम्बाई}} \times 100$$

निश्चित आयतनवाले पात्रों के निर्माण में मिश्रणपिण्ड का घन-आकुचन (Cubical contraction) ज्ञात होना आवश्यक है। ऐसी अवस्थाओं में प्रारम्भिक आयतन तथा आकुचन के पश्चात् आयतन निम्नलिखित ढग से निकाले जाते हैं।

माना कि परीक्षण टुकड़े द्वारा मिट्टी का तेल अवशोषित कराकर हवा में उसका भार 'क' ग्राम है। अब तेल अवशोषित टुकड़े को मिट्टी के तेल में लटकाकर भार लो। मान लो यह भार 'क_१' ग्राम है। इसमें यह ध्यान रहे कि पूरा परीक्षण-टुकड़ा तेल में डूबा रहे, परन्तु तेल के पात्र की तली या दीवारे न छुए। अब यदि मिट्टी के तेल का आपेक्षिक घनत्व 'घ' हो, तो परीक्षण-टुकड़े का

$$\text{वास्तविक आयतन} = \frac{\text{क}-\text{क}_1}{\text{घ}} \text{ घन सेण्टीमीटर होगा।}$$

मिट्टी के तेल का प्रयोग इस कारण किया जाता है कि बिना पका हुआ परीक्षण-टुकड़ा पानी में गल जायगा। अन्य तेल अधिक गाढ़े होने के कारण सरलता से अवशोषित नहीं होंगे।

व्यवहार में सदैव इसी विधि को अपनाना आवश्यक नहीं है, कारण गणना से पता चलता है कि घन-आकुचन, लम्ब-आकुचन से लगभग तिगुना होता है।

३. रन्ध्रता—जब मिट्टी की वस्तुएँ पकायी जाती हैं, तो तापक्रम बढ़ने पर कणों के बीच के रन्ध्र-स्थान धीरे-धीरे बन्द होते जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि ये रन्ध्र-स्थान पूर्णतया बन्द हो जायँ। बन्द न होनेवाले इन खाली स्थानों के कारण ही पात्र में रन्ध्रता होती है और इसका परिमाण मिश्रण-पिण्ड के प्रकार तथा पकाव-तापक्रम पर निर्भर करता है।

मिट्टी के पात्रों की रन्ध्रता ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित विधि का प्रयोग किया जाता है, जो आर्कैमिडीज के सिद्धान्त पर आधारित है।

परीक्षण-टुकड़े का हवा में भार = क

परीक्षण-टुकड़े को कुछ समय तक पानी के साथ उबालकर तथा बाद में कपड़े से अच्छी प्रकार पोछकर उसका हवा में भार = k_4

जल अवशोषित टुकड़े को पानी में पूरा लटका कर तोलने पर भार = k_5

अब $(k_5 - k_4)$ उस पानी का भार है जो परीक्षण टुकड़े के रन्ध्रों में भर जाता है और

$(k_5 - k_4) =$ सम्पूर्ण परीक्षण-टुकड़े द्वारा हटाये गये पानी का भार ।

चूँकि पानी का घनत्व इकाई होता है, इसलिए $k_5 - k_4$ और $k_5 - k_4$ क्रमशः रन्ध्र स्थानों तथा सम्पूर्ण परीक्षण-टुकड़े का आयतन प्रकट करते हैं ।

अतः परीक्षण-टुकड़े की रन्ध्रता निम्न सूत्र द्वारा निकाली जाती है ।

$$\text{रन्ध्रता} = \frac{k_5 - k_4}{k_5 - k_2}$$

मिट्टी के कच्चे पात्रों के लिए पानी के स्थान पर मिट्टी के तेल, पैराफिन आदि द्रवों का उपयोग किया जाता है, कारण कच्चे पात्र पानी में गल जाते हैं । परन्तु इससे उपर्युक्त सूत्र में कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

४. आपेक्षिक घनत्व—किसी पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व उस पदार्थ के तथा बराबर आयतनवाले प्रमाणभूत पदार्थ के भारों का अनुपात होता है । चूँकि पानी का घनत्व इकाई है, इसलिए किसी भी पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व निकालने के लिए पानी को प्रमाणभूत पदार्थ माना गया है ।

मृत्तिका-उद्योग में सोडियम सिलिकेट जैसे पदार्थों का व्यापारिक महत्त्व उनके आपेक्षिक घनत्व के आधार पर होता है । मिट्टी-घोला सम्बन्धी कुछ गणनाओं में तथा पानी के साथ पीसे गये खनिज पदार्थों के घोलों में ठोस पदार्थ की मात्रा निर्धारित करने के लिए भी आपेक्षिक घनत्व की आवश्यकता होती है । जब चकमक पत्थर को निस्तापित किया जाता है, तो उसमें प्रसार होता है । परिणाम-स्वरूप आपेक्षिक घनत्व कम हो जाता है । इस कारण आपेक्षिक घनत्व-निर्धारण द्वारा चकमकी की निस्तापन-क्रिया पर नियन्त्रण किया जा सकता है ।

द्रव पदार्थों का आपेक्षिक घनत्व प्रायः द्रव घनत्वमापी (Hydrometer) द्वारा सीधा ज्ञात कर लिया जाता है । द्रव घनत्वमापी काँच की बनी एक अशांकित नली होती है । इसके निचले भाग में एक फूला हुआ बल्ब—जैसा होता है, जिसमें पारा

या सीसे के टुकड़े भरकर भारी कर दिया जाता है, जिससे यह उपकरण द्रव में ऊर्ध्वधिर अवस्था में तैरता रहे। इसे किसी द्रव में डालने पर द्रव के आपेक्षिक घनत्व के अनुसार इसका कम या अधिक भाग डूबता है तथा नली पर अंकित अंक द्रव के आपेक्षिक घनत्व को प्रकट करते हैं।

सरन्ध्र ठोसों का आपेक्षिक घनत्व निकालते समय प्रायः दो भिन्न आपेक्षिक घनत्वों की गणना की जाती है। प्रथम वह है, जिसमें केवल ठोस वस्तु को ही ध्यान में रखा जाता है। इस प्रकार के आपेक्षिक घनत्व को वास्तविक आपेक्षिक घनत्व कहते हैं। दूसरे में रन्ध्र स्थानों सहित सम्पूर्ण ठोस का आपेक्षिक घनत्व निकाला जाता है। इसे आभासित आपेक्षिक घनत्व (Apparent Specific-gravity) कहते हैं।

पूर्व वर्णित दोनों प्रकार के आपेक्षिक घनत्व निकालने की भी वही विधियाँ हैं जो रन्ध्रता निकालने में प्रयुक्त हुई थी।

यदि $k =$ शुष्क परीक्षण-टुकड़े का हवा में भार—

$k_1 =$ जल-अवशोषित परीक्षण-टुकड़े का हवा में भार—

$k_2 =$ जल-अवशोषित परीक्षण-टुकड़े का पानी में भार—

तो $k - k_2 =$ केवल ठोस द्वारा हटाये हुए पानी का भार अर्थात् ठोस के बराबर आयतनवाले पानी का भार।

और $k_1 - k_2 =$ ठोस व रन्ध्र स्थानों दोनों के आयतन के बराबर आयतनवाले पानी का भार।

$$\text{इसलिए वास्तविक आ० घ०} = \frac{k}{k - k_2}$$

$$\text{और आभासित आ० घ०} = \frac{k}{k_1 - k_2}$$

५. शुष्क तथा घोला-मिश्रण—मृत्पात्र बनाने के लिए विभिन्न खनिजों तथा मिट्टियों को मिलाकर मिश्रण-पिण्ड बनाया जाता है। इन्हें मिलाने की दो विधियाँ प्रचलित हैं। प्रथम है शुष्क विधि तथा द्वितीय है घोला विधि या गीली विधि। शुष्क विधि में मिश्रण-पिण्ड के अवयव उन्हीं शुष्क अवस्थाओं में मिला दिये जाते हैं, जिनमें

वे कारखाने में आते हैं। शुष्क अवयवसूत्र भार के आधार पर दिये रहते हैं। इन्हीं सूत्रों के अनुसार पदार्थ तौलकर पानी के साथ मिला लिये जाते हैं। इस विधि में कच्चे पदार्थों में उपस्थित नमी की मात्रा पर उचित ध्यान देना आवश्यक होता है, जिससे मिलाये जानेवाले अवयवों का वास्तविक भार ज्ञात हो सके।

द्वितीय विधि में विभिन्न खनिजों को पानी के साथ पीसकर उनके अलग-अलग विशेष घनत्व के घोला बनाकर भिन्न-भिन्न कुण्डों में रख दिये जाते हैं। मिश्रण-पिण्ड बनाने के लिए इन्हीं घोलों के घोला-अवयव-सूत्र के अनुसार आयतन लेकर मिश्रण-कुण्ड में मिला दिये जाते हैं। इस विधि के घोला-अवयव-सूत्र मिश्रण-कुण्ड की इंचों में गहराइयों के रूप में प्रकट किये जाते हैं। इस विधि का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें कच्चे खनिज पदार्थों की नमी का जानना आवश्यक नहीं होता।

किसी घोले में शुष्क ठोस पदार्थ की मात्रा निकालने के लिए घोले का गाढ़ापन अर्थात् घोल का प्रति लीटर भार तथा शुष्क ठोस का आपेक्षिक घनत्व ज्ञात होना आवश्यक है। उदाहरण-स्वरूप—

यदि $k = 1$ लीटर घोले का भार (ग्रामों में)

$x = 1$ लीटर घोले में उपस्थित शुष्क ठोस की मात्रा (ग्रामों में)

$g =$ ठोस का आपेक्षिक घनत्व।

चूँकि शुष्क पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व g है, अतः एक लीटर ठोस का भार = १,००० ग ग्राम

$$\text{अतः } x \text{ ग्राम ठोस का आयतन} = \frac{x}{1000 \text{ ग}} \text{ लीटर}$$

इसी प्रकार एक लीटर घोल में उपस्थित पानी का आयतन $= \frac{k-x}{1000}$ लीटर
परन्तु घोल का सम्पूर्ण आयतन केवल १ लीटर है।

$$\text{अतः } \frac{x}{1000 \text{ ग}} + \frac{k-x}{1000} = 1$$

$$\text{या } x + k - x \text{ ग} = 1000 \text{ ग}$$

$$\text{या } x \text{ (ग्राम)} = (k - 1000) \frac{g}{g-1} \dots \dots (१)$$

समीकरण (१) को ब्रोगनियर्ट्स समीकरण (Brongniart's Equation) कहते हैं। यदि क की मात्रा औस प्रति पाइण्ट में प्रकट की जाय जैसा कि इंग्लैण्ड में होता है, तो समीकरण (१) निम्न रूप में परिवर्तित हो जायगा।

$$\text{ख (औस)} = (\text{क}-२०) \frac{\text{ग}}{\text{ग}-१} \quad (२)$$

क्योंकि १ पाइण्ट पानी का भार २० औस तथा १ लीटर पानी का भार १००० ग्राम होता है।

घोला अवयव सूत्र का शुष्क अवयव सूत्र में परिवर्तन—

घोला-विधि में भिन्न-भिन्न घोलों को समान अनुप्रस्थ काटवाले कुण्ड में डाला जाता है तथा प्रत्येक घोले की ऊँचाई नाप ली जाती है, जिससे प्रत्येक घोले का आयतन ज्ञात हो जाता है। घोला-अवयव सूत्र में घोले की ऊँचाई के साथ-साथ उसका आपेक्षिक घनत्व भी दिया रहता है।

चूँकि मृद्-उद्योग में उपयोगी मुख्य पदार्थों के आपेक्षिक घनत्वों में बहुत अन्तर नहीं होता, सबके आपेक्षिक घनत्व २.६ के आस-पास होते हैं। अतः गुणक $\frac{\text{ग}}{\text{ग}-१}$ लगभग स्थिर रहता है।

इमलिए ख $\propto (\text{क}-२०)$ औस

या ख $\propto (\text{क}-१०००)$ ग्राम

यदि मिश्रण में किसी घोला-अवयव की ऊँचाई 'घ' इंच है, तो

ख $\propto \text{घ} (\text{क}-२०)$ औस

$\propto \text{घ} (\text{क}-१०००)$ ग्राम

इस प्रकार हम देखते हैं कि घोला-अवयव-सूत्र की ऊँचाइयों को $(\text{क}-२०)$ या $(\text{क}-१०००)$ से गुणा करने पर शुष्क ठोसों की आनुपातिक मात्राएँ ज्ञात की जा सकती हैं। यदि घोले का घनत्व औस प्रति पाइण्ट लिया जाता है, जैसा कि इंग्लैण्ड में होता है, तो $(\text{क}-२०)$ से गुणा करते हैं। यदि घोला-घनत्व ग्राम प्रतिघन सेण्टीमीटर में प्रकट किया गया है, जैसा कि यूरोपीय देशों में होता है तथा अब भारत में भी होगा, तो $(\text{क}-१०००)$ से गुणा करते हैं। ब्रोगनियर्ट्स समीकरण की सहायता से घोला-अवयव-सूत्र को शुष्क-अवयव सूत्र में बदलने का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है।

उदाहरण—किसी मृत्पात्र का घोला-अवयव-सूत्र इस प्रकार है—

२४५	औस प्रति पाइण्टवाला बॉल-मिट्टी घोला .	१४ इंच
२५५	„ „ „ „ चीनी मिट्टी घोला	.. ९ „
३१७	„ „ „ „ चकमकी घोला	६५ „
३२२	„ „ „ „ कार्निश पत्थर घोला	३ „

इससे इस मिश्रण-पिण्ड का शुष्क-अवयव सूत्र निकालो ।

उपर्युक्त घोला-अवयव-सूत्र की आनुपातिक ठोस मात्राएँ—

बॉल-मिट्टी = १४ (२४५-२०) या ६३ भाग

चीनी मिट्टी = ९ (२५५-२०) या ४९५ „

चकमकी = ६५ (३१७-२०) या ७६० „

कार्निश पत्थर = ३ (३२२-२०) या ३६६ „

उपर्युक्त को प्रतिशत में परिवर्तित करने पर यह सूत्र प्राप्त होता है —

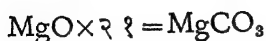
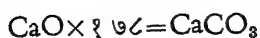
बॉल-मिट्टी	२८०० प्रतिशत
चीनी मिट्टी	२१.९८ „
चकमकी	३३.७६ „
कार्निश पत्थर	.. १६.२६ „
योग	<u>१००.००</u>

६. मिश्रण-पिण्ड की गणना—मिट्टियों तथा खनिज पदार्थों के रासायनिक विश्लेषण प्रकट करने के लिए दो विधियाँ प्रचलित हैं । प्रथम को चरम विश्लेषण (Ultimate Analysis) विधि तथा द्वितीय को युक्तिगत विश्लेषण विधि (Rational Analysis) कहते हैं । प्रथम विधि में विश्लेषण-परिणाम मिश्रण में उपस्थित अकार्बनिक पदार्थों के आक्साइडों के रूप में प्रकट किये जाते हैं । रासायनिक विश्लेषण को इस भाँति प्रकट करने से परिणाम, अच्छा निकलता है । परन्तु किसी विश्लेषण को पूरा करने में समय बहुत लगता है ।

द्वितीय विधि में विश्लेषण परिणाम मिट्टियों तथा मिश्रणों में उपस्थित खनिजों, मुख्यतः मृत्सारो, फेल्सपार तथा स्फटिक के रूप में व्यक्त किया जाता है । इस विधि में अनेक त्रुटियाँ होने के कारण इस परिणाम पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता । परन्तु अधिकांश मृत्पात्र-कारीगर मिश्रण-पिण्ड के खनिज अवयवों के ज्ञान को

प्राथमिकता देते हैं, कारण उन्हें प्रत्येक खनिज के गुणों व प्रभावों का ज्ञान होता है। चूँकि युक्तिगत विश्लेषण में कुछ सुधार करके अधिक सन्तोषजनक परिणाम पाने की कोई विशेष आशा नहीं है, अतः इस विधि का उपयोग आजकल अधिक नहीं किया जाता। फिर भी जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, मिश्रण-पिण्ड में विभिन्न खनिजों की मात्रा का ज्ञान होना विशेष लाभदायक होने के कारण चरम विश्लेषण से ही विभिन्न खनिजों की मात्रा की गणना करने का प्रस्ताव किया गया है। इस गणना विधि से प्राप्त परिणाम को सन्निकट विश्लेषण (Proximate Analysis) कहते हैं। यद्यपि यह गणना भी बहुत सी काल्पनिक सख्याओं के आधार पर की जाती है, परन्तु फिर भी यह विधि युक्तिगत विश्लेषण विधि से अधिक सन्तोषजनक मानी जाती है।

इस विधि द्वारा खनिजों की गणना में यह कल्पना कर ली जाती है कि मृत्सार, फेल्सपार और स्फटिक क्रमशः केओलीनाइट, अर्थोक्लेज और शुद्ध सिलिका के आदर्श सगठन हैं। परन्तु व्यावहारिक विश्लेषणों द्वारा देखा गया है कि बहुत थोड़े खनिज इतने शुद्ध होते हैं। सभी फेल्सपारों में पोटाश के अतिरिक्त सोडा या चूना थोड़ी बहुत मात्रा में अवश्य उपस्थित रहता है। गणना के समय पोटाश, सोडा, चूना, मैग्नीशिया आदि भास्मिक अवयवों का परिणाम पोटाश के रूप में प्रकट किया जाता है। फेल्सपार की गणना सम्पूर्ण भास्मिक अवयवों तथा ५९ के गुणनफल पर आधारित होती है। लोहे का आक्साइड जब थोड़ी मात्रा में उपस्थित होता है, तो उसकी गणना सम्पूर्ण भास्मिक आक्साइडों के साथ की जाती है, अन्यथा उसे अलग से प्रकट किया जाता है। पूर्वलिखित कथन द्वारा स्पष्ट है कि यदि पोटाश के अतिरिक्त भास्मिक आक्साइडों की मात्रा अधिक है, तो यह गणना विधि सन्तोषजनक नहीं होगी। ऐसी दशा में इसे सुविधानुसार बदला जा सकता है। उदाहरण-स्वरूप यदि सोडा की मात्रा पोटाश की मात्रा से अत्यधिक है, तो आदर्श फेल्सपार की गणना अर्थोक्लेज ($K_2O \cdot Al_2O_3 \cdot 6SiO_2$) के आधार पर न करके अल्वाइट ($Na_2O \cdot Al_2O_3 \cdot 6SiO_2$) के आधार पर की जानी चाहिए। वह गुणक जो सम्पूर्ण भास्मिक आक्साइडों को अल्वाइट में परिवर्तित करता है, ८४५ है। यदि चूना तथा मैग्नीशिया की मात्राएँ सोडा तथा पोटाश की अपेक्षा अत्यधिक हैं, तो चूना तथा मैग्नीशिया को कार्बोनेटों के रूप में अलग-अलग सूचित करना चाहिए।



फेल्सपार की गणना के पश्चात् बची हुई एल्यूमिना के आधार पर आदर्श मृत्सार की गणना की जाती है।

$$\text{Al}_2\text{O}_3 \times 2.52 = \text{मृत्सार}$$

अब फेल्सपार तथा मृत्सार में उपस्थित सिलीका की मात्राओं को सम्पूर्ण मिलीका की मात्रा से घटाने पर स्फटिक या मुक्त सिलीका निकाल ली जाती है।

लेटराइट जैसी कुछ मिट्टियों में एल्यूमिना का प्रतिशत कुछ अधिक होता है। ऐसी दशा में मृत्सार की गणना फेल्सपार की गणना के पश्चात् बची हुई सिलीका के आधार पर की जाती है।

$$\text{SiO}_2 \times 2.15 = \text{मृत्सार}$$

शेष एल्यूमिना को मुक्त एल्यूमिना कहते हैं।

सन्निकट विश्लेषण के अनुसार मिट्टियों तथा बिना पकाये हुए मृत्पात्र-पिण्डों में अवयवों का योग लगभग सौ हो जाता है। अतः प्रत्येक अवयव की मात्रा उसका प्रतिशत समझी जा सकती है। परन्तु पकाये हुए पिण्डों में ऐसा सम्भव नहीं है, कारण पकाने पर अवयवों का केलास जल निकल जाता है, जो कि मृत्सार की गणना में सम्मिलित रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण अवयवों का योग पकाने पर सदैव सौ से अधिक हो जाता है।

चरम विश्लेषण को सन्निकट विश्लेषण में परिवर्तित करने का उदाहरण नीचे दिया जाता है।

उदाहरण—किसी मिश्रण-पिण्ड का चरम विश्लेषण निम्नलिखित है। इसका सन्निकट विश्लेषण में परिवर्तन करो।

SiO_2	. . .	६३.००
Al_2O_3	२२.००
Fe_2O_3	१.००
K_2O	२.१५
Na_2O	१.०२
MgO	०.२४
CaO	०.८१
Loss	९.८२
योग		<u>१००.०४</u>

गणना—यहाँ सम्पूर्ण भास्मिक आक्साइडो का योग ४.२२ है। चूँकि K_2O की मात्रा शेष सभी भास्मिक आक्साइडो के योग से अधिक है, अतः फेल्सपार की गणना और्थोक्लेज के आधार पर करनी चाहिए।

अतः सम्पूर्ण आदर्श फेल्सपार = $4.22 \times 49 = 206.98$ भाग

अब चूँकि ५५६ भाग और्थोक्लेज में Al_2O_3 की मात्रा १०२ भाग तथा SiO_2 की मात्रा ३६० भाग रहती है, इस कारण इस फेल्सपार के २०६ भाग में ४५६ भाग Al_2O_3 तथा १६११ भाग SiO_2 मिलेगा।

इस प्रकार फेल्सपार निकाल देने के पश्चात् Al_2O_3 की मात्रा = $220 - 456 = 164$ भाग

अतः मृत्सार = 164×2.52 या ४१२ भाग

अब चूँकि मिट्टी के २५८ भाग में SiO_2 की मात्रा १२० भाग होती है। इसलिए स्फटिक या मुक्त सिलिका की

$$\begin{aligned} \text{मात्रा} &= 63 - (164 + 20.52) \\ &= 26.48 \text{ भाग} \end{aligned}$$

अतः मिट्टी के पिण्ड का सन्निकट विश्लेषण निम्न प्रकार से प्रकट किया जायगा—

मृत्सार	४१२
आदर्श और्थोक्लेज	२०६
स्फटिक	२६.५
फैरिक आक्साइड	१००

७. प्रलेप-संगठन-गणना—मृत्तिका-उद्योग में प्रलेप संगठन को व्यक्त करने की तीन विधियाँ हैं। (क) चरम विश्लेषण विधि अर्थात् शुष्क पदार्थों के रासायनिक विश्लेषण द्वारा प्राप्त सक्रिय आक्साइडो के प्रतिशत व्यक्त करने की सामान्य विधि। (ख) व्यावहारिक सूत्र विधि, जिसमें प्रलेप संगठन में प्रयुक्त होनेवाले पदार्थों की मात्रा व्यक्त की जाती है। (ग) आणविक सूत्र विधि अर्थात् प्रलेप संगठन में उपस्थित सक्रिय आक्साइडो के अणुओं की आनुपातिक मात्राओं को व्यक्त करने की सर्वप्रचलित विधि। अधिकांश मृद्-उद्योगियों द्वारा यही विधि उपयोग में लायी जाती है, कारण

इससे अनुभवी कारीगरों को व्यावहारिक महत्व की बहुत-सी सूचनाएँ सीधी प्राप्त हो जाती हैं।

चरम विश्लेषण का आणविक सूत्र में परिवर्तन

उदाहरण—निम्नलिखित प्रलेप के चरम विश्लेषण को आणविक सूत्र में व्यक्त कीजिए।

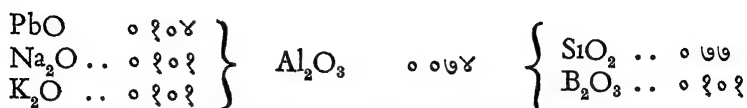
SiO_2	४६ २३
B_2O_3	७ ०९
Al_2O_3	७ ६३
PbO	२३ २७
Na_2O	६ २८
K_2O	९ ५२

प्रत्येक आक्साइड की मात्रा को क्रमशः उसके अणुभार से भाग देने पर उन आक्साइडों का आणविक अनुपात प्राप्त होता है, जैसा कि निम्न सारणी में दिया गया है—

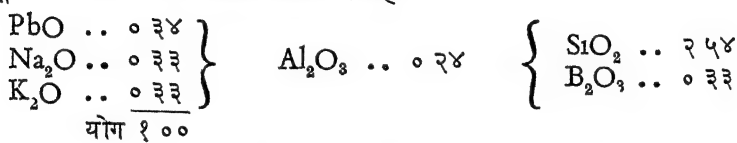
रासायनिक अवयव	प्रतिशत सगठन	अणुभार	आणविक अनुपात
SiO_2	४६ २३	६०	० ७७
B_2O_3	७ ०९	७०	० १०१
Al_2O_3	७ ६३	१०२	० ०७४
PbO	२३ २७	२२३	० १०४
Na_2O	६ २८	६२	० १०१
K_2O	९ ५२	९४	० १०१

प्रलेप के आणविक सूत्र को व्यक्त करने में सिलिका और बोरिक आक्साइड साथ-साथ रखे जाते हैं और अम्लीय आक्साइड के नाम से प्रकट किये जाते हैं, कारण वे भास्मिक अवयवों से संयोग करके रासायनिक यौगिक बनाते हैं। एल्यूमिना उदासीन या द्विधर्मी (जो अम्लीय एवं भास्मिक दोनों रूपों में प्रयोग किया जा सके) आक्साइड माना जाता है और उसे अलग करके बीच में रखा जाता है। शेष आक्साइडों को एक अलग वर्ग में भस्मों के नाम से व्यक्त करते हैं।

उपर्युक्त नियमों के आधार पर चतुर्थ स्तम्भ का परिणाम निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है—

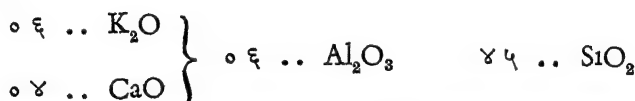


सामान्य सुविधा के लिए प्रायः भास्मिक आक्साइडों के अणु-अनुपातों का योग इकाई के रूप में व्यक्त किया जाता है। अन्य अवयवों की आवश्यकतानुसार सुधार दिया जाता है, जिससे अनुपात में अन्तर न आये। इस प्रकार उपर्युक्त समस्त सख्याओं को ३३ से गुणा करने पर समस्त भास्मिक आक्साइडों का योग एक हो जाता है। अतः अनुपात में कोई अन्तर लाये बिना ही दिये हुए प्रलेप के आणविक सूत्र को निम्न रूप में प्रकट किया जाता है।



आणविक सूत्र का व्यावहारिक सूत्र में परिवर्तन

उदाहरण—निम्नलिखित आणविक सूत्र को व्यावहारिक सूत्र में परिवर्तित कीजिए—



इस प्रलेप-मिश्रण के बनाने में फेल्सपार, सगमरमर और चकमक पत्थर अर्थात् चकमकी का उपयोग करने में सुविधा होगी। K_2O के ०६ अणु के लिए आदर्श रचनावाले ओर्थोक्लेज फेल्सपार के ०६ अणु की आवश्यकता होगी। ०६ अणु फेल्सपार डालने से Al_2O_3 के ०६ अणु तथा SiO_2 के ३६ अणु भी रहेंगे। चूँकि ओर्थोक्लेज का अणुभार ५५६ होता है, अतः इसका ०६ अणु ३३३६ भाग के बराबर होगा। इसी प्रकार CaO के ०४ अणु सगमरमर के ०४ अणु या ४० भाग से प्राप्त होंगे। यह निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है। इन दोनों खनिजों के मिश्रण के पश्चात् भी SiO_2 का ०९ अणु बच रहता है, जो चकमकी के ०९ अणु या ५४ भाग से प्राप्त होता है। चतुर्थ स्तम्भ के परिणाम की सहायता से अन्तिम स्तम्भ में व्यावहारिक सूत्र की प्रतिशत गणना की गयी है।

पदार्थ	अणु- भार	अणु- भाग	व्यावहारिक सूत्र	K_2O	CaO	Tl_2O_3	SiO_2	प्रतिशत व्यावहारिक सूत्र
फेल्सपार	५५६	०.६	३३३.६	०.६	—	०.६	३.६	७८.०१
सगमरमर	१००	०.४	४०.०	—	०.४	—	—	९.३५
चकमकी	६०	०.९	५४.०	—	—	—	०.९	१२.६३
योग	—	—	४२७.६	०.६	०.४	०.६	४.५	९९.९९

व्यावहारिक सूत्र से अणुसूत्र निकालने की गणना-विधि पूर्वलिखित विधि के बिलकुल विपरीत है जो निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी।

उदाहरण—निम्नलिखित प्रलेप के दिये हुए व्यावहारिक सूत्र को अणुसूत्र में परिवर्तित कीजिए।

फेल्सपार	४२
सगमरमर	१८
चकमकी	२५
चीनी मिट्टी	१२

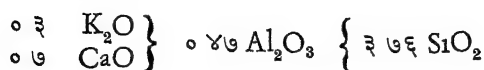
खनिजों के प्रत्येक अवयव को क्रमशः उनके अणुभारों से भाग देने पर उनके आणविक अनुपात प्राप्त होते हैं।

फेल्सपार	=	४२	—	५५६	=	०.०७५	अणु
सगमरमर	=	१८	—	१००	=	०.१८०	„
चकमकी	=	२५	—	६०	=	०.४१६	„
चीनी मिट्टी	=	१२	—	२५८	=	०.०४६	„

प्रत्येक खनिज अवयव में उपस्थित आक्साइडों की मात्राओं को विभिन्न आक्साइडों के स्तम्भ में ही रखने पर निम्नलिखित सारणी बनती है—

खनिज	अणु-भाग	K_2O	CaO	Al_2O_3	SiO_2
फेल्सपार	०.०७५	०.०७५	—	०.०७५	०.४५०
सगमरमर	०.१८०	—	०.१८०	—	—
चकमकी	०.४१६	—	—	—	०.४१६
चीनी मिट्टी	०.०४६	—	—	०.०४६	०.०९२
योग	—	०.०७५	०.१८०	०.१२१	०.९५८

सर्वाधिक प्रचलित नियम के अनुसार भास्मिक तथा अम्लीय आक्साइडों को अलग-अलग रखकर तथा भास्मिक आक्साइडों के योग को इकाई बनाकर निम्नलिखित अणुसूत्र प्राप्त होता है—



काँचित-प्रलेप

यदि बोरैक्स, सोडियम कार्बोनेट, पोटैश जैसे घुलनशील पदार्थ प्रलेप-मिश्रण में प्रयुक्त किये जाते हैं, तो उपयोग से पूर्व उन्हें गलाकर काँचित कर लेना चाहिए, जिससे वे अघुलनशील काँच के रूप में परिवर्तित हो जायें। काँचित मिश्रण का सगठन ऐसा होना चाहिए, जो कम तापक्रम पर गल सके तथा गलित काँचित अधिक श्यान भी न हो। यदि काँचित मिश्रण अधिक दुर्गल है, तो उच्च तापक्रम पर गलेगा, जिससे मिश्रण के क्षार, सीसा आक्साइड तथा बोरिक अम्ल जैसे वाष्पशील पदार्थों के निकल जाने की सम्भावना बढ़ती जाती है।

काँचित का गलन-तापक्रम सुगम सीमाओं के बीच रखने के लिए सम्पूर्ण अम्लीय अणुओं तथा समस्त भास्मिक अणुओं का अनुपात न्यूनतम १ १ और अधिकतम ३ १ रहना चाहिए। यदि काँचित मिश्रण में बोरिक आक्साइड भी उपस्थित हो, तो अम्लीय अवयवों में सिलीका अवश्य रहना चाहिए। SiO_2 तथा B_2O_3 का अनुपात न्यूनतम २ १ रहना चाहिए।

एल्यूमिना की उपस्थिति में काँचित इतना श्यान हो जाता है कि उँडेलेना बहुत कठिन हो जाता है। इसी कारण काँचित मिश्रण में एल्यूमिना की मात्रा ० २ अणु से अधिक नहीं होनी चाहिए।

काँचित प्रलेप की गणना निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट की गयी है।

उदाहरण—प्रत्येक खनिज के आदर्श सगठन के आधार पर निम्नलिखित ग्रावहारिक सूत्र को अणुसूत्र में परिवर्तित कीजिए—

काँचित-मिश्रण		प्रलेप-मिश्रण	
बोरैक्स	६०	काँचित	१००
सोडियम कार्बोनेट	१०	श्वेत सीसा	६०

चीनी मिट्टी	. २५	चकमकी	.. ४०
सगमरमर	.. २०		
चकमकी	.. ३५		

सर्वप्रथम प्रद्रावण क्रिया के कारण काँचित-मिश्रण की भारहानि पर विचार करना चाहिए।

कच्चे पदार्थों को काचित करने में जो भारहानि होती है उसके परिवर्तन-गुणक निम्नलिखित सारणी में दिये गये हैं।

कच्चे पदार्थ	गुणक	काँचित से प्राप्त आक्साइड
पोटाश फिटकरी	० २०६	$K_2O \cdot Al_2O_3$
एल्यूमिनियम हाइड्रेट	० ६५४	Al_2O_3 .
बेरियम कार्बोनेट	० ७७७	BaO .
बेरियम सल्फेट	० ६५७	BaO .
अस्थि-राख	१ ०००	$3CaO \cdot P_2O_5$.
बोरक्स केलास	० ५२९	$Na_2O \cdot 2B_2O_3$.
बोरिक अम्ल	० ५६३	B_2O_3 .
कैल्शियम कार्बोनेट	० ५६०	CaO .
कैल्शियम सल्फेट	० ३२५	CaO
चीनी मिट्टी	० ८६०	$Al_2O_3 \cdot 2SiO_2$.
डोलोमाइट	० ५२२	$CaO \cdot MgO$.
फेल्सपार	० ९९०	$K_2O \cdot Al_2O_3 \cdot 6SiO_2$.
मैगनीशियम कार्बोनेट	० ४७९	MgO .
पोटाश कार्बोनेट	० ६८१	K_2O
पोटाश नाइट्रेट	० ४६५	K_2O
लाल सीसा	० ९७७	$3PbO$
तापित सोडियम कार्बोनेट	० ५८५	Na_2O .
सोडियम कार्बोनेट (केलास)	० २१७	Na_2O
सोडियम नाइट्रेट	० ३६४	Na_2O .
सोडियम सल्फेट	० ४३७	Na_2O
श्वेत सीसा	० ८६३	$3PbO$.

उपर्युक्त सारणी के अनुसार —

६० भाग बोरैक्स	=	६० × ०.५२९	या	३१.७४ भाग स्थायी आक्साइड
१० „ सोडियम कार्बोनेट	=	१० × ०.५८५	या	५.८५ „ „ „
२५ „ चीनी मिट्टी	=	२५ × ०.८६	या	२१.५ „ „ „
२० „ सगमरमर	=	२० × ०.५६	या	११.२ „ „ „
३५ „ चकमकी	=	३५ × १.०	या	३५.० „ „ „

अर्थात् काँचीकरण क्रिया के पश्चात् १५० भाग कच्चे काचित मिश्रण से १०५.२९ भाग स्थायी आक्साइड मिलेगे ।

परन्तु हम देखते हैं कि प्रलेप-मिश्रण में केवल १०० भाग काँचित की आवश्यकता पड़ती है। यह १०० भाग काँचित, १४२ भाग कच्चे काँचित मिश्रण से प्राप्त होता होगा तथा इस मिश्रण में निम्नलिखित कच्चे पदार्थों की मात्राएँ होगी ।

$$\text{बोरैक्स} = \frac{६० \times १४२}{१५०} \text{ या } ५६.८ \text{ भाग}$$

$$\text{सोडियम कार्बोनेट} = \frac{१० \times १४२}{१५०} \text{ या } ९.४६ \text{ भाग}$$

$$\text{चीनी मिट्टी} = \frac{२५ \times १४२}{१५०} \text{ या } २३.६६ \text{ भाग}$$

$$\text{सगमरमर} = \frac{२० \times १४२}{१५०} \text{ या } १८.९३ \text{ भाग}$$

$$\text{चकमकी} = \frac{३५ \times १४२}{१५०} \text{ या } ३३.१३ \text{ भाग}$$

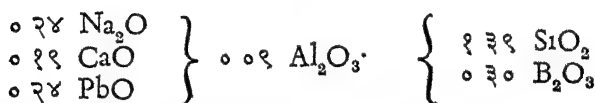
इस प्रकार सम्पूर्ण प्रलेप-मिश्रण में प्रयुक्त भिन्न-भिन्न खनिजों की मात्राएँ निम्न-लिखित हैं—

पदार्थ	काँचित मिश्रण में	प्रलेप-मिश्रण में	योग
बोरैक्स	५६.८०	×	५६.८०
सोडियम कार्बोनेट	९.४६	×	९.४६
चीनी मिट्टी	२३.६६	×	२३.६६
सगमरमर	१८.९३	×	१८.९३
चकमकी	३३.१३	४०.००	७३.१३
श्वेत सीसा	×	६०.००	६०.००

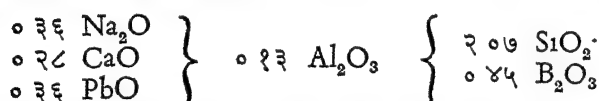
सारणी के रूप में अब हम अणुसूत्र की गणना इस प्रकार कर सकते हैं—

पदार्थ	अणु- भाग	अणु- भाग	Na ₂ O	CaO	PbO	Al ₂ O ₃	SiO ₂	B ₂ O ₃
बोरैक्स	३८२	० १५	० १५	—	—	—	—	० ३
सोडियम कार्बोनेट	१०६	० ०९	० ०९	—	—	—	—	—
चीनी मिट्टी	२५८	० ०९	—	—	—	० ०९	० १८	—
सगमरमर	१००	० १९	—	० १९	—	—	—	—
चकमकी	६०	१ २१	—	—	—	—	१ २१	—
श्वेत सीसा	७७५	० ०८	—	—	० २४	—	—	—
योग	—	—	० २४	० १९	० २४	० ०९	१ ३९	० ३

उपर्युक्त आक्साइडों को क्षारीय तथा अम्लीय वर्गों में विभक्त करके निम्न प्रकार क्रमबद्ध किया जाता है—

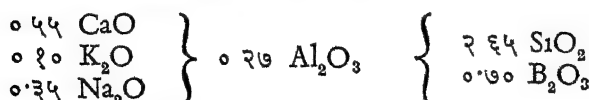


अब भास्मिक आक्साइडों के योग को इकाई बनाकर यह सूत्र निम्नलिखित सूत्र में परिवर्तित हो जाता है—

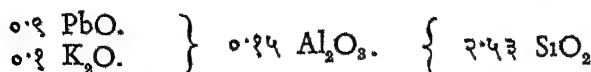


उदाहरण—निम्नलिखित कौचित-मिश्रण तथा प्रलेप-मिश्रण के अणु-सूत्रों को प्रलेप के व्यावहारिक सूत्र में परिवर्तित करो—

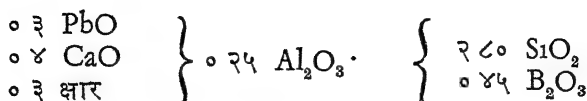
बोरैक्स-कौचित-मिश्रण



सीसा-कौचित-मिश्रण



प्रलेप-मिश्रण



बोरैक्स काँचित बनाने के लिए हमें बोरैक्स, फेल्सपार, चकमकी और चीनी मिट्टी को ऐसे अनुपातो में मिलाना चाहिए, जिससे सब पदार्थों द्वारा, उपर्युक्त सूत्र के अनुसार, आक्साइडो की मात्रा लायी जा सके। बोरैक्स काँचित मिश्रण में ०.३५ अणु बोरैक्स डालने से ०.३५ अणु Na_2O तथा ०.७ अणु B_2O_3 के मिलेंगे। इसी प्रकार फेल्सपार का ०.१ अणु डालने से ०.१ अणु, K_2O ०.१ अणु Al_2O_3 तथा ०.६ अणु SiO_2 मिलेंगे। Al_2O_3 तथा SiO_2 के शेष भाग, चीनी मिट्टी तथा चकमकी से प्राप्त किये जायँगे। सगमरमर से CaO लिया जायगा। यह सब निम्न सारणी में दिखाया गया है—

पदार्थ	अणु- भार	पदार्थ- भार	CaO	K_2O	Na_2O	Al_2O_3	SiO_2	B_2O_3	काँचित भार
बोरैक्स	३८२	१३३.७०	—	—	०.३५	—	—	०.७	७०.७२
फेल्सपार	५५६	५५.६०	—	०.१	—	०.१	०.६	—	५५.६०
सगमरमर	१००	५५.००	०.५५	—	—	—	—	—	३०.८०
चकमकी	६०	१०२.६०	—	—	—	—	१.७१	—	१०२.६०
चीनी मिट्टी	२५८	४३.८६	—	—	—	०.१७	०.३४	—	३७.७१
योग	—	३९०.७६	०.५५	०.१	०.३५	०.२७	२.६५	०.७	२९७.४३

उपर्युक्त सारणी के अन्तिम स्तम्भ में मिश्रण का काँचित भार दिखाया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ३९०.७६ भाग कच्चा मिश्रण काँचीकरण के पश्चात् का २९७.४३ भाग रह जाता है।

सीसा काचित को भी इसी प्रकार लाल सीसा, चकमकी तथा चीनी मिट्टी द्वारा बनाया जाता है और इसकी गणना भी उपर्युक्त गणना की भाँति ही की जाती है। परिणाम निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है—

पदार्थ	अणु-भार	पदार्थ-भार	PbO	K ₂ O	Al ₂ O ₃	SiO ₂	कॉचित भार
लालसीसा	६८५	२०५ २	० ९	—	—	—	२०० ४०
फेल्सपार	५५६	५५ ६	—	० १	० १	० ६०	५५ ६०
चकमकी	६०	१०९ ८	—	—	—	१ ८३	१०९ ८०
चीनी मिट्टी	२५८	१२ ९	—	—	० ०५	० १०	११ ०९
योग	—	३८३ ५	० ९	० १	० १५	२ ५३	३७६ ८९

प्रलेप मिश्रण की गणना

प्रलेप मिश्रण में B₂O₃ के ० ४५ अणु पाने के लिए $\frac{२९७४३ \times ० ४५}{० ७}$

या १९१ २ भाग बोरैक्स कॉचित की आवश्यकता पड़ेगी।

बोरैक्स कॉचित के १९१ २ भाग से अन्य आक्साइडों के निम्नलिखित भाग प्राप्त होंगे—

$$\text{SiO}_2 = \frac{१९१२ \times २६५}{२९७४३} \text{ या } १७०३ \text{ भाग}$$

$$\text{Al}_2\text{O}_3 = \frac{१९१२ \times ० २७}{२९७४३} \text{ या } ० १७३ \text{ भाग}$$

$$\text{CaO} = \frac{१९१२ \times ० ५५}{२९७४३} \text{ या } ० ३५३ \text{ भाग}$$

$$\text{K}_2\text{O} = \frac{१९१२ \times ० १}{२९७४३} \text{ या } ० ०६४ \text{ भाग}$$

$$\text{Na}_2\text{O} = \frac{१९१२ \times ० ३५}{२९७४३} \text{ या } ० २२५ \text{ भाग}$$

चूँकि बोरैक्स कॉचित से प्राप्त सम्पूर्ण क्षारों को मात्रा केवल ० २८९ भाग है, परन्तु आवश्यकता ० ३ भाग की है। अतः शेष ० ०११ भाग की पूर्ति सीसा-कॉचित से की जायगी।

क्षार के ००११ भाग को K_2O के रूप में लाने के लिए—

$$\frac{३७६८९ \times ००११}{.१} \text{ या } ४१४५ \text{ भाग सीसा काँचित की आवश्यकता होगी।}$$

सीसा-काँचित की यह मात्रा अपने साथ निम्नलिखित अन्य आक्साइडों की इन मात्राओं को भी लायेगी।

$$PbO = \frac{४१४५ \times ०९}{३७६८९} \text{ या } ००९९ \text{ भाग}$$

$$Al_2O_3 = \frac{४१४५ \times ०१५}{३७६८९} \text{ या } ००१६ \text{ भाग}$$

$$SiO_2 = \frac{४१४५ \times २५३}{३७६८९} \text{ या } ०२७८ \text{ भाग}$$

इस प्रकार दोनों काँचितों से निम्नलिखित स्थायी आक्साइडों की मात्राएँ प्रलेप-मिश्रण में आ जायेंगी।

काँचित	PbO	CaO	K_2O	Na_2O	Al_2O_3	SiO_2	B_2O_3
बोरेक्स काँचित	—	०३५३	००६४	०२२५	०१७३	१७०३	०४५
सीसा-काँचित	००९९	—	००११	—	००१६	०२७८	—
योग	००९९	०३५३	००७५	०२२५	०१८९	१९८१	०४५

चूँकि आक्साइडों के शेष भाग कच्चे रूप में ही मिलाये जाते हैं, इसलिए निम्नलिखित आक्साइडों को काँचित के साथ मिलाना पड़ता है—

$$०२०१ \text{ भाग } PbO \text{ या } \frac{७७५ \times २०१}{३} \text{ अर्थात् } ५१९ \text{ भाग श्वेत सीसा।}$$

$$००४७ \text{ CaO या } १०० \times ००४७ \text{ अर्थात् } ४७ \text{ भाग सगमरमर।}$$

$$००६१ \text{ } Al_2O_3 \text{ या } २५८ \times ००६१ \text{ अर्थात् } १५७ \text{ भाग चीनी मिट्टी।}$$

$$०८१९ \text{ } SiO_2 \text{ या } ६० \times ०८१९ \text{ अर्थात् } ४९१४ \text{ भाग चकमकी।}$$

अतः प्रलेप-मिश्रण तथा दोनों काँचित मिश्रणों के व्यावहारिक सूत्र इस प्रकार होंगे—

बोरैक्स-काँचित मिश्रण

बोरैक्स केलास	१३३ ७०
सगमरमर	५५ ००
फेल्सपार	५५ ६०
चकमकी	१०२ ६०
चीनी मिट्टी	४३ ८६

सीसा-काचित मिश्रण

लाल सीसा	२०५.२
चकमकी	१०९ ८
फेल्सपार	५५ ६
चीनी मिट्टी	१२ ९

प्रलेप-मिश्रण

बोरैक्स-काँचित	१९१ २०
सीसा-काँचित	. ४१ ४५
श्वेत सीसा	५१ ९०
चकमकी	. ४९ १४
चीनी मिट्टी	.. १५ ७०
सगमरमर	.. ४ ७०

अल्प घुलनशील प्रलेप

मानव-शरीर पर सीसा के विपैले प्रभाव का ज्ञान पहले बहुत ही कम था। सन् १९०४ ई० के पूर्व प्रलेप तथा काँच-कलइयो में सीसा-यौगिकों के उपयोग पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। सन् १९०४ ई० में प्रलेपित तथा काँच-कलइवाले पात्रों में उपस्थित सीसा-यौगिकों की विपत्तियाँ रोकने के वास्ते, नियम बनाने के लिए एक समिति सगठित की गयी। समिति द्वारा प्रस्तावित नियम के अनुसार ०.२५ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में प्रलेप या काँचित को गरम करने पर, प्रलेप या काँचित के जो शीशा-लवण घुल जायें, उन्हें PbO की भाँति प्रकट करने पर वे पूरे प्रलेप या काँचित के ५ प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहिए। इस परीक्षण के लिए घोल में हाइड्रोजन सल्फाइड गैस बहाकर PbS अवक्षेपित करा लिया जाता है। बाद में PbO की भाँति इसकी गणना कर ली जाती है। पश्चिम जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के स्थान पर २ प्रतिशत साइट्रिक अम्ल या ऐसेटिक अम्ल के घोल का प्रयोग किया जाता है।

चूँकि उपर्युक्त नियम के अन्तर्गत प्रत्येक प्रलेप का परीक्षण करके उसकी उपयोगिता ज्ञात करना सम्भव नहीं है, अतः डाक्टर थॉर्प (Dr T E Thorpe) ने एक आनुपातिक नियम का सुझाव दिया, जिससे किसी प्रलेप की अल्प घुलनशीलता का अनुमान किया जा सकता है। इस नियम को 'थॉर्प का अनुपात' कहते हैं। इस नियम के अनुसार एल्यूमिना सहित समस्त भास्मिक आक्साइडों के अणु भागों के योग की PbO के रूप में गणना की जाती है और सभी अम्लीय आक्साइडों की गणना SiO_2 के रूप में की जाती है। भास्मिक आक्साइडों के योग को अम्लीय आक्साइडों के योग से विभाजित कर देते हैं। यदि इस प्रकार भजनफल दो से कम आता है, तो प्रलेप इस नियम में खरा उतरेंगा। यह नियम निम्नलिखित समीकरण से स्पष्ट हो जायगा—

$$\frac{(\text{सम्पूर्ण भास्मिक आक्साइड} + \text{एल्यूमिना}) \times 223}{(\text{सम्पूर्ण अम्लीय आक्साइड}) \times 60} = 2 \text{ या } 2 \text{ से कम}$$

223 से गुणा करने का कारण यह है कि PbO तथा SiO_2 के अणु-भार क्रमशः 223 और 60 हैं।

इसके पश्चात् डाक्टर जे० डब्ल्यू मैलर (J W Mellar) ने थॉर्प के अनुपात सूत्र में एक संशोधन किया, जिसके फल-स्वरूप 223 से गुणा करने की आवश्यकता नहीं रहती और संशोधित सूत्र या समीकरण निम्नलिखित रूप में परिवर्तित हो जाता है—

$$\frac{\text{एल्यूमिना सहित भास्मिक आक्साइडों का योग}}{\text{अम्लीय आक्साइडों का योग}} = 0.5 \text{ या } 0.5 \text{ से कम}$$

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि इन सूत्रों से केवल यही पता चल पाता है कि किसी विशेष प्रलेप या काँचित के घुलनशीलता-परीक्षण में खरे उतरने की सम्भावना है या नहीं। कारण इन अवयव अनुपातों के अतिरिक्त अन्य कई बातों पर भी प्रलेप की घुलनशीलता निर्भर करनी है, जैसे प्रलेप की निर्माण विधि।

यदि सीसा-काँचित में बोरेक्स की मात्रा अधिक होती है, तो वह अधिक घुलनशील हो जाता है। काँचित में एल्यूमिना की मात्रा अधिक होने से अम्लों में उसकी घुलनशीलता कम हो जाती है। अल्प घुलनशील काँचित को महीन पीसने से भी उसकी घुलनशीलता काफी बढ़ जाती है। अल्प घुलनशील काँचित मनुष्य के उदर के अम्ल रस में शीघ्रता से नहीं घुल पाता, अतः उसे शरीर से बाहर निकालने

मे अधिक समय लग जाता है। जब काँचित मिश्रण मे सीसा के साथ अधिक बोरेक्म रहता है, तो उस काँचित मिश्रण को साधारणतया दो भागो मे काँचित किया जाता है। प्रथम काँचित मे सम्पूर्ण सीसा और उसके साथ इतना सिलीका तथा एल्यूमिना रहता है कि काँचीकरण क्रिया द्वारा पूरा सीसा बाई-सिलीकेट ($PbO \cdot 2SiO_2$) मे परिवर्तित हो जाय, कारण सीसा के बाई-सिलीकेट अम्ल रस मे बहुत ही कम घुलनशील होने हैं। इस काँचित को सीसा काँचित कहा जाता है। द्वितीय काँचित मे सम्पूर्ण बोरेक्म के साथ मिश्रण के दूसरे खनिज मिलाकर काँचित किया जाता है और इसे बोरेक्स काचित कहते हैं।

८. इल्यूट्रिएशन (Elutriation) — शुष्क चूर्ण पर पानी के प्रभाव-द्वारा समान व्यासवाले कणो को पृथक् करने को अग्रेजी मे इल्यूट्रिएशन कहते हैं। हिन्दी मे इसके लिए अभी तक कोई शब्द नहीं बन पाया है। शुष्क खनिज पदार्थों के कणो का सूक्ष्म आकार बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है, कारण मृद्-उद्योग मे कण-आकार की सूक्ष्मता पर भी निर्मित वस्तुओ के गुण-दोष निर्भर करते हैं। व्यवहार मे देखा गया है कि चकमकी, स्फटिक तथा फ्लेसपार आदि खनिजो के कण-आकार के प्रभाव, खनिजो की शुद्धता के प्रभाव से अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं।

चूर्ण पदार्थों के कण-आकार के आधार पर वर्गीकरण के लिए चलनी का प्रयोग सर्वसाधारण विधि है। बहुत ही सूक्ष्म कणीय पदार्थों को छोड़कर अन्य पदार्थों के कण-आकार ज्ञात करने के लिए यह सन्तोपजनक विधि है। विभिन्न देशो मे प्रामाणिक चलनियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। प्रत्येक चलनी पर एक-एक नम्बर लिखा रहता है और इन्ही नम्बरो से चलनी के छिद्रो की सूक्ष्मता जानी जाती है। परन्तु विभिन्न देशो के चलनी नम्बरो मे भिन्नता होती है। ब्रिटेन की प्रामाणिक चलनियाँ इस प्रकार बनायी जाती हैं कि उनके तारो का व्यास छिद्र की चौड़ाई के बराबर होता है और चलनी का नम्बर एक इंच मे छिद्रो की संख्या प्रकट करता है। इस प्रकार १०० नम्बर की चलनी मे प्रति इंच १०० छिद्र होंगे तथा १०० तार लगे होंगे। अतः छिद्र की चौड़ाई 0.004 इंच या 0.127 मिलीमीटर होगी। अमेरिका की प्रामाणिक चलनी ब्रिटेन की चलनी से कुछ भिन्न होती है। इसमे भी ब्रिटेन की चलनी की भाँति चलनी का नम्बर उसके प्रति इंच छिद्रो की संख्या बताता है। परन्तु ब्रिटेनवाली चलनी के विपरीत छिद्र का व्यास एक दूसरे ही नियम के अनुसार रखा

जाता है जो कुछ गणित-सम्बन्धी तथ्यो पर आधारित है। दो लगातार नम्बर की चलनियों के छिद्रो की चौड़ाइयो का अनुपात सदैव १ : ११८९२ होता है। १८ नम्बरी चलनी के छिद्र की चौड़ाई १० मिलीमीटर होती है तथा इसी चलनी को आधार मानकर छोटे छिद्रो की चलनियाँ बनायी गयी हैं। इस प्रकार १०० नम्बर की चलनी में प्रत्येक छिद्र की चौड़ाई ०.००५९ इंच या ०.१४९ मिलीमीटर होती है। यूरोपीय देशो की चलनियों के नम्बर प्रत्येक वर्ग सेण्टीमीटर में उपस्थित छिद्रो की संख्या प्रकट करते हैं। इस प्रकार चलनी नम्बर १०० के प्रत्येक वर्ग सेण्टीमीटर में १०० छिद्र होंगे।

ब्रिटेन की सबसे सूक्ष्म चलनी का नम्बर ३२५ और उसके छिद्र की चौड़ाई ०.००१७ इंच या ०.०४४ मिलीमीटर होती है। कभी-कभी जब खनिज चूर्णों के कण इससे अधिक सूक्ष्म होते हैं तो उनकी आकार-नाप चलनी द्वारा नहीं निकाली जा सकती। ऐसी अवस्था में इल्यूट्रिएशन विधि से सूक्ष्म कणो का वर्गीकरण, आकार के आधार पर किया जाता है।

इस विधि में चूर्णों के सूक्ष्म कणो पर पानी-प्रभाव की सहायता से चूर्ण-कणो को उनके आकार के अनुसार भिन्न-भिन्न अंशो में वर्गीकृत किया जाता है, जिसका सिद्धान्त निम्न प्रकार है—

किसी खनिज चूर्ण को स्थिर पानी में डालने पर चूर्ण का प्रत्येक कण एक निश्चित गति से पानी में डूबने लगता है। यह गति कण के आकार, आपेक्षिक घनत्व, आकृति तथा कण तल के प्रकार पर निर्भर करती है। जब खनिज पदार्थ काफी महीन पीस लिये जाते हैं, तो उनके कण न्यूनाधिक गोलाकार हो जाते हैं तथा उनके तल भी समान प्रकार के होते हैं। अतः सूक्ष्म कणो के नीचे बैठने की गति उनके आपेक्षिक घनत्व तथा आकार पर ही निर्भर करती है।

अब यदि पानी को ऊपर की ओर बहाया जाय और पानी की ऊर्ध्वगति धीरे-धीरे बढ़ायी जाय, तो पता चलता है कि जब पानी की ऊर्ध्वगति कणो की अधोगति के बराबर होती है, तो कण स्थिर हो जाते हैं। परन्तु पानी की ऊर्ध्वगति कणो की अधोगति से अधिक होने पर कण जलप्रवाह के साथ ऊपर जाने लगते हैं। अतः यदि हम पानी की ऊर्ध्वगति निर्धारित कर सकें तो निम्नलिखित समीकरण द्वारा कण-आकार की गणना कर सकते हैं।

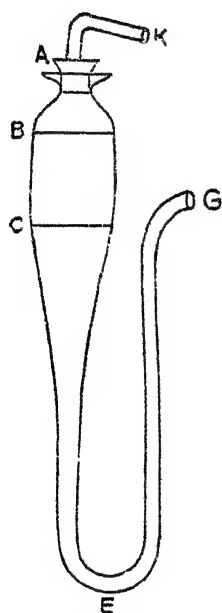
जल प्रवाह की गति = $1.047 (\phi - 1)^{0.75} \sqrt{v}$

यहाँ ϕ = कण का आपेक्षिक घनत्व

v = कण का औसत व्यास

इस प्रकार पानी के विभिन्न वेगों का प्रयोग करके चूर्ण को समान आकारवाले कणों के कई अंशों में वर्गीकृत कर सकते हैं, जिनके औसत व्यास हम पूर्वलिखित समीकरण से ज्ञात कर सकते हैं।

इसी सिद्धान्त के आधार पर श्वेन (E Schone) ने महीन पिसे हुए चूर्ण-पदार्थों के कणों को सजान आकारवाले विभिन्न अंशों में वर्गीकृत करने के लिए एक



चित्र. ६१. श्वेन
वर्गीकरण उपकरण

वर्गीकरण उपकरण का आविष्कार किया। चित्र ६१ में इस उपकरण को दिखाया गया है। इस उपकरण में एक मुड़ी हुई नली AEG रहती है, जिसके एक सिरे A पर खड की एक डाट लगी रहती है। खड की डाट में होकर एक दूसरी छोटी नली K इस नली में जाती है। इस नली K द्वारा पानी तथा चूर्ण के सूक्ष्म कण नली AEG से बाहर निकल जाते हैं। A के नीचे नली का सबसे चौड़ा भाग BC होता है। यह ठीक बेलनाकार होता है। BC के ऊपर व नीचे नली कम चौड़ी हो जाती है। नली के दूसरे सिरे G पर पानी घुसता है और K द्वारा बाहर निकल जाता है। पानी का वेग निम्न प्रकार से ज्ञात किया जाता है।

उपकरण के बेलनाकार भाग के नीचे तक पानी भर दिया जाता है। उसके बाद बेलनाकार भाग में पानी का एक ज्ञात आयतन (अ) डाला जाता है। पानी के इस बड़े हुए तल पर चिह्न लगा दिया जाता है और पानी-तल की ऊँचाई-वृद्धि (उ) नाप ली जाती है। पानी के इस आयतन 'अ' और तल की ऊँचाई वृद्धि 'उ' से बेलनाकार भाग का अनुप्रस्थ काट निम्न प्रकार से निकाल लेते हैं—

$$\text{अनुप्रस्थ काट} = \frac{\text{अ}}{\text{उ}}$$

अब यदि हम चाहे कि बेलनाकार भाग में पानी 'ग' वेग से प्रवाहित होता रहे, तो प्रति मिनट बाहर निकलकर जानेवाले पानी का आयतन (a_1) निम्न प्रकार से निकल आयेगा—

$$a_1 = \frac{a \times g}{u}$$

अब यदि हमें प्रति मिनट उपकरण से बाहर जानेवाले पानी का आयतन ' a_1 ' ज्ञात हो तो हम पानी का वेग निकाल सकते हैं। इसके लिए हम ज्ञात समय में नली K से निकले हुए पानी को अशाकित सिलिण्डर में इकट्ठा करके उसका आयतन नाप लेते हैं। इस आयतन को समय (मिनटों में) से भाग देकर एक मिनट में उपकरण से बाहर जानेवाले पानी का आयतन ' a_1 ' निकालकर उपर्युक्त समीकरण द्वारा पानी के वेग 'ग' की गणना कर लेते हैं। वर्तमान समय में विभिन्न सशोधित उपकरण प्रयोग में लाये जाते हैं, परन्तु सभी एक ही सिद्धान्त पर बने होते हैं।

प्रामाणिक तल अङ्क

चूर्ण खनिजों के समस्त कणों के तल क्षेत्रफल के योगफल को तल अङ्क (Surface-factor) कहा जाता है और एक ग्राम चूर्ण के समस्त कणों के तल क्षेत्रफल के योगफल को प्रामाणिक तल अङ्क (Standard Surface-factor) कहते हैं। इस गणना में यह मान लिया जाता है कि अत्यधिक महीन पिसे हुए चूर्णों के कण आकृति में गोलाकार होते हैं। तल अङ्क के लिए गणना सूत्र निम्न प्रकार से निकाला जाता है।

चूर्ण-वर्गीकरण-यन्त्र उपकरण द्वारा प्राप्त किसी अंश के कणों के व्यास न्यूनतम और अधिकतम दो ज्ञात सीमाओं के बीच होते हैं। इन कणों के औसत व्यास (v) की गणना निम्नलिखित समीकरण द्वारा की जाती है।

$$\text{औसत व्यास } v = \frac{1}{2} \sqrt{\frac{(v_1 + v_2) (v_1^2 + v_2^2)}{2}}$$

यहाँ v_1 = कणों का अधिकतम व्यास।

v_2 = कणों का न्यूनतम व्यास।

यदि ϕ = कणों का आपेक्षिक घनत्व हो तो एक कण का औसत आयतन तथा औसत भार निम्न प्रकार से निकल आयेगा—

$$\text{कण का औसत आयतन} = \frac{\pi v^3}{6}$$

$$\text{कण का औसत भार} = \frac{\pi v^3 \gamma}{6}$$

यदि सम्पूर्ण अश का भार (भ) तथा उसमें कणों की संख्या (स) हो तो .

$$s = \frac{\text{भ}}{\frac{\pi v^3 \gamma}{6}} = \frac{6 \text{ भ}}{\pi v^3 \gamma}$$

अब चूँकि एक कण का तल-क्षेत्रफल (πv^2) होता है, अतः इस अश में उपस्थित 'स' कणों के तल-क्षेत्रफल का योगफल निम्नलिखित होगा—

$$\text{अश का सम्पूर्ण तल-क्षेत्रफल} = \frac{6 \text{ भ} \times \pi v^2}{\pi v^3 \gamma} = \frac{6 \text{ भ}}{v \gamma}$$

यदि हमारे पास कई अश हो जिनके भार क्रमशः $\text{भ}_1, \text{भ}_2, \text{भ}_3, \dots$. हो तथा जिनके कणों के औसत व्यास क्रमशः v_1, v_2, v_3, \dots . हो तो सम्पूर्ण तल-क्षेत्रफल निम्नलिखित समीकरण द्वारा प्रकट किया जायगा—

$$\text{सम्पूर्ण तल-क्षेत्रफल} = \frac{6}{\gamma} \left\{ \frac{\text{भ}_1}{v_1} + \frac{\text{भ}_2}{v_2} + \frac{\text{भ}_3}{v_3} + \dots \right\}$$

यदि इस समीकरण में प्रयुक्त हुए $\text{भ}_1 + \text{भ}_2 + \text{भ}_3 + \dots = 1$ ग्राम हो तो समीकरण द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण तल-क्षेत्रफल प्रामाणिक तल-अङ्क के बराबर होगा। परिणाम वर्ग सेण्टीमीटर में व्यक्त किया जाता है।

मृत्तिका-उद्योग में उपयोगी खनिज पदार्थों के प्रामाणिक तल-अङ्क ज्ञात करने के लिए मेलर ने निम्नलिखित विधि अपनाते का प्रस्ताव रखा, जो प्रामाणिक परिणामों के लिए इंग्लैण्ड में अपनायी जाती है।

सम्पूर्ण चूर्ण को १२० नम्बर की चलनी से छान लिया जाता है। तत्पश्चात् छाने हुए अश में से एक ग्राम चूर्ण लेकर उसे निम्न प्रकार के तीन अशों में वर्गीकृत किया जाता है—

(1) मोटा अश (G11t)—एक ग्राम चूर्ण को २०० नम्बर की चलनी से छानने पर ऊपर बचे हुए मोटे अश को अग्रेजी में ग्रिट कहते हैं। इस अश के कणों का व्यास ०.०६३ और ०.१०७ मिलीमीटर के बीच रहता है।

(11) मध्य अंश (Silt)—२०० नम्बर की चलनी से छानन के बाद छने हुए चूर्ण को वर्गीकरण-उपकरण में डाला जाता है और ०.१८ मिलीमीटर प्रति सेकण्ड वेगवाले जल-प्रवाह द्वारा चूर्ण का सूक्ष्म अंश वर्गीकरण-उपकरण के बाहर कर दिया जाता है। चूर्ण का जो अंश उपकरण में रह जाता है, उसको अग्रेजी में सिल्ट कहते हैं। इस अंश के कणों का व्यास ०.०१ तथा ०.०६३ मिलीमीटर के बीच रहता है।

(111) सूक्ष्म अंश (Dust)—चूर्ण का जो अंश ०.१८ मिलीमीटर प्रति सेकण्ड वेगवाले जल-प्रवाह द्वारा वर्गीकरण-उपकरण से बाहर ले जाया जाता है, उसे अग्रेजी में डस्ट कहते हैं। इन कणों का व्यास ०.०१ मिलीमीटर से कम होता है।

विशेष परिस्थितियों में सूक्ष्म अंश को दो या दो से अधिक उप-अंशों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

इस वर्गीकरण के पश्चात् पूर्व-लिखित समीकरणों की सहायता से प्रामाणिक तल अङ्क की गणना की जाती है।

परीक्षण के समय स्फटिक और चकमकी के प्रामाणिक तल अङ्क निकालने के लिए उन्हें धोले के रूप में प्रयोग करना श्रेयस्कर होता है, कारण सूखने पर इनके सूक्ष्म कण एक दूसरे से चिपक जाते हैं, अतः परिणाम अशुद्ध हो जाता है। मिट्टियों को प्रयोग करते समय उचित विद्युद्विश्लेष्यों की सहायता से उनके कण अलग-अलग कर देने चाहिए।

९ वर्गीकरण की तलछट विधि—इस विधि में और पूर्व-वर्णित जल-प्रवाह विधि में यह अन्तर है कि इसमें चूर्णकण नीचे ले जाये जाते हैं, जब कि जल-प्रवाह विधि में कण ऊपर ले जाये जाते हैं। इस विधि में किसी चूर्ण पदार्थ के कणों को एक निश्चित काल तक उनकी गति के अनुसार तली पर बैठने दिया जाता है। इस परीक्षण के लिए कई विधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। बीकर तलछट नाम की एक अधिक प्रचलित विधि का यहाँ संक्षेप में वर्णन किया जाता है।

यह विधि शुष्क चूर्ण के कणों को उनके आकार के आधार पर वर्गीकृत करने की एक सरल विधि है। चूर्ण की तुली हुई मात्रा को पर्याप्त पानी के साथ अच्छी तरह मिलाया जाता है और अच्छी तरह चलाकर कणों को अलग-अलग कर दिया जाता है, जिससे कण मिले हुए न रहें। पानी की मात्रा काफी अधिक रखी जाती है, जिससे

कोई कण नीचे बैठने समय दूसरे कण के बैठने में बाधा न डाले। आलम्बन को बीकर में लेकर कुछ समय तक ऐसा ही छोड़ दिया जाता है। अपेक्षाकृत बड़े कण जमकर नीचे बैठ जाते हैं। सूक्ष्म कण आलम्बन अवस्था में ही रहते हैं। अब आलम्बन को बीकर की एक निश्चित ऊँचाई पर से निथार लिया जाता है। बीकर में बची तलछट को पुनः इतने पर्याप्त पानी के साथ मिलाया जाता है कि आलम्बन का आयतन पूर्ववत् एक निश्चित आयतन के बराबर हो जाय। इस आलम्बन को उतने ही काल तक ऐसे ही शान्त छोड़ दिया जाता है, तत्पश्चात् उसी ऊँचाई पर से आलम्बन फिर निथार लिया जाता है। यह क्रिया तब तक दुहरायी जाती है, जब तक कि निथरने-वाला ऊपर का पानी स्वच्छ न मिले। प्रत्येक निथारे हुए आलम्बन से प्राप्त कणों को तोला जाता है और सूक्ष्मदर्शी की सहायता में उनका औसत व्यास निकाला जाता है। चूर्ण का प्रामाणिक तल-अंक पूर्वलिखित समीकरण द्वारा निगाला जाता है।

१०. सुखाव ताप-गणना—मृत्पात्र कारखानों में भट्ठी की दहन-जनित गैसें तथा वाष्पित रहने पर वाष्पित में बाहर जानेवाले जलवाष्प के द्वारा ताप की बहुत अधिक मात्रा व्यर्थ चली जाती है। इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि वाष्पित में बाहर जानेवाले जलवाष्प के प्रत्येक पाँड से हमें ९७० ताप-इकाइयाँ प्राप्त हो सकती हैं और १०० अश्वशक्ति उत्पन्न करनेवाले तथा १० घण्टा प्रतिदिन काम करनेवाले वाष्पित्रों से बाहर जानेवाले व्यर्थ जलवाष्प द्वारा हम ३,३४६,५०० ताप-इकाइयों की प्राप्ति की आशा कर सकते हैं। इस ताप का प्रयोग पात्र सुखाने तथा अन्य कार्यों में किया जा सकता है।

यदि इन दहन-जनित गैसों का सुखाव-प्रकोष्ठों में सीधा प्रयोग किया जाय तो सुखाव-प्रकोष्ठ के लौहभागों पर शीघ्र ही मोर्चा लग जाता है तथा सूखनेवाले पात्रों पर भी प्रायः छादनी आ जाती है। अतः भट्ठी गैसों को नलों द्वारा उस हवा को गरम करने के काम में लाया जाता है, जो सुखाव-प्रकोष्ठ में पात्रों को सुखाती है। इस प्रकार हम गैसों के व्यर्थ ताप का उपयोग भी कर सकते हैं और गैसों के सीधा उपयोग करने के हानिकर प्रभावों से भी छुटकारा पा जाते हैं।

एक मध्यम आकार के श्वेत मृत्पात्र कारखाने में प्रतिदिन ४ से ५ टन मिश्रण-पिण्ड प्रयोग किया जाता है। इतने मिश्रण-पिण्ड से निम्नलिखित प्रकार की वस्तुओं में से किसी एक प्रकार की जितनी वस्तुएँ बनेगी, उनकी सन्निकट संख्या दी जाती है।

(१) ६ इंच ऊँचे विद्युत्-रोधक	५,०००
(२) प्याला-प्याली	१२,००० जोड़े
(३) अन्य वस्तुएँ, जैसे चायपात्र, दूधपात्र आदि	१०,०००
(४) स्वास्थ्य-सम्बन्धी मृत्पात्र—	
(क) मलपात्र	२५०
(ख) हाथ धोने के छोटे जलाधार	२००
(ग) भारतीय तसले	५५०

यदि ये वस्तुएँ लचीले पिण्ड से बनायी जायँ, तो उनमें २०-२२ प्रतिशत पानी रहता है, जो पात्र पकाने के लिए भट्ठी में भेजने से पूर्व सुखाने के प्रकोष्ठ में ही सुखाना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में १०,००० पौंड वस्तुओं से २,००० पौंड पानी वाष्पीकृत करना होगा। इसके अतिरिक्त वे साँचे होते हैं, जिनमें सुखाव-समय तक पात्र रखे रहते हैं। आधुनिक सुरग भट्ठियों में पात्र सुखाने में प्रयुक्त होनेवाली ठेलागाडियाँ लौह तथा ईटों से बनी होती हैं। ये सब वस्तुएँ भी सुखाव-प्रकोष्ठ में गरम होती हैं और ताप लेती हैं।

एक सुरग पकाव-प्रकोष्ठ में ५ टन वस्तुओं को सुखाने के लिए आवश्यक ताप-इकाइयों का अनुमान करने के लिए हमें निम्नलिखित आँकड़ों पर विचार करना होगा—

वस्तुओं का सम्पूर्ण भार	१०,००० पौंड
२०% पानी होने पर वस्तुओं में पानी की मात्रा	२,००० ,,
ठेलागाडियों के लौह भाग	१०,००० ,,
ठेलागाडियों के ईटवाले भाग	५,००० ,,
मिट्टी और ईटों का आपेक्षिक ताप	० २
लौह का आपेक्षिक ताप	० १२
जलवाष्प का गुप्त ताप	५३६ कैलरी या २१२३ ब्रि० ऊ० मा०
वातावरण का तापक्रम	७०° F
सुखाव सुरग प्रकोष्ठ का तापक्रम	१२०° F

सुखाने में तापव्यय

$$(१) \text{ मृत्पात्रों को गरम करने के लिए आवश्यक ताप} = १०,००० \times ०.२ \times (१२० - ७०) = १०,००० \text{ ब्रि० ऊ० मा०}$$

$$(२) \text{ पानी के वाष्पीकरण के लिए आवश्यक ताप} = (२००० \times ५०) + (२१२३ \times २०००) = ४३,४६,००० \text{ ब्रि० ऊ० मा०}$$

$$(३) \text{ गाड़ियों के लौह भागों को गरम करने के लिए आवश्यक ताप} = १०,००० \times १२ \times ५० = ६०,००० \text{ ब्रि० ऊ० मा०}$$

$$(४) \text{ गाड़ियों के ईट-भागों को गरम करने के लिए आवश्यक ताप} = ५००० \times ०.२ \times ५० = ५०,००० \text{ ब्रि० ऊ० मा०}$$

$$\text{योग} \quad \underline{\underline{४५,५६,००० \text{ ब्रि० ऊ० मा०}}}$$

व्यर्थ गैसों से प्राप्य ताप

५ टन मृद्-वस्तुएँ पकाने में पकाव भट्ठियों की गैसों से प्राप्त उस ताप की गणना, जो मृत्पात्र सुखाने के काम आ सकता है, निम्नलिखित बातों के आधार पर की जा सकती है।

पकाव तापक्रम के अनुसार एक टन मृत्पात्रों को पकाने में १५ से २५ टन कोयले की आवश्यकता पड़ती है। एक टन मृत्पात्र पकाने में कोयले का औसत व्यय २ टन मान लेने पर ५ टन मृद्-वस्तुओं को पकाने में १० टन कोयले की आवश्यकता होगी। भारतीय कोयले का औसत ऊष्मीय मान १२६०० ब्रि० ऊ० मा० या ७०० कैलरी मान लेने पर हमें ईंधन से $२२४० \times १० \times १२६००$ ब्रि० ऊ० मा० ताप प्राप्त होगा। ताप की इस मात्रा का केवल २७ प्रतिशत मृद्-उद्योग भट्ठी की गैसों के साथ भट्ठी के बाहर चला जाता है। अतः सुखाने के लिए प्राप्य ताप की मात्रा—

$$= \frac{२२४० \times १० \times १२६०० \times २७}{१००} \text{ या } ७६२०४८०० \text{ ब्रि० ऊ० मा०}$$

इस प्रकार हम देखते हैं कि पात्रों के सुखाने के लिए आवश्यक ताप का लगभग १७ गुना ताप भट्ठी गैसों के व्यर्थ ताप से प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु इस प्राप्य

ताप का अधिकांश भाग चिमनी द्वारा बाहर जाना चाहिए, जिससे भट्ठी के अन्दर गैसों के निरन्तर बहाव के लिए आवश्यक खिचाव उत्पन्न हो सके।

चिमनी के लिए आवश्यक ताप

जो ताप चिमनी द्वारा बहना चाहिए, उसकी गणना निम्न प्रकार से की जा सकती है—

प्रत्येक टन कोयले के पूर्ण दहन के लिए लगभग ९२ टन हवा की आवश्यकता होती है। परन्तु वास्तविक व्यवहार में २५ से ३० प्रतिशत और अधिक हवा भेजी जानी चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक टन कोयला जलने पर लगभग १२५ टन गैसे उत्पन्न करेगा। परिणाम-स्वरूप १० टन कोयला १२५ टन दहन-जनित गैसे उत्पन्न करेगा। चिमनी की गैसों का औसत तापक्रम और औसत आपेक्षिक ताप क्रमशः ३००° F और ०.२५ मान लेने पर चिमनी से बाहर जानेवाले ताप की मात्रा निम्न-लिखित होगी—

$$\begin{aligned} \text{चिमनी से बाहर गया ताप} &= 125 \times 2240 \times 0.25 \times 300 \text{ ब्रि० ऊ० मा०} \\ &= 2,10,00,000 \text{ ब्रि० ऊ० मा०} \end{aligned}$$

इस गणना से हमें पता चलता है कि मृत्पात्र भट्ठी से बाहर जानेवाले ताप का लगभग एक चौथाई भाग भट्ठी के अन्दर चिमनी द्वारा आवश्यक खिचाव उत्पन्न करने में काम आता है। परन्तु यदि भट्ठी में तेल-ईंधन का प्रयोग किया जाता है और परिणाम-स्वरूप खिचाव दबाव से उत्पन्न किया जाता है, तो ताप की इस मात्रा की भी आवश्यकता नहीं होती। अतः यदि मृद्-उद्योग-भट्ठियों की दहन-जनित गैसों के व्यर्थ ताप का ठीक प्रकार से उपयोग किया जाय, तो यह ताप, पात्रों के सुखाने के लिए आवश्यक ताप से कहीं अधिक होता है। सभी भारतीय मृद्-उद्योग कारखानों के प्रबन्धकों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

वास्तव में इस ताप की कुछ मात्रा सुखाव प्रकोष्ठ, गैस नालियों तथा चिमनी की दीवारों द्वारा अवशोषित हो जाती है और इनसे विकिरण द्वारा व्यर्थ चली जाती है। परन्तु यदि ये दीवारें उचित ताप-पृथक्करण ईंटों से बनायीं जायँ, तो इस विकिरण ताप-हानि को काफी कम किया जा सकता है। चूँकि सुखाव प्रकोष्ठ की दीवारें १५०° F से अधिक तथा चिमनी की दीवारें ३००° F से अधिक गरम नहीं होती, अतः विशेष सरन्ध्र साधारण मिट्टी की ईंटों से ही ताप-पृथक्करण का काम चल जायगा। ये ईंटें अग्नि-ईंटों की अपेक्षा सस्ती भी पड़ती हैं।

चतुर्दश अध्याय

उद्योग-परिकल्पना

उद्योगशाला की परिकल्पनाएं उस व्यक्ति से करायी जानी चाहिए जिसे निर्माण-सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान तथा अनुभव हो और स्थानीय दशा—जैसे पदार्थों की उपलब्धि, श्रमिकों का ठीक प्रकार से मिलना, यातायात के साधन और बाजार की सुविधा—के विषय में आवश्यक ज्ञान हो। विशेषतः भारत में पूँजीपतियों की यह प्रवृत्ति है कि यदि वे देखते हैं कि एक उद्योग किसी विशेष क्षेत्र में उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन कर रहा है तो वे उसी क्षेत्र में, बाजार के विषय में बिना सूक्ष्म निरीक्षण किये ही और अधिक उद्योगशालाएँ स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं और निर्माणाधिक्य के कारण इसका अवश्यम्भावी परिणाम अनुचित प्रतियोगिता होता है। किन्हीं दशाओं में यह पाया गया है कि उद्योगशालाएँ (कारखाने), श्रमिक-सुविधा तथा सामग्री की उपलब्धि के विषय में विचार किये बिना ही स्थापित की गयी हैं। इन उद्योगशालाओं (कारखानों) को शीघ्र ही अथवा कुछ समय पश्चात् या तो सामग्री-सम्बन्धी या मँहगे बाहरी श्रमिकों की प्राप्ति के विषय में अवश्य ही कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। एक नवनिर्मित उद्योगशाला (कारखाने) के लिए ये दोनों बातें अपेक्षित हैं।

अमेरिका और इंग्लैण्ड—जैसे देशों में, जहाँ श्रमिक बहुत मँहगे मिलते हैं, आधुनिक श्रमिक-व्यय कम करने के उपाय स्वतन्त्रता से उपयोग में लाये जाते हैं। परन्तु भारत में श्रमिक अपेक्षाकृत सस्ते होने के कारण उत्पादन की आर्थिक दशा को ध्यान में रखते हुए ये अधिक व्ययवाले उपाय टाले जा सकते हैं। जिस समय मिट्टी के पात्रों की नयी उद्योगशाला की परिकल्पना की जाती है तो वह मशीनों का चुनाव, स्थानीय श्रमिकों की दशा और उनकी योग्यता तथा उत्पादन की सख्या पर आधारित होना चाहिए, अन्यथा कुछ मशीनें अच्छे चालकों के अभाव में पूर्ण या आंशिक रूप से बेकार रहेगी।

आवश्यकता के समय के लिए मशीनों की क्षमता (Capacity) अधिक

होनी चाहिए, चाहे वह अधिक समय देकर की जाय या मशीन बढाकर, परन्तु उनका वास्तविक उत्पादन सुखानेवाले भाग और भट्ठी की क्षमता के अनुसार हो। मिट्टी के कारखाने में भट्ठीवाला भाग सबसे कीमती है, इसलिए कम व्यय और ठीक काम करने के लिए कारखाने में जितनी भट्ठियों की उचित आवश्यकता हो उससे अधिक नहीं बनानी चाहिए तथा दूसरी मशीनों का सतुलन भट्ठी की क्षमता के साथ होना चाहिए। कीमती भट्ठी को बन्द रखने की अपेक्षा एक मशीन को पूर्णतया या आंशिक रूप से कुछ समय के लिए बन्द रखना अच्छा है।

विभिन्न प्रकार की भट्ठियों में, जैसे ऊर्ध्वगति (Up-draught), निम्नगति (Down-draught), अविराम सुरगभट्ठी (Cartunnel) में विभिन्न प्रकार की स्थितियाँ उपस्थित होती हैं। एक सुरग भट्ठी (Cartunnel) में लगातार रात व दिन तथा छुट्टियों के समय भी, जब उद्योगशाला उत्पादन न कर रही हो तब भी, बर्तन ईंटे इत्यादि पकाने की सामग्री पहुँचती रहनी चाहिए। ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विशेष गोदामों का प्रबन्ध होना चाहिए और जो उद्योगशाला इस प्रकार की भट्ठियों का प्रयोग करती है उसे अपनी मशीनें और गोदामों की जगह इस प्रकार बनानी चाहिए जिससे भट्ठियों की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें।

यह बुद्धिमत्ता की बात नहीं है कि एक ही निर्माणशाला में अनेक प्रकार के मिट्टी के बर्तन बनाये जायँ, जिनके निर्माण में केवल सुखाने में ही नहीं, किन्तु प्रारम्भिक दशाओं में भी विभिन्न प्रकार के उपाय काम में लाये जाते हैं। इस प्रकार की मिली-जुली योजना से न तो वस्तुओं की सख्या में ही वृद्धि होती है और न उनके गुणों में ही। अतएव यह अच्छा है कि उन वस्तुओं के उत्पादन के विषय में बाजार की स्थिति के अनुसार वैसी ही वस्तुओं के निर्माण के सम्बन्ध में विचार कर लिया जाय।

निम्न पृष्ठों में विभिन्न प्रकार के बर्तनों के निर्माण के सम्बन्ध में परिकल्पनाएँ करने के लिए कुछ निर्देश किये गये हैं। परन्तु ये निर्देश अन्तिम नहीं कहे जा सकते। मिट्टी के काम के लिए परिकल्पना में अनेक प्रकार की समस्याएँ, जैसे कि गृह, मशीन, विद्युत् और रासायनिक सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान निहित है। इसके अतिरिक्त खनिज तथा ईंधन के विषय में विशिष्ट ज्ञान भी रहना चाहिए।

१—अग्नि-ईंट के उद्योग की परिकल्पना

इसकी क्षमता दस हजार ईंटे प्रतिदिन होगी।

यदि चार टन सूखा सामान एक हजार ईंटों के लिए हो तो हमें चालीस टन सूखे सामान की प्रतिदिन आवश्यकता होगी ।

अग्निमिट्टी के बड़े ढेलों को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ दिया जाता है और उसमें से सब लौह ग्रन्थियों को छोट दिया जाता है । इसके लिए बड़ी मशीनों में काम लेने की अपेक्षा मानवीय श्रम ही ठीक समझा जाता है ।

तुड़ाई व छँटाई के उपरान्त अग्नि-मिट्टी (Fire clay) को भली भाँति सुखा लेना चाहिए, क्योंकि गीली मिट्टी बहुत बारीक नहीं पीसी जा सकती । दूसरा कदम मिट्टी को पैन मिल (Pan mill) में, विशेष कर ऊपर में घूमनेवाले तसले के साथ, बारीक पीसना है । घूमनेवाले तसलों की मिले स्थिर तसलों की मिलों की अपेक्षा अच्छा परिणाम देती है । तसले में छेदोवाली चलनी होनी चाहिए जिसके छेद २ मिलीमीटर या १।१० इंच के आकार के हों । इसी प्रकार की मिल में छर्री (Grog) को पीसने के लिए घूमनेवाले तसलों के साथ चलनी होनी चाहिए जिसके छेद ३ मिली-मीटर या १।८ इंच के आकार के हों । छर्री (Grog) के आकार नियन्त्रित रखने के लिए पीसी हुई छर्री को काम में लाने से पूर्व छानकर श्रेणीबद्ध कर लेना आवश्यक है ।

पीसी हुई मिट्टी और छर्री को उनके ठीक अनुपात में मिलाकर पानी सोखने के गड्ढों में छोड़ दिया जाता है जहाँ पर कि उसमें उचित मात्रा में पानी डाला जाता है । शोषण-कार्य २४ घंटे तक चलता है । इस काम के लिए दो गड्ढे होने चाहिए जिसमें कि जब एक गड्ढे में मिट्टी, पानी सोखने के लिए पड़ी है, तो दूसरे की मिट्टी काम आ सके । हर एक टन मिट्टी के ढेर के लिए प्रायः दो घन गज गड्ढे के स्थान की आवश्यकता है, इसलिए उस उद्योगशाला के लिए जिसमें प्रतिदिन ४० टन मिट्टी के ढेर की खपत की क्षमता हो, दो गड्ढे होने चाहिए, जिनमें हर गड्ढा अस्सी घन गज की क्षमतावाला हो ।

अच्छी तरह से पानी सोखी हुई मिट्टी और छर्री (Grog) के इस मिश्रण को क्षैतिज (Horizontal) मिश्रण-यन्त्र (Mixer) में भेजा जाता है जिसमें पानी, मिट्टी और छर्री भली भाँति मिश्रित हो जायें । इस मिश्रण-यन्त्र में एक लम्बी नौद (Trough) के भीतर दो समानान्तर मोटी धुरियों के साथ मजबूत पंखे (Blades) लगे रहते हैं जो धुरी के घूमते समय मिट्टी के ढेर को काटते और मिलते हैं । विभिन्न पदार्थों का समान रूप में मिश्रित होना अति आवश्यक है, जिससे ईंटों में बनाते, सुखाते और पकाते समय किसी प्रकार का दोष न रह जाय । मिश्रण-

यन्त्र को इस प्रकार रखा जाय कि मिश्रित की हुई मिट्टी स्वत ही उसमे से पग मिल (Pug Mill) मे गिर पड़े, जिससे कि मिश्रण ढोने के लिए मानवीय श्रम की आवश्यकता न हो।

पग मिल (Pug mill) का काम उस मिट्टी को दबाकर एक पिण्ड मे करके ईटे बनाने के लिए तैयार कर देना है।

भारत मे हाथ से दबाकर ईटे बनायी जाती है। एक अनुभवी ईट बनानेवाला एक बच्चे की सहायता से प्रतिदिन ८०० से १००० तक ईटे बना सकता है। ये ईटे जब आधी सूख जाती है तो इनको ठीक आकार देने के लिए लोहे के साँचे मे दुबारा दबाया जाता है। आधुनिक काल मे हाथ से दबाकर ईट बनाने की प्रथा को बदलकर पग मिल (Pug mill) से बाहर आनेवाले मिट्टी के पिण्ड को तार से काटकर उन्हें बना लिया जाता है। एक आदमी १०० से १२० तक ईटे एक हाथ-गाड़ी से ले जा सकता है।

मशीने

अग्नि-मिट्टी को पीसने के लिए—

१ एक पैन रोलर (Pan Roller) मशीन, घूमनेवाले तसले तथा चलनी युक्त। चलनी के छेद २ मि मी या १।१० इंच के आकार के होने चाहिए। क्षमता ३-४ टन प्रति घटा। शक्ति ९-१० अश्वशक्ति (हार्स पावर) हो।

२ छरीं को पीसने के लिए इसी प्रकार की एक दूसरी मशीन जिसकी चलनी के छेद ३ मि मी या १।८ इंच के आकार के हो। क्षमता—३-४ टन प्र घ, शक्ति ९-१० हा० पा०।

३ धुरी तथा घिरनियो से युक्त एक २० हा० पा० की धीरे चलनेवाली मोटर, जो कि उपर्युक्त दो मशीनो को चलाने के उपयुक्त हो।

४-५ पानी, मिट्टी और छरीं के मिश्रण के लिए धुरीयुक्त दो समतल नाँदे। प्रत्येक की क्षमता २-३ टन प्र घ, शक्ति प्रत्येक की ४-५ हा० पा०।

६-७ तार काटनेवाली मेज के साथ जुड़ी हुई दो समतल पग मिल (Pug mill), प्रत्येक की क्षमता—प्रत्येक के लिए ३ टन प्र घ, प्रत्येक के लिए आवश्यक शक्ति १० हा० पा०।

८ धुरी और घिरनियो आदि में युक्त उपर्युक्त चार मशीनों को चलाने के लिए एक ३० हा० पा० की धीरे चलनेवाली मोटर ।

९ साँचो, औजारो आदि के सहित ईंटों को दुबारा दवाने के लिए हाथ में दवाने-वाले १४ प्रेस ।

उपर्युक्त मशीनों के जतिरिक्त कुछ सहायक सामग्री भी आवश्यक है, जैसे—लकड़ी के तख्ते, सुखाने के ताक, लकड़ी के साचे काटने के औजार और हाथ के ठेले आदि ।

भट्ठियाँ—एक घन गज में ३८४ ईंटे आती हैं । इसलिए प्रति दिन १०००० ईंटों के उत्पादन के लिए २६ घन गज स्थान की आवश्यकता होगी । यदि महीने में २५ दिन काम हो तो ६५० घन गज स्थान की आवश्यकता होगी । भट्ठी में ईंटों को खड़ा करके दूसरी ईंटों से ५।८ उच्च पृथक् करके रखा जाता है । इसलिए प्रत्येक तीन ईंटों के बीच दो खाली स्थान होते हैं जिनकी कुल दूरी ५।४ इंच होती है । यह स्थान भट्ठी की गरम गैसों के बहने के लिए खाली छोड़ा जाता है । यह खाली स्थान जिनने स्थान में ईंटे आती हैं उसका १४ प्रतिशत होता है । ६ प्रतिशत स्थान टन (Crown) के नीचे और चूल्हे (Bags) के समीप छोड़ा जाता है । अतः ईंटों को ठीक प्रकार से रखने और पकाने के लिए २०% स्थान अधिक लगता है । यह सब मिलाकर भट्ठे के स्थान का ७८० घन गज के लगभग होता है ।

अग्नि ईंटों को पकाने में एक भट्ठी में महीने में दो बार काम लिया जा सकता है । अतः एक भट्ठी के लिए ३९० घन गज स्थान की आवश्यकता है । यदि भट्ठे चार गज ऊँचे बनाये जायँ तो भूमि की सतह का क्षेत्रफल ९.७५ वर्ग गज होता है जो २३.४ फुट व्यास के दो भट्ठों में या १९.२ फुट व्यास के तीन भट्ठों में विभाजित किया जा सकता है । एक आदमी भट्ठे में प्रति दिन ८००० से लेकर १०००० ईंटे तक लगा सकता है ।

२—कड़े मिट्टी-पात्र उद्योगशाला की परिकल्पना

इसकी क्षमता प्रति दिन पाँच टन मिश्रण की होगी ।

इस निर्माणशाला में निम्नलिखित वस्तुएँ बनेगी—

घरेलू कार्य के लिए जार (Jar) और कार्टवाय (Carboys) एवं रासायनिक कामों में अम्ल रखने के बर्तन तथा नमक-प्रलेप से निर्मित विभिन्न वस्तुएँ । ढलाई घोला निर्माण शाला में निम्नलिखित विभाग होंगे—

क. ढलाई घोला विभाग (Slip House)

ख. गठनविभाग (Making line)

ग प्लास्टर विभाग (Plaster House)

घ भट्ठी विभाग

ङ. भण्डार विभाग (Store House)

क—ढलाई घोला विभाग—इस विभाग में फेल्सपार तथा स्फटिक को बारीक पीसा जायगा और फिर पिसी हुई अग्नि-मिट्टी (Fire clay) के साथ पूर्णतया मिश्रित कर दिया जायगा। ढलाई घोला बनाने के लिए मिश्रण यन्त्र में विद्युद्विश्लेष्य (Electrolyte) भी मिला सकते हैं।

इस विभाग के लिए मशीने तथा उपकरण—

१—फेल्सपार (Felspar) तथा स्फटिक (Quartz) को २" के छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ने के लिए एक जबड़ा-चूर्णक यंत्र (Jaw crusher), क्षमता—१-२ टन प्रति घंटा। आवश्यक शक्ति १० हा० पा०।

२-४ तीन बड़ी बाल मिल (Ball Mill)—प्रत्येक एक टन सामान पीसने की क्षमतावाली। शक्ति प्रत्येक की ५-६ हा० पा०।

५. एक शक्तिशाली मिश्रण-यन्त्र (Screw Blunger), आकार ६"×५"। शक्ति ४ हार्स पावर।

६ एक १८ इंच व्यास की कम्पमान चलनी, आधी हार्स पावर मोटर से युक्त।

७ ढलाई घोला रखने के लिए एक कुण्ड (Storage Tank) जिसमें लकड़ी का एक मिश्रक लगा हो। शक्ति ३-४ हा० पा०।

८. अग्नि-मिट्टी (Fire Clay) तथा छरीं (Grog) को पीसने के लिए घूमने-वाले आधार के साथ एक पैन रोलर मिल, जिसमें १।१० इंच या २ मि मी के आकार के छेदवाली चलनी हो। आवश्यक शक्ति २-३ हार्सपावर।

९ उपर्युक्त मशीनों को चलाने के लिए एक धीरे चलनेवाली ३० हा० पा० की मोटर।

नोट—पहली जबड़ा-चूर्णक (Jaw Crusher) मशीन के बिना भी काम चल सकता है। अन्तिम पैन रोलर मिल (Pan Roller mill) का दोनों कार्यों में उपयोग किया जा सकता है।

यदि लचीले पिण्ड में गठन आवश्यक हो तो एक जलनिष्कासन यन्त्र तथा एक पग-मिल (Pug mill) की भी आवश्यकता होगी।

ख गठन विभाग—जार और कार्बवाय (Carboys) विशेष कर ढलाई द्वारा बनेंगे। छोटी-छोटी वस्तुएँ या तो कुम्हार के चाक द्वारा या जाली विधि द्वारा बनेंगी।

प्रत्येक बर्तन के लिए यदि पाँच या छ पौंड औसतन गीला सामान ले तो लगभग दो हजार वस्तुएँ प्रतिदिन पाँच टन सामान से बनेंगी। कड़ी मिट्टी की मोटी वस्तुओं के ढालने में यह आशा की जा सकती है कि प्रतिदिन एक साँचे से २-३ बार ढलाई हो सकेगी। इस प्रकार साँचे के विभाग में केवल ढलाई के लिए एक हजार प्लास्टर के साँचे आवश्यक होंगे। इसके अतिरिक्त ढालने की मेज, सुखाने के ताक, लकड़ी के तख्ते और छँटाई के लिए औजार आदि भी होने चाहिए। वस्तुओं की ढलाई के पश्चात् या तो खुले ताक में सुखाना होगा या फिर तापित घर सुखाने के लिए चाहिए। तब उनकी छँटाई एवं परिष्करण अलग-अलग कारीगरों द्वारा किया जाना चाहिए। इसके बाद वे पकने के लिए भेजे दिये जाते हैं।

ग प्लास्टर विभाग—इस विभाग में जिप्सम (Gypsum) को तोड़कर प्लास्टर बनाने के लिए उसकी पिमाई और छनाई की जाती है। यह चूर्ण लोहे की कड़ाही में ताप पर पकाकर प्लास्टर बना लिया जाता है और उसी प्लास्टर से आवश्यक साँचे बना लिये जाते हैं।

मशीनें तथा दूसरी सहायक सामग्रियाँ—

१—जिप्सम (Gypsum) को तोड़ने और पीसने के लिए एक पैन मिल, ३ हा० पा०।

२—जिप्सम को छानने के लिए एक बेलनाकार लकड़ी की चलनी, शक्ति २ हा. पा।

३—उपर्युक्त मशीनों के लिए एक पाँच हार्सपावर की मोटर।

४—प्लास्टर को पकाने के लिए एक कड़ाही।

५—तीन घूमनेवाले चाक (Rotating discs) जो प्लास्टर के साँचे बनाने के लिए मेज पर लगे हों।

प्लास्टर से साँचे बनाने के लिए इसके अतिरिक्त दूसरे औजार और सामग्रियाँ भी होनी चाहिए।

(घ) भट्ठी विभाग—जार तथा कारब्बाय आदि पर नमक-प्रलेप लगाया जाता है। इसके लिए सैगर (Sagger) की कोई आवश्यकता नहीं होती। भट्ठी में पकाया जानेवाला बर्तन अग्निमिट्टी और छरी से निर्मित विशेष प्रकार की टेक (Setters) पर रखा जाता है। इस कारण पहले ही यह कहना कठिन है कि भट्ठी में कितने स्थान की आवश्यकता होगी। परन्तु अनुभव से यह कहा जा सकता है कि १४ फुट व्यास की ४ भट्ठियाँ पर्याप्त हैं।

३—पोरसिलेन उद्योगशाला की परिकल्पना

यह प्रतिदिन ४ टन माल का उत्पादन करेगी।

साधनों की योजना प्रतिदिन के निम्नलिखित उत्पादन पर निर्भर करती है—

१ या तो ३०० फर्मी (Clcats), कट आउट आदि के साथ लगभग ३५०० विद्युत्प्ररोधक (Insulator), या—

२ ८०० चाय के बर्तन (Teapots), और चीनी के बर्तन (Sugar pots) के साथ लगभग ५००० कप और तश्तरियाँ, या—

३ आधे-आधे दोनों।

इसके लिए निम्नलिखित विभाग होंगे, जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे दिया गया है—

(क) ढलाई घोला विभाग, (ख) गठन विभाग, (ग) सैगर विभाग, (घ) प्लास्टर विभाग, (ङ) भट्ठी विभाग, (च) भण्डार विभाग तथा कार्यालय।

इसके अतिरिक्त साँचे बनाने का स्थान, छोटने का स्थान तथा परिष्कृत सामान को एकत्र रखने का स्थान होना चाहिए।

विभागों का प्रबन्ध इस प्रकार होना चाहिए कि वे कच्चा माल रखने के स्थान से लेकर ढलाई घोला विभाग तक लगातार बने हों और तब गठन विभाग तक और वहाँ से भट्ठी तक। प्लास्टर विभाग ढलाई घोला विभाग से दूर रहना चाहिए। सैगर विभाग भट्ठी के पास रह सकता है। ढलाई घोला विभाग तथा भट्ठी के अतिरिक्त दूसरे विभाग एक शिफ्ट में कार्य करेंगे। ढलाई घोला विभाग में पिसाई करनेवाली बालमिल २२ घंटे कार्य करेगी। २ घंटे के लिए बिजली की मोटरे बन्द रहेगी।

ढलाई घोला विभाग का कुटाई करनेवाला भाग एक पाली में कार्य करेगा और शेष दो पाली में। जब भट्ठी जल रही हो तो भट्ठी विभाग २४ घंटे कार्य करेगा।

(क) ढलाई घोला विभाग—इस विभाग को खानी (Bins) से पत्थर के टुकड़े भेजे जायेंगे और यह उनका बारीक चूर्ण बनाकर मिश्रण-पिण्ड, चिकन-प्रलेप (Glaze) तथा रंग तैयार करेगा। लगभग चार टन उत्पादन प्रतिदिन होगा जिसके लिए निम्नलिखित यंत्र आवश्यक होंगे—

१—एक जबड़ा चूर्णक (Jaw Crusher) जिसका जा (Jaw) या जबड़ा ६" × १२" होगा। क्षमता—३।४ इंच आकार का १ टन सामान प्रति घंटा। शक्ति—९-१० हा० पा०।

२—पैन मिल जिसका बेलन और आधार ग्रेनाइट (Granite) का बना हो और जिसके बेलन का आकार २४" × ९" और आधार का आकार ४ फुट × १२ इंच होगा।

पिसाई क्षमता—२० मैश आकार का १।३ टन सामान प्रति घंटा। शक्ति—५ हा० पा०।

ये दोनों मशीनें एक ही कमरे (Shed) में १८ हा० पा० की मोटर के साथ लगायी जानी चाहिए और कमरे का आकार १०' × २०' होना चाहिए।

३—अन्दर साइलेक्स (Silcx) पत्थरों के अस्तरवाली पाच बालमिल जिनका आकार ४।। × ४ फुट होना चाहिए।

क्षमता—आधा टन पत्थर का चूर्ण। शक्ति प्रत्येक की ६ हा० पा०।

इन सिलेण्डरों में से चार तो मिश्रण-पिण्ड को बनायेंगे और एक चिकन-प्रलेप को पीसेगा। मिश्रण-पिण्ड के लिए ५० प्रतिशत पत्थर चूर्ण के आधार पर, ये चार सिलेण्डर चार टन सामान प्रतिदिन तैयार करेंगे। पाँचवाँ १।२ टन चिकन-प्रलेप लगभग ६० घंटे में तैयार करेगा, क्योंकि ग्लेज (Glaze) के लिए अधिक पिसाई की आवश्यकता है।

४ आवश्यकतानुसार रंग व पिसाई करने के लिए घूमनेवाले फ्रेम के साथ भांडयंत्र (Pot Mill) की आवश्यकता होगी। प्रत्येक भांड की क्षमता लगभग ४ सेर होगी और शक्ति २ हा० पा० होगी। एक फ्रेम में कई भांड होते हैं।

५ एक मिश्रण-यंत्र, आधार का आकार ७ फुट, व्यास ५ फुट, ऊँचाई और पखे का व्यास २०'', जो एक टन मिश्रण-पिण्ड को एक बार मिलायेगा। शक्ति ५ हा० पा०।

६ एक १८'' के व्यास की कम्पनशील चलनी जो मिश्रण-यंत्र से उस मिश्रित सामान को छानने के लिए होगी। शक्ति १।२ हा० पा०।

७ एक बिजली का चुम्बक, मिश्रण से लोहे को दूर करने के लिए, जो ११०-२२० वोल्ट डी सी में कार्य कर सके।

८ मिट्टी के घोले को रखने के लिए मिश्रक के साथ एक कुण्ड की आवश्यकता होगी, जिसका आकार १०' × ६' × ६' होगा। शक्ति ५ हा० पा०।

९ घोला से जल-निष्कासन के लिए एक दबाव पंप, जिसकी क्षमता ३५० गैलन प्रति घंटा और शक्ति ४ हा० पा० हो।

१० ४० थालियों से युक्त (Chamber) एक जल-निष्कासन प्रेस, जिसमें हर थाली का व्यास ३२'' होना चाहिए।

क्षमता ३।४ टन प्रेस किया हुआ सामान १ $\frac{१}{२}$ घंटे में।

११ या एक वायु-निष्कासक समेत पग-यंत्र, जिसकी क्षमता एक टन प्रति घंटा और शक्ति ५ हा० पा० हो।

या एक निष्कामित प्रेस सहित एक पग-यंत्र, जिसकी शक्ति ५ हा० पा० हो।

१२. एक लम्बी धुरी तथा पट्टा सहित २० हा० पा० की मोटर जो उपर्युक्त मशीनों को चलाने के लिए लगेगी।

(ख) गठन विभाग—इन्सुलेटर, कप, प्लेटे और दूसरी गोल आकृति की वस्तुएँ जिम्गर और जाली द्वारा बनायी जायेंगी। फन्नी, कट-आउट, सीलिंग रोज (Ceiling Rose) इत्यादि को हाथ के प्रेस द्वारा और चाय के बर्तन, दूध के बर्तन और दूसरी विशेष आकृति की वस्तुओं को ढलाई द्वारा बनाया जायगा।

गठन विभाग के लिए निम्नलिखित वस्तुओं की आवश्यकता होगी—

(१) १२ जिम्गर और जाली, शक्ति १।२ हा० पा० प्रत्येक की।

(२) १० कुम्हार के चाक, शक्ति १।२ हा० पा० प्रत्येक की।

(३) ८ हस्त-चालित पेच काटने के यंत्र।

(४) एक सूखे टुकड़ों को चूर्ण करनेवाली मशीन, शक्ति २ हा० पा०।

(५) सूखे चूर्ण को पानी और तेल में मिलाने के लिए एक मिश्रण यन्त्र । इस चूर्ण मिश्रण से फन्नी, कट-आउट आदि वस्तुएँ तैयार होंगी ।

(६) एक १५ हा० पा० की मोटर उपर्युक्त मशीन को चलाने के लिए ।

(७) अलग-अलग टाइज (Dies) के साथ फन्नी और कट आउट आदि को दबाने के लिए एक हस्तचालित दबाव यंत्र ।

(८) साँचे, औजार और काम करने के लिए मेज आदि ।

(ग) सैगर विभाग—तश्तरियाँ तथा अन्य ममान कार्यों के लिए सैगर (Gjggcr and jolley) द्वारा बनाये जायँगे और अन्य कार्यों के लिए सैगर को हाथ से बनाया जायगा । निम्नलिखित मशीनें इस विभाग में आवश्यक होंगी—

(१) अग्निमिट्टी और छरीं को तोड़ने के लिए एक जोड़ा रोलर यंत्र । क्षमता— $\frac{1}{2}$ टन प्रति घंटा, आवश्यक शक्ति ५ हा० पा० ।

(२) अग्निमिट्टी को पानी और छरीं के साथ मिश्रित करने के लिए एक नोंद, क्षमता — $\frac{1}{2}$ टन प्र० घंटा, शक्ति २ हा० पा० ।

(३) सैगर पिण्ड को गूँधने के लिए एक पग मिल (Pug Mill) ।

क्षमता—१ टन प्र० घंटा । शक्ति—५ हा० पा० ।

(४) एक शक्तिशाली जिगर जाली, शक्ति $\frac{1}{2}$ हा० पा० ।

(५) दूसरी सहायक मशीनों के साथ १० हा० पा० की एक मोटर ।

(घ) प्लास्टर विभाग —इस विभाग में जिप्सम को पैन मिल द्वारा पीसा जायगा, जो कि बाद में ९० नम्बर की चलनी द्वारा छाना जायगा और लोहे की कड़ाही में मद आँच पर पकाकर प्लास्टर बनाया जायगा । इस प्लास्टर से सब प्रकार के साँचे बनाये जायँगे ।

निम्नलिखित मशीनें और साधन आवश्यक हैं—

१. एक पैन मिल जिसमें या तो लोहे के या पत्थर के बेलन हों । आकार २४" × ९" और आधार ४" × १२", क्षमता—५ मन पीसा हुआ जिप्सम प्रति घंटा, शक्ति ५ हा० पा० ।

२. एक छोटी भट्ठी जो कि पिसे हुए जिप्सम को पकाने के लिए काम आयेगी ।

३ ५ हा० पा० की बिजली की एक मोटर ।

४ एक लोहे की कड़ाही या तसला जो कि जिप्सम के चूर्ण को पकाने के काम में आयेगा।

५. चलनी तथा दूसरी सहायक सामग्रियाँ।

(ड) भट्ठी विभाग—एक उद्योगशाला में भिन्न-भिन्न प्रकार के बर्तन पकाने के लिए कितने स्थान की आवश्यकता होगी, इसका ठीक अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। परन्तु एक प्रकार के बर्तनों के आधार पर गणना करने से प्रायः स्थान का ठीक अनुमान किया जा सकता है। अतः इन्सुलेटर के उत्पादन के आधार पर हम गणना करेंगे।

एक उद्योगशाला नित्य ३५०० इन्सुलेटरो का निर्माण करती है, और उतनी ही छोटी वस्तुओं का, जो कि सामान्यतः बड़े इन्सुलेटर के बीच के रिक्त स्थान में रखी जाती हैं। यदि महीने में पच्चीस दिन काम हो तो प्रत्येक मास ३५०० × २५ इन्सुलेटरो का निर्माण होगा।

सामान्यतः नौ इन्सुलेटर एक सैगर में रखे जाते हैं—(१३" × १३" × ८") बाह्याकार। अतः प्रत्येक मास ९७२३ सैगर के स्थान की आवश्यकता होगी।

एक जोड़ा निम्नगति (Down draught) भट्ठी से एक सप्ताह में केवल तीन बार पोरसिलेन पकाया जा सकता है। भट्ठी की मरम्मत के लिए कुछ समय छोड़कर प्रत्येक मास में १० बार भट्ठी में पोरसिलेन द्रव्य पकाया जा सकता है। अतः प्रत्येक बार पकाने के लिए ९७२३ सैगर का स्थान होना चाहिए।

मान लीजिए कि एक सैगर का घनफल ८ घनफुट है तो हमें सैगर के स्थान के लिए प्रत्येक भट्ठी में ८ × ९७२३ या ७७७८४ घनफुट स्थान की आवश्यकता होगी। १५ प्रतिशत स्थान गरम गैस के बहाव के लिए छोड़ने पर हर एक भट्ठी में हमें कुल ८९४५२ घनफुट स्थान की आवश्यकता होगी।

पोरसिलेन के बर्तनों को पकाने के लिए उच्चताप भट्ठी को १० फुट से अधिक ऊँचा नहीं होना चाहिए, क्योंकि भट्ठी की ऊँचाई अधिक होने से नीचे का सैगर दबकर नष्ट हो जाता है। अतः भट्ठी की ऊँचाई १० फुट रखने से उसकी सतह का क्षेत्रफल ८९४५२ वर्गफुट होगा।

इसलिए दो जोड़ा भट्ठियाँ, जिनमें प्रत्येक भट्ठी के फर्श का क्षेत्रफल २२३७ वर्गफुट और ऊँचाई १० फुट हो, पर्याप्त होगी। परन्तु जब विभिन्न प्रकार के बर्तनों के लिए

केवल एक कारीगर पीसने, छानने तथा उसे जलाने का काम सफलतापूर्वक कर सके। तीन या चार चतुर कारीगर साँचे आदि बनाने के लिए चाहिए।

(ड) भट्ठी विभाग—तीन सहायको के साथ एक फायरमैन हर पाली में आग की देखभाल के लिए होगा। उतारने तथा चढ़ाने के लिए तीन आदमी और अधिक चाहिए।

नोट—इसके अतिरिक्त एक सामान्य विभाग होना चाहिए, जिसका काम कच्चा माल लाना तथा अनुपयुक्त माल और राख आदि को हटाना होगा।

कच्चा माल

१ चीनी मिट्टी	५५ टन	प्रतिमास
२ फेल्सपार	३० "	"
३ स्फटिक	३० "	"
४ मर्मर	१ "	"
५ अग्निमिट्टी	२५ "	"
६ जिप्सम	३ "	"
७ कोयला	४५ "	"

प्रलेपन के लिए रसायन (Chemicals) तथा रजक, उत्पादन की हुई रंगीन और सजी हुई वस्तुओं पर निर्भर करते हैं।

नोट (Remark)—यह परिकल्पना ५०००० लाइन इन्सुलेटर प्रतिमास उत्पादन के लिए की गयी है। इसके साथ कई हजार छोटे-छोटे विद्युत् के सामान, जैसे स्विच, कट आउट्स (Cut outs), सीलिंग रोज (Ceiling Roses) और विलट्स आदि हैं तथा लगभग इतने ही खोखले बर्तन, जैसे प्याला, तश्तरी, चाय के बर्तन तथा अस्पताल के लिए आवश्यक सामान आदि सम्मिलित हैं। यह सब सामान मशीन से तथा साँचो से ढालकर, दोनों प्रकार से बनाया जाता है।

भविष्य में बढ़ाने के लिए चार या पाँच एकड़ भूमि रेलवे स्टेशन के समीप पर्याप्त और ठीक होगी। स्थान का चुनाव बड़े नगर के पास होना चाहिए जिससे उत्पादन सामग्री के लिए बाजार की सुविधा और उद्योगशाला को चलाने के लिए विद्युत् प्राप्त हो सके।

मशीनों का चुनाव

नये उद्योग के लिए यन्त्र और मशीनों का चुनाव करने में व्यापारिक ज्ञान और अनेक प्रकार की मशीनों के विषय में जानकारी आवश्यक है, जिससे किसी यन्त्र के स्वीकार या अस्वीकार करते समय, जो ढाँचे में अनुपयुक्त और अधिक मूल्यवाला है, विवेक का उपयोग हो सके। अत्यन्त मूल्यवान् मशीन चाहे ढाँचे में ठीक ही हो किसी विशेष कार्य के लिए ठीक नहीं भी हो सकती, जब कि सस्ती मशीन भी कुछ विशेष कार्य के लिए अधिक खर्चवाली हो सकती है। नयी मशीनों का चुनाव करने में पहला कदम—किस प्रकार का मजदूर मिलेगा और स्थानीय बाजार की दशा क्या है, इन बातों का ध्यान रखते हुए तथा औद्योगिक वस्तुओं का कितनी मर्यादा में निर्माण किया जायगा—इस दिशा में ही रखना पड़ता है।

जब स्वतः चालित टाली यन्त्र (Tile press) यूरोपीय देशों में पहली बार बाजार में आये तो मजदूर न मिलने के कारण उनका चलना कठिन हो गया था। आधुनिक स्वतः चालित बनाने की मशीन के चलाने में यदि स्थानीय मजदूरों की दशा का पहले ही अध्ययन न किया जाय तो इसी प्रकार की कठिनाई भारत में भी उपस्थित हो सकती है। किसी प्रकार के स्वतः चालित यन्त्र या मशीन को मँगाने के लिए आर्डर देने से पहले मजदूर-समस्या का अध्ययन आवश्यक है।

उद्योग में किसी विशेष भाग के लिए क्रय की गयी मशीनें दूसरे विभागों की मशीनों के मेल के योग्य होनी चाहिए। उदाहरणार्थ—यदि मिट्टी की वस्तुओं का निर्माण करनेवाले विभाग में पीसनेवाले विभाग से जितनी मिट्टी प्राप्त होती है उससे अधिक की खपत है तो निर्माण विभाग में कुछ मशीनों को खाली रहना पड़ेगा या पीसनेवाले भाग को अधिक काम करना होगा। इन दोनोंही अवस्थाओं में व्यापारिक हानि है, यह ध्यान मट्ठी की क्षमता और कच्चे बर्तनों के निर्माण के बीच बहुत सावधानी से रखना आवश्यक है।

मशीनों के चलाने के लिए शक्ति-संचालन विधि की समस्या पर विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि इसी विषय पर मशीनों का ठीक प्रकार से चलना, उन्हें ठीक रखने का व्यय एवं शक्ति का व्यय निर्भर करता है। प्राचीन पद्धति में संचालन-शक्ति उद्योगशालाओं और मशीनों में धुरी और पट्टों (Shafting belts) के द्वारा केन्द्र से भेजी जाती थी। इसमें घर्षण द्वारा शक्ति की बहुत क्षति होती थी। अच्छा

उपाय एक मोटर या तेल के इंजन से हर विभाग में मशीनों को सामूहिक रूप में चलाने का है। इस पद्धति में लम्बे धुरी पट्टों के कारण जो घर्षण द्वारा शक्ति की क्षति होती थी वह कम हो जाती है। लेकिन सबसे उत्तम उपाय एक-एक मशीन अलग विद्युत् मोटर से चलाने का है जो बिना धुरी पट्टे के कहीं पर भी स्थापित की जा सकती है। यद्यपि इस प्रणाली में केवल एक मोटर के चलाने में अधिक व्यय होता है, लेकिन जब आवश्यकता हो तो एक उद्योगशाला में एक मोटर चलाना बड़ी मितव्ययिता की बात है।

जब धुरी पट्टे आवश्यक हो तो वे सरलता से चलनेवाली बाल बियरिंग (Ball bearing) के ऊपर कुछ अन्तर से रहने चाहिए और हर दो बियरिंग (Bearing) का अन्तर धुरी (Shafting) के व्यास के तीस गुने से अधिक नहीं होना चाहिए। घिरनियों (Pulleys) कीलों के द्वारा धुरी से जुड़ी होनी चाहिए।

पट्टे की अनावश्यक फिसलन रोकने के लिए बड़ी घिरनियाँ (Pulleys) छोटी घिरनियों से व्यास में छ गुने से अधिक नहीं होनी चाहिए, अन्यथा पट्टा छोटी घिरनियों को ठीक से नहीं पकड़ सकेगा।

घिरनियों के लिए पट्टे की निर्माण-वस्तु के चुनाव का ध्यान रखना आवश्यक है। इस देश में चमड़े या ऊँट के बालों का पट्टा प्रचलित है। चमड़े के पट्टों के लिए सतत ध्यान, उनकी सफाई तथा तेल की आवश्यकता होती है। इंग्लैण्ड में मिट्टी की उद्योगशाला में अधिकतर रस्ती के पट्टे काम में आते हैं। जब कि दो घिरनियों के बीच का अन्तर बहुत अधिक या बहुत कम हो तो रस्ती के पट्टे बहुत उपयुक्त होते हैं। अधिक लचीलापन, मजबूती और कम फैलना उन्हें विशेषतया कोनों में चलाने के योग्य बनाता है। और यदि वे सूखी ही रखी जायँ तो उनकी ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

श्रम-नियन्त्रण

औद्योगिक सफलता का आधार उत्पादन है और अच्छे उत्पादन से ही एक उद्योगशाला की प्रसिद्धि होती है। स्थायी तथा बहुत समय तक रहनेवाले व्यापार के लिए एक ही प्रकार का ऊँची श्रेणी का उत्पादन व्यापारिक ससार में नाम पैदा करना है और यह नाम ही व्यापार के स्थायी बनाने का प्रमुख कारण है। उद्योग में अधिक लाभ ही अन्तिम या सबसे अधिक विचारणीय विषय नहीं है। स्थायी व्यापार

स्वेच्छा से काम करनेवाले वृद्धिमान् और मजदूरों के द्वारा बनता है जो कि बहुत महत्वशाली होते हैं, और अन्त में ऐसे ही उद्योग राज्य के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध होते हैं।

उद्योगशाला के तीन आवश्यक अंग हैं—पूँजी, व्यवस्था और श्रमिक। पूँजी व्यापार में यन्त्र आदि और कच्चा माल मशीनों के लिए तथा कार्य का व्यय वहन करने के लिए आवश्यक है। व्यवस्था का सम्बन्ध पूँजी द्वारा यन्त्र खरीदने और उन्हें लगाने के व्यय से तथा उत्पादन के लिए श्रमिकों और व्यापार के संगठन में है।

श्रमिक कच्चे माल से मशीनों के द्वारा परिष्कृत नयी वस्तुओं का निर्माण करता है। व्यापार के सफल और शान्तिपूर्वक चलने के लिए इन तीनों भागों में सहयोग और समझौते की भावना होनी चाहिए।

श्रमिकों और व्यवस्थापकों के सम्झौते में सबसे बड़ी कठिनाई सामाजिक स्तर (Status) के प्रश्न पर है। आधुनिक औद्योगिक विकास में चालकों को मशीनों के समान ही समझा जाता है। औसत कारीगर का व्यवस्था में कोई भी हाथ या महत्व नहीं है, इसलिए व्यापार की सफलता में इसके अतिरिक्त कि व्यापार बिल्कुल बन्द नहीं होना चाहिए, उसकी कोई हित-भावना नहीं है।

इसी प्रकार की कठिनाई उपाजित धन के विभाजन में उत्पन्न होती है। श्रमिक यह अनुभव करता है कि उसके श्रम को एक सामग्री (Commodity) समझा जाता है जिसके बाजार भाव का स्तर, इस बात का विचार किये बिना ही कि रहन-सहन का स्तर कैसा हो, या जीवन-निर्वाह ठीक से हो सके, निम्न कर देना मालिकों के हाथ में है।

ऐसा इस देश में प्रायः होता है। श्रमिक का यह सोचना उचित ही है कि उसे उसके श्रम का जो फल मिलता है वह उसके अधिकार या सहयोग के साथ काम करने में उपाजित धन का निष्पक्ष विभाजन नहीं है, वरन् एक अशदान है जो मालिक स्वेच्छा से निर्धारित कर देते हैं, और जो उसके जीवन-निर्वाह का एकमात्र साधन है। उसे यह भी ख्याल रहता है कि मालिक इच्छा होते ही उसे काम से हटा सकता है।

मस्तिष्क की इस भावना का परिणाम मजदूरों में इस प्रवृत्ति का उत्पन्न होना है कि वे काम में बिना हित-भावना या प्रसन्नता का अनुभव किये नित्य प्रति मशीन की

तरह लगे रहते हैं। दूसरे, श्रमिक यह विश्वास करते हैं कि यदि हर आदमी अपनी पूरी शक्ति के साथ उत्पादन करे तो मालिक जो निम्नतम काम का स्तर निर्धारित करेगा वह सबसे बुद्धिमान् और शीघ्र काम करनेवाले कारीगर के काम के ऊपर आधारित होगा, जिसके परिणाम-स्वरूप या तो औसत कारीगर को अधिक काम करना पड़ेगा या उसकी जीविका खतरे में पड़ जायगी। इस दृष्टि से सबसे योग्य कारीगर भी अपनी शक्ति का पूरा उपयोग करने से हिचकता है क्योंकि उसके लिए ऐसा करना एक बलिदान होगा और उससे अधिक सख्यावालों की हानि होगी। पूरी शक्ति के ऊपर नियन्त्रण की यह प्रवृत्ति उत्पादन के पूर्ण विकास में बाधक है।

मौलिक असुविधा आज के श्रमिकों की यह है कि उद्योग की निर्धारित दशाओं ने मालिकों के हाथ में उत्पादन और निर्माण के सम्बन्ध में ही नहीं, वरन् श्रमिकों के ऊपर भी पूर्ण अधिकार दे दिये हैं। वे अनुभव करते हैं कि कुछ थोड़े हाथों में ही पूँजी के एकत्र हो जाने से श्रमिक और पूँजीपति में निष्पक्ष समझौता होना असम्भव हो गया है। कुछ मालिकों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे अपने श्रमिकों को औद्योगिक चक्र का एक भाग समझते हैं, मानो उनका कोई भी मानवीय अधिकार नहीं है। इस प्रवृत्ति को श्रमिक बहुत बुरा मानते हैं, और इससे भी घृणित प्रवृत्ति यह है कि श्रमिकों के लिए नियम बनाये जाते तथा उन्हें काम के लिए प्रेरणा दी जाती है, परन्तु उनसे कभी पूछा नहीं जाता कि उनकी जीविका सम्बन्धी कठिनाइयाँ क्या हैं।

व्यवस्था का यह विशेष आन्तरिक नियम होना चाहिए कि मालिक और श्रमिकों में पूर्ण सहयोग हो तथा उनके साथ बराबर का व्यवहार किया जाय। एक राष्ट्र के शासन की तरह एक उद्योगशाला कभी भी केवल नियमों द्वारा शासित होकर सफल नहीं हो सकती। नियमों को मित्रता, सभ्यता और आपसी भावना के द्वारा मधुर बनाना चाहिए। शासन आत्मविश्वास के बिना, सभ्यता विनीत भाव के बिना, और सौजन्य परिचय के बिना मनुष्यों को अपनापन अनुभव नहीं करने देता। श्रमिकों का मन जीतने के कार्य में जब तक ये गुण न हों तब तक कुछ विशेष सफलता नहीं होती और जब तक श्रमिकों का हृदय जीता नहीं जाता, व्यापार में उन्नति असम्भव है। वही इसकी कुजी है।

श्रमिकों और व्यवस्थापकों के बीच सीधा सम्बन्ध कारीगर-प्रधान द्वारा होता है। कारीगर-प्रधान (Foreman) की नियुक्ति श्रमिकों के एक समुदाय पर की

जाती है। उसका कार्य उन तक आवश्यक निर्देशन पहुँचाना तथा उनका पालन कराना है। कुछ ऐसे कारीगर-प्रधान होते हैं जिनमें स्वाभाविक प्रशासन की योग्यता होती है और वे श्रमिकों की कठिनाइयों का ध्यान रखते हुए अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। परन्तु कभी-कभी इस कार्य के लिए गलत आदमी का चुनाव हो जाता है और फिर भी उसकी अयोग्यता व्यवस्था के सामने प्रकट नहीं होती। मिट्टी के काम के लिए व्यक्तिगत मजदूर का काम परीक्षण करनेवाले कारीगर-प्रधान को काफी धैर्यवान् होना चाहिए, क्योंकि बहुत से दोष मिट्टी के बर्तन बनाने समय लुप्त हो जाते हैं, परन्तु पकने के पश्चात्, जब उन दोषों के उपचार का कोई साधन नहीं रह जाता, प्रकट हो जाते हैं। वह व्यक्ति जो इस उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करता और अपने नीचे काम करनेवाले मजदूरों की ऊपरी देखभाल से ही सन्तुष्ट हो जाता है, भले ही वह ईमानदार और मेहनती हो, पर मिट्टी की उद्योगशाला के लिए बहुत काम का नहीं है।

कारीगर-प्रधान के उत्तरदायित्व अगणित हैं। वह श्रमिकों के ठीक चुनाव के लिए, ठीक समय पर उनकी उपस्थिति तथा कम व्यय के साथ बर्तनों के उत्पादन के लिए उत्तरदायी है। वह परिशिक्षण में रहनेवाले अभ्यर्थियों की देखभाल करता है तथा प्रत्येक को काम देता है जिससे कोई श्रमिक या मशीन खाली न रहे। वह अनुपस्थितों के स्थान में आदमी भेजता तथा यन्त्रों को ठीक दशा में रखता है।

इतना अधिक उत्तरदायित्व और कार्य कारीगर-प्रधान के मस्तिष्क पर अधिक बोझ डालते हैं जिसके कारण उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और श्रमिकों में बुरी भावना और असन्तोष फैल जाता है। जिस प्रकार एक कप्तान अपने दल को प्रेरित करता है, उसी प्रकार कारीगर-प्रधान को अपने श्रमिकों को प्रेरित करना चाहिए, जिससे उनकी अधिक से अधिक वफादारी और सहयोग प्राप्त हो सके।

सबसे अधिक ध्यान इस बात पर देना चाहिए कि मैनेजर लगातार कारीगर-प्रधान से मिलकर आन्तरिक विभाग के काम पर सलाह-मश्विरा करे। इस अभ्यास से अधिक लाभ हो सकता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कारीगर-प्रधान व्यवस्था की ओर से श्रमिक से व्यवहार करने में प्रतिनिधित्व करता है और यदि कारीगर-प्रधान असन्तुष्ट हो जाय तो इस अव्यवस्था का प्रभाव जाने या अनजाने श्रमिकों के ऊपर भी पड़ेगा जो बड़ा हानिकारक सिद्ध होगा।

श्रमिकों का चुनाव और उनमें काम का बँटवारा व्यवस्था के विशेष भाग है।

श्रमिकों के यह न बताने से कि किस काम को वे उचित समझते हैं और किस विशेष काम के लिए उनका चुनाव किया गया है, सामान्यतः उनमें असन्तोष की भावना पैदा हो जाती है, जिसका परिणाम यह होता है कि उनका काम भी असन्तोषजनक हो जाता है। शुरू में श्रमिकों का गलत चुनाव व्यवस्था की अयोग्यता का निर्देशक है और इससे उद्योगशाला श्रमिकों को अधिक संख्या में निकालने के लिए बदनाम हो जाती है।

निर्माणशाला का कार्य सामान्यतः दो भागों में बाँट सकते हैं—दैहिक श्रम, एवं बौद्धिक कार्य। ऐसे कार्यों के लिए, जिनमें केवल शारीरिक श्रम की आवश्यकता है, जैसे सामान को मशीनों में ले जाना आदि, बलवान् आदमियों को चुनना चाहिए। उन कामों के लिए जिनमें निपुणता एवं बुद्धिमानी की आवश्यकता है बुद्धिमान् लोगों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

जो आदमी जिस विशेष कार्य के लिए चुने गये हैं, उसमें निपुण नहीं है तो उन्हें प्रशिक्षण द्वारा आसानी से वैसा बनाया जा सकता है। प्रत्येक उद्योगशाला में नये कारीगरों के लिए तथा नये भर्ती किये गये नवयुवकों के लिए प्रशिक्षण की सुविधा, या तो कुछ निपुण कारीगरों द्वारा या प्रधान कारीगर द्वारा होनी चाहिए। नया काम सीखनेवालों के लिए भाषण द्वारा नियमों का ज्ञान और फिर उनसे उन पर अमल कराना बड़ा लाभदायक उपाय है।

काम करने के आधार पर ही पारिश्रमिक देना श्रमिकों के मस्तिष्क पर एक बोझ पैदा करता है। सबसे पुराना और सरल उपाय दिन के हिसाब से पारिश्रमिक देना है। इस प्रणाली की महत्ता यह है कि इसमें श्रमिक को समय के आधार पर पारिश्रमिक मिलता है न कि किये हुए काम के आधार पर। जो श्रमिक अनुपस्थित रहता है उसके उक्त समय के लिए उसे पैसा नहीं मिलता। इस प्रणाली में यह अनुभव किया गया है कि इसमें श्रमिक ईमानदारी से काम करता है और सबके साथ बिना किसी व्यक्तिगत योग्यता या दोषों का विचार किये एक-सा व्यवहार किया जाता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि विभिन्न प्रकार के श्रमिकों को इस प्रणाली से पारिश्रमिक देने से काम के गुण और परिमाण दोनों में वृद्धि होती है।

जो लोग शारीरिक तथा अन्य प्रकार के काम करते हैं और दूसरे जो कार्यालय की देखभाल करते हैं, दोनों को दिन के हिसाब से पारिश्रमिक देना अधिक उचित है।

यह प्रणाली दूसरी प्रणाली की अपेक्षा इसलिए अच्छी है कि इसमें श्रमिक मावधानी में ठीक काम करने हैं तथा काम करने में शीघ्रता नहीं करते। इसमें कारीगर-प्रधान द्वारा समीप से देखभाल की भी आवश्यकता नहीं है।

काम में कर्मचारियों की रुचि पैदा करने तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए ही “काम के आधार पर” (Piece work) की प्रणाली प्रारम्भ की गयी है। इस प्रणाली में पारिश्रमिक काम के ऊपर निर्भर करता है न कि समय पर, जैसा कि पहले कहा गया है। इसमें शीघ्र काम करनेवाले धीरे काम करनेवालों से अधिक कमा लेते हैं।

श्रमिकों का एक संगठन इस प्रणाली का विशेष विरोध करता है और उसका यह विरोध अनुचित भी नहीं है। प्रायः यह पाया गया है कि मालिकों ने पीस-वर्क (Piece work) का मूल्य इतना कम कर दिया है कि साधारण उद्योगों के द्वारा श्रमिक अधिक कमा लेते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि माल असमय में तथा कम आता है, मशीन रुक या टूट जाती है, जिसका उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है जिसके कारण श्रमिकों को कम पैसा मिलता है।

दूसरे इस प्रणाली में विशेष देखभाल की आवश्यकता पड़ती है, अथवा केवल उत्पादन की मात्रा बढ़ाने के लिए कारीगरों से दोषयुक्त काम की सम्भावना रहती है। यह प्रवृत्ति विशेषतः मिट्टी के काम में अधिक हानिकारक है जिससे बर्तन में अनेक दोष पकने के पहले नहीं, पकने के बाद ही स्पष्ट होते हैं, और तब उनका उपचार असम्भव हो जाता है। यदि यह प्रणाली मिट्टी के काम में प्रयुक्त करनी हो तो यह अनुपयुक्त न होगा कि पारिश्रमिक कच्चे बर्तनों के आधार पर निर्धारित करने के बजाय पक्के बर्तनों के आधार पर निर्धारित करे परन्तु हर दशा में गणना पूर्णतया सूखने पर करनी चाहिए।

पारिश्रमिक देने की कोई भी प्रणाली अपनायी जाय व्यवस्था-अधिकारियों को यह देखना उचित है कि श्रमिकों के मन और शरीर पर जब तक वे उद्योगशाला में रहे बुरा प्रभाव न पड़े। अनिच्छित लम्बे कार्य में घंटों तक हलका काम उतनी ही भारी प्रकार की अयोग्यता तथा थकान उत्पन्न करता है जितनी कि थोड़े घंटों में भारी काम। यह अयोग्यता विशेषकर उमर समय अधिक स्पष्ट हो जाती है जब हलका काम मरिक्का-सम्बन्धी हो, जैसे कि एक छोटी मशीन को चलाना और देखभाल करना जो कि लगातार एक ही-जैसा काम करती है और सारे दिन शारीरिक भारी कार्य करना, जैसे पूरे दिन भारी बोझ उठाना।

जिस व्यक्ति के ऊपर अधिक भार पड़ता है वह स्वभावतः ही चिड़चिड़ा और अनावश्यक रूप में भावुक हो जाता है। वह अपनी कल्पना शक्ति से चिपक जाता है और अपने दुखों को बढ़ा लेता है तथा उसका दूसरों के साथ जो सम्बन्ध है उसके स्वरूप को खो देता है। उद्योगशाला के अनुशासन में ऐसे मनुष्यों पर नियन्त्रण करना कठिन है।

श्रमिकों में थकान कम करने के लिए काम के घटे तथा आराम का समय भिन्न-भिन्न उद्योगों में काम के प्रकार के अनुसार निर्धारित होना चाहिए। मजदूरों में काम करने की उदासीनता को उनके काम में रुचि पैदा करके या उनके काम में सामयिक बदली करके कम किया जा सकता है। इसके लिए अपने असली काम के अतिरिक्त हर मजदूर को दूसरे कार्य में भी निपुण होना चाहिए।

कारखाने की व्यवस्था तथा प्रबन्ध

किसी कारखाने की सफलता प्रारम्भिक व्यवस्था पर अधिक निर्भर करती है। कोई कारखाना प्रारम्भ करने से पूर्व जिन बातों पर विचार करना होता है, वे इस प्रकार हैं—(क) पूँजी (ख) उचित स्थान (ग) श्रमिकों की सरल सुलभता (घ) कच्चे मालों की प्राप्ति तथा (ङ) निर्मित माल के विक्रय की सुविधाएँ।

पूँजी—किसी कारखाने की पूँजी तीन भागों में बाँटी जा सकती है—(१) व्ययित पूँजी, (२) गतिशील पूँजी एवं (३) स्थायी पूँजी। प्रथम प्रकार की पूँजी कारखाने के लिए जमीन खरीदने, इमारत बनवाने, यन्त्रों को खरीदने तथा लगवाने, औजार, कुर्सी मेज आदि आवश्यक सामान खरीदने के लिए व्यय की जाती है। इसी कारण इसे व्ययित पूँजी कहते हैं। यह पूँजी एक बार व्यय करने के पश्चात् इस पर कोई लाभ नहीं होता, वरन् प्रति वर्ष इसका मूल्य भी कम होता जाता है। इमारत, यन्त्रों, औजारों आदि का एक निश्चित कार्यकाल या जीवनकाल होता है, जिसके पश्चात् वे व्यर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार इन विषयों पर व्यय की गयी पूँजी कुछ समय पश्चात् नष्ट हो जाती है। अतः इस पूँजी को खर्च करते समय काफी सोचने-विचारने की आवश्यकता होती है। कारखाना प्रारम्भ करते समय स्थान का परिमाण, इमारत के स्थान तथा उसके प्रकार पर बड़ी सावधानी के साथ विचार करना चाहिए। यन्त्रों के उचित प्रकार और उनकी उचित मात्रा का चुनाव इस क्षेत्र के उन विशेषज्ञों पर छोड़ देना चाहिए, जो इस दिशा में काफी समय तक अनुभव प्राप्त कर चुके हों। गत वर्षों में कई बार ऐसा देखा गया है कि कई कारखाने केवल इसी कारण अमफल हो गये कि उनके यन्त्रों आदि का चुनाव उचित नहीं था। आजकल तो यन्त्रों तथा औजारों का चुनाव और भी सावधानी से करना चाहिए, कारण निर्मित वस्तुओं में स्पर्धा अधिक तीव्र हो गयी है। उचित संचालकों के अभाव में भारतवर्ष के सबसे

पुराने पोरसिलेन कारखाने की बुरी दशा हो गयी थी। प्रथम विश्वयुद्ध के काल (१९१४-१८) में इस कारखाने ने ककरीट की तिमजिली पाँच ड्रेसडन प्रकार की भट्ठियाँ बनवा ली, जिनके बनवाने में कम्पनी की अधिकांश पूँजी व्यय हो गयी। युद्ध समाप्त होने पर तत्कालीन भारतीय सरकार ने इस कारखाने से पोरसिलेन-वस्तुएँ खरीदना बन्द कर दिया। इधर अधिक पूँजी व्यय हो जाने तथा अधिक मरम्मत व्यय के कारण कम्पनी का प्रबन्ध दूँभर हो गया तथा विदेशों से आयात के कारण पोरसिलेन वस्तुओं की स्पर्धा तीव्र हो गयी। परिणाम-स्वरूप इस मुसीबत से छुटकारा पाने के लिए कम्पनी को अपने हिस्से का मूल्य घटाकर चौथाई कर देना और कारखाना चलाने के लिए नया धन उधार लेना पड़ा।

द्वितीय प्रकार की पूँजी कारखाना चलाने के लिए प्रतिदिन के आवश्यक व्यय के काम आती है। इसी कारण इसे गतिशील पूँजी कहते हैं। इस पूँजी से कच्चे माल तथा ईंधन खरीदे जाते हैं, मजदूरों, कर्मचारियों एवं अधिकारियों का वेतन दिया जाता है एवं विज्ञापन बीमा आदि के व्यय किये जाते हैं। किसी कारखाने की पूँजी का अनुमान लगाते समय गतिशील पूँजी का अनुमान कम से कम ६ मास के व्यय के आधार पर करना चाहिए। थोक व्यापारी अधिकांशतः एक माह के वचन पर कारखानों से सामान लेते हैं, परन्तु प्रायः ३-४ मास बाद रुपया देते हैं। अतः यदि गतिशील पूँजी इतनी लम्बी अवधि के आधार पर नहीं निर्धारित की जाती है, तो उत्पादन कार्य में रुकावट पड़ सकती है। वर्तमान समय में अनेक छोटे-छोटे कारखानों को इस गतिशील पूँजी के अभाव में काफी हानि उठानी पड़ी है। किसी नये उद्योग में प्रथम वर्ष तो कच्चे मालों के साथ प्रयोग करने तथा निर्मित मालों का स्तर ठीक करने में लग जाता है, जिससे उनकी माँग बढ़े। ऐसी अवस्था में गतिशील पूँजी का निर्धारण करते समय 'प्रयोग-व्यय' नाम से एक विशेष पूँजी की व्यवस्था रखनी चाहिए। चूँकि बड़े शहरों में माल उधार खरीदा जा सकता है, अतः छोटे शहरों या गाँवों की अपेक्षा शहरों के कारखानों में गतिशील पूँजी कम मात्रा में होने पर भी काम चल जाता है। गाँवों या छोटे शहरों में कच्चे माल, औजार आदि कुछ महीनों के लिए भण्डार में रहने चाहिए, अन्यथा किसी समय एक भी वस्तु के अभाव में कारखाना बन्द करना पड़ सकता है। मृद्वस्तु के कारखाने में कोयला, मिट्टी, फेल्सपार, स्फटिक, जिप्सम तथा रस द्रव्यों की काफी मात्रा भण्डार में रहनी चाहिए। परन्तु अत्यधिक भण्डार भी उचित नहीं, कारण इसमें लगी हुई पूँजी पर कोई लाभ नहीं होता। मासिक

या साप्ताहिक दिया जानेवाला मजदूरो का वेतन सर्वद्व तैयार रहे। यदि उचित समय पर मजदूरो तथा कर्मचारियों का वेतन नहीं दिया जाता तो वे अमनुष्ट रहते हैं, जिससे कारखाने का उत्पादन कम हो जाता है।

तृतीय प्रकार की पूँजी किमी बैंक में ऐसे नियमों के आधार पर जमा कर दी जाती है कि आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग किया जा सके। इस रुपये पर व्याज बहुत कम मिलता है। यह देखा गया है कि कभी-कभी कारखाने या व्यापार में काफी अज्ञात मुसीबतें, जिनकी पूर्व-कल्पना नहीं की जा सकती, आ जाती हैं। ऐसी अवस्था में यदि उचित मात्रा में स्थायी पूँजी न हो, तो इसके कारण कारखाना बन्द कर देना पड़ता है। इन सभी घातक मुसीबतों की, जिनसे कारखाना बन्द हो जाता है, पूर्व-कल्पना करना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है। इस प्रकार का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। बिहार प्रदेश के एक बड़े शहर में गंगा के किनारे पुराने नील के कारखानों के स्थान पर एक चमटा कमाने का कारखाना खोला गया था। कुछ वर्षों तक कारखाना अच्छी प्रकार चलता रहा। एक बार वर्षा ऋतु में गंगा में ऐसी बाढ़ आयी, जैसी वहाँ के निवासियों ने कभी नहीं देखी थी। बाढ़ के कारण तीन दिन तक कारखाना तथा इसकी सारी भूमि पानी में डूबी रही। बाढ़ से जमी मिट्टी निकलवाने में, कारखाने की दीवारें तथा फर्श सुखाने में और यन्त्रों को साफ करने में लगभग १५ दिन लग गये। तब कही जाकर कारखाना कार्य करने योग्य हुआ। उधर भण्डार की तथा कारखाने में लगी हुई कच्ची एव पकायी हुई सब खाले नष्ट हो गयी। कारखाने के पाम गतिशील या स्थायी पूँजी अधिक न थी, अतः कुछ समय पश्चात् कारखाना बन्द कर देना पड़ा। स्थायी पूँजी का परिमाण निर्मित वस्तुओं के प्रकार पर निर्भर करता है। परन्तु मृत्पात्र कारखाने में कम-से-कम तीन मास के लिए आवश्यक गतिशील पूँजी के बराबर धन स्थायी पूँजी में होना चाहिए। चूँकि स्थायी पूँजी से कारखाने की पुरानी इमारतों, यन्त्रों, औजारों को बदलने में तथा कारखाने के विस्तार में भी सहायता मिलती है, अतः प्रतिवर्ष के लाभ के कुछ अंश द्वारा स्थायी पूँजी बढ़ाते रहना चाहिए। इमारतें, यन्त्र, औजार आदि पुराने होने पर उनकी कार्योपयोगिता कम होती जाती है। अतः उनकी मरम्मत करना एव उन्हें बदलना भी आवश्यक होता है। इस कारण वार्षिक लाभ में से कुछ धन इमारतों, यन्त्रों, औजारों आदि के वार्षिक ह्रास के लिए रखा जाता है। इसे मूल्य-ह्रास-पूँजी कहते हैं। इस पूँजी के होने पर आवश्यकता के समय प्रबन्धकों को कोई

परेशानी नहीं उठानी पड़ती। इस विषय के लिए रखे जानेवाले धन की गणना यन्त्रों, औजारों आदि की साधारण अवस्थाओं में उनके औसत कार्यकाल के आधार पर की जाती है।

स्थान-निर्णय—किमी कारखाने की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि कारखाना उचित स्थान पर बनाया गया है या नहीं? अतः कारखाने के व्यवस्थापकों को बहुत-सी बातों पर विचार करने के पश्चात् कारखाने का स्थान निर्णय करना चाहिए। इन बातों पर यहाँ विचार किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि भारतवर्ष का सर्वप्रथम काँच का कारखाना देहरादून के पास राजपुर में खोला गया था, जो स्थान के अनुचित चुनाव के कारण असफल रहा। इस अभाग्य काँच के कारखाने के व्यवस्थापकों ने विदेशी विशेषज्ञों की सुविधा पर अधिक ध्यान दिया, जिन्हें ठण्डा स्थान चाहिए था। परन्तु कच्चे माल की प्राप्यता एवं मजदूरों के पाने की सुविधा—जैसी मुख्य समस्याओं पर ध्यान न दिया। यह स्थान न तो रेलमार्ग से जुड़ा था न और कोई भार-वहन की अन्य ऐसी सुविधा थी जिससे कच्चा माल कारखाने तक शीघ्रता से आ जाता और निर्मित माल कारखाने से विक्रय-केन्द्रों तक ले जाया जा सकता। किसी कारखाने का स्थान चुनते समय इन सारी बातों पर प्रारम्भ में ही बड़ी सावधानी के साथ विचार कर लेना चाहिए। जमीन का मूल्य भी सस्ता होना चाहिए, जिससे अधिक रुपये जमीन में न फँस जायँ। भविष्य में कारखाने के विस्तार की काफी सुविधा होनी चाहिए, उसमें कोई बाधा न होवे। नगरों में नगरपालिकाओं के, भट्ठियों तथा चिमनियों के निर्माण-सम्बन्धी और इमारत आदि के विस्तार-सम्बन्धी नियमों व प्रतिबन्धों पर पूर्व ही विचार कर लेना चाहिए। इंग्लैण्ड में अधिकांश बड़े कारखाने नगरों की बाहरी सीमा पर बने होते हैं, परन्तु जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों में बड़े कारखाने प्रायः छोटे-छोटे गाँवों में होते हैं। गाँवों में कारखाने होने पर सड़क, नदी, रेल आदि के द्वारा शीघ्रता से सामान ले जाने की सुविधा होनी चाहिए। कारखानों का रेलों से सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। गाँवों के कारखानों में सन्तों मजदूर पाने की सुविधा रहती है और मजदूरों के लिए निवास स्थान का भी प्रबन्ध नहीं करना पड़ता। गाँव में कारखाने होने पर मजदूर अपने घर पर ही गणित्वार रहते हैं और शहरी कारखानों के परिवार से अलग रहनेवाले मजदूरों में होनेवाले बहुत से दोषों से मुक्त रहते हैं। जर्मनी के गाव-स्थित कारखानों में पति-पत्नी दोनों ही काम कर सकते हैं। स्त्रियों को दोपहर के अवकाश से आधा घण्टा

पूर्व ही छोड़ दिया जाता है जिसमें वे शीघ्र घर जाकर अपने पति तथा बच्चों को भोजन बना सके। किमी एक स्थान पर कारखाने के लिए आवश्यक सभी सुविधाएँ मिलना सदैव सम्भव नहीं होता। परन्तु यदि किमी स्थान के रेलमार्ग से जुड़े होने के कारण कच्चे माल मँगाने में और निर्मित माल विक्रय स्थानों को ले जाने में अत्यधिक व्यय न पड़ता हो और वहाँ सस्ती जमीन तथा सस्ते मजदूरों की सुविधा प्राप्त हो, तो उस स्थान पर कारखाना, विशेष कर हलके मृत्पात्रों का कारखाना खोला जा सकता है। भारी वस्तुओं का निर्माण करनेवाले कारखाने का स्थान चुनते समय, कच्चे माल लाने और निर्मित माल को विक्री-केन्द्रों तक पहुँचाने के व्यय पर भी ध्यान देना चाहिए। जब अलीगढ़ रेल मार्ग पर एक छोटे से स्थान बहजोई में 'यू० पी० ग्लास वर्क' नामक काँच का कारखाना खोला गया था, तो वह स्थान चुनने का कारण केवल सस्ते मजदूर और सस्ती जमीन तथा निर्मित काँच वस्तुओं के पैकिंग के लिए पुआल की प्राप्यता के अतिरिक्त कुछ न था। चूँकि काँच की वस्तुएँ आसानी से टूट जाती हैं, अतः भेजने समय पैकिंग के लिए काफी पुआल की आवश्यकता पड़ती है। चूँकि यह स्थान रेल मार्ग पर था, अतः प्रबन्धकों को दूर के स्थानों से चूना, रेत, सोडा एव कोयला आदि मँगाने में तथा निर्मित वस्तुएँ विक्रय-केन्द्रों तक पहुँचाने में परेशानी नहीं पड़ी। यह कारखाना इधर कुछ वर्षों में काफी विस्तृत हो गया है।

नया मृत्पात्र कारखाना प्रारम्भ करनेवाले व्यवस्थापक को कारखाने के लिए स्थान चुनने में निम्नलिखित बातों पर विचार करना चाहिए—

- (क) जमीन की भौगोलिक अवस्थाएँ।
- (ख) फालतू पानी निकालने की सुविधा तथा नदी का मुहाना जिनमें कारखाने का गन्दा पानी बहाया जा सके।
- (ग) मृत्पात्र कारखाने के लिए उचित, पर्याप्त पानी की प्राप्यता।
- (घ) रेलमार्ग तथा सड़क मार्ग की समीपता।
- (ङ) विद्युत् शक्ति की प्राप्यता।
- (च) स्थान पर कोई स्थानीय या आधिकारिक प्रतिबन्ध।

कारखाने की जमीन भारी यन्त्रों तथा इमारतों के निर्माण के लिए उचित ठोस होनी चाहिए, अन्यथा सुदृढ़ नींव के लिए व्यय बढ़ जाता है। यदि जमीन के नीचे तथा आसपास खाने हों, तो जमीन धँस जाने की सम्भावना पर भी विचार

कर लेना चाहिए। खानों से खनिज निकाल लेने के कारण जमीन खोखली हो जाती है। बिहार के झरिया नामक स्थान में एक मोजे-बनियान का बड़ा कारखाना कुछ ही वर्ष पूर्व जमीन धँस जाने से नष्ट हो गया था, कारण इस कारखाने के नीचे कोयले की पुरानी खान थी, जिससे कोयला निकाल लिया गया था। कारखाने का मालिक स्वयं भी अपनी सम्पत्ति-सहित उसी दुर्घटना में मर गया।

व्यवस्थापक प्रायः यह प्रश्न किया करते हैं कि कारखाना निर्मित वस्तुओं के विक्रय-केन्द्रों के पास खोला जाय या कच्चे मालों के प्राप्ति-स्थानों के पास। इस गम्भीर प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित बातों पर विचार करके निश्चित किया जाना चाहिए।

एक टन श्वेत मृत्पात्र पकाने के लिए लगभग डेढ़ टन कोयले की आवश्यकता पड़ती है। पकाने से पात्रों का भार लगभग ८ प्रतिशत कम हो जाता है। वस्तुएँ बनते समय कच्चे पदार्थों की हानि २ प्रतिशत तथा पकाते समय पात्र टूटने से हानि १० प्रतिशत के लगभग होनी चाहिए, इस प्रकार सम्पूर्ण हानि २० प्रतिशत हो जाती है। इस गणना के अनुसार हमें एक टन कच्चे मिश्रणपिण्ड तथा १५ टन कोयले से केवल ०.८० टन निर्मित वस्तुएँ मिलेंगी। मृद्-वस्तुओं को बाहर भेजते समय लगभग २५ प्रतिशत भार पैकिंग तथा पेट्टी के कारण बढ़ जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक टन निर्मित वस्तुओं को कारखाने से भेजने के लिए कोयले सहित २५ टन कच्चा सामान कारखाने में मँगाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त सैगर बनाने के लिए अग्निमिट्टी, और साँचे बनाने के लिए जिप्सम मँगाना पड़ेगा। यदि कारखाने के पास विद्युत् शक्ति प्राप्य नहीं है, तो यन्त्र चलाने के लिए कोयला या तेल ईंधन भी मँगाना पड़ेगा, जिससे शक्ति उत्पन्न करके यन्त्र चलाये जा सकें। कच्चे पदार्थों तथा कोयले की अपेक्षा निर्मित वस्तुओं का रेलभाड़ा अधिक होता है। कच्चा माल और कोयला आदि पूरे डब्बे भरके मँगाये जा सकते हैं जिससे भाड़े की दर भी कम हो जाती है। इन सारी बातों पर कारखाने के मासिक उत्पादन के आधार पर बड़ी सावधानी से विचार करना चाहिए। यह देखा गया है कि कलकत्ता, बम्बई, दहली-जैसे बड़े शहरों की बाहरी सीमा पर स्थित कारखाने निर्मित वस्तुओं को बड़ी सरलता से बिना पैकिंग व्यय के ही विक्रय केन्द्रों तक पहुँचा देते हैं। बाजार पास होने से उन्हें ले जाने का भाड़ा भी कम लगता है। परन्तु जो कारखाने कोयला, मिट्टियाँ

जैसे मुख्य कच्चे मालों के प्राप्ति-स्थानों के पास स्थित होने हैं, वे इन गहरी कारखानों से लाभजनक होते हैं।

मजदूर समस्या—किमी कारखाने की सफलता उचित शिक्षा-प्राप्त मजदूरों पर निर्भर करती है। अतः किमी व्यवस्थापक के लिए कारखाने के मजदूर प्राप्त करने की सुविधा सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या होती है। किमी स्थान पर मृद्-उद्योग कारखाना प्रारम्भ करने से पूर्व व्यवस्थापक को देख लेना चाहिए कि वहाँ उचित प्रकार के मजदूर मिल सकेंगे या नहीं? हिन्दुओं में मृद्-वस्तुएँ बनाने का काम करनेवाले व्यक्ति एक विशेष जाति के होते हैं, जिन्हें कुम्हार कहते हैं। कभी-कभी दूसरी जातिवालों को इस काम के लिए राजी करना बड़ा कठिन होता है। पंजाब के गुजरात जिले-जैसे कुछ स्थानों में मृद्-वस्तुओं को बनाने का काम मुख्य रूप से मुगलमान करते हैं तथा हिन्दू इस काम के करने में बड़ा सकोच करते हैं। कुछ स्थानों, जैसे उत्तर प्रदेश में चुनार, खुर्जा आदि में हिन्दू, मुगलमान दोनों इस कार्य को करते हैं। अतः ऐसे स्थानों पर दोनों वर्गों में मजदूर मिल सकते हैं। मृत्पात्र कारखाने में ऐसे मजदूरों को रखना लाभकर होता है, जिनका पैतृक व्यवसाय मृद्-वस्तु निर्माण ही रहा हो, कारण इन लोगों में इस कार्य के लिए एक जन्मजात प्रेरणा होती है। अतः ऐसे मजदूर साधारण मजदूर की अपेक्षा मृद्-उद्योग के किसी नये कौशल को अधिक सरलता से सीख लेंगे। किसी कुशल कारीगर को उसके जिले के बाहर बुलाना कठिन होता है, जब तक कि उसे अच्छे वेतन का लालच न दिया जाय। इंग्लैण्ड में उत्तरी मैफर्डशायर जिले के अतिरिक्त दूसरे जिलों के कारखानों में अच्छे वेतन के लालच बिना कुशल कारीगरों को पाना प्रायः कठिन होता है।

जो कुछ भी हो, कारखाने के आस-पास के स्थानों में पर्याप्त मख्या में ऐसे मनुष्य प्राप्य होने चाहिए, जो मृत्पात्र कारखाने में काम करने के इच्छुक हों। उन्हें आगे चलकर विशेष कार्यों के लिए शिक्षित किया जा सकता है। जब कोई नया कारखाना प्रारम्भ किया जाता है तो प्रायः कुछ मख्या में कुशल व्यक्तियों को दूगरे स्थानों में बुलाना आवश्यक होता है। परन्तु जब तक कारखाने के समीपस्थ स्थानों में योग्य, कुशल तथा कार्य-इच्छुक व्यक्ति नहीं मिलेंगे तब तक कारखाना सुचारुगण तथा लाभजनक स्थिति में नहीं चल सकता। जब कलकत्ता में मृद्-वस्तुओं का प्रथम कारखाना खुला था, तो जापान से कुशल व्यक्ति स्थानीय कारीगरों को नये कौशल

की शिक्षा देने के लिए गुलाने की आवश्यकता पड़ी थी। दूसरे जिले के कारीगरों की अपेक्षा स्थानीय कारीगर बिना मोचे-समझे हड़ताल में सम्मिलित नहीं होते। अतः मजदूरों का चुनाव करने समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सारे मजदूर एक ही वर्ग के न हों जाय।

आवश्यक मख्या में स्थानीय दक्ष तथा उत्माही कारीगर मिलने पर कई स्थानों पर छोटे-छोटे कारखाने खोले जा सकने हैं, कारण छोटे कारखानों में कच्चा माल मँगाने और निर्मित माल विक्रय-केन्द्रों तक ले जाने में अधिक व्यय नहीं पड़ता। उत्तर प्रदेश के फीरोजाबाद तथा शिकोहाबाद नामक छोटे शहरों में भारतवर्ष में सर्वाधिक काँच की चूड़िया तथा अन्य वस्तुएँ बनती हैं। इन शहरों के सभी कारखाने घरेलू उद्योग-धन्धों के स्तर पर छोटे-छोटे हैं। इन सभी कारखानों में केवल रेत को छोड़ जेप सभी कच्चे माल प्रदेश के बाहर से मँगाये जाते हैं और निर्मित माल का भी काफी भाग विक्रय हेतु प्रदेश के बाहर भेजा जाता है। इस प्रकार के छोटे कारखानों की सफलता विशेष कर कारीगर पर निर्भर करती है। उत्तर प्रदेश के जुनार, खुर्जा, निजामाबाद स्थानों में मिट्टी की वस्तुओं के छोटे-छोटे कारखाने घरेलू उद्योग-धन्धों के रूप में चलाये जाते हैं, कारण इन सभी स्थानों पर कुशल कारीगर पाये जाते हैं और कार्योपयोगी मिट्टियाँ भी आम-पास ही मिल जाती हैं।

कच्चे माल की प्राप्ति—कारखाने के लिए कच्चे माल की प्राप्ति पर व्यवस्थापक को काफी विवेक बुद्धि से सोचना पड़ता है। कच्चे माल केवल पर्याप्त मात्रा में ही प्राप्य न हो, वरन् सस्ते मूल्य पर भी मिलने चाहिए। इसके लिए वाहन-सुविधा, मजदूरों की सुविधा, शक्ति और निर्मित वस्तुओं को बेचने के लिए बाजार आदि की सुविधा का ध्यान रखते हुए कारखाना कच्चे माल के प्राप्तिस्थान से यथासम्भव पास ही बनाया जाय। सिलिकेट उद्योग के कारखाने के लिए कोयला मुख्य पदार्थ है, जिस पर सर्वप्रथम विचार करना चाहिए। दूसरे मुख्य पदार्थ में, मृत्पात्र कारखाने में केओलिन, काँच कारखाने में रेत, सीमेण्ट कारखाने में चूना पत्थर और काँच कलई कारखाने में रंगद्रव्य तथा लौह चदरे आती हैं। यदि कार्योपयोगी मिट्टी के प्राप्तिस्थान अधिक दूर न हों तो भारत में मृत्पात्र कारखाना खोलने के लिए कोयले की खानों के पास के स्थान सर्वोचित हैं। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि अधिक राख तथा गन्धकवाले कोयले मृत्पात्र कारखानों के लिए अनुपयोगी होते हैं। राख से भट्ठी

की दुर्गल परत शीघ्र ही नष्ट हो जाती है और गन्धक में प्रलेप तथा पात्रों का रंग खराब हो जाता है।

दक्षिण भारत में मृत्पात्र कारखाने मिट्टियों के प्राप्ति-स्थानों के पास हैं, कारण वहाँ कोयला बगाल, बिहार या मध्यप्रदेश जैसे मुद्गर स्थानों से मंगाया जाता है। उत्तर भारत में अधिकांश बड़े कारखानों की अपनी स्वयं की मिट्टी की खानें हैं, कारण इस भाग में कोई ऐसी बड़ी मिट्टी की खान नहीं है, जिस पर कि कोई कारखाना निर्भर रह सके। इस कठिनाई को दूर करने के लिए भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में मृद्-उद्योग के कच्चे मालों के भण्डार-केन्द्र खोले जायें, जो साधारण उचित मूल्य पर निश्चित गुण के कच्चे माल कारखाने को दे सके। इंग्लैण्ड, जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों में, मृत्पात्र-निर्माण-कर्त्ता को कच्चे माल जुटाने की अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ती और वह अपना साग ध्यान व्यापार की दूसरी बातों पर केन्द्रित कर सकता है। दुर्भाग्य से भारतवर्ष में अब भी इसमें उलटी ही दशा है। यहाँ कारखाने के प्रबन्धक को स्वयं वस्तु-निर्माण की अपेक्षा कच्चे सामान जुटाने की ओर अधिक चिन्ता रहती है। इंग्लैण्ड के स्टोक-आन-ट्रेण्ट में मृद्-उद्योगियों को कच्चा माल देनेवाली संस्था इतनी विकसित हो चुकी है कि अधिकांश कारखानों को चकमक तथा कार्निश पत्थर आदि पीसने भी नहीं पड़ते, क्योंकि उस केन्द्रीय संस्था से ये पदार्थ आवश्यकतानुसार सूक्ष्मता में पिसे पिसाये ही प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार की संस्था से कारखाने बड़ी सरलतापूर्वक चलते हैं और प्रत्येक कारखाने को पीसने की भारी मशीनें भी नहीं खरीदनी पड़ती। यदि इस प्रकार पिसे हुए तैयार कच्चे मिश्रण-पिण्ड, कच्चे प्रलेप तथा कच्चे रजक देनेवाली संस्था की स्थापना हो जाय, तो भारतवर्ष में बहुत से छोटे-छोटे कारखाने खुल सकते हैं।

विक्रय बाजार—भारतवर्ष-जैसे देश में टूटनेवाली वस्तुओं, जैसे काँच-वस्तुओं, मृद्-वस्तुओं आदि के कारखाने विक्रय-केन्द्रों से अधिक दूरी पर नहीं होने चाहिए, कारण यहाँ सामान ढोने के मार्ग व साधन न तो सुव्यवस्थित ही हैं और न उनका पूरा आधुनिकीकरण ही हुआ है। ऐसा करने से ग्राहकों के पाग तक निर्मित वस्तुओं को पहुँचाने में पैकिंग आदि व्यय अधिक नहीं होंगे। काँच, पॉरसिलेन-वस्तुएँ तथा खोखले पात्र टूटनेवाले होते हैं और कितनी ही सावधानी से उनकी पैकिंग क्यों न की जाय, दूर जाने में उनमें से कुछ वस्तुएँ टूट ही जाती हैं। किमी बट्टे

कारखाने में इन टूटनेवाली वस्तुओं के पैकिंग का खर्च ऐसा खर्च है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सामान भेजने का व्यय अधिक हो जाने के कारण निर्मित वस्तुएँ अधिक दूर नहीं भेजी जाती। अहमदाबाद और बम्बई के कारखानों के मालिकों को अफ्रीका में आयात किया हुआ कोयला बिहार बंगाल के कोयले से सस्ता पड़ता है, कारण ये स्थान दूर हैं तथा रेल का किराया समुद्री जहाज के किराये से अधिक पड़ता है। किसी भी स्थान पर स्थित कारखाना अपने निर्मित सामान को विक्री हेतु सीमित क्षेत्र में ही भेज सकता है। उसके आगे भेजने का किराया इतना अधिक हो जाता है कि देश के ही दूसरे कारखानों की वस्तुओं तथा विदेशों से आयात की गयी वस्तुओं में मूल्य की स्पर्धा करना कठिन हो जाता है। बन्दरगाह के नगरों के पास, विदेशों से आयात की गयी वस्तुओं से अधिक स्पर्धा करनी होती है। बन्दरगाह से जितनी दूर जाते जायँगे, यह स्पर्धा उतनी ही कम होती जाती है। इसी कारण छोटे-छोटे कारखाने बन्दरगाहों से दूर स्थित होने चाहिए तथा ऐसे स्थान पर होने चाहिए कि निर्मित वस्तुएँ स्थानीय माँग द्वारा ही खप जायँ।

कारखाने का हिसाब—किसी कारखाने को सरलतापूर्वक और लाभ सहित चलाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक विषय के और प्रत्येक विभाग के हिसाब का पूर्ण विवरण रखा जाय। यह विवरण वास्तव में वह लेख प्रमाण है जो कारखाने की सभी बातों का पूरा हिमाव रखते हैं। यह किसी बाहरी छानबीन के लिए नहीं रखे जाते, वरन् इनको कारखाने की अपनी ही प्रबन्ध-सुविधा हेतु रखा जाना चाहिए। कच्चे सामान, शक्ति, ईंधन व्यय, प्रत्येक प्रकार का सामान खरीदने तथा कारखाने की प्रगति-सम्बन्धी हिसाब रखना परमावश्यक है। मजदूरों की पाली के कार्य का तथा प्रत्येक मजदूर के कार्य का अलग-अलग हिसाब रखने से प्रबन्ध में सुविधा रहती है और मजदूरों में अधिक कार्य करने का उत्साह पैदा होता है। रूस में समय-समय पर सर्वोत्तम मजदूर की कार्य-प्रगति को एक ऐसे सूचनापट्ट पर लगा दिया जाता है, जिससे सब मजदूर उसे देख सकें। सूचनापट्ट पर केवल उसी कारखाने के सर्वोत्तम मजदूर की प्रगति नहीं रहती, वरन् अन्य कारखानों के सर्वोत्तम मजदूरों की प्रगति भी उस पर रहती है। इससे दूसरे मजदूरों को कार्य करने का प्रोत्साहन मिलता है और सभी मजदूर यथासम्भव अधिक कार्य करने का प्रयत्न करते हैं।

कारखाने के प्रबन्धक के सामने मुख्य समस्या यह रहती है कि वह ऐसे तरीके खोजे जिनमें वर्तमान समय में दो वस्तुएँ बनाने के स्थान पर तीन वस्तुएँ बनने लगे।

इस समस्या के सुलझाने के लिए उनके पास केवल अपने कारखानों के ही नहीं, बरन् दूसरे देशी तथा विदेशी कारखानों के पुराने हिमाव होने चाहिए। नीचे विभिन्न भारतीय मृद्-उद्योग के मुख्य कारखानों के उत्पादन आँकड़े दिये जाते हैं।

कलकत्ता में एक बच्चे की सहायता में एक मनुष्य जिम्गर यन्त्र पर प्रतिदिन ८००-९०० चाय के प्याले बनाता है।

ग्वालियर में जिम्गर यन्त्र की सहायता से अकेला मनुष्य ६००-७०० प्याले प्रतिदिन बनाता है।

कोचीन में जिम्गर और जाली यन्त्र की सहायता से दो बच्चे साथ-साथ काम करके २५०-३०० छोटे कटोरे या प्याले प्रतिदिन बनाते हैं।

मिथभूमि (बिहार) के छोटे से मृद्वस्तु कारखाने में दो मनुष्य साथ-साथ काम करके प्रतिदिन ८० से ९० तक ८''×२'' आकार के सैगर हस्त-दबाव विधि से बनाते हैं। वही दो आदमी १५''×३'' आकार के ३५ से ४० तक सैगर प्रतिदिन बनाते हैं, यदि कार्य करने का समय ८ घंटा प्रतिदिन हो।

मैसूर के पोरसिलेन कारखाने में एक जिम्गर कारीगर लगभग ७००-८०० चाय के प्याले या तश्तरियाँ प्रतिदिन (८ घंटा काम करके) बनाता है। भोजन तश्तरियाँ बनाने के लिए तीन जिम्गर कारीगर और दो सफाई करनेवाले कारीगर मिलकर ५०० भोजन तश्तरियाँ प्रतिदिन बनाते हैं। इसी कारखाने के ढलाई विभाग में चाय के प्याले और तश्तरियों के ६० साँचों को एक कारीगर संभाल लेता है और ४ या ५ ढलाई प्रतिदिन निकाल लेता है। इस प्रकार प्रत्येक कारीगर प्रत्येक दिन ३०० चाय प्याले बना लेता है, परन्तु तश्तरियाँ केवल २०० ही ढाल पाता है। दो कारीगर साथ-साथ काम करके १६''×६'' आकार के २५-३० सैगर तथा छोटे आकार के ४० सैगर प्रतिदिन हाथ से बना लेते हैं।

इन आँकड़ों से स्पष्ट पता चलता है कि भारतीय कारीगर हाथ से और यन्त्रों की सहायता से एक ही प्रकार की वस्तुएँ भिन्न-भिन्न संख्याओं में बनाते हैं। हम ज्ञान से प्रबन्धक को उन साधनों के ढूँढ़ निकालने में यही सहायता मिलेगी, जिनसे उत्पादन बढ़कर अन्य देशों के उन्नत कारखानों के बराबर हो जायगा।

उदाहरण-स्वरूप हम मृद्वस्तुओं को भट्टियों में पकाने का नियमित हिमाव करने के लाभ पर विचार करते हैं। ईंधन-व्यय न्यूनतम करने के लिए हमें प्रत्येक भट्टी

की ईंधन-खपत मालूम होनी चाहिए। इसमें हम देखेंगे कि कुछ भट्ठियों में दूसरी भट्ठियों की अपेक्षा अधिक ईंधन व्यय होता है, और इसका कुछ कारण होना चाहिए। कारण का पता लग जाने पर या तो इसी भट्ठी से उस कारण को दूर कर दे या नयी दोषरहित भट्ठी बना ले।

ओहियो राज्य के विश्वविद्यालय के प्रयोगों की जाँच करने पर पता चला है कि एक हजार ईंटों के पकाने के लिए कोयले का व्यय अधिकतम १९०० पौंड तथा न्यूनतम ५०० पौंड होता है। यद्यपि यह ईंधन-व्यय की भिन्नता प्रयोग करनेवाली मिट्टी के प्रकार (जो कठिनता से पकती है), ईंधन के प्रकार तथा भट्ठी की दोषपूर्ण आकृति पर निर्भर करती है, परन्तु अधिकांशतः यह ईंधन-व्यय-भिन्नता दोषपूर्ण भट्ठी के प्रकार या दोषपूर्ण पकाव-विधि के कारण होती है।

अधिक सस्ती होने पर भी कठिनता से पकनेवाली मिट्टी को व्यापार में प्रयोग न करे। कुछ स्थानों में कुछ कम ब्रिटिश ऊष्मीय मात्रकवाले ईंधन का प्रयोग करना लाभकर हो सकता है, परन्तु वह सदैव लाभजनक सिद्ध नहीं होता। दोष-पूर्ण प्रकार तथा दोषपूर्ण आकृति की भट्ठी का चुनाव तथा दोषपूर्ण पकाव-विधि का चुनाव अक्षम्य भूले होती है।

मृद-उद्योग भट्ठियों में पात्र पकाने पर एक नियमित तापक्रम-निर्देश रखा जाय तथा प्रत्येक पकाव के पश्चात् उसकी जाँच की जाय, जिससे भट्ठी-कारीगर अपने कार्य में ढील न डाल सके और प्रत्येक पकाव से समान गुणवाली वस्तुएँ प्राप्त हो सके। एक ही भट्ठी के विभिन्न भागों के तापक्रमों के अन्तर का हिसाब रखना और उन्हें जाँचना भी काफी महत्त्वपूर्ण होता है। यदि अन्तर अत्यधिक हो तो उसे ठीक करने के लिए कदम उठाया जा सकता है।

प्रत्येक पकाव के पश्चात् प्रत्येक भट्ठी के उत्पादन का नियमित हिसाब रखना चाहिए, जिससे हम प्रत्येक भट्ठी के दोषपूर्ण पात्रों की संख्या और दोषों के प्रकार जान सकें। इन दोषपूर्ण वस्तुओं के कारण हानि, निर्माण की मुख्य क्षति होती है। अतः एक कुशल कारीगर इन हानि के कारणों को दूर कर सकेगा।

नीचे इंग्लैण्ड के खोखले पात्र बनानेवाले एक श्वेत मृत्पात्र कारखाने की प्रत्येक भट्ठी का उत्पादन-हिसाब दिया गया है। इससे स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार इन हिसाबों से पकाव-जनित हानियों का पता लगाया जा सकता है और उन्हें दूर किया जा सकता है।

प्रारम्भिक पकाव भट्ठी का उत्पादन

चटके हुए पात्र	..	३०९	३२	३४
टूटे पात्र	.	२५	४९	४४
छोटी-छोटी परत टूटे हुए पात्र	.	१७	१४	२५
धब्बेदार पात्र	.	१६	४३	३०
धूम लेपित पात्र	.	०२	०१	—
दोषपूर्ण बनावटवाले पात्र	..	०५	२७	१
प्रतिशत हानि		<u>१०४</u>	<u>१६६</u>	<u>१४६</u>

इन आँकड़ों को ध्यान से देखने पर एक ही भट्ठी में अधिक हानि के कारण का स्पष्ट पता चल जायगा।

नीचे जर्मनी के एक पोरसिलेन कारखाने के ऐसे ही आँकड़े दिये गये हैं।

उच्च तनाव विद्युत्-रोधक

दोषहीन	..	१०४	२७३
धब्बेदार	..	२	८
चटके हुए	.	१२	९८
टूटे हुए	..	१३	८
योग		<u>१३१</u>	<u>३८७</u>

इन आँकड़ों से दूसरी भट्ठी में चटकने के कारण अत्यधिक हानि का पता लग जाता है, जिसको आगे के पकावों में सुधारा जा सकता है।

न्यून तनाव विद्युत्-रोधक

दोषहीन		२४००	३०००
धब्बेदार	.	६५	३०
चटके हुए	..	१९०	४७
टूटे हुए	..	८	१५
योग		<u>२६६३</u>	<u>३०९२</u>

इन आँकड़ों से केवल उन दोषों का ही पता नहीं चलता, जो भट्ठी में आ सकते हैं,

वरन् एक कारखाने में बनी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की हानि का भी पता चल जाता है जिससे उनका मूल्य-निर्धारण करते समय बड़ी सहायता मिलती है। इस प्रकार का अनुमान निम्नलिखित आँकड़ों से लगाया जा सकता है, जो इंग्लैण्ड के मृत्पात्र कारखाने से लिये गये हैं।

प्रारम्भिक पकाव में विभिन्न प्रकार के पात्रों की औसत हानि

प्याले	७ प्रतिशत
तश्तरी	१३ "
हाथ धोने का छोटा पात्र	१७ "
प्यालियाँ	१६ "
चायपात्र	१० "
५" प्लेट	१० "
८" प्लेट	१० "
जग	८ "

कारखाने के विभिन्न हिस्साव रखने का अधिकतम लाभ कारखाने के आन्तरिक प्रबन्ध तथा व्यापारिक उद्देश्यों में होता है। जब कारखाने के प्रत्येक मजदूर के उत्पादन का हिस्साव, प्रत्येक विभाग के उत्पादन का हिस्साव तथा पूरे कारखाने के उत्पादन का हिस्साव रखा जाता है, तो विभिन्न विभागों में इस ज्ञान का आदान-प्रदान हो सकता है।

कारीगरों के व्यक्तिगत उत्पादन हिस्साव से वस्तु का उत्पादन-मूल्य तथा कारीगर की मजदूरी निर्धारित करने में सीधी सहायता मिलती है। अधिकारियों द्वारा किसी मजदूर की असाधारण कार्य-क्षमता व योग्यता की सराहना करने से कारीगरों को व्यक्तिगत ही नहीं, वरन् पूरे कारीगर-समूह को उत्साह मिलता है और कारीगरों की कार्य-क्षमता का स्तर बढ़ जाता है। लगभग ३० वर्ष पूर्व भारतीय मृद्-वस्तु कारीगर जिम्गर जॉली यन्त्र पर केवल ३००-४०० चाय प्याले ही बनाते थे, परन्तु अब विदेशों के कारखानों के कारीगरों की कार्य-क्षमता के ज्ञान तथा कारीगरों की उचित शिक्षा के परिणाम-स्वरूप उनकी कार्य-क्षमता इतनी बढ़ गयी है कि वे साधारणतः ९०० प्याले तथा उनमें से कुछ तो १,२०० प्याले तक बना लेते हैं। यदि कारीगरों की व्यक्तिगत कार्य-क्षमता का हिस्साव सरलता से प्राप्त हो सकता हो, तो नये स्थान पर

नियुक्त किये जानेवाले कारीगर की मजदूरी या वस्तु का उत्पादन-मूल्य पूर्व ही निर्धारित किया जा सकता है।

विभागीय हिसाब से कुल मजदूरी की सख्या तथा प्रतिदिन अनुपस्थित रहनेवाले कारीगरों की सख्या का पता चलता है। इसके अतिरिक्त विभागीय कार्य-सम्बन्धी दूसरी सूचनाएँ मिलती हैं, जैसे शक्तिव्यय, निरीक्षण-व्यय, सभी यन्त्रों, औजारों, करणों आदि की जाँच तथा उनका सफाई-व्यय, विभाग का सम्पूर्ण उत्पादन एवं विभागीय उत्पादन, विभाग के अधिकतम अपेक्षित उत्पादन का कौन-सा भाग है आदि। इन आँकड़ों से प्रबन्धको को किसी वस्तु के वास्तविक उत्पादन-मूल्य और ऊपरी व्यय (Overhead-charges) के अनुपात का पता चल जाता है। ये आँकड़े वर्तमान उत्पादन और भूतकाल के उत्पादन की तुलना करने में भी सहायक होते हैं।

यदि वास्तविक उत्पादन-मूल्य (Prime cost) और प्रबन्ध-व्यय सम्बन्धी मूल्य अर्थात् ऊपरी व्यय (Oncost) के बीच प्रत्येक मास या पखवारे के पश्चात् रेखाचित्र खींचा जाय तो किसी समय की विभाग की दक्षता इस रेखाचित्र से स्पष्ट देखी जा सकती है। इन आँकड़ों का उचित उपयोग करने के लिए यह ज्ञान होना आवश्यक है कि ये आँकड़े प्राप्त कैसे किये जाते हैं। विभागीय आँकड़े प्राप्त करने की उचित विधि के चुनाव का उत्तरदायित्व कारखाने के प्रबन्धक पर होना चाहिए।

पूरे कारखाने के उत्पादन का हिसाब विभागीय प्रगति का मापदण्ड होता है। पूरे कारखाने के उत्पादन का हिसाब प्रायः बेचे जानेवाले उत्पादन से लगाया जाता है। परन्तु कभी-कभी वह विभिन्न विभागों के उत्पादन के आधार पर भी बनाया जाता है। पूरे कारखाने के हिसाब में निर्माण से सीधा सम्बन्ध रखनेवाले तथा कुछ ऐसे व्यय भी, जिनका निर्माण से सीधा सम्बन्ध नहीं है (जैसे दूकान खोलने का व्यय, कार्यालय का व्यय आदि), लगा लेने चाहिए। ये व्यय जो उत्पादन-मूल्य में नहीं आते हैं, ऊपरी व्यय कहलाते हैं। इन्हीं को इंग्लैण्ड में ऑन-कास्ट (Oncost) तथा अमेरिका में एक्सपेंस-बर्डेन (Expense Burden) कहते हैं। ये ऊपरी व्यय दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—(१) उत्पादन पर ऊपरी व्यय, (२) विक्रय पर ऊपरी व्यय।

उत्पादन पर ऊपरी व्यय में वास्तविक उत्पादन-व्यय के अतिरिक्त वे सभी व्यय आ जाते हैं, जो निर्मित वस्तु को कारखाने से बाहर भेजने तक होते हैं, अर्थात् वे व्यय जो वस्तु कारखाने में रहने तक होते हैं। भेजने का खर्च भी इसी में आ जाता है।

इसके बाद के व्ययों की गणना सुविधा के लिए विक्रय पर ऊपरी व्यय में की जाती है। जब तक कि नियमित रूप से वास्तविक आँकड़े नहीं रखे जायँगे, तब तक यह निश्चित करना कठिन होगा कि कारखाने में बने किसी माल पर ऊपरी उत्पादन मूल्य तथा ऊपरी विक्रय-मूल्य वास्तविक उत्पादन-मूल्य के कितने प्रतिशत रखे जायँ। इसके लिए सर्वप्रचलित विधि यह है कि ये मूल्य, वास्तविक उत्पादन-मूल्य के उतने प्रतिशत के बराबर रखे जायँ, जो वास्तविक आँकड़ों से प्राप्त होता है। परन्तु इस साधारण विधि में तब तक भूल की सम्भावना रहती है, जब तक कि कारखाने का कार्य किसी प्रामाणिक स्तर पर न चलने लगे और कारखाने में असाधारण अवस्था उत्पन्न होती रहने की सम्भावना रहे।

एक ऐसा विस्तृत प्रगति-निर्देश भी रखा जाय जिसे देखकर ही पता चल जाय कि प्रत्येक उत्पादन के लिए कितना कच्चा माल कारखाने में आया, इस कच्चे माल का कितना भाग निर्माण में प्रयुक्त हो चुका है और कितना भाग अभी आगे के उपयोग के लिए बचा रखा है। कारखाने में इस बात का ज्ञान रखना आवश्यक है कि इस समय प्रत्येक प्रकार का कच्चा या निर्मित माल कहाँ पर है, जो केवल प्रगति-निर्देश से ही सम्भव है।

प्रगति-निर्देश से बहुत-सी बातों की संक्षिप्त तथा महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है, कारण प्रगति-निर्देश में वस्तु-निर्माण के प्रारम्भ से अन्त तक की सभी बातों का उल्लेख रहता है। किसी विभाग के कार्य में बाधा का स्पष्ट पता इससे चल जाता है और यदि किसी विभाग के कार्य में आवश्यकता से अधिक समय लगता है, तो इसका विवरण भी इसमें रहता है। इस निर्देश से प्रबन्धक को पता चल जाता है कि निर्मित माल की कितनी माँगों को वह समय के अन्दर पूरा कर सकेगा और शेष माँगों के पूरा होने में कितनी देर होगी।

उत्पादन-मूल्य निर्धारण—निर्मित माल का वैज्ञानिक आधार पर उत्पादन-मूल्य निर्धारण एक ऐसा विषय है, जिस पर निर्माणकर्ता को बड़ी सावधानी से विचार करना चाहिए। वास्तविक उत्पादन मूल्य के ज्ञान के बिना निर्माणकर्ता यह नहीं जान सकता कि लाभ-सहित वह अपनी वस्तु को किस मूल्य पर बेचे तथा उसकी सस्था में कहाँ पर दोष है, जिसे दूर करने के लिए वह उचित कदम उठा सके। उदाहरणार्थ पंजाब तथा उत्तर प्रदेश की अपेक्षा बंगाल एवं बिहार में कोयला सस्ता है। अतः बिहार-बंगाल के कारखानों के प्रबन्धकों की अपेक्षा पंजाब-उत्तर प्रदेश के कारखानों के

प्रबन्धको को ईधन-व्यय की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। मूल्य का हिमाव रखने की उचित और नियमित विधि से किसी कारखाने की स्थिति काफी सुधर जाती है, विशेष कर उस समय जब कि देशी तथा विदेशी कारखानों में स्पर्धा चल रही हो।

किसी कारखाने में उत्पादन मूल्य निर्धारित करने समय दो विभिन्न प्रकार के व्यय-विषयो पर विचार किया जाता है। प्रथम प्रकार के व्यय-विषयो में वे व्यय हैं जो स्थिर नहीं होते, जैसे कच्चे पदार्थों का मूल्य, मजदूरी तथा प्रबन्ध-व्यय आदि। द्वितीय प्रकार के विषयो में वे व्यय-विषय आते हैं जो स्थिर होते हैं, जैसे यन्त्रों व इमारतों का ह्याम-मूल्य, पूंजी पर दिया जानेवाला व्याज, बीमा की किस्त आदि। इन सभी विषयो को दो निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(अ) उत्पादन-व्यय—कच्चे पदार्थ, मजदूरी, निरीक्षण, शक्ति-खपत और निर्मित माल में खराब माल निकल जाने के सम्बन्ध में जो व्यय होते हैं वे वास्तविक उत्पादन-मूल्य में आते हैं। इमारत, मेज-कुर्सी आदि कार्यालय की सामग्री, यन्त्रों, करणों तथा भट्ठियों का ह्यासव्यय तथा मरम्मत-व्यय, भण्डार-व्यय तथा माल भेजने सम्बन्धी व्यय, प्रबन्ध तथा व्यवस्था सम्बन्धी व्यय, इमारतों तथा यन्त्रों पर बीमाव्यय और पूंजी पर दिया जानेवाला व्याज ऊपरी उत्पादन-व्यय में आते हैं।

(आ) ऊपरी विक्रय-व्यय—इस व्यय वर्ग में कार्यालय की व्यवस्था का व्यय, डाइरेक्टरों का वेतन, मुख्य कार्यालय की इमारत तथा सामग्री का ह्याममूल्य तथा मरम्मत-व्यय, स्टेशनरी, टिकट-तार, बैंक कटौती-व्यय, कानूनी तथा हिमाव-निरीक्षण-शुल्क, विक्रय पर दी जानेवाली कटौती, कहीं आने-जाने का भत्ताव्यय तथा विज्ञापन-व्यय आदि आते हैं।

निर्माण में मजदूरी और कच्चे माल के व्यय का निर्धारण करना कठिन नहीं होता, कारण वह दिये गये वेतन और कच्चे माल के क्रय मूल्य से मालूम पड़ जाता है। परन्तु यन्त्रों के ह्यासव्यय का पुराने हिसाब से ही पता चल सकता है। इस क्षेत्र में अमेरिका के 'ब्यूरो ऑफ स्टैंडर्ड्स' द्वारा प्रकाशित मृद्-उद्योग यन्त्रों और करणों के जीवन तथा ह्यास-सम्बन्धी आँकड़े काफी सहायक सिद्ध होंगे।

यदि कारखाना प्रतिदिन चलता है तो कारखाने की इमारतों आदि का औसत जीवन-काल २५ वर्ष लिया जाता है, और ह्यासव्यय वार्षिक ४ प्रतिशत के हिमाव में लगाया जाता है। मेज, कुर्सी आदि सामानों का ह्यामव्यय ६१ प्रतिशत वार्षिक लगाया जाता है।

मृद-वस्तुओं के भण्डार-व्यय प्रायः वस्तु के मूल्य के १० प्रतिशत लगाये जाते हैं। यह व्यय इसलिए इतना अधिक रखा जाता है कि एक तो भण्डार की निर्मित वस्तुओं पर रुपया फँस जाता है, दूसरे भण्डार-गृह का हिसाब रखनेवाले एव उसके सहायक को वेतन देना पड़ता है, तीसरे भण्डार-गृह में वस्तुओं की टूट-फूट भी होती है। मृद-उद्योग के मुख्य यन्त्रों तथा करणों का जीवन-काल और उनके ह्रासव्यय का विवरण नीचे दिया जाता है—

नाम यन्त्र	जीवन-काल वर्षों में	ह्रास
चूर्णक	१५	६३ प्रतिशत
बाल यन्त्र	१५	६३ "
मिश्रक यन्त्र	१२	८३ "
पग यन्त्र	१४	७ "
जल-निष्कासन यन्त्र	१५	६३ "
जिग्गर यन्त्र	१०	१० "
मिट्टी घोला पम्प	१०	१० "
ईंट बनाने का यन्त्र	१२½	८ "
टाली यन्त्र	१७	६ "
चलानिया	८	१२½ "
मोने	५	२० "
भट्टिया	१५	६३ "

पैकिङ्ग व्यय प्रायः वस्तु के मूल्य का एक प्रतिशत लगाया जाता है। परन्तु जब वस्तु अधिक टूटनेवाली हो और दूर भेजनी हो, तो ५ प्रतिशत तक हो जाता है। अच्छे पैकिङ्ग के लिए सावधानी और निरीक्षण आवश्यक है। उचित पैकिङ्ग के अभाव में रास्ते में सामान नष्ट हो सकता है।

गोदाम पर या उससे बाहर सीमित क्षेत्र में निर्मित माल पहुँचाने का व्यय माल के मूल्य का १ से २ प्रतिशत लगाया जाता है।

विभिन्न मृद-वस्तुओं के मूल्य-निर्धारण के लिए विभिन्न देशों के कुछ आँकड़े दिये जाते हैं। ये आँकड़े काफी पुराने हैं, जिन्हें लेखक ने स्वयं देश विदेश के इन कारखानों में जाकर शिक्षा प्राप्त करते समय इकट्ठा किया था। परन्तु इससे गणना-विधि में कोई अन्तर नहीं आता।

(१) जर्मनी के एक कारखाने में J, प्रकार के ६" ऊँचे डबल कटोरेवाले १००० विद्युत् रोधकों की निर्माण-मूल्य-गणना—

इस प्रकार का प्रत्येक रोधक सूखी अवस्था में लगभग एक किलोग्राम भारी होता है। पकाने के लिए उसी मिश्रण-पिण्ड से बने हुए प्रत्येक आधार का भार लगभग ०.१५ किलोग्राम होता है। अतः १००० रोधकों को बनाने के लिए आवश्यक मिश्रण-पिण्ड की मात्रा ११५० किलोग्राम होगी।

मिश्रण-पिण्ड का औसत मूल्य ६३ राइम मार्क (R m) प्रति हजार किलोग्राम मान लेने पर हम देखते हैं कि—

मिश्रण-पिण्ड का मूल्य	७२ ८५ १० मा०
रोधक बनाने का व्यय	२७ ०० ,, ,,
प्रलेप और उसमें डुबाने का व्यय	२ ३५ ,, ,,
पकाने का व्यय	१४० ०० ,, ,,
	<hr/> २४१ ८० ,, ,,
पकाने में हानि (५%)	१२ १० ,, ,,
	<hr/> २५३ ९० ,, ,,
ऊपरी व्यय, शक्तिव्यय और भण्डार-व्यय (२०%)	५० ८० ,, ,,
पैकिङ्ग और माल पहुँचाने का व्यय (५%)	१२ ७० ,, ,,
कार्यालय तथा अन्य ऊपरी व्यय (३०%)	७६ २० ,, ,,
सम्पूर्ण निर्माण तथा ऊपरी व्यय	<hr/> ३९३ ६० ,, ,,

३० वर्ष पूर्व जब ये आँकड़े लिये गये थे, तो उस समय एक रा० मा० का मान भारतीय १२ आने के बराबर था।

(२) इंग्लैण्ड के श्वेत मृत्पात्र कारखाने में चाय के प्याले, प्याली के १००० जोड़े बनाने की व्यय-गणना—

प्याले और प्याली के प्रत्येक जोड़े का भार लगभग ११ औंस होता है। अतः १००० जोड़ों के लिए ११००० औंस मिश्रण-पिण्ड की आवश्यकता होगी।

इंग्लैण्ड में मिश्रण-पिण्ड का मूल्य ६.२५ पौंड प्रति टन लगाने पर—

मिश्रण-पिण्ड का मूल्य	३९.२८ शि०
१००० जोड़े बनवाने का व्यय	३८ ०० ,,

हैडिल लगाने और सफाई का व्यय	३० ००	शि०
प्रारम्भिक पकाव व्यय	७५ ००	"
	<u>१८२ २८</u>	"
प्रारम्भिक पकाव भट्ठी में हानि (१०%)	१८ २२	"
प्रलेपन व्यय	५ ५०	"
प्रलेप पकाव व्यय	८५ ००	"
	<u>२९१ ००</u>	"
प्रलेप पकाव भट्ठी में हानि (१५%)	४३ ६०	"
	<u>३३४ ६०</u>	"
शक्ति तथा निरीक्षण आदि ऊपरी व्यय (२०%)	६६ ९२	"
कार्यालय आदि का ऊपरी व्यय (३०%)	९० ३८	"
पैकिङ्ग व सामान पहुँचाने का व्यय (५%)	१६ ७३	"
सम्पूर्ण निर्माण तथा ऊपरी व्यय	<u>५०१ ६३</u>	"

इंग्लैण्ड के एक शिलिंग को भारतीय १२ आने के बराबर मानने से इंग्लैण्ड के कारखाने में चाय के प्याले प्याली के १००० जोड़े बनाने में ३८१ रु० ७ आ० व्यय होगा।

(३) भारतीय कारखाने में अर्द्ध पोरसिलेन प्रकार के चाय के प्याले, प्याली के १००० जोड़े की निर्माण-मूल्य-गणना—

भारत में मिश्रण-पिण्ड का मूल्य ५५ रु० प्रति टन और १००० जोड़ों का भार ११००० औंस लेने पर हम देखते हैं कि—

	रु०	आ०
मिश्रण-पिण्ड का मूल्य	१६	१४
१००० जोड़े बनवाने का व्यय	२	८
हैडिल लगाने और सफाई का व्यय	२	०
प्रारम्भिक पकाव व्यय	२०	०
	<u>४१</u>	<u>६</u>
प्रारम्भिक पकाव में हानि (१५%)	६	४
प्रलेपन व्यय	२	६
प्रलेप पकाव व्यय	३०	०
	<u>८०</u>	<u>०</u>

प्रलेप पकाव हानि (20%)	१६	०
	१६	०
भण्डार आदि के ऊपरी व्यय (20%)	१०	४
कार्यालय तथा अन्य ऊपरी व्यय (६०%)	२८	१२
पैकिङ तथा माल भेजने का व्यय (५%)	४	१२
सम्पूर्ण निर्माण तथा ऊपरी व्यय	१४८	१२

आजकल कच्चे माल का मूल्य तथा मजदूरी की दर बढ़ गयी है। परन्तु उपर्युक्त गणना विधि से वर्तमान मूल्य तथा मजदूरी के आधार पर आधुनिक निर्माण-मूल्य निर्धारित करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

आधुनिक विज्ञापन—किसी कारखाने की सफलता मुख्य रूप से उसके निर्मित माल की बिक्री पर निर्भर करती है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि कारखाने की सफलता का केवल २५% भाग माल के सफल निर्माण तथा शेष ७५% भाग पूर्ण रूप से माल की बिक्री पर निर्भर करता है। निश्चित रूप से यह स्पष्ट हो चुका है कि किसी वस्तु की अधिक बिक्री नियमित तथा वैज्ञानिक विज्ञापन के बिना नहीं चल सकती। विज्ञापन उन वस्तुओं की माँग बढ़ाता है, जिनसे अब तक ग्राहक या तो अपरिचित था या नवीन ग्राहक की उनके प्रति अच्छी धारणा न थी। नियमित विज्ञापन से माल की माँग दो प्रकार से बढ़ती है—एक तो उससे वस्तु का विज्ञापन होता है, ग्राहक वस्तु से परिचित हो जाता है। दूसरे उन लोगों में वस्तु की माँग उत्पन्न करता है, जो अब तक उस वस्तु का व्यवहार ही नहीं करते थे। इस प्रकार विज्ञापन पुराने ग्राहकों को स्थायी ग्राहक बनाता है और नवीन ग्राहक उत्पन्न करता है। विज्ञापन तुरन्त बिक्री भले ही न बढ़ा सके, परन्तु ग्राहक को उस वस्तु का नाम, चिह्न, विशेष गुण आदि बताकर उसको भविष्य में उस प्रकार की वस्तु की आवश्यकता पड़ने पर इसी वस्तु के खरीदने को तैयार करता है। उदाहरणार्थ कल्पना कीजिए कि एक कारखाना साधारण मिट्टी से श्रेष्ठ प्रकार के अम्लरोधक प्रलेप-युक्त पात्र बनाता है, जो बाजार के इस प्रकार के दूसरे पात्रों से श्रेष्ठ हैं। यदि कारखाना नियमित विज्ञापन द्वारा जनता को अपने पात्रों के विशेष गुण और लाभ बताता है तो इन पात्रों के प्रति ग्राहक की रुचि बढ़ेगी और उसे आवश्यकता पड़ने पर यह नवीन अम्लरोधक पात्र खरीदने की प्रेरणा देगी, यद्यपि वह साधारण मिट्टीपात्रों के प्रयोग का विरोधी था। नवीन निर्मित वस्तु

की विशेषताएँ विज्ञापन व प्रचार द्वारा ग्राहको को स्पष्ट बता देनी चाहिए। भारतीय चाय और काफी की 'सेस' कमेटी के विज्ञापन और प्रचार से हम लोग भली भाँति परिचित हैं। लगभग ४० वर्ष पूर्व चाय को मानव सस्थान के लिए एक मन्द विष समझा जाता था और उत्तरी भारत में काफी को जनता जानती तक नहीं थी। परन्तु इसी विज्ञापन और प्रचार के कारण आज शहरों तथा बहुत से गाँवों में भी शायद ही कोई घर ऐसा होगा जहाँ चाय या काफी का प्रयोग न होता हो।

अधिकांशतः देखा जाता है कि किसी सुपरिचित वस्तु की बिक्री की गति भी उसके लिए किये गये विज्ञापन के अनुपात में होती है। विज्ञापन ढीला करते ही बिक्री घट जाती है और विज्ञापन बढ़ाने पर बिक्री पुनः बढ़ जाती है। निर्माणकर्ता द्वारा किया जानेवाला वज्ञानिक विज्ञापन इस सीमा तक विस्मृत हो चुका है कि पहले की भाँति साधारण ग्राहक के लिए दूकानदार अब विज्ञापक का काम नहीं कर पाता, वरन् प्रायः ग्राहक स्वयं पूर्व निश्चय करके दूकान पर जाता है कि उसे किस कारखाने की कौन-सी वस्तु लेनी है। परिणाम-स्वरूप दूकानदार भी उसी प्रकार की वस्तुओं को अपनी दूकान में अधिक रखता है जिनका विज्ञापन अधिक होता है। दूकानदार कम विज्ञापनवाली और ग्राहको से अपरिचित वस्तुओं को अपनी दूकान में रखने का साहस ही नहीं कर पाता। ग्राहक जिस वस्तु को खरीदना चाहता है उसके गुण और उपयोगिता में वह निर्माणकर्ता द्वारा किये गये विज्ञापन की सहायता से पूर्व-परिचित होता है। अब दूकान जाने में पूर्व ही वह निश्चय कर लेता है कि उसे कौन वस्तु खरीदनी है।

उन प्रकार विज्ञापन करना व्यय नहीं, वरन् लाभ हेतु लगी हुई पूँजी है। नियमित विज्ञापन में धीरे-धीरे ग्राहको में वस्तु के प्रति जो आकर्षण और सद्भावना पैदा होती है, वह कभी-कभी अमूल्य सिद्ध होती है। अतः यह सोचना भूल है कि विज्ञापन से वस्तु का मूल्य बढ़ता है, जो अन्त में ग्राहक को ही देना पड़ता है। बल्कि दूसरी ओर विज्ञापन से वस्तु की माँग बढ़ती है, जिससे निर्माणकर्ता व्यापारिक मात्रा में अपेक्षाकृत कम मूल्य में अधिक वस्तुओं को बगा सकता है। विज्ञापन के कारण माँग बढ़ जाने से थोक व्यापारियों की भी आवश्यकता नहीं रहती है और व्यापारिक दृष्टि भी कम की जा सकती है, जिससे ऊपरी विक्रय-व्यय में काफी कमी आ जाती है। नियमित विज्ञापन के विषय में सबसे प्रमुख बात यह है कि विज्ञापित वस्तु उत्तम गुणों की ही हो, जिसमें जगत् में सफलता ही मिले। वस्तु के विषय में विज्ञापन में कही गयी विशेषताएँ व गुण वस्तु में अवश्य रहने चाहिए। सन्तुष्ट ग्राहक सर्वोत्तम और निरन्तर विज्ञापनकर्ता होते हैं, कारण वे दूसरों से उस वस्तु के प्रयोग करने का अनुरोध करते हैं।

एक सफल विज्ञापनकर्ता के अन्दर असाधारण निरीक्षण-प्रतिभा होनी चाहिए, जिससे वह प्रतिदिन की घटनाओं को जान सके और उनका लाभ उठा सके। उसे जानना चाहिए कि विज्ञापन को किस प्रकार आकर्षक और प्रभावकारी बनाया जा सकता है। सर्वप्रसिद्ध अजन्ता चित्रकारी पर आधारित विज्ञापन-चित्रों ने भारतीय विज्ञापन-क्षेत्र में एक नया मोड़ ला दिया है। ये शिक्षित वर्ग की सुन्दरता की कल्पनाओं के अनुसार होते हैं और नवीन चित्रों से ग्राहकों को आकर्षित करने हैं। एक कुशल वैज्ञानिक विज्ञापनकर्ता का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि वह अपने विषयों को इस प्रकार प्रदर्शित करे कि उनमें ध्यान आकर्षित करने की शक्ति हो। विज्ञापन का प्रदर्शन-मूल्य कई प्रकार से बढ़ाया जा सकता है, जैसे चित्रों के द्वारा, रंगीन नक्शों व हाशियों के द्वारा, आकर्षक शीर्षकों व नारों के द्वारा, नियान प्रकाश तथा अन्य रंगीन प्रकाशों के प्रभाव आदि के द्वारा। विज्ञापन की एक नयी विधि है, जिसमें आकाश में वायुयान द्वारा थुएँ से वस्तु के विषय में कुछ लिखा जाता है। यह सभी वर्गों के मनुष्यों को बहुत ही आकर्षक होता है। यद्यपि इस प्रकार के विज्ञापन क्षणिक होते हैं, परन्तु वे युवा, वृद्ध सभी के मस्तिष्क में स्थायी प्रभाव डालते हैं। आजकल सिनेमा-गृहों में रंगीन चित्र द्वारा विज्ञापन काफी लाभकर सिद्ध हो रहे हैं।

जब बाजार में कोई नयी वस्तु लानी हो या पुरानी वस्तु के प्रति ग्राहकों की बुरी धारणा को दूर करना हो, तो ऐसी दशा में विज्ञापन शिक्षात्मक और उपदेशात्मक होना चाहिए। इस प्रकार एक नये टूथपेस्ट को बाजार में लाते समय विज्ञापन में दाँतों तथा मसूढ़ों का स्वच्छता सम्बन्धी विज्ञान सक्षेप में रहना चाहिए तथा इस टूथपेस्ट की दैनिक प्रयोग सम्बन्धी विशेषताओं को रखना चाहिए। धार्मिक हिन्दुओं के हृदय से चीनी मिट्टी पात्रों और काँच-कलई पात्रों के प्रति घृणा को सुव्यवस्थित शिक्षात्मक विज्ञापन और प्रचार द्वारा दूर किया जा सकता है। उन्हें अच्छी प्रकार समझा देना चाहिए कि देशी चीनी पात्रों और काँच कलई पात्रों के बनाने में हड्डी की राख का प्रयोग अब नहीं किया जाता, जैसा कि कुछ प्रकार के विदेशी पात्रों में होता है। जहाँ एक बार इस धार्मिक हिन्दू वर्ग की जनता को इस बात का विश्वास हो गया और उसने इन भारतीय पात्रों को खरीदना प्रारम्भ कर दिया, तो अनुमान लगा लीजिए कि हमारे पोरसिलेन और काँच कलई पात्रों की माँग कितनी बढ़ जायगी।

जैसा कि हम जानते हैं, वैज्ञानिक विज्ञापन का उद्देश्य बिक्री बढ़ाना तथा परिणाम-स्वरूप व्यापार का लाभ बढ़ाना होता है। अतः विज्ञापन-व्यय को ऊपरी उत्पादन-व्यय,

बीमाव्यय आदि की भाँति उत्पादन का ही एक अग समझना चाहिए और इसकी मात्रा का निर्धारण कुछ निश्चित बातों के आधार पर होना चाहिए। परन्तु कोई ऐसा निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता जिसके आधार पर विज्ञापन-व्यय वास्तविक उत्पादन-व्यय के प्रतिशत के रूप में सदैव निकाला जा सके, कारण विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। इसके अतिरिक्त बाजार में पहले से बिक रहे माल का विज्ञापन-व्यय नये माल के विज्ञापन-व्यय से कम होगा। उदाहरण-स्वरूप मोटर-कार कारखाने में कार के मूल्य का एक प्रतिशत विज्ञापन के लिए पर्याप्त होगा, परन्तु मृद्-वस्तुओं को बाजार में लाने के लिए मूल्य का १० प्रतिशत भी अपर्याप्त हो सकता है।

प्रत्येक वस्तु के विज्ञापन का व्यय उस वस्तु के प्रकार पर निर्भर करता है। इसकी गणना करने की एक विधि में विज्ञापन-व्यय गत वर्ष की बिक्री का कुछ प्रतिशत रखा जाता है। दूसरी विधि में यह व्यय भावी उतने समय की अनुमानित बिक्री के आधार पर रखा जाता है, जितने समय विज्ञापन चलाना है। प्रथम विधि यद्यपि अधिक सुरक्षित है, परन्तु नयी वस्तु के लिए उपयोगी नहीं है। द्वितीय विधि की उपयोगिता अनिश्चित है, जो अनुमानित बिक्री होने या न होने पर लाभकर व हानिकर सिद्ध हो सकती है।

इसमें सन्देह नहीं कि किसी विशेष वस्तु के लिए विज्ञापन-व्यय का निर्धारण केवल अनुभव के आधार पर ही किया जाता है, परन्तु गणना का आधार निम्नलिखित तथ्यों पर होना चाहिए —

(१) विज्ञापित वस्तु का प्रकार—वस्तु बाजार में पहले से ही बिक रही है या प्रथम बार आ रही है।

(२) विज्ञापन का उद्देश्य—केवल प्रदर्शन के लिए या शिक्षात्मक साहित्य के लिए।

(३) बिक्री बाजार—वस्तु जन-साधारण के लिए है या केवल कुछ विशेष वर्ग के व्यक्तियों के लिए है।

(४) बाजार की दशा—बाजार में इस वस्तु को इस प्रकार की दूसरी वस्तुओं से स्पर्धा करनी होगी या नहीं ?

(५) कारखाने की उत्पादन-क्षमता।

घरेलू उपयोग के साधारण पात्र बनानेवाले मृद्-उद्योग कारखाने को साधारण विज्ञापन में अधिक रुपया नहीं व्यय करना चाहिए, वरन् ऐसे व्यापारियों व दुकानदारों

से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए, जो उस प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करने में और जिनका काम ऐसी वस्तुओं का बाजार में विक्री बढ़ाना है। परन्तु उनके लिए वस्तु श्रेष्ठ प्रकार की होनी चाहिए। भारत में बहुत ही कम कारखाने इस स्वार्थी सम्पर्क की सूचना पत्रों द्वारा यह सूचित कर देना चाहिए कि अमुक कारखाना इस प्रकार के इन आकारों, आकृतियों तथा गुणावाले पात्र बनाता है। भारतवर्ष में अभी रासायनिक पोरमिलेन पात्रों का निर्माण बहुत ही कम होता है। अतः जो कारखाना इस नवीन वस्तु को बाजार में लायेगा उसे उन आयात रासायनिक पोरमिलेन वस्तुओं से काफी टक्कर लेनी होगी जिनकी प्रसिद्धि बाजार में पहले से ही हो गया है। इस नवीन वस्तु का विज्ञापन वायु अन्य व्यय-विषयों के साथ विचारपूर्वक प्रारम्भ में ही निश्चित कर लेना चाहिए।

इन रासायनिक पोरमिलेन वस्तुओं के विज्ञापन का उद्देश्य केवल इनके विशेष उपयोगकर्ताओं को जैसे, स्कूल तथा कालिज की गवेषणा एवं प्रयोगशालाओं को इन वस्तुओं की प्राप्ति की सूचना दे देना है। इन वस्तुओं का विज्ञापन समाचारपत्रों में छपाने, पोस्टर छपवाने, विज्ञापन लगवाने आदि के द्वारा करने में अधिक लाभ नहीं होगा, बल्कि वैज्ञानिक पत्रिकाओं में इनका विज्ञापन अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। व्यावहारिक ज्ञान सम्बन्धी सूचनापत्र स्कूल तथा कालिज प्रयोगशालाओं में भेजे जाने चाहिए, जो कि इन वस्तुओं के सबसे बड़े प्रयोगकर्ता हैं। नवीन ग्राहकों का विश्वास प्राप्त करने के लिए मुद्रमिद्ध वैज्ञानिकों के कुछ प्रमाणपत्र इन सूचना-पत्रों के साथ होना अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। नवीन ग्राहकों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए एवं मुद्रमिद्ध व्यक्तियों के प्रमाणपत्र, जो वस्तु के प्रकार और उसकी विशेषताओं के बारे में ज्ञान रखते हैं, काफी सहायक होते हैं। इन प्रमाणपत्रों में नवीन वस्तु बाजार में विक्रय भी लगती है।

भारतवर्ष के बाजार में, विशेषतः द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्, सभी प्रकार की मृद-वस्तुओं की मांग इतनी बढ़ गयी है कि उन स्तर पर विज्ञापन की आवश्यकता सम्भवतः कभी ही पड़ती है। परन्तु वस्तु बाजार के लिए नयी हो या पुरानी ग्राहकों की किसी भी प्रकार के विज्ञापन या सूचना-पत्रों द्वारा यह बता देना आवश्यक एवं बुद्धिमत्तापूर्ण होता है कि अमुक वस्तु बाजार में प्राप्य है।

यदि कारखाना छोटा है, तो इतना विज्ञापन नहीं करना चाहिए कि माँग इतनी बढ़ जाय, जो वह पूरी न कर सके। ऐसी अवस्था में विज्ञापन के कारण कारखाने की बदनामी होती है।

प्रदर्शन-कक्ष—आधुनिक मृद्-वस्तुओं के लिए एक अच्छी तरह सजा हुआ प्रदर्शन-कक्ष बहुत ही आवश्यक है। यह प्रदर्शन-कक्ष कारखाने की वस्तुओं के प्रकार का विज्ञापन करता है। इस कक्ष में वस्तुएँ ऐसे ढंग से सजायी जानी चाहिए, कि वस्तुओं की सुन्दरता वास्तविक सुन्दरता से अधिक प्रतीत होने लगे और इस बात का ध्यान रखा जाय कि पाम-पाम रखी दो वस्तुओं की सुन्दरता में अत्यधिक अन्तर न हो। प्रदर्शन-कक्ष ऐसा सजाया जाय कि भावी ग्राहक उसमें घुसते ही अपने से कह उठे “कितने सुन्दर पात्र है।” वस्तुएँ इस प्रकार रखी गयी हों कि विभिन्न वर्ग तथा प्रकार की वस्तुएँ एक दूसरे से अलग रहे और प्रकाश का प्रबन्ध ऐसा हो कि दर्शक की आँखों में चकाचौध न उत्पन्न हो। सस्ती वस्तुएँ मूल्यवान् वस्तुओं के पास न रखी जायँ वरन् उन्हें अलग-अलग रखना उचित होता है। प्रभावकारी मृद्-वस्तु प्रदर्शन कक्ष के सजाने में वास्तव में किसी कलाकार की सहायता अपेक्षित होती है, विशेष कर उस समय जब कि सजावट की वस्तुएँ रखी गयी हों।

परिशिष्ट

सारणी—१ मृद्-उद्योग में प्रयुक्त होनेवाले पदार्थ, उनके अणु सूत्र, अणु भार तथा द्रवणांक—

वि० = विच्छेदन	ऊ० पा० = ऊर्ध्वपातन (Sublimation)
ग० = गलनशील	
अग० = अगलनशील	
रू० = रूपान्तर	(Transition)

पदार्थ नाम	अणु सूत्र	अणु भार	द्रवणांक सेण्टीग्रेडो में
अलावास्टर	$\text{CaSO}_4 \cdot 2\text{H}_2\text{O}$	१७२	१४५०
आल्वाइट	$\text{Na}_2\text{O} \cdot \text{Al}_2\text{O}_3 \cdot 6\text{SiO}_2$	५२४	१२००
पोटाश फिटकरी	$\text{Al}_2(\text{SO}_4)_3 \cdot \text{K}_2\text{SO}_4 \cdot 24\text{H}_2\text{O}$	९४८	९२
एल्यूमिना	Al_2O_3	१०२	२०४५
एल्यूमिनियम	Al.	२७	६५९
एल्यूमिना हाइड्रेट	$\text{Al}_2\text{O}_3 \cdot 3\text{H}_2\text{O}$	१५६	३००
ऐनोरा साइट	$\text{CaO} \cdot \text{Al}_2\text{O}_3 \cdot 2\text{SiO}_2$	२७८	१३००
ऐण्टीमनी	Sb.	१२०	६३०
ऐण्टीमनी आक्साइड	Sb_2O_3	२८८	६५५
आरसीनियम आक्साइड	As_2O_3	१९८	३१३
आरसीनिक आक्साइड	As_2O_5	२२९९	३१५
बेरियम कार्बोनेट	BaCO_3	१९७४	१७४०
बेरीटा	BaO	१५३४	१९२३
बेराइटीज	BaSO_4	२३३४	१५८०
बोक्साइट	$\text{Al}_2\text{O}_3 \cdot 2\text{Al}_2(\text{OH})_6 \cdot \text{XFc}_2(\text{OH})_6$	—	१८२०
बिस्मिथ नाइट्रेट	$\text{Bi}(\text{NO}_3)_3 \cdot 5\text{H}_2\text{O}$	४८४	वि०-३०

पदार्थ नाम	अणु सूत्र	अणु भार	द्रवणांक सेण्टी ग्रेडो मे
कापर सल्फेट	$\text{CuSO}_4 \cdot 5\text{H}_2\text{O}$	२४९	वि०-११० (-4H ₂ O)
क्राईओलाइट	$\text{AlF}_3 \cdot 3\text{NaF}$	२१०	१०००
डोलामाइट	$\text{Ca} \cdot \text{Mg} (\text{CO}_3)_2$	परिवर्तन-	वि०
फेल्स्पार	$\text{RO} \cdot \text{Al}_2\text{O}_3 \cdot 2-6 \text{SiO}_2$	जी०	१२००
फैरिक क्लोराइड	Fe_2Cl_6	३२५	२८२
फैरिक हाइड्रोक्साइड	$\text{Fe}_2(\text{OH})_6$	२१४	—
फैरिक आक्साइड	Fe_2O_3	१६०	१५५०
फैरिक सल्फेट	$\text{Fe}(\text{SO}_4)_3 \cdot 9\text{H}_2\text{O}$	५६२	वि०
फैरस आक्साइड	FeO	७२	१३८०
फैरस सल्फेट	$\text{FeSO}_4 \cdot 7\text{H}_2\text{O}$	२७८	वि०-१०० (-6H ₂ O)
फैरस सल्फाइड	FeS	८८	११९५
फ्लोरस्पार	CaF_2 (प्राकृतिक)	७८	१३६०
गैलेना	PbS (जुद्ध)	२३९ २८	१११४
ग्लीसर का लवण	$\text{Na}_2\text{SO}_4 \cdot 10\text{H}_2\text{O}$	३२२	१५०
गोना	Au	१९७	१०६३
गोल्ड क्लोराइड	AuCl_3	३०३ ५	वि०-२५४
ग्रेनाइट	$\text{CaSiO}_3 \cdot 2\text{H}_2\text{O}$	१७२	१४५०
ग्रेनी स्पार्	वेरास्टीज	२३३ ४	१५५०
ग्रेन पाइराइट	FeS_2	११९ ४८	१०-४५०
सीसा	Pb	२०७	३२७
लैंड एम्पेटेट	$\text{Pb}(\text{CH}_3\text{COO})_2 \cdot 3\text{H}_2\text{O}$	३७९	—
लैंड एन्टीमोनाइट	$\text{Pb}_3 (\text{SbO}_3)_2$	९८९	—
लैंड क्रोमेट	PbCrO_4	३२३	८४४
लैंड गिल्लीकेट	$\text{PbO} \cdot \text{SiO}_2$	९१३	७६६
लीथिया	Li_2O	३०	१७००
लिथार्ज	PbO	२२३	८९०
मैगनीशिया	MgO	४० ३	२८००
मैग्नेसाइट	MgCO_3 (प्राकृतिक)	—	वि०-३५०
मैग्ना लैण्ड ग्रीन	$\text{CuCO}_3 \cdot \text{Cu}(\text{OH})_2$ (प्राकृतिक)	—	वि०-२००
मैगनीज	Mn	५५	१२२०
मैगनीज कार्बोनाट	MnO_2	८७	वि०-५३५ (-०)

पदार्थ नाम	अणु सूत्र	अणु भार	प्रयोगिक मैग्नीशियम
मैगनस आक्साइड	MnO	७१	१६५०
संगमरमर	CaCO_3	१००	त्रि०-१००
मिनियम	Pb_3O_4	६८५	त्रि०-१००
मस्कोवाइट	$\text{K}_2\text{O} \cdot 3\text{Al}_2\text{O}_3 \cdot 6\text{SiO}_2 \cdot 2\text{H}_2\text{O}$	७१६	—
निकिल	Ni	५८७	१६५५
निकिल आक्साइड	NiO	७४७	२०९०
शोरा या नाइट्र पोटाश	KNO_3	१०१	३३८
नाइट्र सोडा	NaNO_3	८५	३१०
और्थोक्लेज	$\text{K}_2\text{O} \cdot \text{Al}_2\text{O}_3 \cdot 6\text{SiO}_2$	५५८	१०००
पर्ल ऐश	K_2CO_3	१३८	९००
प्लैटीनम	Pt	१९५	१७३३
पोटाश-क्रोमेट	$\text{K}_2\text{Cr}_2\text{O}_7$	२९४	९६८
पोटाश-डाईक्रोमेट	$\text{K}_2\text{Cr}_2\text{O}_7$	२९४	३९८
पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड	KOH	५६	३६५
पोटाश आक्साइड	K_2O	९४	—
पाइरोलूसाइट	MnO_2 (प्राकृतिक)	८७	अग०
स्फटिक	SiO_2 केलाम	६०	१८७०
रीलगर	As_2S_3	२४६	—
लाल सीसा	Pb_3O_4	६८५	—
रूटाइल	TiO_2	८०	१७००
साल्टपीटर	KNO_3	१०१	३३८
सेलेनाइट	जिप्सम देखो	१७२	१४५०
सेलेनियम	Sc	७९	२१७
सिडराइट	FeCO_3 प्राकृतिक	११५८	वि०-८००
सिलीका (क्रिस्टोबेलाइट)	SiO_2	६०	१७००
सिलीसिक अम्ल	H_2SiO_3	७८	१७१०
सिलीमेनाइट	$\text{Al}_2\text{O}_3 \cdot \text{SiO}_2$	१६२	१८००
सिल्वर	Ag	१०८	९६१
साबुन पत्थर	टाल्क देखो	३७८	१५००
सोडा	Na_2O	६०	—
सोडा ऐश	Na_2CO_3	१०६	८६०
सोडियम क्लोराइड	NaCl	५८५	८००
सोडा केलस	$\text{Na}_2\text{CO}_3 \cdot 10\text{H}_2\text{O}$	२८५	६०

पदार्थ नाम	अणु सूत्र	अणु भार	द्रवणांक सेन्टी ग्रेडो मे
मॉडियम क्रोमेट	$\text{Na}_2\text{Cr}_2\text{O}_7 \cdot 10\text{H}_2\text{O}$	३४२	१९९२
मॉडियम डार्क क्रोमेट	$\text{Na}_2\text{Cr}_2\text{O}_7 \cdot 2\text{H}_2\text{O}$	२९८	वि-१०० (-2H ₂ O)
मॉडियम मिलीकेट	$\text{Na}_2\text{O} \cdot \text{SiO}_2$	१२२	१०८८
स्टैनिक क्लोराइड	SnCl_4	२६१	३३
स्टैनिक आक्साइड	SnO_2	१५१	वि-११२७
स्टीअटाइट	टाल्क देखो	३७८	१५००
टाल्क	$3\text{MgO} \cdot 4\text{SiO}_2 \cdot \text{H}_2\text{O}$	३७८	१५००
टिन	Sn	११९	२३२
टिकाल	प्राकृतिक बोरेक्स	—	—
टिटैनियम	Ti	४८	१८००
टिटैनियम आक्साइड	TiO_2	८०	१८२५
यूरेनियम	U	२३८	१६८८
यूरेनियम आक्साइड	$\text{UO}_2, \text{U}_3\text{O}_8$	२७०, ७७९	२१७६, वि०
श्वेत सीमा या सफेदा	$2\text{PbCO}_3 \cdot \text{Pb(OH)}_2$	७७५	वि०
खडिया	CaCO_3 (मृदु प्राकृतिक रूप)	१००	वि०
बिलेमाइट	$2\text{ZnO} \cdot \text{SiO}_2$	२२२	—
विदेराइट	BaCO_3 प्राकृतिक	१७९४	वि०
ओलास्टोनाइट	$\text{CaO} \cdot \text{SiO}_2$ प्राकृतिक	११६	१५४०
जस्ता	Zn	६५४	४१९५
ज़िंक आक्साइड	ZnO	८१	१९७५
ज़िंक सल्फेट	$\text{ZnSO}_4 \cdot 7\text{H}_2\text{O}$	२८७	६०-३९
ज़िरकोन	ZrSiO_4	१८३	२५५०
ज़िरकोनिया	ZrO_2	१२२	२७१५

नोट—ये द्रवणांक निम्नलिखित दो पुस्तको से लिये गये हैं।

- १ Metallurgical Problems by Allinson Butts
- २ Handbook of Chemistry and physics 1952 Edition,
Edited by Charles D Hodgman (U. S. A)

(२) मृत्तिका-उद्योग के लिए कुछ उपयोगी सम्बन्ध—

(अ) एक घनफुट विभिन्न पदार्थों का भार—

पानी	६२ २३/४ पौण्ड	
अग्निमिट्टी	८५ पौण्ड	(लगभग)
साधारण रेत	१०४	„
जिप्सम प्लास्टर	१०५	„
साधारण मिट्टी	१३६	„
शेल मिट्टी	१६२	„
बिना बुझा चूना	५०	„
अग्नि-डॉट	१२३	„
ग्रेनाइट	१६५	„

(आ) भार समानताएँ—

एक तोला	= ११ ५७ ग्राम
„ औंस	= २८ ३५ ग्राम
„ पौण्ड	= ४५३ ५९ ग्राम
„ टन	= २२४० पौंड
	= १०१६ ०५ किलोग्राम
„ किलोग्राम	= २ २३५ पौंड

(इ) आयतन समानताएँ—

एक पाइण्ट	= २० औंस
एक लिटर	= १ ७६ पाइण्ट
	= ६१ ०३ घन इंच
	= १००० घन सेंटीमीटर

(ई) लम्बाई समानताएँ—

एक इंच	= २ ५४ सेंटीमीटर
एक मीटर	= ३९ ३७ इंच
„ किलोमीटर	= ० ६२१ मील

(उ) अग्नि-ईंटो के प्रामाणिक आकार—

- (I) ९" ४ $\frac{1}{2}$ " २"
- (II) ९" ४ $\frac{1}{2}$ " २ $\frac{3}{4}$ "
- (III) ९" ४ $\frac{1}{2}$ " २ $\frac{1}{2}$ "

चपटी पत्ती हुई ३२ अग्नि-ईंटे एक वर्ग गज या ९ वर्गफुट स्थान घेरेंगी ।

किनारों (लम्बाई व ऊँचाई के तल पर) पर पड़ी हुई प्रथम प्रकार की ४८ अग्नि-ईंटे एक वर्ग गज स्थान घेरेंगी ।

पारिभाषिक शब्दावली

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
अंशांकन	Graduation	
अर्काचीयपन	Devitrification	काँच की वस्तुओं में के रास बन जाना।
अणु-एकत्रीकरण	Polymerisation	जिस क्रिया में किसी पदार्थ के कई अणु मिलकर एक नये पदार्थ का अणु बनाने हैं।
अतिशीतित	Supercooled	
अधोदृश्य	Plan	
अनुज्ज्वल श्वेत	Dull white	
अनुप्रस्थ काट	Cross-Section	
अपकेन्द्र पम्प	Centrifugal pump	
अपद्रव्य	Impurity	
अभिदृश्य लेंस	Objective lens	
अभिलेखा यन्त्र	Recorder	
अमोनिया द्राव	Ammonia liquor	
अम्ल	Acid	
„ नमक का	Hydrochloric Acid	
„ शोरे का	Nitric Acid	
„ गन्धक का	Sulphuric Acid	
अम्लराज	Aqua Regia	नमक तथा शोरे के अम्लों का विशेष मिश्रण।
अयस्क	Ore	धातुओं का प्राकृतिक रूप।
अयस्कण	Reduction	जिस क्रिया द्वारा आक्साजन का अनुपात कम हो जाता है तथा हाइड्रोजन का अनुपात बढ़ जाता है।

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
अवक्षेप	Precipitate	
अवक्षेपण	Precipitation	
अवशोषण	Absorption	
आकीर्णन	Dispersion	किसी पदार्थ के सूक्ष्म कणों का दूसरे पदार्थ में समाग्न रूप में फैल जाना ।
आकुचन	Contraction	किसी पदार्थ की लम्बाई, क्षेत्रफल या घनफल में कमी आ जाना ।
आक्सीकरण या ओषदीकरण	Oxidation	यह क्रिया अवकरण की उलट्टी है जिसमें आक्सीजन का अनुपात बढ़ जाता है तथा हाइड्रोजन का अनुपात कम हो जाता है ।
आन्तरिक दहन इंजिन	Internal-combustion engine	यथा मोटरकार का इंजिन, डीजल इंजन आदि ।
आपेक्षिक घनत्व (आ० घ०)	Relative density (R.D.)	किसी पदार्थ के तथा ४ सं० वाले पानी के घनत्वों का अनुपात ।
आभा	Tinge or shade	
आर्द्रता	Humidity	
आर्द्रताग्राही	Hygroscopic	जो पदार्थ वातावरण में नमी अवशोषित कर लेते हैं ।
आलम्बन	Suspension	किन्हीं ठोस कणों का पानी में बिना धुले तैरते रहना ।
आवृत्ति	Frequency	एक विशेष वैद्युतिक गुण ।
आवेश	Charge	विद्युत के प्रकार का सूचक ।
आसजक बल	Adhesive force	जिस बल के कारण एक पदार्थ दूसरे पदार्थ में चिपका रहता है ।
आसवन	Distillation	किसी द्रव को वाष्पीभूत करके पुनः द्रवीभूत करने की क्रिया ।
आसुत	Distillate	आसवन क्रिया में प्राप्त पदार्थ ।

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
उत्क्रमणीय	Reversible	जो रासायनिक क्रियाएँ दोनों दिशाओं में हो सकती हैं।
उत्तापदर्शी या उत्तापदर्शक }	Pyroscope	उत्ताप के अनुमान करने का यन्त्र।
उत्तापमापी या उत्तापमापक }	Pyrometer	उत्ताप नापने का यन्त्र।
उत्पादक गैस	Producer gas	
उत्सर्जक शक्ति	Emissive power	
उदासीन	Neutral	जो न अम्लीय हो न क्षारीय।
उद्योग-परिकल्पना	Factory Scheme	
उपजात	Byproduct	इच्छित उत्पादित पदार्थ के अतिरिक्त प्राप्त होनेवाले पदार्थ।
ऊपरी व्यय	Overhead charges or Oncost	
„ उत्पादन पर	Production On-cost	
„ विक्रय पर	Commercial On-cost	
ऊर्जा	Energy	
ऊर्णन	Flocculation or Agglomeration	
ऊर्ध्वाधर	Vertical	
ऊष्मा क्षेपक	Exothermic	जिस रासायनिक क्रिया में ताप उत्पन्न होता है।
ऊष्मा शोषक	Endothermic	जिस रासायनिक क्रिया के लिए ताप देने की आवश्यकता होती है।
ऊष्मीय मान	Calorific-Value	एक ग्राम पदार्थ के जलने पर उत्पन्न ताप की मात्रा।
एन्जाइम	Enzymes	विशेष प्रकार के बीजाणु।
ऐसिड वैल्यू	Acid Value	पदार्थों में अम्लता का परिमाण।

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
ओह्म	Ohm	विद्युत प्रतिरोध की इकाई ।
ऑटोक्लेव	Autoclave	वाष्प द्वारा की उपस्थिति में पदार्थों के पकाने का उपकरण ।
कज्जल	Soot or lamp-black	
कण सूक्ष्मता	Fineness	
करण	Tool	
कलिल	Colloidal or colloid	
काँच कलई	Enamel	किमी धातवीय वस्तु पर काँचीय प्रलेप ।
काँचीय	Vitrified	
काट दृश्य	Sectional-View	
काठ कोयला	Charcoal	
कारीगर प्रधान	Foreman	
कुंड	Tank	
केओलीनीकरण	Kaolinization	खनिजों से प्राकृतिक क्रिया द्वारा केओलिन बनना ।
केलास	Crystal	
केलासीकरण	Devitrification	अकाचीयकरण देगिए ।
केशिका	Capillary	
क्रांतिक	Critical	
क्षारीय	Alkaline	
क्षैतिज	Horizontal	
गणना	Calculation	
गन्ध तेल	Essential oils	
गलन ताप	Fusion heat	
गलनशील	Fusible	
गलनशील, सहज	Easily Fusible	अल्प ताप द्वारा गलनीय पदार्थ ।
गलन सहायक	Flux	जो पदार्थ हमारे पदार्थों के अल्पताप

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
गलनांक	Fusion temperature	मे ही गलने में सहायक होता है, जैसे सुहागा सोने का गलन सहायक है।
गलित स्फटिक चूर्ण		गलित स्फटिक को ठंडा करने पर प्राप्त चूर्ण।
गैस	Gas	
गैस, उत्पादक	Producer-gas	
गैस, कोक भट्ठी	Coke oven-gas	
गैस, कोयला	Coal-gas	
गैस, जल	Water-gas	
गैस, तेल	Oil-gas	
गैस-धारक	Gas Holder	
गैस-नालियाँ	Flues	
गैस, वात भट्ठी	Blast furnace gas	
घरिया	Crucible	
घोल	Solution	यथा शर्बत, चीनी का पानी में घोल होता है।
घोला	Slip or Slurry	जैसे मिट्टी को पानी में मिलाने पर घोला बनाता है।
चकमक पत्थर या चकमकी	Flint	
चमक	Lusture	
चमकहीन	Dull or Matt	
चाप	Pressure	
चालकता	Conductivity	
चिकन प्रलेप	Glaze	
चित्राकन	Painting	
चित्रित टालियाँ	Encaustic or Inlaid tiles	

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
चिमनी	Stack or chimney	
चूल्हे	Furnace	
चूल्हे की जाली	Grate bars	
छर्पी	Grog	पकी हुई मिट्टी तथा खनिजों के चूर्ण ।
छादनी	Scum	
छादनी नियन्त्रण मिश्रण	Anti-scum mixture	
छापना	Printing	
जबड़ा चूर्णक यन्त्र	Jaw crusher	
जलचित्र विधि	Chromolitho- graphy process for decoration	
जल-निष्कासक	Filter press	
जल निष्कासन यन्त्र	Filter press	
जलयोजित	Hydrated	
जल-विश्लेषण	Hydrolysis	
ज्वलनशील	Inflammable	
ज्वालक	Burner	
टाली	Tile	
टेरा-कोटा	Terra-cotta	प्रलेप-रहित पके हुए मृत्पात्र ।
तनन क्षमता	Tensile strength	
तनाव	Tension	
तनु	Dilute	
तल-अङ्क	Surface factor	चूर्ण खनिजों के समान कणों के तल क्षेत्रफल का तल अङ्क कहते हैं ।
तल-तनाव	Surface tension	द्रवों का वह गुण जिसके कारण उनका तल तनी हुई झिल्ली की भाँति कार्य करता है ।

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
ताप जनन शणक	Power factor	
ताप जनन शक्ति	Heating power	
ताप जनित रासायनिक क्रियाएँ	Pyrochemical reactions	
ताप पृथक्करण	Heat insulation	
ताप शोषण	Soaking	
तापसह	Refractory	
तापीय युग्म	Thermocouple	
तारत्व	Pitch of sound	
दण्ड चक्री	Rack and pinion	
दमकाक	Flash-point	जिसी द्रव की वाष्प जलाने में सक्षम आवश्यक न्यूनतम तापक्रम।
दहन	Combustion	
दीप्ति	Sheen	
दुर्गन्ध	Refractory	
दूरबीन	Telescope	
द्रव घन-वमापी	Hydrometer	
द्रवणांक	Melting point	
द्रावक	Flux	गन्धन सहायक द्रव्य।
द्रावण	Melting	किसी ठोस का गरम करके द्रव में परिवर्तित करना।
द्विक-विच्छेदन	Double-decomposition	
धातुमल	Slag	प्राकृतिक खनिजों में शुद्ध धातु प्राप्त करने की क्रिया में अलग होने वाले अपद्रव्य।
ध्रुवायित प्रकाश	Polarised light	
नतोदर दर्पण	Concave mirror	

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
नमक प्रलेपन	Salt glazing	
नियतांक	Constant	
निरपेक्ष	Absolute	
निर्जलन	Dehydration	
निर्देश	Chart	
निस्तापन	Calcination	
पकाव	Firing	
पजावा	Clamp	
पटिया	Slab	
परावर्त्तन	Reflection	
परास	Range	
परिपथ	Circuit	
परिवर्तक	Converter	
पायस	Emulsion	
पारगमित प्रकाश	Transmitted light	
पारगम्य	Permeable	
पार-भासकता	Translucency	अल्प पारदर्शकता ।
पारविद्युत् नियतांक	Dielectric constant or puncture Voltage	विद्युत् का वह न्यूनतम दबाव तथा वोल्टता जिस पर विद्युत् प्रतिरोधक पदार्थ से भी पार हो जाय ।
पार्श्व दृश्य	End View	
पिण्ड	Body	मिट्टी तथा खनिज चूर्णों में पानी मिलाकर जो पिंड बनाया जाता है उसी को अंग्रेजी में बाँडी कहते हैं ।
पुनरुत्पादक	Regenerator	भट्ठी से जानेवाली गैसों के व्यर्थ ताप को उपयोग में लाने की एक भिन्न विधि ।
पुनर्जीवक	Recuperator	भट्ठी से जानेवाली गैसों के व्यर्थ

शब्द

समानार्थी अंग्रेजी शब्द

संक्षिप्त व्याख्या

ताप को उपयोग में लाने की एक विधि ।

पूंजी	Capital
पूंजी, गतिशील	Liquid capital
पूंजी, मूल्य ह्रास	Depreciation fund
पूंजी, व्ययित	Blocked capital
पूंजी, स्थायी	Reserve capital
पेषण	Paste
प्रकाश जनन शक्ति	Illuminating power
प्रकोष्ठ	Chamber
प्रक्रम	operation
प्रतिबल	Stress
प्रतिरोध	Resistance
प्रत्यावर्ती धारा	Alternating current (A.C)
प्रत्यास्थता	Elasticity
प्रदर्शन कक्ष	Show room
प्रद्रावण	Smelting
प्रमापी	Meter
प्रलेप	Glaze
प्रलेप पकाव	Glost firing
प्रसार	Expansion
प्रस्फुटन	Efflorescence
प्राकृतिक प्रभाव	Weathering
प्रामाणिक	Standard

खनिज मिश्रण को गला कर उसमें से कोई शुद्ध धातु निकालने की क्रिया ।

प्रारम्भिक पकाव से प्राप्त मृद्वस्तुओं पर प्रलेप लगाने के पश्चात् द्वितीय पकाव ।

पुरानी ईंटों पर लगनेवाली सुई आकार कणों की नोनी ।

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
प्रारम्भिक पकाव	Biscuit firing	मृत्पात्र को कटा करने के लिए प्रथम पकाव ।
प्लवन	Floatation	
फली	Cleats	
बामे	Be°	द्रवों के घनत्व नापने की एक विशेष विधि ।
बालू-कागज	Sand-paper	
बौछारीकरण	Automisation	
भट्ठा	Clamp	
भट्ठी	Kiln	
भट्ठी, अविराम	Continuous Kiln	
भट्ठी, विराम	Periodic Kiln	
भट्ठी, ऊर्ध्वगति	Up-draught kiln	
भट्ठी, अधोर्ध्वगति या निम्नगति	Down draught kiln	
भट्ठी, क्षैतिज गति	Horizontal draught kiln	
भट्ठी, घूर्णक	Rotary Kiln	
भट्ठी, सुरंग	Tunnel kiln	
भाप ऊष्मक	Steam bath	
भास्मिक	Basic	
मध्यमान	Average	
मापी	Meter	
मिश्रण-पिण्ड	Body	पिण्ड देखिए ।
मिश्रधातु	Alloy	
मृत मैगनीशिया	Dead burnt magnesia or Periclase	
मृदुकरण	Annealing	धातुओं तथा काँच पाना में तनाव

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
मोरम	Moram, <i>1 e</i> , laterite clays	दूर करने की एक विधि। प्लेटफार्म आदि पर पडनेवाली लाल ककडी।
म्हो	Mho '(Inverse of ohm)	ओह्म का व्युत्क्रम।
यथार्थता	Accuracy	
यान्त्रिक शक्ति	Mechanical strength	
रंग स्थापक	Mordant	
रजक	Colours	
रजक, अन्त प्रलेप	Underglaze colours	
रजक, प्रलेप	Inglaze colours	
रजक, प्रलेप तल या एनामेल	Overglaze or enamel colours	
रक्त ऊष्मा	Red heat	८००°-९००° से०
रक्त शिखा	Rouge-flambe	
रक्षक ईंटे	Face-Bricks	
रचना	Constitution or Texture	
रजन	Rosin	
रजनीय	Resinous	
रन्ध्रता	Porosity	
रवा	Crystal	
रसद्रव्य	Chemicals	
रिंग	Ring	पके पात्रो से निकलनेवाली ध्वनि।
रूपान्तर	Transformation	
रेखाचित्र	Graph	
रेगमाल	Sand-paper	
लचीलापन	Plasticity	

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
वर्णक	Pigment	
वर्तनाक	Refractive Index	
वायु निष्कासन यन्त्र	} Vacuum pump	
या वायु निष्कासक		
वाष्पशील	Volatile	
वाष्पित्र	Boiler	
वास्तविक उत्पादन		
मूल्य	Prime cost	
विकिरण	Radiation	
विकृति	Deformation	
विक्षेप	Deflection	
विद्युत् द्वार	Electrode	
विद्युत् धन द्वार	Anode or positive electrode	
विद्युत् ऋण द्वार	Cathode or negative electrode	
विद्युत् ध्रुव	Electric pole	
विद्युत् धन ध्रुव	Positive pole	
विद्युत् ऋण ध्रुव	Negative pole	
विद्युत् रसाकर्षण	Electro-osmosis	
विद्युत् रोधक	Insulator	
विद्युद् वाहक बल	Electro motive force (E. M. F.)	
विद्युद्विश्लेष्य	Electrolytes	
विरजन	Bleaching	
विरल धातु	Rare metals	
विरल मृदा	Rare earths	
विलयन	Solution	घोल देखिए ।
विलोडन	Stirring	

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्त व्याख्या
विश्लेषण	Analysis	
विश्लेषण, चरम	Ultimate Analysis	
विश्लेषण, युक्तिगत	Rational Analysis	
विश्लेषण, सन्निकट	Proximate Analysis	
विसरण	Diffusion of light	
विह्वलन	Deflocculation or peptizing	ऊर्ध्वन की उलटी क्रिया ।
वोल्टता	Voltage	
व्हीट स्टोन सेतु	Wheat stone's Bridge	विद्युत् प्रतिरोध नापने का एक यन्त्र ।
शोधन	Purification	
श्यान	Viscous	
श्यानता	Viscosity	
श्लेष	Gelatin	
संकेन्द्र	Concentric	
संकोचन	Shrinkage or contraction	
संक्षारक	Corrosive	
संगठन	Composition	
सघनन कुडली	Condensing worm	
सघात क्षमता	Impact strength	
संचरण	Communication	
सपीडन	Compression	
संवहन धाराएँ	Convection currents	
सवेग शक्ति	Mechanical strength	
संसर्जक या ससक्ति बल	Cohesive force	पदार्थ कणों का अन्तर्निहित बल जिसके कारण भिन्न कण मिले रहते हैं । यथा पारा गिराने पर उसमें

शब्द

समानार्थी अंग्रेजी शब्द

संक्षिप्त व्याख्या

समान वस्तु के प्रति हाने के कारण दूसरे में विभजन हो जाना है ।

सन्निकट	Approximate
सफेदा	White lead
समष्टि	Aggregation
समाग	Homogeneous
समाई	Space capacity
सम्पृक्त	Saturated
सन्ध्र प्रलेप	Engobe
सह्य नाप	Pyrometric cone-equivalent (P. C. E)

माँचा	Mould
मान्द्र	Concentrated
साबुन-पत्थर	Soap-stone
साबुनीकरण	Saponification
सारणी	Table
सीसा-जनित विष	Lead poison
सुग्राही	Sensitive
सुद्राव मिश्रण	Eutectic mixture

दो या दो से अधिक पदार्थों का ऐसे अनुपात में मिश्रण जो न्यूनतम तापक्रम पर गल जाय ।

सूक्ष्मता	Accuracy
सूक्ष्मदर्शी	Microscope
सूचक	Indicator
सूचना पट्ट	Notice-board
सूची स्तम्भ	Pyramid
सूत्र	Formula
सूत्र, आणविक	Molecular formula
सूत्र, व्यावहारिक	Recipe

शब्द	समानार्थी अंग्रेजी शब्द *	संक्षिप्त व्याख्या
सैगर शकु	Seagar cone	एक विशेष उत्तापदर्शी ।
स्कदन	Coagulation or floculation	
स्तर	Stage	
स्नेहक तेल	Lubricating oil	
स्फटिक	quartz	
स्वास्थ्य सम्बन्धी मृत्पात्र	Sanitary wares	
हल्लित्र	Shaking apparatus	
हाइड्रोकार्बन	Hydrocarbon	कार्बन तथा हाइड्रोजन के यौगिक यथा—मिट्टी का तेल, पेट्रोल बेन्जीन आदि ।